सत् शास्त्र-प्रकाशन—

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत—

श्रीमद्भागवत-महापुराण

[पदच्छेद, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ टीका सहित]

तृतीय खण्ड

[चतुर्थ स्कन्ध]

सम्पादक :

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान

मथुरा-२८१००१

श्री हित हरिवंश

वृन्दावन के परम पूज्य संत श्री प्रेमानंद जी के प्रवचन से प्रेरणा पाकर हमने मूल संस्कृत की श्रीमद्भागवत का पाठ स्वयं करने का निश्चय किया. अंग्रेजी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने और संस्कृत भाषा का अधिक ज्ञान न होने के कारण हमारे लिए मूल श्लोक को पढ़ना थोड़ा कठिन है | इसीलिए हमारे गुरु श्री के. एन. राव जी ने हमें श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ गीता प्रेस से प्रकाशित पदच्छेद, अन्वय और टीका वाली पुस्तक संख्या 17 से कराया है | पदच्छेद से संस्कृत श्लोक का अध्ययन सुगम हो गया और कुछ समय बाद मूल श्लोक भी सहजता से पढ़ा गया। इसी उद्देश्य से हमने भागवत की एक ऐसी प्रति को खोजना प्रारम्भ किया जिसमें मूल श्लोक, पदच्छेद और साथ ही हिंदी टीका हो | इंटरनेट पर खोजने से ऐसी कई प्रति मिलीं किन्तु श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी द्वारा किया अन्वय उन सभी में सबसे सहज और सुगम है। किन्तु ग्रन्थ के अब प्रकाशित न होने के कारण उपलब्ध नहीं है। इस अमूल्य ग्रन्थ को दोबारा साधकों तक लाने के लिए इसके सभी खंडों को स्कैन करके उपलब्ध कराने का यह हमारा छोटा सा प्रयास है।

श्री जी की कृपा से इस यात्रा में पद पद पर हमें वृन्दावन के संतों और धर्मप्रेमी मित्रों का सहयोग मिलता रहा जिसके बिना इस कार्य को पूर्ण करना असंभव था | सभी संतो और मित्रों का आभार प्रकट किये बिना इस ग्रन्थ को पुनः जन जन तक पहुँचाना संभव ही नहीं है | सबसे पहले इस ग्रन्थ की खोज में हमारे मार्गदर्शक आगरा के स्वपनिल जी बने और हमारा परिचय प्रभात जी से कराया | तत्पश्चात पूज्य राजमाता सौभाग्य कुँवर राणावत जी और पूज्य डॉ. बालचंद्रिका पाठक जी (मुन्नी जीजी) के मार्गदर्शन में हमने वृन्दावन के आश्रमों में इसकी खोज प्रारम्भ की | अन्ततः इस ग्रन्थ के सभी खंड हमें अखंडानंद आश्रम लाइब्रेरी से श्री सेवानंद जी और मलूक पीठ ग्रंथालय से श्री श्यामसुंदर जी के आशीर्वाद से प्राप्त हुए | पहला खंड अत्यधिक पुराना होने के कारण बहुत ही जीर्ण अवस्था में था और खंड के बहुत से पृष्ठ गुम हो चुके थे | तभी हमारी इस यात्रा को पूर्ण करने में सहयोगी बने बक्सर वाले मामाजी के बक्सर आश्रम से श्याम जी जिन्होंने कोसी आश्रम के नवल जी से परिचय करवाया। और नवल जी ने प्रथम खंड की बहुत ही सहज कर रखी गयी प्रति स्कैन करने के लिए उपलब्ध करवाई |

श्री जी के आशीर्वाद, संतों के मार्गदर्शन और धर्मप्रेमी मित्रों के सहयोग के बिना यह यात्रा असफल ही होती | हम आशा करेंगे कि इस नए प्रिंट से सभी भागवत प्रेमी और विद्यार्थी लाभ उठा सकेंगे | इस पूरे ग्रन्थ का पीडीऍफ़ ऑनलाइन भी अपलोड किया गया है | नीचे दिए लिंक से सभी खंडों का पीडीऍफ़ डाउनलोड किया जा सकता है |

https://archive.org/details/shrimad-bhagvat-anvaya-teeka

मकर संक्रांति, जनवरी 15, 2024 राधे राधे ...

॥ चतुर्थ स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥१॥

मनोः तु शतरूपायां तिस्रः कन्याः च जज्ञिरे आकूतिः देवहूतिः च प्रसूतिः इति विश्रुताः ॥१॥

मनोः तु	मनुके तो	**देवहूतिः च**	देवहूति तथा
शतरूपायां	शतरूपासे	**प्रसूतिः**	प्रसूति (ये)
तिस्रः कन्याः च	तीन कन्यायें भी	**इति विश्रुताः**	इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं ॥१॥
जज्ञिरे	उत्पन्न हुईं ।		
आकूतिः	आकूति,		

आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः ।
पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥२॥

आकूतिं रुचये प्रादात् अपि भ्रातृमतीं नृपः पुत्रिका धर्मं आश्रित्य शतरूपा अनुमोदितः ॥२॥

शतरूपा	(अपनी पत्नी) शतरूपाकी	**आकूतिं रुचये**	आकूति रुचि (प्रजापति) को
अनुमोदितः	अनुमतिसे	**पुत्रिका धर्मं**	पुत्रिका धर्मको*
नृपः	राजा मनुने	**आश्रित्य**	अपनाकर
भ्रातृमतीं अपि	(उसके) भाई होनेपर भी	**प्रादात्**	प्रदान किया ॥२॥

---

* पुत्रिका धर्मके विवाहमें शर्त होती है कि कन्याकी प्रथम सन्तान उसका पिता (सन्तानका नाना) ले लेगा ।

प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् ।
मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥३॥

प्रजापतिः स भगवान् रुचिः तस्यां अजीजनत् मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥३॥

ब्रह्मवर्चस्वी	ब्रह्म तेज सम्पन्न	**परमेण समाधिना**	अत्यन्त एकाग्रतासे
स भगवान्		**तस्यां मिथुनं**	उसमें एक जोड़ा
रुचिः	उन भगवान् रुचि	**अजीजनत्**	उत्पन्न किया ॥३॥
प्रजापतिः	प्रजापतिने		

यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ।
या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूतानपायिनी ॥४॥

यः तयोः पुरुषः साक्षात् विष्णुः यज्ञस्वरूप धृक् या स्त्री सा दक्षिणाः भूतेः अंश भूता अनपायिनी ॥४॥

तयोः यः	उस जोड़ेमें जो	**या स्त्रीः सा दक्षिणा**	जो दक्षिणा नामकी कन्या थी वह
पुरुषः	पुरुष था	**अनपायिनी**	भगवानसे कभी पृथक् न होनेवाली
यज्ञस्वरूप धृक्	यज्ञका स्वरूप धारण किये	**भूतेः अंश भूता**	लक्ष्मीकी अंश स्वरूपा थी ॥४॥
साक्षात् विष्णुः	साक्षात् विष्णु थे ।		

आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विततरोचिषम् ।
स्वायम्भुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥५॥

आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं वितत रोचिषं स्वायम्भुवः मुदा युक्तः रुचिः जग्राह दक्षिणाम् ॥५॥

वितत रोचिषं	परम तेजस्वी	**स्वगृहं आनिन्ये**	अपने घर ले आये ।
पुत्र्याः पुत्रं	(अपनी) कन्याके पुत्रको	**रुचिः**	प्रजापति रुचिने
स्वायम्भुवः	स्वायम्भू मनु	**दक्षिणां जग्राह**	दक्षिणाको ले लिया ॥५॥
मुदा युक्तः	प्रसन्न होकर		

तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः ।
तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद् द्वादशात्मजान् ॥६॥

तां कामयानां भगवान् उवाह यजुषां पतिः तुष्टायां तोषं आपन्नः अजनयत् द्वादश आत्मजान् ॥६॥

तां	उस		सन्तुष्ट होनेपर
कामयानां	(अपनेको) चाहने वालीको	**तोषं आपन्नः**	(स्वयं भी) सन्तुष्ट होकर
भगवान् यजुषां पतिः	भगवान यज्ञपतिने	**द्वादश आत्मजान्**	बारह पुत्र
उवाह	विवाह लिया,	**अजनयत्**	उत्पन्न किये ॥६॥
तुष्टायां	(इससे उसके)		

तोषः प्रतोषः संतोषो भद्रः शान्तिरिडस्पतिः ।
इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥७॥

तोषः, प्रतोषः, सन्तोषः, भद्रः, शान्तिः, इडस्पतिः, इध्मः, कविः, विभुः, स्वह्नः, सुदेवः, रोचनः, द्विषट् (ये बारह हैं) ॥७॥

तुषिता नाम ते देवा आसन् स्वायम्भुवान्तरे ।
मरीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥८॥

तुषिता नाम ते देवाः आसन् स्वायम्भुव अन्तरे मरीचिमिश्रा ऋषयः यज्ञः सुरगणे ईश्वरः ॥८॥

स्वायम्भुव अन्तरे	स्वायम्भू मन्वन्तरमें		(ब्रह्मपुत्र)
ते तुषिता नाम	वे (बारहो) 'तुषित' नामके	**ऋषयः**	सप्तर्षि हुए,
देवाः आसन्	देवता हुए,	**यज्ञः**	भगवान यज्ञ
मरीचिमिश्रा	मरीचि आदि		उस मन्वन्तर (में)
		सुरगण ईश्वरः	देवताओंके स्वामी इन्द्र हुए ॥८॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ।
तत्पुत्रपौत्रनप्तृणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥९॥

प्रियव्रतः उत्तानपादौ मनुपुत्रौ महा ओजसौ तत् पुत्र पौत्र नप्तृणां अनुवृत्तं तदन्तरम् ॥९॥

प्रियव्रतः		**तदन्तरं**	उस मन्वन्तरमें
उत्तानपादौ	प्रियव्रत और उत्तानपाद	**तत् पुत्र पौत्र नप्तृणां अनुवृत्तं**	उनके पुत्रों, पौत्रों, दौहित्रोंका वंश ही रहा ॥९॥
महा ओजसौ	अत्यन्त तेजस्वी		
मनुपुत्रौ	मनुके पुत्र थे,		

देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः ।
तत्सम्बन्धि श्रुतप्रायं भवता गदतो मम ॥१०॥

देवहूतिं अदात् तात कर्दमाय आत्मजां मनुः तत् सम्बन्धि श्रुतं प्राय भवता गदतः मम ॥१०॥

तात	तात विदुर !	**तत् सम्बन्धी**	उनके सम्बन्धकी (बातें)
आत्मजां			
देवहूतिं	अपनी पुत्री देवहूति	**भवता मम**	
मनुः	मनुने	**गदतः**	तुमने मेरे वर्णनसे
कर्दमाय अदात्	कर्दमजीको दिया ।	**प्रायः श्रुतं**	प्रायः सुन लिया है ॥१०॥

दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनुः ।
प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान् ॥११॥

दक्षाय ब्रह्म पुत्राय प्रसूतिं भगवान् मनुः प्रायच्छत् यत् कृतः सर्गः त्रिलोक्यां विततः महान् ॥११॥

भगवान् मनुः	भगवान् मनुने	**यत् कृतः महान्**	
ब्रह्म पुत्राय		**सर्गः**	जिनका किया महान् वंश विस्तार
दक्षाय	ब्रह्माजीके पुत्र दक्षको	**त्रिलोक्यां**	
प्रसूतिं प्रायच्छत्	प्रसूति प्रदान की,	**विततः**	तीनों लोकोंमें फैला है ॥११॥

याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नयः ।
तासां प्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥१२॥

याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षि पत्नयः तासां प्रसूति प्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥१२॥

याः कर्दमसुताः	जो कर्दमजीकी पुत्रियां	**प्रोक्ता**	(मैंने) बतलायी हैं,
		तासां प्रसूति	
नव ब्रह्मर्षि		**प्रसवं**	उनकी वंश-परम्परा
पत्नयः	नौ ब्रह्मर्षियोंकी पत्नियाँ	**मे प्रोच्यमानं**	मैं बतला रहा हूँ,
		निबोध	सुनो ॥१२॥

पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा ।
कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥१३॥

पत्नी मरीचेः तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा कश्यपं पूर्णिमानं च ययोः आपूरितं जगत् ॥१३॥

कर्दमात्मजा	कर्दमजीकी कन्या	**सुषुवे**	उत्पन्न किया,
मरीचेः पत्नी	मरीचिकी पत्नी	**ययोः**	जिन्होंने (अपनी सन्तानोंसे)
कला तु	कलाने तो		
कश्यपं च		**जगत् आपूरितं**	पूरे संसारको भर दिया ॥१३॥
पूर्णिमानं	कश्यप और पूर्णिमानको		

पूर्णिमासूत विरजं विश्वगं च परंतप ।
देवकुल्यां हरेः पादशौचाद्याभूत्सरिद्दिवः ॥१४॥

पूर्णिमा असूत विरजं विश्वगं च परंतप देवकुल्यां हरेः पादशौचात् अभूत् सरित् दिवः ॥१४॥

परंतप	शत्रुतापन विदुर !	**विरजं च**	
पूर्णिमा	पूर्णिमानने	**विश्वगं**	विरज, विश्वग (दो पुत्र) और

देवकुल्यां अभूत्	देवकुल्या (नामक कन्या) उत्पन्न की	**दिवः सरित् अभूत्**	सुरसरि हुई ॥१४॥
हरेः पादशौचात्	(जो जन्मान्तरमें) श्रीहरिके चरणोदकसे		

अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ्जज्ञे सुयशसः सुतान् ।
दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसम्भवान् ॥१५॥

अत्रेः पत्नि अनसूया त्रीन् जज्ञे सुयशसः सुतान् दत्तं दुर्वाससं सोमं आत्म ईश ब्रह्म सम्भवान् ॥१५॥

अत्रेः पत्नि अनुसूया	अत्रिकी पत्नी अनुसूयाने	**आत्म ईश ब्रह्म सम्भवान् दत्तं दुर्वाससं सोमं**	विष्णु, शिव, ब्रह्माके (अंशसे) उत्पन्न दत्त, दुर्वासा तथा चन्द्रमाको ॥१६॥
सुयशसः	उत्तम यशस्वी		
त्रीन् सुतान् जज्ञे	तीन पुत्र जन्म दिये,		

विदुर उवाच–

अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ।
किञ्चिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥१६॥

अत्रेः गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थिति उत्पत्ति अन्त हेतवः किञ्चित् चिकीर्षवः जाता एतत् आख्याहि मे गुरो ॥१६॥

गुरो	गुरुजी !	**किञ्चित् चिकीर्षवः**	कुछ करनेकी इच्छासे
अत्रेः गृहे	महर्षि अत्रिके घर		
स्थिति उत्पत्ति अन्त	स्थिति, सृष्टि, प्रलयके	**जाता मे एतत् आख्याहि**	उत्पन्न हुए होंगे, मुझे यह बतलाइये ॥१६॥
हेतवः सुरश्रेष्ठाः	कारण देवोत्तम		

मैत्रेय उवाच–

ब्रह्मणा नोदितः सृष्टावत्रिर्वेदविदां वरः ।
सह पत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥१७॥

ब्रह्मणा नोदितः सृष्टाः अत्रिः वेदविदांवरः सहपत्न्या ययाऋक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥१७॥

ब्रह्मणा नोदितः	ब्रह्म जीके आज्ञा देनेपर	**तपसि स्थितः**	तपस्या करने
वेदविदांवरः	वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ	**ऋक्षं कुलाद्रिं**	ऋक्ष नामक कुल पर्वतपर
सहपत्न्या अत्रिः	पत्नी के साथ अत्रि	**ययौ**	गये ॥१७॥

तस्मिन् प्रसूनस्तबकपलाशाशोककानने ।
वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समन्ततः ॥१८॥

तस्मिन् प्रसून स्तबक पलाश अशोक कानने वार्भिः स्रवद्भिः उद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समन्ततः ॥१८॥

तस्मिन्	वहां	**समन्ततः**	चारों ओर
प्रसून स्तबक पलाश अशोक	पुष्प गुच्छोंसे युक्त	**निर्विन्ध्यायाः**	निर्विन्ध्या नदीके
		वार्भिः स्रवद्भिः	पानी बहनेकी
कानने	पलाश और अशोक-केवनमें	**उद्घुष्टे**	ध्वनि होती थी ॥१८॥

प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः ।
अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥१९॥

प्राणायामेन संयम्य मनः वर्षशतं मुनिः अतिष्ठत् एक पादेन निर्द्वन्द्वः अनिल भोजनः ॥१९॥

प्राणायामेन मनः संयम्य	प्राणायामसे मनको नियन्त्रित करके	**अनिल भोजनः**	केवल वायु पीकर
		एक पादेन मुनिः	एक पैरसे वे मुनि
		वर्षशतं अतिष्ठत्	सौ वर्ष खड़े रहे ॥१९॥
निर्द्वन्द्वः	(शीत-उष्णादि) द्वन्द्वों को त्यागकर		

शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः ।
प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् ॥२०॥

शरणं तं प्रपद्ये अहं य एव जगदीश्वरः प्रजां आत्मसमां मह्यं प्रयच्छतु इति चिन्तयन् ॥२०॥

य एव जगदीश्वरः	'जो कोई जगदीश्वर हो	**मह्यं आत्मसमां प्रजां प्रयच्छतु**	मुझे अपने समान पुत्र प्रदान करे ।'
तं अहं शरणं प्रपद्ये	उसकी मैं शरण लेता हूँ ।	**इति चिन्तयन**	ऐसा संकल्प किया था ॥२०॥

तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाग्निना ।
निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥२१॥

तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायाम एधसा अग्निना निर्गतेन मुनेः मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवः त्रयः ॥२१॥

प्राणायाम एधसा	प्राणायामसे बढ़ी हुई	**त्रिभुवनं तप्यमानं**	त्रिभुवनका संतप्त होते
मुनेः मूर्ध्नः	मुनिके मस्तकसे	**समीक्ष्य**	देखकर
निर्गतेन अग्निना	निकली आगसे	**त्रयः प्रभवः**	(विश्वके) तीनों स्वामी ॥२१॥

अप्सरोमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ।
वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥२२॥

अप्सरः मुनिगन्धर्व सिद्ध विद्याधर उरगैः वितायमानं यशसः तत् आश्रम पदं ययुः ॥२२॥

अप्सरः मुनि-गन्धर्व सिद्ध विद्याधर उरगैः	अप्सरा, मुनिगण, गन्धर्वों सिद्धों, विद्याधरों, नागों द्वारा	**यशसः वितायमानं तत् आश्रम पदं**	यशोगान गाये जाते उनके आश्रम स्थान पर
		ययुः	आये ॥२२॥

तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः ।
उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विबुधर्षभान् ॥२३॥

तत् प्रादुर्भाव संयोग विद्योतितमना मुनिः उत्तिष्ठन् एक पादेन ददर्श विबुधर्षभान् ॥२३॥

तत् प्रादुर्भाव संयोग	उनके प्रादुर्भाव होनेसे	**एक पादेन उत्तिष्ठन्**	एक पैरसे खड़े-खड़े
मुनिः	मुनिका	**विबुधर्षभान् ददर्श**	(उन) देवोत्तमोंको देखा ॥२३॥
विद्योतितमना	चित्त प्रकाशित हो गया,		

प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणाञ्जलिः ।
वृषहंससुपर्णस्थान् स्वैः स्वैश्चिह्नैश्च चिह्नितान् ॥२४॥

प्रणम्य दण्डवत् भूमाः उपतस्थे अर्हण अञ्जलिः वृष हंस सुपर्ण स्थान् स्वैः स्वैः चिह्नैः च चिह्नितान् ॥२४॥

वृष हंस सुपर्ण स्थान् च स्वैः स्वैः	बैल, हंस, गरुड़पर बैठे,	**भूमौ दण्डवत् प्रणम्य**	पृथ्वीमें दण्डवत् प्रणाम करके
चिह्नैः	और अपने-अपने चिह्नों (त्रिशूल, कमंडलु, चक्र)से	**अर्हणं अञ्जलिः उपतस्थे**	पूजा करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥२४॥
चिह्नितान्	चिह्नित (उनको)		

कृपावलोकेन हसद्वदनेनोपलम्भितान् ।
तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिरक्षिणी ॥२५॥

कृपा अवलोकेन हसत् वदनेन उपलम्भितान् तत् रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिः अक्षिणी ॥२५॥

कृपा अवलोकेन	कृपा पूर्वक देखते	**प्रतिहते अक्षिणी**	चौंधियायी आँखोंको
हसत् वदनेन	मुस्कराते मुखसे	**मुनिः निमील्य**	मुनिने बन्द करके ॥२५॥
उपलम्भितान्	(सुप्रसन्न) दीखते		
तत् रोचिषा	उनकी कान्तिसे		

चेतस्तत्प्रवणं युञ्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः ।
श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥२६॥

चेतः तत् प्रवणं युञ्जन् अस्तावीत् संहत अञ्जलिः श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोक गरीयसः ॥२६॥

चेतः तत् प्रवणं	चित्तको उन्हींकी ओर	**सूक्तया वाचा**	भावपूर्ण वाणीसे
युञ्जन्	लगाकर	**सर्वलोक गरीयसः**	लोकोंमें सबसे बड़े
संहत अञ्जलिः	हाथ जोड़कर	**अस्तावीत्**	उनकी स्तुति करने लगे ॥२६॥
श्लक्ष्णया	मधुर		

अत्रि रुवाच–

विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानै-
र्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ।
ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं व-
स्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः ॥२७॥

विश्व उद्भव स्थिति लयेषु विभज्यमानैः माया गुणैः अनुयुगं विगृहीत देहाः ते ब्रह्म विष्णु गिरिशाः प्रणतः अस्मि अहं वः तेभ्यः क एव भवतां म इह उपहूतः ॥२७॥

अनुयुगं	प्रत्येक कल्प (के प्रारम्भ) में	**ते ब्रह्म विष्णु गिरिशाः**	आप ब्रह्मा, विष्णु, शिवको
माया गुणैः	मायाके (सत्त्वादि) गुणोंका	**अहं प्रणतः अस्मि**	मैं प्रणाम करता हूँ,
विभज्यमानैः	विभाग करके	**भवतां तेभ्यः**	आप लोगोंमें-से
विश्व उद्भव स्थिति लयेषु	संसारकी उत्पत्ति, स्थिति,प्रलयके लिए	**क एव**	वे कौन हैं,
देहाः विगृहीतः	शरीर धारण किए	**म इह उपहूतः**	(जिन्हें) मैंने यहाँ बुलाया था ? ॥२७॥

एको मयेह भगवान् विबुधप्रधान-
श्चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयम् ।
अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूराद्
ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥२८॥

एकः मया इह भगवान् विबुध प्रधानैः चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयं अत्र आगताः तनुभृतां मनसा अपि दूरात् ब्रूत प्रसीदत महान् इह विस्मयः मे ॥२८॥

मया इह	मैंने यहाँ
विबुध प्रधानैः	देवताओंमें मुख्य
एकः प्रजननाय	एकका (पुत्र रूपसे) उत्पन्न होनेके लिए
चित्तीकृतः	ध्यान किया था,
तनुभृतां मनसा अपि दूरात्	शरीरधारियोंके लिए मनसे भी दूर रहनेवाले
यूयं कथं नु	आप कैसे तो
अत्र आगताः	यहाँ आ गये,
इह मे	इस सम्बन्धमें मुझे
महान् विस्मयः	महान् आश्चर्य है,
प्रसीदत ब्रूत	प्रसन्न होकर बतलाइये ॥२८॥

मैत्रेय उवाच–

इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः ।
प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥२९॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयः ते विबुधर्षभाः प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तं ऋषिं प्रभो ॥२९॥

प्रभो	समर्थ विदुर !
इति तस्य	इस प्रकार उनकी
वचः श्रुत्वा	बात सुनकर
ते त्रयः	वे तीनों
विबुधर्षभाः	देव श्रेष्ठ
प्रहस्य	हँसकर
तं ऋषिं	उन ऋषिसे
श्लक्ष्णया वाचा	मधुर वाणीसे
प्रत्याहुः	उत्तरमें बोले ॥२९॥

त्रिदेवा ऊचुः■-

यथा कृतस्ते सङ्कल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ।
सत्सङ्कल्पस्य ते ब्रह्मन् यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥३०॥

यथा कृतः ते सङ्कल्पः भाव्यं तेन एव न अन्यथा सत् सङ्कल्पस्य ते ब्रह्मन् यत् वै ध्यायति ते वयम् ॥३०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन्	**अन्यथा न**	(उससे) भिन्न नहीं,
ते सत्		**यत् वै**	(अतः) जो निश्चित
सङ्कल्पस्य	आप सत्य संकल्पने		(आप)
यथा सङ्कल्पः		**ध्यायति**	ध्यान करते हैं,
कृतः	जैसा संकल्प किया	**ते वयं**	वे हम (तीनों)
तेन एव भाव्यं	उसके अनुसार ही होना चाहिए		हैं ॥३०॥

अथास्मदंशभूतास्ते आत्मजा लोकविश्रुताः ।
भवितारोऽङ्ग भद्रं ते विस्रप्स्यन्ति च ते यशः ॥३१॥

अथ अस्मत् अंशभूताः ते आत्मजाः लोकविश्रुताः भवितारः अङ्ग भद्रं ते विस्रप्स्यन्ति च ते यशः ॥३१॥

अथ अस्मत्	अतः हमारे	**ते यशः च**	तुम्हारे यशको भी
अंशभूताः	अंश-स्वरूप	**विस्रप्स्यन्ति**	फैलावेंगे
लोकविश्रुताः	लोकप्रसिद्ध	**अङ्ग ते भद्रं**	प्रिय ऋषि आपका मंगल हो ॥३१॥
ते आत्मजाः	तुम्हारे पुत्र		
भवितारः	होंगे		

मैत्रेय उवाच*-

एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः ।
सभाजितास्तयोः सम्यग्दम्पत्योर्मिषतोस्ततः ॥३२॥

■ अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'देवा ऊचुः' है।
* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः सभाजिताः तयोः सम्यक् दम्पत्योः मिषतः ततः ॥३२॥

एवं कामवरं	इस प्रकार मनचाहा वरदान	**तयोः दम्पत्योः**	उन दम्पतिके
दत्त्वा	देकर	**मिषतः**	देखते
सम्यक्		**ततः सुरेश्वराः**	वहाँसे (वे) देव स्वामी
सभाजिताः	भली प्रकार सत्कृत होकर	**प्रतिजग्मुः**	लौट गये ॥३२॥

सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् ।
दुर्वासाः शंकरस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥३३॥

सोमः अभूत् ब्रह्मणः अंशेन दत्तः विष्णोः तु योगवित् दुर्वासाः शंकरस्य अंशः निबोध आङ्गिरसः प्रजाः ॥३३॥

ब्रह्मणः अंशेन		**शंकरस्य अंशः**	शंकरके अंशसे
सोमः	ब्रह्माके अंशसे चन्द्र,	**दुर्वासाः अभूत्**	दुर्वासा हुए ।
विष्णोः तु	विष्णुके (अंशसे) तो	**आङ्गिरसः**	
योगवित् दत्तः	योगशास्त्रके ज्ञाता दत्त,	**प्रजाः निबोध**	अब अंगिराकी सन्तान सुनो ॥३३॥

श्रद्धा त्वङ्गिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः ।
सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥३४॥

श्रद्धा तु अङ्गिरसः पत्नी चतस्रः असूत कन्यकाः सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यं अनुमतिः तथा ॥३४॥

श्रद्धा तु	श्रद्धा तो	**सिनीवाली कुहू**	सिनीवाली, कुहू,
अङ्गिरसः पत्नी	अंगिराजीकी पत्नीने	**राका**	राका
चतस्र कन्यकाः	चार कन्याएँ	**तथा चतुर्थ्यं**	तथा चौथी
असूत	उत्पन्न की,	**अनुमतिः**	अनुमति ॥३४॥

तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे ।
उतथ्यो भगवान् साक्षाद्ब्रह्मिष्ठश्च बृहस्पतिः ॥३५॥

तत् पुत्राः अपराः आस्तां ख्यातौ स्वारोचिष अन्तरे उतथ्यः भगवान् साक्षात् ब्रह्मिष्ठः च बृहस्पतिः ॥३५॥

तत् अपराः	उसके और	**ब्रह्मिष्ठः**	
पुत्राः आस्तां	दो पुत्र थे,	**बृहस्पतिः**	ब्रह्मज्ञानी वृहस्पति
साक्षात् भगवान्	साक्षात् भगवान्	**स्वारोचिष**	
उतथ्यः च	उतथ्य और	**अन्तरे**	(ये) स्वारोचिष मन्वन्तरमें
		ख्यातौ	प्रसिद्ध हुए ॥३५॥

पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि ।
सोऽन्यजन्मनि दह्राग्निर्विश्रवाश्च महातपाः ॥३६॥

पुलस्त्यः अजनयत् पत्न्यां अगस्त्यं च हविर्भुवि सः अन्य जन्मनि दह्राग्निः विश्रवाः च महातपाः ॥३६॥

पुलस्त्यः	पुलस्त्यजीने	**दह्राग्निः**	जठराग्नि थे,
हविर्भुवि पत्न्यां	हविर्भू नामक पत्नीसे	**च महातपाः**	तथा महातपस्वी
		विश्रवाः	
अगस्त्यं च	अगस्त्यको	**अजनयत्**	विश्रवाको उत्पन्न
सः अन्यजन्मनि	(जो) वे दूसरे जन्ममें		किया ॥३६॥

तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः ।
रावणः कुम्भकर्णश्च तथान्यस्यां विभीषणः ॥३७॥

तस्य यक्षपतिः देवः कुबेरः तु इडविडा सुतः रावणः कुम्भकर्णः च तथा अन्यास्यां विभीषणः ॥३७॥

तस्य	उन (विश्रवा) के	**यक्षपतिः**	यक्षराज
इडविडा सुतः	इडविडा (नामकी पत्नी) के पुत्र	**देवः कुबेरः तु**	देव कुबेर हुए

तथा अन्यास्यां	तथा दूसरी (पत्नी) से
रावणः	
कुम्भकर्णः	रावण, कुम्भकर्ण
च विभीषणः	और विभीषण हुए ॥३७॥

पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् ।
कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥३८॥

पुलहस्य गतिः भार्या त्रीन् असूत सती सुतान् कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥३८॥

महामते	महामते !
पुलहस्य	पुलहकी
सती भार्या	
गतिः	सती पत्नी गतिने
त्रीन् सुतान्	तीन पुत्र
कर्मश्रेष्ठं	कर्मश्रेष्ठ,
वरीयांसं	वरीयान्,
च सहिष्णुं	और सहिष्णु,
असूत	उत्पन्न किया ॥३८॥

क्रतोरपि क्रिया भार्या वालखिल्यानसूयत ।
ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥३९॥

क्रतोः अपि क्रिया भार्या वालखिल्यान् असूयत ऋषीन् षष्टि सहस्राणि ज्वलतः ब्रह्मतेजसा ॥३९॥

क्रतोः अपि	क्रतुकी भी
क्रिया भार्या	क्रिया (नामक) पत्नीने
ब्रह्मतेजसा	
ज्वलतः	ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान
षष्टि सहस्राणि	साठ हजार
वालखिल्यान्	
ऋषीन्	वालखिल्य ऋषि
असूयत	जन्म दिये ॥३९॥

ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परन्तप ।
चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥४०॥

ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्राः वशिष्ठस्य परन्तप चित्रकेतु प्रधानाः ते सप्त ब्रह्मर्षयः अमलाः ॥४०॥

परन्तप	शत्रुतापन विदुर !	अमलाः	
वसिष्ठस्य	वशिष्ठके	सप्त ब्रह्मर्षयः	निर्मल सात ब्रह्मर्षि
ऊर्जायां	ऊर्जा (अरुन्धती) में	पुत्राः जज्ञिरे	पुत्र उत्पन्न हुए ॥४०॥
चित्रकेतु प्रधानाः	चित्रकेतु आदि		

चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च ।
उल्बणो वसुभृद्यानो द्युमान् शक्त्यादयोऽपरे ॥४१॥

चित्रकेतुः सुरोचिः च विरजा मित्र एव च उल्बणः वसुभृद्यानः द्युमान् शक्ति आदयः अपरे ॥४१॥

चित्रकेतुः सुरोचिः च विरजा मित्र एव	चित्रकेतु, सुरोचि और विरजा तथा मित्र	च उल्बणः वसुभृद्यानः द्युमान् अपरे शक्ति आदयः	एवं उल्बण, वसुभृद्यान, द्युमान तथा दूसरे शक्ति आदि ॥४१॥

चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् ।
दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोध मे ॥४२॥

चित्तिः तु अथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतं दध्यञ्चं अश्वशिरसं भृगोः वंशं निबोध मे ॥४२॥

अथर्वणः पत्नीः	अथर्वाकी पत्नी	दध्यञ्चं	दधीचिको
चित्तिः तु	चित्तिने तो	पुत्रं लेभे	पुत्र रूपमें पाया,
धृतव्रतं	व्रतधारी (तपस्वी)	मे भृगोः वंशं	(अब) मुझसे भृगुका वंश
अश्वशिरसं	(पीछे) घोड़ेके मुख वाले बने	निबोध	सुनो ॥४२॥

भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् ।
धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ॥४३॥

भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रान् अजीजनत् धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ॥४३॥

महाभागः भृगुः	महाभाग भृगुने
ख्यात्यां पत्न्यां	ख्याति (नामक) पत्नीसे
धातारं च विधातारं	धाता और विधाता
पुत्रान् च	पुत्रोंको और
भगवत्परां श्रियं	भगवान (विष्णु) की परायण लक्ष्मीको
अजीजनत्	उत्पन्न किया ॥४३॥

आयतिं नियतिं चैव सुते मेरुस्तयोरदात् ।
ताभ्यां तयोरभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥४४॥

आयतिं नियतिं च एव सूते मेरुः तयोः अदात् ताभ्यां तयोः अभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥४४॥

मेरुः तयोः	मेरु ऋषिने उन (धाता-विधाता) को
सूते आयतिं नियतिं च	अपनी पुत्री आयति और नियति
एव अदात् ताभ्यां तयोः	दोनोंको दे दिया, उनसे उन दोनोंको
मृकण्डः च प्राण एव अभवतां	मृकण्ड तथा प्राण भी हुए ॥४४॥

मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः ।
कविश्च भार्गवो यस्य भगवानुशना सुतः ॥४५॥

मार्कण्डेयः मृकण्डस्य प्राणात् वेदशिरा मुनिः कविः च भार्गवः यस्य भगवान् उशना सुतः ॥४५॥

मृकण्डस्य मार्कण्डेयः	मृकण्डके (पुत्र) मार्कण्डेय (हुए)
प्राणात् मुनिः वेदशिराः	प्राणसे मुनि वेदशिरा हुए।
भार्गवः कविः च	भृगुजीके ही (पुत्र) कवि थे,
यस्य सुतः भगवान् उशना	जिनके पुत्र भगवान् शुक्राचार्य हैं ॥४५॥

त एते मुनयः क्षत्तर्लोकान् सर्गैरभावयन् ।
एष कर्दमदौहित्रसंतानः कथितस्तव ।
शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ॥४६॥

त एते मुनयः क्षत्तः लोकान् सर्गैः अभावयन् एष कर्दम दौहित्र संतानः कथितः तव शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ॥४६॥

क्षत्तः	विदुर !	**संतानः कथितः**	सन्तानोंका वर्णन किया,
त एते मुनयः	ये इतने मुनिगण	**श्रद्दधानस्य**	श्रद्धापूर्वक
सर्गैः लोकान्	सन्तानोत्पादनसे लोकोंको	**शृण्वतः**	सुननेसे (यह)
अभावयन्	भर दिया ।	**सद्यः परः**	
तव एष	तुमसे यह	**पापहरः**	तुरन्त महापाप भी नष्ट कर देता
कर्दम दौहित्र	कर्दमजीके दौहित्रोंकी		हैं ॥४६॥

प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ।
तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः ॥४७॥

प्रसूतिं मानवीं दक्षः उपयेमे हि अजात्मजः तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडश अमल लोचनाः ॥४७॥

हि अजात्मजः	*क्योंकि ब्रह्माजीके पुत्र थे	**तस्यां**	उसने
दक्षः	दक्ष	**अमल लोचनाः**	निर्मल नेत्रोंवाली
मानवीं प्रसूतिं	मनुपुत्री प्रसूतिसे	**षोडश दुहितॄः**	सोलह कन्याएँ
उपयेमे	विवाह किया,	**ससर्ज**	उत्पन्न कीं ॥४७॥

त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ।
पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ॥४८॥

त्रयोदश अदात् धर्माय तथा एकां अग्नये विभुः पितृभ्यः एकां युक्तेभ्यः भवाय एकां भवच्छिदे ॥४८॥

धर्माय	धर्मको	**एकां अग्नये**	एक (कन्या) अग्निको,
त्रयोदश अदात्	तेरह (कन्याएँ) दीं,		
विभुः	भगवान् (दक्ष) ने		

---

* 'हि अजात्मजः' इसमें 'हि' का संकेत है कि इन्हें भी पिताके समान सृष्टि-विस्तारकी धुन चढ़ी थी ।

युक्तेभ्यः		भवच्छिदे	
पितृभ्यः	सब सम्मिलित पितरोंको	भवाय	संसारके (जन्म-मरण) नाशक शिवको
एकां तथा	एक तथा	एकां	एक (कन्या) दी ॥४८॥

श्रद्धा मैत्री दया शान्तिरतुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ।
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः ॥४९॥

श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्तिः, तुष्टिः, पुष्टिः क्रिया, उन्नतिः, बुद्धिः, मेधा, तितिक्षा, ह्रीः, मूर्तिः, धर्मस्य पत्नयः (ये धर्मकी पत्नियाँ हैं ।)॥४९॥

श्रद्धासूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं दया ।
शान्तिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥५०॥

श्रद्धा असूत शुभं मैत्री प्रसादं अभयं दया शान्तिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिः असूयत ॥५०॥

श्रद्धा शुभं	श्रद्धाने शुभको,	तुष्टिः मुदं	तुष्टिने मोद और
मैत्री प्रसादं	मैत्रीने प्रसादको,	पुष्टिः स्मयं	पुष्टिने स्मय (अहंकार) को
दया अभयं	दयाने अभयको,		
शान्तिः सुखं	शान्तिने सुखको,	असूयत	जन्म दिया ॥५०॥
असूत	उत्पन्न किया		

योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत ।
मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥५१॥

योगं क्रिया उन्नतिः दर्पं अर्थं बुद्धिः असूयत मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥५१॥

क्रिया योगं	क्रियाने योगको,	बुद्धिः अर्थं	बुद्धिने अर्थको,
उन्नतिः दर्पं	उन्नतिने दर्प (गर्व) को,	मेधा स्मृतिं	मेधाने स्मृतिको,

तितिक्षा तु क्षेमं	तितिक्षाने तो क्षेम (कुशल) को,	सुतं असूयत	पुत्र उत्पन्न किये ॥५१॥
ह्रीः प्रश्रयं	ह्री (लज्जा) ने प्रश्रय (विनय)		

मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥५२॥

मूर्तिः सर्वगुण उत्पत्तिः नरनारायणौ ऋषिः ॥५२॥

मूर्तिः	मूर्तिने	नरनारायणौ ऋषिः	नर-नारायण ऋषियोंको (जन्म दिया) ॥५२॥
सर्वगुण उत्पत्तिः	सब गुणोंके जन्मदाता		

ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनन्दत्सुनिर्वृतम् ।
मनांसि ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः ॥५३॥

ययोः जन्मनि अदोः विश्वं अभ्यनन्दत् सुनिर्वृतं मनांसि ककुभः वाताः प्रसेदुः सरितः अद्रयः ॥५३॥

ययोः जन्मनि	जिनका जन्म होनेपर	मनांसि ककुभः वाताः सरितः अद्रयः प्रसेदुः	मन, दिशाएँ, वायु, नदियाँ, पर्वत सभी प्रसन्न (निर्मल) हो गये ॥५३॥
अदोः विश्वं सुनिर्वृतं अभ्यनन्दत्	इस पूरे विश्वने अत्यन्त आनन्दित होकर अभिनन्दन किया,		

दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः ।
मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥५४॥

दिव्य वाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुम वृष्टयः मुनयः तुष्टुवुः तुष्टा जगुः गन्धर्व किन्नराः ॥५४॥

दिव्य तूर्याणि	देवताओंकी तुरहियाँ	कुसुम वृष्टयः पेतुः	पुष्प वर्षा होने लगी,
वाद्यन्त	बजने लगीं,		

तुष्टा मुनय·	सन्तुष्ट होकर मुनिगण	गन्धर्व किन्नराः जगुः	गन्धर्व और किन्नर
तुष्टुवुः	स्तुति करने लगे,		गाने लगे ॥५४॥

नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य आसीत्परममङ्गलम् ।
देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः ॥५५॥

नृत्यन्ति स्म स्त्रियः देव्य आसीत् परम मङ्गलं देवाः ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुः अभिष्टवैः ॥५५॥

देव्य स्त्रियः	देवताओंकी स्त्रियाँ	सर्वे ब्रह्मादयः देवाः	सब ब्रह्मादि देवता
नृत्यन्ति स्म	नाचने लगीं,	अभिष्टवैः	
परम मङ्गलं आसीत्	बड़ा महोत्सव होने लगा,	उपतस्थुः	स्तुति करने उपस्थित हुए ॥५५॥

देवा ऊचुः—

यो मायया विरचितं निजयाऽऽत्मनीदं
खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ।
एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाद्य
प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥५६॥

यः मायया विरचितं निजया आत्मनि इदं खे रूपभेदं इव तत् प्रति चक्षणाय एतेन धर्म सदने ऋषि मूर्तिना आद्यः प्रादुः चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥५६॥

खे रूपभेदं इव	आकाशमें रूपभेद (की कल्पना) के समान	आत्मनि इदं	अपने भीतर ही इस (संसार) को
		विरचितं	बनाकर
यः निजया मायया	जो अपनी मायासे	तत् प्रति चक्षणाय	उसे प्रकाशित करनेके लिए

एतेन ऋषि मूर्तिना	इन ऋषि रूपोंमें	आद्यः पुरुषाय परस्मै नमः	उन आदि पुरुष परमात्माको नमस्कार ॥५६॥
धर्म सदने	धर्मके घरमें		
प्रादुः चकार	आविर्भूत हुए हैं,		

सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान्
सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ।
दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन
यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपतारविन्दम् ॥५७॥

सः अयं स्थिति व्यतिकरः उपशमाय सृष्टान् सत्त्वेन नः सुरगणान् अनुमेय तत्त्वः दृश्यात् अदभ्र करुणेन विलोकनेन यत् श्रीनिकेतं अमलं क्षिपत अरविन्दम् ॥५७॥

सः	उन्हीं (भगवान) ने	यत् श्रीनिकेतं	जो शोभाधाम
स्थिति व्यतिकरः	स्थितिमें गड़बड़ी करने वालोंको	अमलं अरविन्दं क्षिपत	निर्मल कमलको लज्जित करनेवाले
उपशमाय	शान्त करनेके लिए	अदभ्र करुणेन विलोकनेन	असीम करुणामय
नः सुरगणान् सृष्टान्	हम देवगणोंको बनाया है,	दृश्यात्	नेत्रोंसे (हमारी ओर) देखें ॥५७॥
अयं अनुमेय तत्त्वः	ये जिनके तत्त्वका (हम शास्त्रोंसे) अनुमान ही करते हैं (जान नहीं पाते)		

*मैत्रेय उवाच**-

एवं सुरगणैस्तात भगवन्तावभिष्टुतौ ।
लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गन्धमादनम् ॥५८॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एवं सुरगणैः तात भगवन्तौ अभिष्टुतः लब्ध्वा अवलोकैः ययतुः अर्चितौ गन्धमादनम् ॥५८॥

तात	तात विदुर !	**लब्ध्वा**	पाकर
एवं सुरगणैः	इस प्रकार देवताओं द्वारा	**अर्चितौ**	उन (देवताओंसे) पूजित होकर
अभिष्टुतौ	स्तुति किये जानेपर	**गन्धमादनं**	गन्धमादन पर्वतपर
अवलोकैः	कृपा दृष्टि	**ययतुः**	चले गये ॥५८॥

ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ ।
भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥५९॥

तौ इमौ वै भगवतः हरेः अंशाः इह आगतौ भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदु कुरुद्वहौ ॥५९॥

भुवः भार-व्ययाय	पृथ्वीका भार मिटाने	**यदु कुरुद्वहौ**	यदुवंश और कुरुवंशमें
वै तौ इमौ	निश्चय वही ये दोनों	**भगवतः हरेः**	भगवान श्रीहरिके
कृष्णौ च	कृष्ण* भी	**अंशाः**	अंश
		इह आगतौ	इस (संसार) में आये थे ॥५९॥

स्वाहाभिमानिनश्चाग्नेरात्मजांस्त्रीनजीजनत् ।
पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनम् ॥६०॥

स्वाहा अभिमानिनः च अग्नेः आत्मजान् त्रीन् अजीजनत् पावकं पवमानं च शुचिं च हुत भोजनम् ॥६०॥

अग्नेः स्वाहा	अग्निकी पत्नी स्वाहाने	**त्रीन् आत्मजान् पावकं च पवमानं च शुचिं**	तीन पुत्र पावक और पवमान
अभिमानिनः	(अग्निके ही) अभिमानी	**अजीजनत्**	तथा शुचिको उत्पन्न किया ॥६०॥
हुत भोजनं च	हवन कियेको ही खाने वाले		

* अर्जुनका भी एक नाम कृष्ण था ।

तेभ्योऽग्नयः समभवन् चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
त एवैकोनपञ्चाशत्साकं पितृपितामहैः ॥६१॥

तेभ्यः अग्नयः समभवन् चत्वारिंशत् च पञ्च च त एव एकोन पञ्चाशत् साकं पितृ पितामहैः ॥६१॥

तेभ्यः	इनसे	पितृ पितामहैः साकं	(तीन) पिता तथा (एक) पितामहके साथ
चत्वारिंशत् च पञ्च च	पैंतालीस		
अग्नयः			
समभवन्	अग्नि उत्पन्न हुए ।	एकोन	
त एव	यह ही	पञ्चाशत्	उनचास (अग्नि) हैं ॥६१॥

वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
आग्नेय्य इष्टयो यज्ञे निरूप्यन्तेऽग्नयस्तु ते ॥६२॥

वैतानिके कर्मणि यत् नामभिः ब्रह्मवादिभिः आग्नेय्य इष्टयः यज्ञे निरूप्यन्ते अग्नयः तु ते ॥६२॥

ब्रह्मवादिभिः	वेदज्ञों द्वारा	आग्नेय्य इष्टयः	आग्नेयी इष्टियाँ
वैतानिके		निरूप्यन्ते	करते हैं
कर्मणि	यज्ञीय कर्ममें	ते तु अग्नयः	वे तो (यही)
यत् नामभिः	जिनके नाम लेकर		अग्नियाँ हैं ॥६२॥

अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोम्याः पितर आज्यपाः ।
साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥६३॥

अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोम्याः पितर आज्यपाः साग्नयः अनग्नयः तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥६३॥

अग्निष्वात्ता	अग्निष्वात्ता	आज्यपाः	आज्यप
बर्हिषदः	बर्हिषद	पितर	ये पितर हैं,
सोम्याः	सौम्य	तेषां साग्नयः	उनमें (कुछ) साग्निक और

अनग्नयः	(कुछ) निरग्निक हैं।	दाक्षायणी स्वधा	दक्षपुत्री स्वधा
पत्नी	इनकी पत्नी		है ॥६३॥

तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा।
उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥६४॥

तेभ्यः दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञान विज्ञान पारगे ॥६४॥

तेभ्यः स्वधा	उन (पितरों) से स्वधाने	ते उभे ज्ञान-विज्ञान पारगे	वे दोनों ज्ञान-विज्ञान पारंगता
द्वे कन्ये	दो कन्याएँ	ब्रह्मवादिन्यौ	ब्रह्मज्ञानोपदेशिका हुईं ॥६४॥
दधार	उत्पन्न कीं,		
वयुनां धारिणीं	वयुना और धारिणी,		

भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता।
आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥६५॥

भवस्य पत्नी तु सती भवं देवं अनुव्रता आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥६५॥

भवस्य पत्नी	शंकरजीकी पत्नी	गुणशीलतः	(किन्तु) गुण और शीलमें
सती तु	सती तो	आत्मनः सदृशं	अपने समान
देवं भवं		पुत्रं न लेभे	पुत्र नहीं पाया ॥६५॥
अनुव्रता	भगवान् शिवकी अनुव्रता थी		

पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा।
अप्रौढैवात्मनाऽऽत्मानमजहाद्योगसंयुता ॥६६॥

पितरि अप्रतिरूपे स्वे भवाय अनागसे रुषा अप्रौढा एव आत्मना आत्मानं अजहात् योग संयुता ॥६६॥

अनागसे भवाय	निरपराध शंकरजीका	**योग संयुता**	योगके द्वारा
स्वे पितरि	अपने पिता द्वारा	**आत्मना**	
अप्रतिरूपे	प्रतिकूल आचरण करनेसे	**आत्मानं**	स्वयं ही शरीरका
अप्रौढा एव	युवावस्थामें ही	**अजहात्**	त्याग कर दिया ॥६६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे **वैयासिक्यां पारमहंस्यां** संहितायां चतुर्थस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

विदुर उवाच-

भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ।
विद्वेषमकरोत्कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥१॥

भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षः दुहितृ वत्सलः विद्वेषं अकरोत् कस्मात् अनादृत्य आत्मजां सतीम् ॥१॥

दुहितृ वत्सलः	पुत्रियोंसे प्रेम करनेवाले	अनादृत्य	उपेक्षा करके
		शीलवतां श्रेष्ठे	शीलवानोंमें श्रेष्ठ
दक्षः	दक्षने	भवे कस्मात्	शंकरजीसे क्यों
आत्मजां सतीं	अपनी पुत्री सतीकी	विद्वेषं अकरोत्	द्वेष किया ॥१॥

कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शान्तविग्रहम् ।
आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥२॥

कः तं चराचर गुरुं निर्वैरं शान्त विग्रहं आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतः दैवतं महत् ॥२॥

तं चराचर गुरुं	उन चराचरके गुरु,	जगतः महत् दैवतं	जगतके परमाराध्य देवसे
निर्वैरं	निर्वैर,		
शान्त विग्रहं	शान्त मूर्ति,		
आत्मारामं	आत्माराम,	कः कथं द्वेष्टि	प्रजापति (दक्ष) ने क्यों द्वेष किया ॥२॥

एतदाख्याहि मे ब्रह्मन् जामातुः श्वशुरस्य च ।
विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान्सती ॥३॥

एतत् आख्याहि मे ब्रह्मम् जामातुः श्वशुरस्य च विद्वेषः तु यतः प्राणान् तत्यजे दुस्त्यजान् सती ॥३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	विद्वेषः आख्या	शत्रुता (क्यों हुई)
एतत् मे		हि यतः	क्योंकि जिससे
आख्याहि	यह मुझे बतलाइये कि	दुस्त्यजान् प्राणान्	दुस्त्यज प्राणोंको
जामातुः च	जामाता और	सती तत्यजे	सतीने छोड़ दिया ॥३॥
श्वशुरस्य	श्वशुरकी		

मैत्रेय उवाच-

पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः ।
तथामरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥४॥

पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः तथा अमरगणाः सर्वे सानुगाः मुनयः अग्नयः ॥४॥

पुरा	पहिले	अमरगणाः	देवगण
विश्वसृजां सत्रे	ब्रह्माजीके यज्ञमें	मुनयः अग्नयः	अपनी अग्नियोंके साथ मुनि-गण
परमर्षयः तथा	परमर्षि-गण तथा		
सानुगाः सर्वे	अनुचरोंके साथ सब	समेताः	एकत्र हुए थे ॥४॥

तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्ट्वार्कमिव रोचिषा ।
भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वन्तं तन्महत्सदः ॥५॥

तत्र प्रविष्टं ऋषयः दृष्ट्वा अर्कं इव रोचिषा भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वन्तं तत् महत् सदः ॥५॥

रोचिषा अर्कं इव	कान्तिमें सूर्यके समान	वितिमिरं कुर्वन्तं	प्रकाशित करते
भ्राजमानं	प्रकाशित होते,	तत्र प्रविष्टं	वहां प्रवेश करते (दक्षको)
तत् महत् सदः	उस विशाल सभा-भवनको	दृष्ट्वा ऋषयः	देखकर ऋषि-गण ॥५॥

उदतिष्ठन् सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नयः ।
ऋते विरिञ्चं शर्वं च तद्वासाऽऽक्षिप्तचेतसः ॥६॥

उदतिष्ठन् सदस्याः ते स्वधिष्ण्येभ्यः सह अग्नयः ऋते विरिञ्चि शर्वं च तद् भासा आक्षिप्त चेतसः ॥६॥

तद् भासा	उन (दक्ष) की कान्तिसे	**ऋते**	छोड़कर
आक्षिप्त चेतसः	प्रभावित चित्त	**सह अग्नयः**	अपनी अग्नियोंके साथ
ते सदस्याः	उस सभाके सदस्य	**स्वधिष्ण्येभ्यः**	अपने आसनोंसे
विरिञ्चि शर्वं च	ब्रह्मा और शिवको	**उदतिष्ठन्**	उठ खड़े हुए ॥६॥

सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान् साधु सत्कृतः ।
अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥७॥

सदसस्पतिभिः दक्षः भगवान् साधु सत्कृतः अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तत् आज्ञया ॥७॥

भगवान् दक्षः	भगवान दक्ष	**नत्वा तत् आज्ञया**	प्रणाम करके, उनकी आज्ञासे
सदसस्पतिभिः	यज्ञके सदस्यों द्वारा	**निषसाद**	बैठ गये ॥७॥
साधु सत्कृतः	भली प्रकार सत्कृत होकर		
लोकगुरुं अजं	लोकमें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्माजीको		

प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत्तदनादृतः ।
उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥८॥

प्राक् निषण्णं मृडं दृष्ट्वा न अमृष्यत् तत् अनादृतः उवाच वामं चक्षुर्भ्यां अभिवीक्ष्य दहन् इव ॥८॥

मृडं प्राक् निषण्णं	शंकरजी को पहिलेसे बैठा	**अमृष्यत् न**	(इसे) सहन नहीं कर सके,
दृष्ट्वा	देखकर	**वामं चक्षुर्भ्यां**	टेढ़ी दृष्टिसे
तत् अनादृतः	उनसे आदर न पाकर	**अभिवीक्ष्य**	देखकर
		दहन् इव	मानो जला देंगे
		उवाच	बोले ॥८॥

दक्षोवाच■

श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः ।
साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥९॥

श्रूयतां ब्रह्मर्षयः मे सहदेवाः सहअग्नयः साधूनां ब्रुवतः वृत्तं न अज्ञानात् न च मत्सरात् ॥९॥

सहदेवाः	देवताओंके साथ	ब्रुवतः	की बात कहता हूँ
सहअग्नयः	अग्नियोंके साथ	न अज्ञानात्	ना समझीसे नहीं
ब्रह्मर्षयः	ब्रह्मर्षि-गण	न च मत्सरात्	या द्वेषवश नहीं (कहता) ॥९॥
मे श्रूयतां	मेरी बात सुनें		
साधूनां वृत्तं	सत्पुरुषोंके आचार (शिष्टाचार)		

अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः ।
सद्भिराचरितः पन्था येन स्तब्धेन दूषितः ॥१०॥

अयं तु लोकपालानां यशोघ्नः निरपत्रपः सद्भिः आचरितः पन्थाः येन स्तब्धेन दूषितः ॥१०॥

अयं तु	यह (शिव) तो	येन स्तब्धेन	जिस मूर्खने
निरपत्रपः	निर्लज्ज है,	सद्भिः	
लोकपालानां		आचरितः	सत्पुरुषोंसे आचरित
यशोघ्नः	लोकपालोंके यशका नाशक है	पन्थाः दूषितः	मार्गको भ्रष्ट किया है ॥१०॥

एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् ।
पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥११॥

एष मे शिष्यतां प्राप्तः यत् मे दुहितुः अग्रहीत् पाणिं विप्र अग्नि मुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥११॥

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एष मे	यह मेरे
शिष्यतां प्राप्तः	शिष्य (पुत्र) के समान हो गया है,
यत्	क्योंकि
विप्र अग्नि मुखतः	ब्राह्मणों और अग्निके सामने
सावित्र्या इव	सावित्रीके समान
मे दुहितुः	मेरी पुत्रीका
साधुवत्	सत्पुरुषके समान
पाणिं अग्रहीत्	पाणिग्रहण किया ॥११॥

गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः ।
प्रत्युत्थानाभिवादार्हो वाचाप्यकृत नोचितम् ॥१२॥

गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः प्रत्युत्थान अभिवादार्हो वाचा अपि कृत न उचितम् ॥१२॥

मृगशावाक्ष्याः	मृग-शावक-नयनी (मेरी पुत्रीका)
मर्कटलोचनः	(इस) कपिनेत्रने
पाणिं गृहीत्वा	पाणि-ग्रहण करके भी
प्रत्युत्थान अभिवादार्हो	उठ खड़े होने तथा अभिवादनके योग्य (मेरा)
वाचा अपि	वाणीसे भी
उचितं न कृत	उचित (सत्कार) नहीं किया ॥१२॥

लुप्तक्रियायाशुचये मानिने भिन्नसेतवे ।
अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥१३॥

लुप्त क्रियायाः अशुचये मानिने भिन्नसेतवे अनिच्छन् अपि अदां बालां शूद्राय उशतीं गिरम् ॥१३॥

शूद्राय	शूद्रको
उशतीं गिरम्	दिव्य-वाणी (वेद पढ़ा देनेके समान)
अनिच्छन् अपि	इच्छा न होनेपर भी
लुप्त क्रियायाः	सत्कर्मका लोप करनेवाले,
अशुचये	अपवित्र,
मानिने	अभिमानी,
भिन्नसेतवे	मर्यादानाशकको
बालां अदां	(मैंने अपनी) पुत्री दे दी ॥१३॥

प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः ।
अटत्युन्मत्तवन्नग्न व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥१४॥

प्रेत आवासेषु घोरेषु प्रेतैः भूतगणैः आवृतः अटति उन्मत्तवत् नग्नः व्युप्तकेशः हसन् रुदन् ॥१४॥

घोरेषु प्रेत आवासेषु	भयानक प्रेतोंके रहने योग्य स्थानोंमें	**नग्नः**	
		व्युप्तकेशः	नंगा, बाल बिखेरे,
		हसन् रुदन्	कभी हँसता, कभी रोता
प्रेतैः भूतगणैः आवृतः	प्रेत-भूतगणोंसे घिरा	**अटति**	घूमता रहता है ॥१४॥
उन्मत्तवत्	पागलोंके समान		

चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रङ्स्थिभूषणः ।
शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तो मत्तजनप्रियः ।
पतिः प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥१५॥

चिताभस्म कृतस्नानः प्रेतस्रङ्स्थि भूषणः शिव अपदेशः हि अशिवः मत्तः मत्तजनप्रियः पतिः प्रमथभूतानां तमः मात्रा आत्मक आत्मनाम् ॥१५॥

चिताभस्म	चिताकी भस्म	**मत्तजनप्रियः**	पागलोंको ही प्रिय है,
कृतस्नानः	सारे शरीरमें लगाये,	**तमः मात्रा आत्मक आत्मनां**	तमोगुणी स्वभाव वाले
प्रेतस्रङ्	मुर्देपर चढ़ी माला और	**प्रमथ भूतानां पतिः**	प्रमथ एवं भूतोंका स्वामी है ॥१५॥
स्थि भूषणः	मुण्डमाला पहिने,		
शिव अपदेशः	कहलाता तो शिव है; किन्तु		
अशिवः	अमंगल रूप है,		
मत्तः	पागल है,		

तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे ।
दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥१६॥

तस्मा उन्मादनाथाय नष्ट शौचाय दुर्हृदे दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥१६॥

बत परमेष्ठिना चोदिते	अरे, ब्रह्माजीकी प्रेरणासे	**नष्ट शौचाय**	आचारहीन
		दुर्हृदे	दुष्ट हृदयको
तस्मा उन्मादनाथाय	इस पागलोंके स्वामी,	**मया साध्वी दत्ता**	मैंने (अपनी) साधु स्वभावा (पुत्री) दे दी ॥१६॥

मैत्रेय उवाच–

विनिन्द्यैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् ।
दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥१७॥

विनिन्द्य एवं स गिरिशं अप्रतीपं अवस्थितं दक्षः अथ अपः उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥१७॥

स दक्षः	उस दक्षने	**अथ अपः**	
एवं गिरिशं	इस प्रकार शंकरजीकी	**उपस्पृश्य**	फिर जलसे आचमन करके
विनिन्द्य	निन्दा करके	**क्रुद्धः**	क्रोधमें भरा
अप्रतीपं इव	(इसका) प्रतिकार किए बिना*	**शप्तुं प्रचक्रमे**	शाप देने लगा ॥१७॥
अवस्थितं	(स्थिर) बैठे (शंकरजी) को		

दक्ष उवाच–*

अयं तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भवः ।
सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ॥१८॥

---

* अप्रतीपं इव—जैसे कुछ उलटा हो ही नहीं रहा है ऐसे ।

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अयं तु देवयजन इन्द्र उपेन्द्र आदिभिः भवः सह भागं न लभतां देवैः देवगणाधमः ॥१८॥

अयं तु भवः	यह शिव तो	**इन्द्रउपेन्द्र आदिभिः**	इन्द्र, उपेन्द्र आदि
देवगणाधमः	देवताओंमें अधम है	**देवैः सह**	देवताओंके साथ
देवयजन	देव-पूजामें	**भागं न लभतां**	भाग न पावे ॥१८॥

मैत्रेय उवाच*–

निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यै-
र्दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापम् ।
तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्यु-
र्जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥१९॥

निषिध्यमानः स सदस्य मुख्यैः दक्षः गिरित्राय विसृज्य शापं तस्मात् विनिष्क्रम्य विवृद्ध मन्युः जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥१९॥

कौरव्य	विदुर !	**शापं विसृज्य**	शाप देकर
सदस्य मुख्यैः	मुख्य सभासदों द्वारा	**विवृद्ध मन्युः**	बढ़े क्रोधवश
		तस्मात्	
निषिध्यमानः	रोके जानेपर भी	**विनिष्क्रम्य**	वहाँसे निकलकर
स दक्षः	वह दक्ष	**निजं निकेतनम्**	अपने घर
गिरित्राय	शंकरजीको	**जगाम**	चला गया ॥१९॥

विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणी-
र्नन्दीश्वरो रोषकषायदूषितः ।
दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं
ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ॥२०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

विज्ञाय शापं गिरिश अनुग अग्रणीः नन्दीश्वरः रोषकषायदूषितः दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये च अन्वमोदन् तत् अवाच्यतां द्विजाः ॥२०॥

गिरिश अनुग अग्रणीः	शिवजीके अनुचरोंमें श्रेष्ठ	**दक्षाय च तत् आवाच्यतां ये द्विजाः**	दक्षको तथा उसके दुर्वचनोंका
नन्दीश्वरः	नन्दीश्वर		
शापं विज्ञाय	(शंकरजीको) शाप जानकर	**अन्वमोदन्**	जिन ब्राह्मणोंने अनुमोदन किया था उनको
रोषकषाय-दूषितः	क्रोधके आवेशसे तमतमा उठे,	**दारुणं शापं विससर्ज**	भयंकर शाप दिया ॥२०॥

*नन्दीश्वरोवाच**—

य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि ।
द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥२१॥

य एतत् मर्त्यं उद्दिश्य भगवति अप्रति द्रुहि द्रुह्यति अज्ञः पृथक् दृष्टिः तत्त्वतः विमुखः भवेत् ॥२१॥

एतत् मर्त्यं	इस मरणधर्मा शरीरको	**य अज्ञः**	जो मूर्ख
		पृथक् दृष्टिः	भेददर्शी (दक्ष)
उद्दिश्य	उद्देश्य बनाकर	**द्रुह्यति**	द्रोह करता है,
अप्रति द्रुहि	किसीसे भी द्वेष न करने वाले	**तत्त्वतः विमुखः**	(वह) तत्त्वज्ञानसे विमुख
भगवति	भगवान (शिव) से	**भवेत्**	रहे ॥२१॥

गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया ।
कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः ॥२२॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

गृहेषु कूट धर्मेषु सक्तः ग्राम्यसुख इच्छया कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवाद विपन्नधीः ॥२२॥

वेदवाद	वेदोंके अर्थवाद से	**गृहेषु सक्तः**	घरोंमें आसक्त
विपन्नधीः	विवेक भ्रष्ट (दक्ष)	**कर्मतन्त्रं वितनुते**	कर्मकाण्डका विस्तार करता है । ॥२२॥
ग्राम्यसुख इच्छया	विषयसुख पानेकी इच्छासे		
कूट धर्मेषु	कपटाचरण वाले		

बुद्धचापराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ।
स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥२३॥

बुद्धचा पर अभिध्यायिन्या विस्मृतः आत्मगतिः पशुः स्त्रीकामः सः अस्तु अतितरां दक्षः बस्तमुखः अचिरात् ॥२३॥

पर अभिध्यायिन्या	देहादिको आत्मा समझने वाली	**सः पशुः दक्षः अतितरां स्त्री-कामः**	वह पशुदक्ष अत्यन्त स्त्री लम्पट और
बुद्धचा	बुद्धि से	**अचिरात्**	शीघ्र
आत्मगतिः विस्मृतः	आत्मस्वरूपको भूला	**बस्तमुखः अस्तु**	बकरेके मुख वाला हो जाय ॥२३॥

विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः ।
संसरन्त्विह ये चामुमनु शर्वावमानिनम् ॥२४॥

विद्याबुद्धिः अविद्यायां कर्ममय्यां असौ जडः संसरन्तु ये च अमु अनु शर्व अवमानिनम् ॥२४॥

ये च अमुंअनु	जिन्होंने भी इस (दक्ष) के साथ	**अविद्यायां विद्याबुद्धिः**	अविद्यामें विद्याबुद्धि करके
शर्व अवमानिनं	शंकरजीका अपमान किया है (वे)	**जडः संसरन्तु**	अज्ञानी रहकर आवागमनमें पड़े रहें ॥२४॥
असौ कर्ममय्यां	इस कर्मकाण्डमयी		

गिरः श्रुतयाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा ।
मथ्ना चोन्मथितात्मानः सम्मुह्यन्तु हरद्विषः ॥२५॥

गिरः श्रुतयाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा मथ्ना च उन्मथित आत्मानः सम्मुह्यन्तु हरद्विषः ॥२५॥

श्रुतायाः गिरः	वेदकी वाणी	**उन्मथित आत्मनः**	क्षुब्ध चित्त
भूरिणा मधुगन्धेन	बहुत मीठी गन्धसे	**हरद्विषः**	शंकरजीसे द्वेष करने वाले
पुष्पिण्या	पुष्पवती (अर्थवाद युक्त) है	**सम्मुह्यन्तु**	सम्मोहित ही रहें ॥२५॥
मथ्ना	उस मोहित करने वाली (वाणी से)		

सर्वभक्षा द्विजा वृत्त्यै घृतविद्यातपोव्रताः ।
वित्तदेहेन्द्रियारामा याचका विचरन्त्विह ॥२६॥

सर्वभक्षाः द्विजा वृत्त्यै धृत विद्या तपः व्रताः वित्त देह इन्द्रिय आरामाः याचकाः विचरन्तु इह ॥२६॥

इह द्विजा सर्वभक्षा	जो यहां ब्राह्मणहैं वे (खाद्याखाद्यविचार-हीन) सर्वभक्षी,	**वित्त देह इन्द्रिय आरामाः**	धन, शरीर, इन्द्रियोंके सुखोंमें ही लगे
वृत्त्यै	आजीविकाके लिए	**याचकाः विचरन्तु**	भिखारी बने भटकते रहें ॥२६॥
विद्या तपः व्रताः धृत	वेदविद्या, तपस्या, व्रतधारी होकर		

*मैत्रेय उवाच**–

तस्यैवं ददतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै ।
भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययम् ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तस्य एवं ददतः शापं श्रुत्वा द्विज कुलाय वै भृगुः प्रत्यसृजत् शापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययः ॥२७॥

तस्य एवं	उन (नन्दीश्वर) के इस प्रकार	**भृगुः दुरत्ययः**	भृगुने दुस्तर
द्विज कुलाय वै	ब्राह्मण-कुलको ही	**शापं ब्रह्मदण्डं**	शाप रूपी ब्रह्मदण्ड
शापं ददतः	शाप देते	**प्रत्यसृजत्**	उलटकर दिया ॥२७॥
श्रुत्वा	सुनकर		

*भृगु उवाच**–

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः ।
पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥२८॥

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः पाखण्डिनः ते भवन्तु सत् शास्त्र परिपन्थिनः ॥२८॥

ये च भवव्रतधरा	जो लोग शिवभक्त हैं	**परिपन्थिनः**	विरुद्ध आचरण करने वाले
ये च तान्	और जो उनके		
समनुव्रताः ते	अनुयायी हैं	**पाखण्डिनः**	
सत् शास्त्र	सात्विक शास्त्रोंके	**भवन्तु**	पाखण्डी हो जायँ ॥२८॥

नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः ।
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥२९॥

नष्टशौचा मूढधियः जटा भस्म अस्थि धारिणः विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरो आसवम् ॥२९॥

नष्टशौचा	शौचाचारहीन,	**शिवदीक्षायां**	शिव दीक्षा (शैव सम्प्रदाय) में
मूढ़धियः	मूढ़बुद्धि,		
जटा भस्म अस्थि	जटा, भस्म, हड्डियोंको	**विशन्तु**	प्रवेश करें
		यत्र सुरा आसवं	जहाँ शराब और आसव ही
धारिणः	धारण करने वाले	**दैवं**	आराध्य हैं ॥२९॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिन्दथ ।
सेतुं विधारणं पुंसामतः पाखण्डमाश्रिताः ॥३०॥

ब्रह्म च ब्राह्मणाः च एव यत् यूयं परिनिन्दथ सेतुं विधारणं पुंसां अतः पाखण्डं आश्रिताः ॥३०॥

पुंसां सेतुं विधारणं	लोगोंकी मर्यादाके रक्षक	**परिनिन्दथ**	निन्दा करते हो
		अतः	इससे (पता लगता है)
ब्रह्म च	वेदोंकी और	**पाखण्डं आश्रिताः**	पाखण्डका सहारा ले रखा है ॥३०॥
ब्राह्मणाः च	ब्राह्मणोंकी भी		
यत् यूयं	क्यों कि तुम लोग		

एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः ।
यं पूर्वे चानुसंतस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥३१॥

एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः यं पूर्वे च अनुसंतस्थुः यत् प्रमाणं जनार्दनः ॥३१॥

हि	क्योंकि	**अनुसंतस्थुः**	चलते आये हैं,
लोकानां शिवः	लोकोंके कल्याणका	**यत् प्रमाणं**	जिसके प्रमाण (मूल)
एष एव	यह ही		
सनातनः		**जनार्दनः**	भगवान जनार्दन हैं ॥३१॥
पन्थाः	सनातन मार्ग है		
यं पूर्वे च	जिस पर पूर्व-पुरुष भी		

तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् ।
विगर्ह्य यात पाखण्डं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥३२॥

तत् ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनं विगर्ह्य यात पाखण्डं दैवं वः यत्र भूतराट् ॥३२॥

तत् परमं शुद्धं	उस परम पवित्र
सतां सनातनं	सज्जनोंके सनातन
वर्त्म ब्रह्म	मार्ग (स्वरूप) वेदकी
विगर्ह्य	निन्दा करके
पाखण्डं यात	(उस) पाखण्ड मार्गमें जाओ
यत्र वः दैवं	जहां तुम्हारे आराध्य
भूतराट्	भूतराज रहते हैं ॥३२॥

मैत्रेय उवाच-

तस्यैवं वदतः शापं भृगोः स भगवान् भवः ।
निश्चक्राम ततः किञ्चिद्विमना इव सानुगः ॥३३॥

तस्य एवं ददतः शापं भृगोः स भगवान् भवः निःचक्राम ततः किञ्चित् विमना इव सानुगः ॥३३॥

तस्य भृगोः	उन भृगुके
एवं शापं ददतः	इस प्रकार शाप देने पर
किञ्चित्	
विमना इव	कुछ खिन्नसे होकर
स भगवान् भवः	वे भगवान् शिव
सानुगः ततः	अनुचरोंके साथ वहांसे
निःचक्राम	निकल कर चले गये ॥३३॥

तेऽपि विश्वसृजः सत्रं सहस्रपरिवत्सरान् ।
संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषभो हरिः ॥३४॥

ते अपि विश्वसृजः सत्रं सहस्र परिवत्सरान् संविधाय महेष्वास यत्र इज्य ऋषभः हरिः ॥३४॥

महेष्वास	महाधनुर्धर विदुर !
ते अपि	वे लोग भी
सहस्र	
परिवत्सरान्	एक सहस्र वर्षमें पूरा होने वाला
विश्वसृजः सत्रं	प्रजापतियोंका यज्ञ
यत्र इज्य	जिसमें आराध्य
ऋषभः हरिः	पुरुषोत्तम श्रीहरि थे
संविधाय	पूरा करके ॥३४॥

आप्लुत्यावभृथं यत्र गङ्गा यमुनयान्विता ।
विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥३५॥

आप्लुत्य अवभृथं यत्र गङ्गा यमुनया अन्विता विरजेन आत्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययः ततः ॥३५॥

यत्र गङ्गा यमुनया अन्विता	जहां गंगामें यमुना मिलती हैं,	**विरजेन आत्मना**	प्रसन्न मनसे
		ततः स्वं स्वं धाम	वहांसे अपने अपने धाम
अवभृथं आप्लुत्य	अवभृथ स्नान करके	**सर्वे ययुः**	सब चले गये ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे दक्षशापो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ तृतीयोऽध्याय

मैत्रेय उवाच–

सदा विद्विषतोरेवं कालो वै ध्रियमाणयोः ।
जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥१॥

सदा विद्विषतः एवं कालः वै ध्रियमाणयोः जामातः श्वशुरस्य अपि सुमहान् अतिचक्रमे ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**वै**	
जामातुः	दामाद और	**सुमहान् कालः**	निश्चित ही बहुत बड़ा समय
श्वशुरस्य अपि	स्वसुरका भी	**अतिचक्रमे**	बीत गया ॥१॥
सदा विद्विषतः	सदा बैर-विरोध		
ध्रियमाणयोः	कहते हुए		

यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥२॥

यदा अभिषिक्तः दक्षः तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना प्रजापतीनां सर्वेषां आधिपत्ये स्मयः अभवत् ॥२॥

यदा		**दक्षः तु**	
परमेष्ठिना	जब सृष्टिकर्त्ता	**अभिषिक्तः**	दक्षका तो अभिषेक कर दिया
ब्रह्मणा	ब्रह्माजी द्वारा	**स्मयः अभवत्**	(तब उन्हें) घमण्ड हो गया ॥२॥
सर्वेषां			
प्रजापतीनां	अब प्रजापतियोंके		
आधिपत्ये	अधिपति पदपर		

इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च ।
बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥३॥

इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठान् अभिभूय च बृहस्पति सवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥३॥

ब्रह्मिष्ठान्		च बृहस्पति-	
अभिभूय	ब्रह्मनिष्ठों (शिवसनकादि) का तिरस्कार करके	सवं नाम	फिर बृहस्पतीसव नामक
		क्रतूत्तमं	
वाजपेयेन		समारेभे	महायज्ञका प्रारम्भ किया ॥३॥
इष्ट्वा	वाजपेय यज्ञ करके,		

तस्मिन् ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवताः ।
आसन् कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥४॥

तस्मिन् ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षि पितृ देवताः आसन् कृतस्वस्त्ययनाः तत् पत्न्यः च सभर्तृकाः ॥४॥

तस्मिन् सर्वे	उस (यज्ञ)में सब	आसन्	आयीं
ब्रह्मर्षयः देवर्षि	ब्रह्मर्षि, देवर्षि,	कृत-	
पितृ देवताः	पितर-देवताः	स्वस्त्ययनाः	(वहां उन्होंने) मंगलकृत्य किये ॥४॥
तत् पत्न्यः च	और उनकी पत्नियां भी		
सभर्तृकाः	पतियोंके साथ		

तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् ।
सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥५॥

तत् उपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पतां सती दाक्षायणी देवी पितुः यज्ञ महोत्सवम् ॥५॥

नभसि खेचराणां	आकाशमें जाते देवताओंकी	**उपश्रुत्य**	चर्चा सुनकर
प्रजल्पतां	बातचीतमें	**दाक्षायणी देवी सती**	दक्ष-कन्या-देवी सतीने ॥५॥
तत् पितुः यज्ञ महोत्सवं	उस पिताके यज्ञ-महोत्सवकी		

व्रजन्तीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः ।
विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः ॥६॥

व्रजन्तीः सर्वतः दिग्भ्यः उपदेववरस्त्रियः विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः ॥६॥

विमानयानाः	विमानोंपर बैठी	**उपदेववरस्त्रियः**	गन्धर्वोंकी श्रेष्ठ स्त्रियोंको
निष्ककण्ठीः	हार पहिने	**सर्वतः दिग्भ्यः**	सब ओरसे
सुवाससः	उत्तम वस्त्र वाली	**व्रजन्तीः**	जाते ॥६॥
सप्रेष्ठा	अपने पतियोंके साथ		

दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः ।
पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥७॥

दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीः मृष्टकुण्डलाः पतिं भूतपतिं देवं औत्सुक्यात् अभ्यभाषत ॥७॥

स्वनिलयाभ्याशे	अपने भवनके समीपसे	**ष्ट्वा**	देखकर
लोलाक्षीः		**पतिं भूतपतिं देवं**	अपने पतिदेव भूतनाथसे
मृष्टकुण्डलाः	(उन) चंचल नेत्र चमकते कुण्डल वालियोंको	**औत्सुक्यात्**	उत्सुकतावश
		अभ्यभाषत	बोलीं ॥७॥

सत्युवाच–

प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य साम्प्रतं
निर्वापितो यज्ञमहोत्सवः किल ।

वयं च तत्राभिसराम वाम ते
यद्यर्थितामी विबुधा व्रजन्ति हि ॥८॥

प्रजापतेः ते श्वशुरस्य साम्प्रतं निर्वापित यज्ञमहोत्सवः किल वयं च तत्र अभिसराम वाम ते यत् अर्थितां अमी विबुधाः व्रजन्ति हि ॥८॥

वाम	वामदेव जी !	हि यत् अर्थितां	क्योंकि उसके लिए
ते श्वशुरस्य	आपके स्वसुरके यहाँ	अमी बिबुधाः	ये देवता
		व्रजन्ति	जा रहे हैं,
साम्प्रतं किल	इस समय निश्चित	ते वयं च	आप और मैं भी
यज्ञमहोत्सवः	यज्ञ महोत्सव	तत्र अभिसराम	वहाँ चलें ॥८॥
निर्वापितः	हो रहा है,		

तस्मिन् भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकै-
र्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः ।
अहं च तस्मिन् भवताभिकामये
सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ॥९॥

तस्मिन् भगिन्यः मम भर्तृभिः स्वकैः ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृत् दिदृक्षवः अहं च तस्मिन् भवता अभिकामये सह उपनीतं परिबर्हं अर्हितुम् ॥९॥

तस्मिन्	उस (महोत्सव) में	तस्मिन् अहं च	उसमें मैं भी
मम भगिन्यः	मेरी बहिनें	भवता	
स्वकैः भर्तृभिः	अपने पतियोंके साथ	सह उपनीतं	आपके साथ जाकर
सुहृत् दिदृक्षवः	सम्बन्धियोंको देखनेकी इच्छासे	परिबर्हं अर्हितुं	उपहार स्वीकार
		अभिकामये	करना चाहती
ध्रुवं गमिष्यन्ति	निश्चित जायेगी,		हूँ ॥९॥

तत्र स्वसुर्मे ननु भर्तृसम्मिता
मातृष्वसुः क्लिन्नधियं च मातरम् ।
द्रक्ष्ये चिरोत्कण्ठमना महर्षिभि-
रुन्नीयमानं च मृडाध्वरध्वजम् ॥१०॥

तत्र स्वसृः मे ननु भर्तुः सम्मिता मातृष्वसृः क्लिन्नधियं च मातरं द्रक्ष्ये चिर उत्कण्ठमना महर्षिभिः उन्नीयमानं च मृड अध्वर ध्वजम् ॥१०॥

मृड	मृड !	**क्लिन्नधियं**	
तत्र महर्षिभिः	वहां महर्षियों द्वारा	**मातरं**	स्नेहार्द्र चित्त माताको
अध्वर ध्वजं	यज्ञीय झंडा		
उन्नीयमानं	ले जाया जायगा (तथा)	**चिर**	
ननु भर्तुं		**उत्कण्ठमना**	(देखनेकी) बहुत
सम्मिता	अवश्य अपने पतियोंसे सम्मानिता		दिनोंसे चित्तमें उत्कण्ठा रखने
मे स्वसृः	मेरी बहिनोंको		वाली
मातृष्वसृः च	मौसियोंको तथा	**द्रक्ष्ये**	(मैं) देखूँगी ॥१०॥

त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया
विनिर्मितं भातिगुणत्रयात्मकम् ।
तथाप्यहं योषिदतत्त्ववित्त्व ते
दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥११॥

त्वयि एतत् आश्चर्यं अज आत्ममायया विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकं तथापि अहं योषित् अतत्त्ववित् च ते दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥११

अज भव	अजन्मा भव !	**तथापि अहं**	फिर भी मैं
एतत् आश्चर्यं	यह आश्चर्यमय	**योषित् च**	स्त्री हूँ और
गुणत्रयात्मकं	त्रिगुणात्मक (संसार)	**ते अतत्त्ववित्**	आपके तत्त्वको नहीं जानती
त्वयि		**दीना**	दीन हूँ
आत्ममायया	आपमें आपकी मायासे	**मे भवक्षितिं**	अपनी जन्मभूमि
विनिर्मितं भाति	निर्मित प्रतीत हो रहा है,	**दिदृक्षे**	देखना चाहती हूं ॥११॥

पश्य प्रयान्तीरभवान्ययोषितो-
ऽप्यत्यलंकृताः कान्तसखा वरूथशः ।

यासां व्रजद्भिः शितिकण्ठ मण्डितं
नभो विमानैः कलहंसपाण्डुभिः ॥१२॥

पश्य प्रयान्तीः अभवानि योषितः अति अलङ्कृता; कान्तसखा वरूथशः यासां व्रजद्भिः शितिकण्ठ मण्डितं नभः विमानैः कलहंस पाण्डुभिः ॥१२॥

अभवानि		**प्रयान्तीः पश्य**	स्त्रियोंको जाती देखिये,
शितिकण्ठ	जन्मरहित नीलकण्ठ !	**यासां कल-हंस पाण्डुभिः**	जिनके राजहंसके समान श्वेत
अति अलंकृताः	अत्यन्त सजी-धजी	**विमानैः**	
कान्तसख		**व्रजद्भिः**	विमानोंके जानेसे
वरूथशः	पतियोंके साथ झुंडकी झंड	**नभः मण्डितं**	आकाश सुशोभित हो रहा है ॥१२॥
योषितः			

कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं
निशम्य देहः सुरवर्य नेङ्गते ।
अनाहुता अप्यभियन्ति सौहृदं
भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥१३॥

कथं सुतायाः पितृगेह कौतुकं निशम्य देहः सुरवर्य न इङ्गते अनाहुता अपि अभियन्ति सौहृदं भर्तुः गुरोः देहकृतः च केतनम् ॥१३॥

सुरवर्य	महादेव !	**सौहृदं**	सम्बन्धके कारण
पितृगेह कौतुक	पिताके घर उत्सव	**भर्तुः गुरोः**	पतिके, गुरुके,
निशम्य कथं	सुनकर कैसे	**च देहकृतः**	
सुतायाः देहः	पुत्रीका शरीर	**केतनं**	और जन्मदाता (पिताके) घर
न इङ्गते	चलनोद्यत नहीं होगा,	**अभियन्ति**	जाया जाता है ॥१३॥
अनाहुता अपि	बिना बुलाये भी		

तन्मे प्रसीदेदममर्त्य वाञ्छितं
कर्तुं भवान्कारुणिको बतार्हति ।
त्वयाऽऽत्मनोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा
निरूपिता मानुगृहाण याचितः ॥१४॥

तत् मे प्रसीद इदं अमर्त्य वाञ्छितं कर्तुं भवान् कारुणिकः बत अर्हति त्वया आत्मनः अर्धे अहं अदभ्र च क्षुषा निरूपिता मां अनुगृहाण याचितः ॥१४॥

तत् मे प्रसीद	अतः मुझपर प्रसन्न हों,	**अदभ्र च क्षुषा**	परम ज्ञानी होकरभी
अमर्त्य इदं		**त्वया अहं**	आपने मुझे
वाञ्छितं	देव, यह मेरी इच्छा	**आत्मनः अर्धे**	अपने आधे शरीरमें
बत कर्तुं अर्हति	अवश्य पूरी करना चाहिए ।	**निरूपिता**	स्थान दिया है,
भवान्		**मां याचितः**	मेरी प्रार्थनापर
कारुणिकः	आप करुणामय हैं	**अनुगृहाण**	अनुग्रह करिये ॥१४॥

*मैत्रेय उवाच**—

एवं गिरित्रः प्रिययाभिभाषितः
प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन् सुहृत्प्रियः ।
संस्मारितो मर्मभिदः कुवाग्विषून्
यानाह को विश्वसृजां समक्षतः ॥१५॥

एवं गिरित्रः प्रियया अभिभाषितः प्रति अभ्यधत्त प्रहसन् सुहृत् प्रियः संस्मारितः मर्मभिदः कुवाक् इषून् यान् आह कः विश्वसृजां समक्षतः ॥१५॥

---

* गीताप्रेसकी प्रतिमें यहां 'ऋषि उवाच' है ।

प्रियया एवं	प्रिय पत्नीके इस प्रकार	यान् कुवाक् इषन्	जिन बाणके समान दुर्वाक्योंको
अभिभाषितः	कहने पर	कः आह	प्रजापति दक्षने कहा था
सुहृत् प्रियः	सम्बन्धियोंका प्रिय करनेवाले	संस्मारितः	(उनका) स्मरण करके
गिरित्रः	शंकरजी	प्रहसन्	हँसते हुए
विश्वसृजां समक्षतः	सब प्रजापतियोंके सामने	प्रति अभ्यधत्त	उत्तर देने लगे ॥१५॥
मर्मभिदः	मर्मवेधी		

श्रीभगवानुवाच■–

त्वयोदितं शोभनमेव शोभने
अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु ।
ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो
बलीयसानात्म्यमदेन मन्युना ॥१६॥

त्वया उदितं शोभनं एव शोभने अनाहुता अपि अभियन्ति बन्धुषु ते यदि अनुत्पादित दोषदृष्टयः बलीयसा न आत्म्यमदेन मन्युना ॥१६॥

शोभने त्वया शोभनं एव उदितं	सुन्दरी ! तुमने सुन्दर बात ही कही है कि	यदि ते बलीयसा आत्म्यमदेन	(लेकिन) यदि वे अपने प्रबल घमण्ड (और)
अनाहुता अपि बन्धुषु अभियन्ति	बिना बुलायेभी सम्बन्धियोंके यहां जाया जाता है ।	मन्युना दोषदृष्टयः न अनुत्पादित	क्रोधसे दोषदृष्टि न करते हों ॥१६॥

■ गीताप्रेसकी प्रतिमें यहां 'श्रीभगवानुवाच' है ।

विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः
सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः
स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥१७॥

विद्या तपः वित्त वपुः वयः कुलैः सतां गुणैः षट्भिः असत्तम् इतरैः स्मृतौ हतायां भृतमान दुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥१७॥

सतां षट्भिः गुणैः	सज्जनोंके ६ गुणोंसे	**स्मृतौ हतायां**	स्मृति नष्ट हो जानेसे
विद्या तपः	विद्या, तपस्या	**भृतमान दुर्दृशः**	अहंकार बढ़ जाता है, कुदृष्टि हो जाती है,
वित्त वपुः	धन, अच्छा शरीर,	**स्तब्धा**	(वे) मूर्ख
वयः कुलैः	बड़ी आयु, उच्च कुलसे	**भूयसां धाम**	महापुरुषोंका प्रभाव
हि	क्योंकि	**पश्यन्ति न**	देख नहीं पाते ॥१७॥
इतरैः असत्तमैः	दूसरे दुर्जनोंकी		

नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया
गृहान् प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् ।
येऽभ्यागतान् वक्रधियाभिचक्षते
आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः ॥१८॥

न एतादृशानां स्वजन व्यपेक्षया गृहान् प्रतीयात् अनवस्थित आत्मनां ये अभ्यागतान् वक्रधिया अभिचक्षते आरोपित भ्रूभिः अमर्षण अक्षिभिः ॥१८॥

एतादृशानां स्वजन व्यपेक्षया	ऐसे लोगोंको सम्बन्धी समझकर	**अनवस्थित आत्मनां गृहं न प्रतीयात्**	इन अस्थिर चित्त लोगोंके घर न जाय ।

ये अभ्यागतान्	जो अपने यहाँ आयेको	आरोपित भ्रूभिः	भौंहें चढ़ाकर
वक्रधिया	कुटिल बुद्धिके कारण	अमर्षण अक्षिभिः	असहनशील दृष्टिसे
		अभिचक्षते	देखते हैं ॥१८॥

तथारिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः
शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता ।
स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभि-
र्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥१९॥

तथा अरिभिः न व्यथते शिलीमुखैः शेते अर्दिता अङ्गः हृदयेन दूयता स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिः दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥१९॥

अरिभिः शिलीमुखैः	शत्रु द्वारा बाणोंसे	यथा वक्रधियां	जैसे कुटिल बुद्धि वाले
अर्दित अङ्गः	छेदे गये अंग (होनेपर भी)	स्वानां दुरुक्तिभिः	अपने लोगोंके दुर्वचनोंसे
दूयता हृदयेन शेते	पीड़ित हृदय भी (जैसे-तैसे) सो ही जाता है,	मर्मताडितः	मर्म-स्थानपर चोट करनेसे
तथा न व्यथते	वैसी व्यथा नहीं पाता	दिवानिशं तप्यति	रात-दिन संतप्त होता रहता है ॥१९॥

व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः
प्रियाऽऽत्मजानामसि सुभ्रु सम्मता ।
अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे
मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः ॥२०॥

व्यक्तं त्वं उत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रिया आत्मजानां असि सुभ्रु सम्मता अथ अपि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात् कः परितप्यते यतः ॥२०॥

सुभ्रु व्यक्तं त्वं	सुलोचने ! स्पष्ट है कि तुम	**अथ अपि**	फिर भी
उत्कृष्टगतेः	परमोन्नति प्राप्त	**पितुःमानं**	पितासे सम्मान
प्रजापतेः	प्रजापति (दक्ष) की	**न प्रपत्स्यसे**	नहीं पाओगी
प्रिय		**यतः कः**	क्योंकि प्रजापतिदक्ष
आत्मजानां	प्यारी पुत्रियोंमें	**मदाश्रयात्**	मेरी आश्रिता होनेसे
सम्मता असि	अधिक प्रिय हो,	**परितप्यते**	(तुम से भी) जलते हैं ॥२०॥

पापच्यमानेन हृदाऽऽतुरेन्द्रियः
समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम् ।
अकल्प एषामधिरोढुमञ्जसा
पदं परं द्वेष्टि यथासुरा हरिम् ॥२१॥

पापच्यमानेन हृदा आतुर इन्द्रियः समृद्धिभिः पूरुष बुद्धि साक्षिणां अकल्प एषां अधिरोढुं अञ्जसा पदं परं द्वेष्टि यथा असुरा हरिम् ॥२१॥

बुद्धि साक्षिणां पूरुष	बुद्धिके साक्षी	**पापच्यमानेन हृदा**	जलते रहने वाले हृदय तथा
समृद्धिभिः	महापुरुषोंके ऐश्वर्यसे	**आतुर इन्द्रियः**	व्याकुल इन्द्रिय वाले
अञ्जसा एषां अधिरोढुं	सरलतासे उस पदपर पहुँचनेमें	**परं पदं द्वेष्टि**	उस परम-पदसे ही द्वेष करने लगते हैं
अकल्प	असमर्थ होकर	**यथा असुरा हरिं**	जैसे असुर श्रीहरिसे ॥२१॥

प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं
विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ।
प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा
गुहाशयायैव न देहमानिने ॥२२॥

प्रत्युद्गम प्रश्रयण अभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयाय एव न देहमानिने ॥२२॥

सुमध्यमे	सुमध्यमे !	देहमानिने न	(ये) देहाभिमानीके लिए नहीं की जाती,
प्रत्युद्गम	उठकर सामने (स्वागतार्थं) जाना,	चेतसा	
प्रश्रयण	नम्रता दिखाना,	गुहाशयाय	चित्तकी गुफामें रहने वाले
अभिवादनं	प्रणाम करना,	परस्मै पुरुषाय	परम-पुरुष
मिथः विधीयते	(जो) परस्पर की जाती हैं,	प्राज्ञैः एव	प्राज्ञःके लिए ही की जाती हैं ॥२२॥
साधु	अच्छी हैं, किन्तु		

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं
यदीयते तत्र पुमानपावृतः ।
सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो
ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते ॥२३॥

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितं यत् ईयते तत्र पुमान् अपावृतः सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवः हि अधोक्षजः मे नमसा विधीयते ॥२३॥

विशुद्धं सत्त्वं	विशुद्ध अन्तः-करणका	तस्मिन् सत्त्वे च	उस अन्तःकरणमें ही (स्थित)
वसुदेव शब्दितं	वसुदेव नाम है,	अधोक्षजः	हृषीकेश
हि यत् तत्र	क्योंकि वहां परम-	भगवान्	
पुमान्	पुरुष	वासुदेवः	भगवान वासुदेवको
अपावृतः ईयते	अनावरण प्राप्त होते हैं ।	मे नमसा	मैं प्रणाम करता
		विधीयते	हूँ ॥२३॥

तत्ते निरीक्ष्यो न पितापि देहकृद्
दक्षो मम द्विट् तदनुव्रताश्च ये ।
यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरु मा-
मनागसं दुर्वचसाकरोत्तिरः ॥२४॥

तत् ते निरीक्ष्यः न पिता अपि देहकृत् दक्षः मम द्विट् तत् अनुव्रताः च ये यः विश्वसृक् यज्ञगतं वरोरु मां अनागसं दुर्वचसा करोत् तिरः ॥२४॥

विश्वसृक्	विश्वस्रष्टा ब्रह्माजी-
यज्ञगतं	के यज्ञमें गये
अनागसं	निरपराध
यः दुर्वचसा	(जिसने) दुर्वचनोंसे
मां तिरः करोत्	मेरा तिरस्कार किया
वरोरु	हे सुन्दरि !
देहकृत्	(तुम्हारे) जन्म देने
पिता अपि	वाला पिता होनेपर भी
मम द्विट्	मुझसे द्वेष करने वाले
दक्षः च ये	दक्षा और जो
तत् अनुव्रताः	उसके अनुयायी हैं
तत् ते न निरीक्ष्यः	उनका तुम्हें दर्शन नहीं करना चाहिए ॥२४॥

यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो
भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ।
सम्भावितस्य स्वजनात्पराभवो
यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥२५॥

यदि व्रजिष्यसि अतिहाय मद्वचः भद्रं भवत्या न ततः भविष्यति सम्भावितस्य स्वजनात् पराभवः यदा स सद्यः मरणाय कल्पते ॥२५॥

यदि मद्वचः अतिहाय	यदि मेरी बात
व्रजिष्यसि	न मान कर जाओगी
ततः भवत्या	तो तुम्हारा
भद्रं न भविष्यति	कल्याण नहीं होगा,
यदा	
सम्भावितस्य	जब प्रतिष्ठित व्यक्तिका
स्वजनात् पराभवः	अपने लोगोंसे अनादर होता है
स सद्यः मरणाय कल्पते	(तब) वह तुरन्त मृत्युका कारण हो जाता है ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे उमारुद्रसंवादे तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

एतावदुक्त्वा विरराम शंकरः
पत्यङ्गनाशं ह्युभयत्र चिन्तयन् ।
सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भवा-
न्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा ॥१॥

एतावत् उक्त्वा विरराम शंकरः पत्नि अङ्ग नाशं हि उभयत्र चिन्तयन् सुहृत् दिदृक्षुः परिशङ्किता भवानि निष्क्रामती निर्विशती द्विधा आस सा ॥१॥

अङ्ग	प्रिय विदुर
हि उभयत्र	क्योंकि दोनों दशाओंमें (जाने देने और रोकनेमें भी)
पत्नि नाशं	पत्नीकी मृत्यु
चिन्तयन्	समझते हुए
शंकरः एतावत् उक्त्वा	शंकरजी इतना ही
विरराम	कहकर चुप हो गये।
सुहृत् दिदृक्षुः	सम्बन्धियोंको देखने की इच्छा तथा
परिशङ्किता	शंकरजीके रुष्ट होने की आशङ्कासे
सा भवानि	वे भवानी
निष्क्रामती	कभी (चलने को) निकलती
निर्विशती	कभी लौट आतीं
द्विधा आस	द्विविधामें पड़ गयीं ॥१॥

सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः
स्नेहाद्रुदत्यश्रुकलातिविह्वला ।
भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा
प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ॥२॥

सुहृत् दिदृक्षा प्रतिघात दुर्मनाः स्नेहात् रुदति अश्रुकला अतिविह्वला भवं भवानि अप्रति पूरुषं रुषा प्रधक्ष्यती इव ईक्षत जात वेपथुः ॥२॥

सुहृत् दिदृक्षा	सम्बन्धियोंको देखने की इच्छामें	**अति विह्वला**	अत्यन्त व्याकुल होकर
प्रतिघात		**अप्रति पूरुषं**	अप्रतिम पुरुष (शंकरजी) को
दुर्मनाः	बाधा पड़नेसे दुखित चित्ता	**जात वेपथुः**	काँपती हुई
स्नेहात् रुदति	(बान्धवोंके) स्नेहसे रोती,	**प्रधक्ष्यती इव**	मानो भस्म कर देंगी ऐसे
अश्रुकला	आंसू बहाती,	**ईक्षत**	देखने लगीं ॥२॥

ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं
शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ।
पित्रोरगात्स्त्रैणविमूढधीर्गृहान्
प्रेम्णाऽऽत्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ॥३॥

ततः विनिः श्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा पित्रोः अगात् स्त्रैण विमूढधीः गृहान् प्रेम्णा आत्मनः यः अर्धं अदात् सतां प्रियः ॥३॥

यः सतां प्रियः	जिन सत्पुरुषोंके प्रिय (शंकरजी) ने	**स्त्रैण विमूढधीः**	स्त्री स्वभावके कारण मूढ-बुद्धि होकर
प्रेम्णा आत्मनः	प्रेमवश अपना	**तं विहाय**	उन (शंकरजी) को छोड़कर
अर्धं अदात्	आधा (देह) दे दिया था,	**ततः विनिःश्वस्य**	वहांसे लम्बी श्वास लेते
शोकेन च		**पित्रोः गृहान्**	पिताके घर
रोषेण	शोक तथा रोषसे	**अगात्**	चल पड़ीं ॥३॥
दूयता हृदा	विह्वल चित्त होकर		

तामन्वगच्छन् द्रुतविक्रमां सती-
मेकां त्रिनेत्रानुचराः सहस्रशः ।
सपार्षदयक्षा मणिमन्मदादयः
पुरोवृषेन्द्रास्तरसा गतव्यथाः ॥४॥

तां अन्वगच्छन् द्रुत विक्रमां सतीं एकां त्रिनेत्र अनुचराः सहस्रशः सपार्षद यक्षा मणिमन् मद आदयः पुरः वृषेन्द्राः तरसा गतव्यथाः ॥४॥

तां द्रुत विक्रमां एकां सतीं	उन तेजीसे जाती अकेली सतीके
सहस्रशः	हजारों
मणिमन् मद आदयः	मणिमान् मद आदि
सपार्षद त्रिनेत्र अनुचराः यक्षाः	पार्षदोंके साथ शंकरजीके अनुचर यक्ष
वृषेन्द्राः पुरः	(शंकरजीके वाहन) वृषभेन्द्रको आगे करके
गतव्यथः तरसा	निर्भयता पूर्वक तेजीसे
अन्वगच्छन्	पीछे चलने लगे ॥४॥

तां सारिकाकन्दुकदर्पणाम्बुज-
श्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः ।
गीतायनैर्दुन्दुभिशङ्खवेणुभि-
र्वृषेन्द्रमारोप्य विटङ्किता ययुः ॥५॥

तां सारिका कन्दुक दर्पण अम्बुज श्वेत आतपत्र व्यजन स्रगादिभिः गीत अयनैः दुन्दुभि शङ्ख वेणुभिः वृषेन्द्रं आरोप्य विटङ्किता ययुः ॥५॥

तां वृषेन्द्रं आरोप्य	उनको वृषेन्द्रपर बैठाकर
सारिका कन्दुक	मैंना, गेंद
दर्पण अम्बुज	दर्पण, कमला,
श्वेत आतपत्र व्यजन स्रगादिभिः	श्वेत छत्र पंखा, माला आदिसे
विटङ्किता	सुशोभित करके
दुन्दुभि शङ्ख	दुन्दुभि (नगाड़ा) शंख
वेणुभिः	वंशी बजाते
गीत अयनैः	गाते हुए
ययुः	(साथ) चले ॥५॥

आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं
विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः ।
मृद्दार्वयःकाञ्चनदर्भचर्मभि-
र्निसृष्टभाण्डं यजनं समाविशत् ॥६॥

आब्रह्मघोष ऊर्जित यज्ञ वैशसं विप्रर्षि जुष्टं विबुधैः च सर्वशः मृत् दारु अथः काञ्चन दर्भ चर्मभिः निसृष्ट भाण्डं यजनं समाविशत् ॥६॥

आब्रह्मघोष	वेदपाठकी ध्वनिमें	**सर्वशः जुष्टं**	सर्वथा भरे हुए
ऊर्जित वैशसं	प्रतिस्पर्धा लगी थी (कौन) सबसे उच्च-स्वरसे बोल सकता	**मृत् दारु अयः काञ्चनं, दर्भ,**	मिट्टी, लकड़ी, लोहे
		चर्मभिः	स्वर्ण, कुश, चमड़ेके
विप्रर्षि च		**भाण्डं निसृष्टं**	वर्तन रखे हुए थे,
विबुधैः	ब्रह्मर्षियों और देवताओंसे	**यजनं समाविशत्**	ऐसी यज्ञशालामें प्रवेश किया ॥६॥

तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्
विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः ।
ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः
प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ॥७॥

तां आगतां तत्र न कश्चन आद्रियत् विमानितां यज्ञकृतः भयात् जनः ऋते स्वसृः वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुः मुदा ॥७॥

यज्ञकृतः	यज्ञकर्ता (दक्ष) द्वारा	**वै स्वसृः जननीं ऋते**	केवल बहिनों और माताको छोड़कर
विमानितां	अवहेलिता		
तां आगतां	उन आयी हुई (सती) का	**च सादराः**	उन्होंने आदर किया,
भयात् तत्र	(दक्षके) डरसे वहाँ	**प्रेम अश्रुकण्ठ्यः**	प्रेमके कारण आँसूसे उनका गलाभर आया
कश्चन जनः	किसी व्यक्तिने	**मुदा परिषस्वजुः**	हर्ष पूर्वक आलिंगन किया ॥७॥
आद्रियत् न	आदर नहीं किया,		

सौदर्यसम्प्रश्नसमर्थवार्तया
मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ।
दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा
नादत्त पित्राप्रतिनन्दिता सती ॥८॥

सौदर्य सम्प्रश्न समर्थ वार्तया मात्रा च मातृष्वसृभिः च सादरं दत्तां सपर्यां वरं आसनं च सा न अदत्त पित्रा अप्रतिनन्दिता सती ॥८॥

सौदर्य मात्रा च	बहिनों और माता	दत्तां सा सती	दिये जानेपर उन सतीने
च मातृष्वसृभिः	तथा मौसियों द्वारा	पित्रा न अदत्त	पिताने (शिवजीको) नहीं दिया था
सादरं समर्थ			
सम्प्रश्न	आदर पूर्वक कुशल प्रश्न	अप्रतिनन्दिता	(अतः) उसे स्वीकार नहीं किया ॥८॥
वार्तया	बातचीत		
वरं आसनं सपर्यां	श्रेष्ठ आसन तथा उपहार		

अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं
पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ।
अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी
चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा ॥९॥

अरुद्रभागं तं अवेक्ष्य च अध्वरं पित्रा च देवे कृत हेलनं विभौ अनादृता यज्ञ सदस्य अधीश्वरी चुकोप लोकान् इव धक्ष्यती रुषा ॥९॥

तं अध्वरं	उस यज्ञको	यज्ञ सदस्य	
अरुद्रभागं	रुद्रके भागसे रहित	अधीश्वरी	यज्ञके सदस्योंकी अधीश्वरी
च पित्रा			
विभौ देवे	पिताको भगवान महादेवका	रुषा लोकान्	रोषसे लोकोंको
		धक्ष्यती इव	मानो भस्म कर देंगी
कृत हेलनं	अपमान करते	चुकोप	ऐसे क्रुद्ध हो गयीं ॥९॥
अवेक्ष्य च	देखकर		
अनादृता	(स्वयं) उपेक्षिता		

जगर्ह सामर्षविपन्नया गिरा
शिवद्विषं धूमपथश्रमस्मयम् ।
स्वतेजसा भूतगणान् समुत्थितान्
निगृह्य देवी जगतोऽभिशृण्वतः ॥१०॥

जगर्ह सा अमर्ष विपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथ श्रम स्मयं स्वतेजसा भूतगणान् समुत्थितान् निगृह्य देवी जगतः अभिशृण्वतः ॥१०॥

देवी स्वतेजसा	देवी (सती) ने अपने तेजसे	**धूमपथ श्रम**	कर्मकाण्डमें श्रम (करके निपुण होने) से
समुत्थितान् भूतगणान्	(दक्षको मारनेके लिए) उठ खड़े हुए भूतोंको	**स्मयं**	(बड़े) अभिमान वाले (दक्ष) की
निगृह्य जगतः अभिशृण्वतः	रोककर सबके सुनते हुए	**शिवद्विषं**	शिवजीसे द्वेष करने वाले की
		अमर्ष विपन्नया गिरा	क्रोधसे लड़खड़ाती वाणीसे
		सा जगर्ह	उन्होंने भर्त्सना की ॥१०॥

*सत्युवाच**–

न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायनः प्रिय-
स्तथाप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ।
तस्मिन् समस्तात्मनि मुक्तवैरके
ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥११॥

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'श्रीदेव्युवाच' है; किन्तु उसीमें इसी अध्यायमें श्लोक ७ के बाद 'सत्युवाच' आया है।

न यस्य लोके अतिशायिनः प्रियः तथा अप्रियः देहभृतां प्रिय आत्मनः तस्मिन् समस्त आत्मनि मुक्तवैरके ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥११॥

लोके यस्य	लोकमें जिनसे
अतिशायिनः न	बड़ा कोई नहीं है,
तथा प्रियः	
अप्रियः	वैसे ही प्रिय या अप्रिय भी (कोई नहीं है)
देहभृतां प्रिय	
आत्मनः	देहधारियोंके जो प्रिय आत्मा हैं,
समस्त आत्मनि	सर्वात्मा
मुक्तवैरके	
तस्मिन्	शत्रुता रहित उनसे
भवन्तं ऋते	आपको छोड़कर
कतमः	
प्रतीपयेत्	कौन विरोध करेगा ॥११॥

दोषान् परेषां हि गुणेषु साधवो
गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशा द्विज ।
गुणांश्च फल्गून् बहुलीकरिष्णवो
महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥१२॥

दोषान् परेषां हि गुणेषु साधवः गृह्णन्ति केचित् न भवादृशा द्विज गुणांश्च फल्गून् बहुली करिष्णवः महत्तमाः तेषु अविदत् भवान् अघम् ॥१२॥

द्विज	ब्राह्मण !
भवादृशा	आपके समान लोग
हि परेषां गुणेषु	क्योंकि दूसरोंके गुणों में भी
दोषान् गृह्णन्ति	दोष ही पकड़ते हैं,
केचित् न	कुछ ऐसे नहीं होते (लेकिन)
फल्गून् गुणांश्च	थोड़े गुणों को भी
बहुली करिष्णवः	बड़ा करके देखने वाले
महत्तमाः	महापुरुष होते हैं
भवान् तेषु	आपने ऐसे (महा-पुरुष) पर
अघं अविदत्	दोषारोप किया है ॥१२॥

नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा
महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु ।
सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभि-
र्निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम् ॥१३॥

न आश्चर्यं एतत् यत् असत्सु सर्वदा महत् विनिन्दा कुणप आत्मवादिषु स इर्ष्यं महापूरुष पादपांसुभिः निरस्त तेजः सु तत् एव शोभनम् ॥१३॥

कुणप आत्मवादिषु	शवरूप देहको ही आत्मा मानने वाले	महापूरुष पादपांसुभिः	महापुरुषोंकी चरण-धूलि द्वारा
असत्सु एतत् सर्वदा महत् विनिन्दा	दुष्ट पुरुषके लिए यह सर्वदा महापुरुषकी निन्दा करते रहना	स ईर्ष्यं निरस्त तेजः सु	ईर्ष्या सहित जिनका तेज नष्ट कर दिया गया है
आश्चर्यं न	आश्चर्यकी बात नहीं है ।	तत् एव शोभनं	(उनके लिए) वही (महापुरुष निन्दा) ही शोभा देती है ॥१३॥

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां
सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत् ।
पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं
भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥१४॥

यत् द्व्यक्षरं नाम गिरा ईरितं नृणां सकृत् प्रसङ्गात् अघं आशु हन्ति तत् पवित्रकीर्तिं तं अलङ्घ्यशासनं भवान् अहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥१४॥

यत् द्व्यक्षरं नाम	जिनका दो अक्षरका नाम (शिव)	**पवित्रकीर्ति**	पुण्य-कीर्ति
प्रसङ्गात् सकृत्	प्रसंगवश एक बार मात्र*	**अलङ्घ्यशासनं**	जिनकी आज्ञाका कोई उलंघन नहीं कर सकता
गिरा ईरितं	वाणीसे लेनेपर	**अहो तत् शिवं**	अहो उन भगवान शिवसे
नृणां अघं	मनुष्यके पापोंको	**द्वेष्टि**	द्वेष करते हो,
आशु हन्ति	तुरन्त नष्ट कर देता है,	**शिवेतरः**	(तुम) अमंगल रूप हो ॥१४॥

यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिभि-
र्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः ।
लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिन-
स्तस्मै भवान् द्रुह्यति विश्वबन्धवे ॥१५॥

यत् पादपद्मं महतां मनः अलिभिः निषेवितं ब्रह्मरस आसव अर्थिभिः लोकस्य यद् वर्षति च आशिषः अर्थिनः तस्मै भवान् द्रुह्यति विश्व बन्धवे ॥१५॥

ब्रह्मरस आसव अर्थिभिः	ब्रह्मरस रूपी मधु चाहने वाले	**महतां मनः**	महापुरुषोंके मन रूपी

---

* **विशेष :—**

द्व्यक्षरं नाम	केवल दो अक्षरका नाम मात्र,	**गिरा ईरितं**	मनसे नहीं, केवल वाणीसे लेनेपर
प्रसङ्गात्	जान बूझकर नहीं, किसी प्रसंगमें आनेपर	**नृणां अघं आशु हन्ति**	मनुष्य मात्रके कालान्तरमें नहीं, तुरन्त पापका नाश कर देता है,
सकृत्	बार-बार नहीं, केवल एक बार		

इस श्लोकके शब्दोंमें ये अर्थ निहित हैं ।

अलिभिः	भौरों से
यत् पादपद्मं	जिनके चरण-कमलों का
निषेवितं	सेवन किया जाता है,
अर्थिनः लोकस्य	सकाम लोगोंको
यद् आशिषः वर्षति	जो उनके अभीष्ट देते हैं,
तस्मै विश्वबन्धवे	उन विश्वबन्धु (भगवान) से
भवान् द्रुह्यति	आप वैर करते हो ॥१५॥

किं वा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्ये
ब्रह्मादयस्तमवकीर्य जटाः श्मशाने ।
तन्माल्यभस्मनृकपाल्यवसत्पिशाचै-
र्ये मूर्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ॥१६॥

किं वा शिवाख्यं अशिवं न विदुः त्वत् अन्ये ब्रह्मा आदयः तं अवकीर्य जटाः श्मशाने तत् माल्य भस्म नृ कपाल्य अवसत् पिशाचैः ये मूर्धाभिः दधति तत् चरण अवसृष्टम् ॥१६॥

शिवाख्यं	शिव नाम वाले
अशिवं	अमंगल रूपका
किं वा त्वत् अन्ये	क्या तुम्हारे अतिरिक्त दूसरे
न विदुः	नहीं जानते ?
तं जटाः	उनके जटा
अवकीर्य	विखेरे
तत् श्मशाने	उस श्मशान-भूमिमें
नृ कपाल्य	मानवकी खोपड़ियों की माला (पहिने)
भस्म	(चिता) भस्म लगाये
पिशाचैः अवसत्	पिशाचोंके साथ रहते
तत् चरण अवसृष्टं	उनके चरणोंसे गिरा
माल्य	निर्माल्य
ये ब्रह्मा आदयः मूर्धभिः दधति	जो ब्रह्मा आदि हैं अपने सिरोंपर धारण करते हैं ।१६।

कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे
धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ।

छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चे-
ज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥१७॥

कर्णौ पिधाय निरयात् यत् अकल्प ईशे धर्मावितरि असृणिभिः नृभिः अस्य माने छिन्द्यात् प्रसह्य रुशतीं असतीं प्रभुः चेत् जिह्वां असून् अपि ततः विसृजेत् स धर्मः ॥१७॥

असृणिभिः नृभिः	निरंकुश लोगों द्वारा	प्रभुः चेत्	(दण्ड देनेमें) समर्थ हो तो
धर्मावितरि	धर्म रक्षक	प्रसह्य	बलपूर्वक
ईशे	अपने स्वामीकी	असतीं रुशतीं	दुष्टा बकवादी
अस्य माने	निन्दा करनेपर	जिह्वां छिन्द्यात्	जीभको काट दे,
यत् अकल्पः	(दण्ड देनेमें) यदि असमर्थ हो तो	ततः असून् अपि	इस (पापको रोकने) केलिए प्राण भी
कर्णौ पिधाय	कान बन्द करके	विसृजेत्	दे दे,
निरयात्	(वहां से) निकल जाय,	स धर्मः	यही धर्म है ॥१७॥

अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं
न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः ।
जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो
जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥

अतः तव उत्पन्नं इदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठ गर्हिणः जग्धस्य मोहात् हि विशुद्धिं अन्धसः जुगुप्सितस्य उद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥

अतः शितिकण्ठ गर्हिणः	अतः भगवान नील-कण्ठके निन्दक	मोहात् जुगुप्सितस्य अन्धसः जग्धस्य	अज्ञानवश निन्दित वस्तु खा लेनेपर
तव उत्पन्नं इदं कलेवरं	तुमसे उत्पन्न यह शरीर	उद्धरणं विशुद्धिम्	वमन कर देना उसकी शुद्धि
न धारयिष्ये हि	नहीं धारण करूंगी, क्योंकि	प्रचक्षते	बतलायी गयी है ॥१८॥

न वेदवादाननुवर्तते मतिः
स्व एव लोके रमतो महामुनेः ।
यथा गतिर्देवमनुष्ययोः पृथक्
स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत्स्थितः ॥१९॥

न वेद वादान् अनुवर्तते मतिः स्व एव लोके रमतः महामुनेः यथा गतिः देव मनुष्ययोः पृथक् स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत् स्थितः ॥१९॥

स्व एव लोके	अपने ही स्वरूपमें	**गतिः पृथक्**	गति भिन्न-भिन्न होती है,
रमतः महामुनेः	रमण करने वाले महामुनियोंकी	**स्व एव धर्मे स्थितः**	अपने ही धर्मपर स्थित रहे
मतिः	बुद्धि	**परं न क्षिपेत्**	दूसरे (धर्मपर स्थित) पर आक्षेप न करे ॥१९॥
वेद वादान्	वेदके (विधि-निषेध) विवादोंमें		
अनुवर्तते न	प्रवृत्त नहीं होती,		
यथा देव मनुष्ययोः	जैसे देवता और मनुष्योंकी		

कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तमप्यृतं
वेदे विविच्योभयलिङ्गमाश्रितम् ।
विरोधि तद्योगपदैककर्तरि
द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म नच्छति ॥२०॥

कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तं अपि ऋतं वेदे विविच्य उभय लिङ्गम् आश्रितं विरोधि तत् योग पदैक कर्तरि द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म न ऋच्छति ॥२०॥

कर्म प्रवृत्तं	कर्म प्रवृत्ति रूप (यज्ञादि)	**ऋतं**	(दोनों ही) सत्य (ठीक) हैं ।
च निवृत्तं अपि	चाहे निवृत्ति रूप ही हो	**वेदे विविच्य**	वेदमें विवेचन करके
		उभय लिङ्गम्	दोनोंके चिह्न (राग-वैराग्य) वाले

आश्रितं	अधिकारी (बतलाये) हैं,
तत् विरोधि	उनके परस्पर विरोधी होनेसे
द्वयं कर्म	दोनों प्रकारके कर्म
तथा योग पदैक	उचित रूपसे एक साथ
कर्तरि	एक कर्ताके लिए तथा
ब्रह्मणि	ब्रह्मस्वरूप (शिव) के लिए
न अर्च्छति	आवश्यक नहीं है ॥२०॥

मा वः पदव्यः पितरस्मदास्थिता
या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः ।
तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता
अव्यक्तलिङ्गा अवधूतसेविताः ॥२१॥

मा वः पदव्यः पितर अस्मत् आस्थिता या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः तत् अन्न तृप्तैः असुभृद्भिः ईडिता अव्यक्तलिङ्गा अवधूत सेविताः ॥२१॥

पितर	पिताजी
अव्यक्तलिङ्गा	अव्यक्त चिह्न
अवधूत सेविताः	अवधूतों (महापुरुषों) से सेवित
अस्मत्	हम (गौरवमय)
पदव्यः	
आस्थिता	जिस पदपर स्थित हैं
धूमवर्त्मभिः	धूम्रमार्ग (कर्मकाण्ड में
यज्ञशालासु	यज्ञशालामें
या तत् अन्न	
तृप्तैः	जो उसी (यजमान) के अन्नसे तृप्त
असुभृद्भिः	प्राण पोषकोंसे
ईडिता	स्तुत होता है (ऐसे)
वः मा	आपको (वह गौरव) प्राप्त नहीं है ॥२१॥

नैतेन देहेन हरे कृतागसो
देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना ।
व्रीडा ममाभूत्कुजनप्रसङ्गत-
स्तज्जन्म धिग् यो महतामवद्यकृत् ॥२२॥

न एतेन देहेन हरे कृत आगसः देह उद्भवेन अलं अलं कुजन्मना व्रीडा मम अभूत् कुजन प्रसङ्गतः तत् जन्म धिक् यः महतां अवद्यकृत् ॥२२॥

हरे कृत आगसः	भगवान शिवका अपराध करने वालेके
देह उद्भवेन	शरीरसे उत्पन
एतेन देहेन	इस शरीरसे
अलं अलं	बस बस,
कुजन प्रसङ्गतः	दुर्जनके द्वारा प्राप्त
कुजन्मना	इस निन्दित जन्मसे
मम व्रीडा अभूत	मुझे लज्जा लगेगी,
तत् जन्म धिक्	उस जन्मको धिक्कार
यः महतां	जो महापुरुषोंका
अवद्यकृत्	अपराध करने वाला है ॥२२॥

गोत्रं त्वदीयं भगवान् वृषध्वजो
दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः ।
व्यपेतनर्मस्मितमाशु तद्ध्यहं
व्युत्स्रक्ष्य एतत्कुणपं त्वदङ्गजम् ॥२३॥

गोत्रं त्वदीयं भगवान् वृषध्वजः दाक्षायणी इति आह यदा सुदुर्मनाः व्यपेत नर्मस्मितं आशु तत् हि अयं व्युत्स्रक्ष्य एतत् कुणपं त्वदङ्गजम् ॥२३॥

त्वदीयं गोत्रं	तुम्हारे गोत्रके कारण
भगवान् वृषध्वजः	भगवान वृषभध्वज
नर्मस्मितं	व्यंगभरी मुस्कराहटसे
यदा दाक्षायणी	जब (मुझे) दाक्षायणी
इति आह	इस (नाम) से पुकारेंगे
व्यपेत सुदुर्मनाः	(तब) हंसी भूलकर (मैं) अत्यन्त दुःखी हो जाऊंगी ।
हि तत्	अतः वह
आशु एतत्	शीघ्र इस
त्वदङ्गजं कुणपं	तुमसे उत्पन्न शव-तुल्य देहको
व्युत्स्रक्ष्य	त्याग दूँगी ॥२३॥

मैत्रेय उवाच-

इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन्
क्षितावुदीचीं निषसाद शान्तवाक् ।
स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता
निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ॥२४॥

इति अध्वरे दक्षं अनूद्य शत्रुहन् क्षितौ उदीचीं निषसाद शान्तवाक् स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूल संवृता निमील्य दृक् योगपथं समाविशत् ॥२४॥

शत्रुहन्	शत्रुनाशक विदुर !	**शान्तवाक्**	
अध्वरे	यज्ञशालामें	**निषसाद**	मौन होकर बैठ गयीं,
दक्षं इति अनूद्य	दक्षसे इस प्रकार कहकर	**जलं स्पृष्ट्वा**	जलसे आचमन करके,
पीतदूकूल संवृता	पीले दुपट्टे को ओढ़कर	**दृक् निमील्य योगपथं**	नेत्र बन्द करके,
उदीचीं क्षितौ	उत्तर दिशामें	**समाविशत्**	योग-मार्गमें प्रविष्ट हुईं ॥२४॥

कृत्वा समानावनिलौ जितासना
सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ।
शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं
कण्ठाद् भ्रुवोर्मध्यमनिन्दितानयत् ॥२५॥

कृत्वा समानाः अनिलौ जितासना स उदानं उत्थाप्य च नाभिचक्रतः शनैः हृदि स्थाप्य धिया उरसि स्थितं कण्ठात्, भ्रुवोः मध्यं अनिन्दिता अनयत् ॥२५॥

अनिन्दिता जितासनाः	निर्दोष सतीने आसन स्थिर किया,	**अनिलौ समानाः**	(प्राणायाम द्वारा) प्राण-अपान दोनों को समान

कृत्वा	करके
नाभिचक्रतः	नाभिचक्रसे
स उदानं	उनके साथ उदान भी लेकर
धिया हृदि स्थाप्य	बुद्धिके द्वारा उनको हृदयमें लाकर
उरसि स्थितं कण्ठात्	हृदयमें स्थितको कण्ठमें होकर
भ्रुवोः मध्यं	भ्रू मध्य (आज्ञा चक्र) में
अनयत्	ले आयीं ॥२५॥

एवं स्वदेहं महतां महीयसा
मुहुः समारोपितमङ्कमादरात् ।
जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी
दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणाम् ॥२६॥

एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहुः समारोपितं अङ्कं आदरात् जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेषु अनिल अग्निधारणाम् ॥२६॥

एवं दक्षरुषा	इस प्रकार दक्षसे रुष्ट होकर
मनस्विनी	मनस्विनी (सती) ने
महतां महीयसा	महानोंसे भी महान् (भगवान शंकर) द्वारा
मुहुः आदरात्	बार-बार आदर सहित
अङ्कम् समारोपितं	गोदमें बैठाये गये
स्वदेहं	अपने शरीरको
जिहासती	त्यागनेके लिए
गात्रेषु	शरीरमें
अनिल अग्नि- धारणां दधार	वायु और अग्निकी धारणा की ॥२६॥

ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं
जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम् ।
ददर्श देहो हतकल्मषः सती
सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ॥२७॥

ततः स्वभर्तुः चरणाम्बुज आसवं जगत् गुरोः चिन्तयती न च अपरं ददर्श देहः हतकल्मषः सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजा अग्निना ॥२७॥

ततः जगद्गुरोः	फिर जगद्गुरु
स्वभर्तुः	अपने पतिके
चरणाम्बुज	
आसवं	चरणारविन्द
	मकरन्दका
चिन्तयती	चिन्तन करती
अपरं च न	दूसरे किसीका भी
	नहीं,
हतकल्मषः	सर्वथा निष्पाप हुई
सती ददर्श	सतीने (शरीरसे
	पृथक होकर) देख,
सद्यः देहः	तत्काल (उनका)
	शरीर
समाधिजा	
अग्निना	समाधिसे उत्पन्न
	अग्निसे
प्रजज्वाल	जल उठा ॥२७॥

तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्
हाहेति वादः सुमहानजायत ।
हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी
जहावसून् केन सती प्रकोपिता ॥२८॥

तत् पश्यतां खे भुवि च अद्भुतं महत् हाहेति वादः सुमहान् आजायत हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी जहाः असून् केन सती प्रकोपिता ॥२८॥

तत् महत्	
अद्भुतं	उस महाश्चर्यको
पश्यतां सुमहान्	देखकर बड़ा भारी
हाहेति वादः	हा-हाकार
अजायत	होने लगा,
खे भुवि च	आकाशमें और
	पृथ्वीपर (यही चर्चा
	चलने लगी)
हन्त दैवतमस्य	'हाय, देवदेव
	महादेवकी
प्रिया देवी सती	प्रिया देवी सतीने
केन प्रकोपिता	प्रजापति दक्ष द्वारा
	क्रुद्ध करनेपर
असून् जहाः	प्राण त्याग
जहौ	दिये ॥२८॥

अहो अनात्म्यं महदस्य पश्यत
प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजाः ।
जहावसून् यद्विमताऽऽत्मजा सती
मनस्विनी मानमभीक्ष्णमर्हति ॥२९॥

अहो अनात्म्यं महत अस्य पश्यत प्रजापतेः यस्य चराचरं प्रजाः जहाः असून् यत् विमता आत्मजा सती मनस्विनी मानं अभीक्ष्णं अर्हति ॥२९॥

अहो यस्य चराचरं	अरे जिसकी सब चराचर	**अभीक्ष्णं मानं अर्हति**	बराबर सम्मान पाने योग्य थीं
प्रजाः	प्रजा है	**यत् आत्मजा विमता**	जिसकी पुत्री होने पर भी उपेक्षिता होकर
अस्य प्रजापतेः	उस इस प्रजापति (दक्ष) की	**असून् जहाः**	प्राण त्याग दिये ॥२९॥
अनात्म्यं पश्यत	दुष्टता तो देखो,		
सती मनस्विनी	सती (तो) मनस्विनी थीं,		

सोऽयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् च
लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ।
यदङ्गजां स्वां पुरुषद्विडुद्यतां
न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥३०॥

सः अयं दुर्मर्षहृदयः ब्रह्मध्रुक् च लोके अपकीर्तिं महतीम् अवाप्स्यति यत् अङ्गजां स्वां पुरुषद्विट् उद्यतां न प्रत्यषेधत् मृतये अपराधतः ॥३०॥

सः अयं दुर्मर्षहृदयः	वह यह (दक्ष) असहिष्णु चित्त	**मृतये उद्यतां**	मरनेको उद्यत होनेपर
च ब्रह्मध्रुक्	और ब्राह्मण-द्रोही है,	**प्रत्यषेधत् न**	रोका नहीं,
यत् स्वां अङ्गजां	क्योंकि अपनी पुत्रीके	**लोके महतीं अपकीर्तिं**	(अतः) संसारमें बड़ी भारी अपकीर्ति
पुरुषद्विट्	उसके पतिसे द्वेष करने पर	**अवाप्स्यति**	पावेगा ॥३०॥
अपराधतः	(इसीके) अपराधसे		

वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वासुत्यागमद्भुतम् ।
दक्षं तत्पार्षदा हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥३१॥

वदति एवं जने सत्या दृष्ट्वा असुत्यागं अद्भुतं दक्षं तत् पार्षदाः हन्तुं उदतिष्ठन् उदायुधाः ॥३१॥

जने एवं वदति	लोगोंके यह कहते समय	**दक्षं हन्तुं उदायुधाः**	दक्षको मारनेके लिए
सत्या अद्भुतं	सतीका अद्भुत	**उदतिष्ठन्**	हथियार उठाकर खड़े हो गये ॥३१॥
असुत्यागं दृष्ट्वा	प्राणत्याग देखकर		
तत् पार्षदाः	उनके पार्षद (भूत-प्रेत)		

तेषामापततां वेगं निशाम्य भगवान् भृगुः ।
यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥३२॥

तेषां आपततां वेगं निशाम्य भगवान् भृगुः यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥३२॥

तेषां आपततां	उनके आक्रमणका	**यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा**	यज्ञके विघ्न नाशक मन्त्रोंसे
वेगं निशाम्य	वेग देखकर	**दक्षिणाग्नौ**	दक्षिणाग्निमें
भगवान् भृगुः	समर्थ भृगुजीने	**जुहाव ह**	आहुति दे दी ॥३२॥

अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा ।
ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥३३॥

अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुः ओजसा ऋभवः नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥३३॥

अध्वर्युणा	आध्वर्यु द्वारा
हूयमाने	हवन करनेपर
ऋभवः नाम	ऋभु नामक
तपसा सोमं	
प्राप्ताः	तपस्या करके चन्द्र-लोक पहुँचे
ओजसा	
सहस्रशः देवाः	तेजस्वी हजारों देवता
उत्पेतुः	प्रकट हो गये ॥३३॥

तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथाः सहगुह्यकाः ।
हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥३४॥

तैः अलात आयुधैः सर्वे प्रमथाः सहगुह्यकाः हन्यमानाः दिशः भेजुः उशद्भिः ब्रह्मतेजसा ॥३४॥

तैः ब्रह्मतेजसा	उन ब्रह्मतेज
उशद्भिः	अभिष्टयों द्वारा
अलात आयुधैः	जलती लकड़ियोंसे
हन्यमानाः	मारे जाते हुए
सर्वे प्रमथाः	सब भूत
सहगुह्यकाः	यक्षोंके साथ
दिशः भेजुः	चारों ओर भाग गये ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे सतीदेहोत्सर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

भवो भवान्या निधनं प्रजापते-
रसत्कृताया अवगम्य नारदात् ।
स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभि-
र्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥१॥

भवः भवान्या निधनं प्रजापतेः असत् कृताया अवगम्य नारदात् स्वपार्षद सैन्यं च तत् अध्वर ऋभुभिः विद्रावितं क्रोधं अपारं आदधे ॥१॥

प्रजापतेः असत्		स्वपार्षद सैन्यं	अपने पार्षदोंकी
कृताया	प्रजापति दक्ष द्वारा		सेना
	असम्मानिता	विद्रावितं	भगा दी गयी (यह)
भवान्या निधनं	सतीका मरण	नारदात् भवः	नारदसे शंकरजीने
च तत् अध्वर	तथा उस यज्ञके	अवगम्य	जानकर
ऋभुभिः	ऋभुओं द्वारा	अपारं क्रोधं	अपार क्रोध
		आदधे	किया ॥१॥

क्रुद्धः सुदष्टोष्ठपुटः स धूर्जटि-
र्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् ।
उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन्
गम्भीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥२॥

क्रुद्धः सुदष्ट ओष्ठपुटः स धूर्जटिः जटां तडित् वह्निसटा उग्ररोचिषं उत्कृत्य रुद्रः सहसा उत्थितः हसन् गम्भीरनादः विससर्ज तां भुवि ॥२॥

स धूर्जटिः क्रुद्धः	उन धूर्जटिने क्रोधमें भरकर
ओष्ठपुटः सुदष्टः	ओठोंको जोरसे काटा,
तडित् वह्निसटा	विद्युदग्निकी चाबुक के समान
उग्ररोचिषं जटां	उग्रतेज वाली जटा
उत्कृत्य सहसा उत्थितः	उखाड़कर सहसा उठे और
गम्भीरनादः हसन्	गम्भीर स्वरसे अट्टहास करते
तां भुवि विससर्ज	उसे पृथ्वीपर पटक दिया ॥२॥

ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन्दिवं
सहस्रबाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् ।
करालदंष्ट्रो ज्वलदग्निमूर्धजः
कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥३॥

ततः अतिकायः तनुवा स्पृशन् दिवं सहस्रबाहुः घनरुक् त्रिसूर्यदृक् कराल दंष्ट्रः ज्वलत् अग्निमूर्धजः कपालमाली विविध उद्यत आयुधः ॥३॥

ततः	उस (जटा) से
अतिकायः तनुवा दिवं स्पृशन्	बहुत बड़े शरीरका शरीरसे आकाशको छूता,
सहस्रबाहुः	हजार भुजाओं वाला
घनरुक्	मेघोंके समान काले वर्णका,
त्रिसूर्यदृक्	तीन सूर्योंके समान त्रिनेत्र,
कराल दंष्ट्रः	भयानक दाढ़ों वाला,
ज्वलत् अग्निमूर्धजः	प्रज्वलित अग्निके समान केशों वाला,
कपालमाली	मुण्डमाला पहिने,
विविध उद्यत आयुधः	अनेक प्रकारके हथियार उठाये (पुरुष उत्पन्न हुआ) ॥३॥

तं किं करोमीति गृणन्तमाह
बद्धाञ्जलिं भगवान् भूतनाथः ।

दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां
त्वमग्रणी रुद्र भटांशको मे ॥४॥

तं किं करोमि इति गृणन्तं आह बद्धाञ्जलिं भगवान् भूतनाथः दक्षं सयज्ञं जहि मत्भटानां त्वं अग्रणीः रुद्र भट अंशकः मे ॥४॥

तं बद्धाञ्जलिं	उसने हाथ जोड़े (पूछा)	भट	वीर रुद्र !
किं करोमि	'क्या (सेवा) करूं ?'	सयज्ञं दक्षं	'यज्ञके साथ दक्षको
इति गृणन्तं	ऐसा कहते हुएसे	जहि	नष्ट करदो।
भगवान् भूतनाथः आह	भगवान भूतनाथने कहा	रुद्र त्वं मे अंशकः मत्भटानां अग्रणीः	रुद्र ! तुम मेरे अंश हो, (मेरे) गणोंके अधिनायक हो ॥४॥

आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना
स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ।
मेने तदाऽऽत्मानमसङ्गरंहसा
महीयसां तात सहः सहिष्णुम् ॥५॥

आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् मेने तदा आत्मानं असङ्ग रंहसा महीयसां तात सहः सहिष्णुम् ॥५॥

तात	तात विदुर !	परिचक्रमे	परिक्रमा की,
एवं मन्युना कुपितेन आज्ञप्त	इस प्रकार क्रोधसे क्रुद्ध (शंकरजीके) आज्ञा देनेपर	तदा आत्मानं महीयसां रंहसा असंग सहिष्णुं	उस समय अपनेको बड़े-बड़े वेगको अप्रभावित रहते सह लेनेमें
स विभुं देवदेवं	उसने भगवान महादेवकी	सहः मेने	समर्थ माना ॥५॥

अन्वीयमानः स तु रुद्रपार्षदै-
भृंशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ।
उद्यम्य शूलं जगदन्तकान्तकं
स प्राद्रवद् घोषणभूषणाङ्घ्रिः ॥६॥

अन्वीयमानः स तु रुद्रपार्षदैः भृशं नदद्भिः व्यनदत्सुभैरवं उद्यम्य जगत् अन्तक अन्तकं स प्राद्रवत् घोषण भूषण अङ्घ्रिः ॥६॥

घोषण भूषण	बजने वाले आभूषण	**उद्यम्य**	उठाकर
अङ्घ्रिः	पैरोमें पहिने	**स प्राद्रवत्**	वह (दक्षके यज्ञ-शालाकी ओर) दौड़ा,
सुभैरवं	अत्यन्त भयङ्कर	**भृशं नदद्भिः**	बार-बार गर्जना करते
स तु व्यनदत्	उसने तो गर्जना की और	**रुद्रपार्षदैः**	शंकरजीके गणों द्वारा
जगत् अन्तक	संसारको मारने वाले कालको	**अन्वीयमानः**	उसका अनुगमन हो रहा था ॥६॥
अन्तकं शूलं	भी मार देने वाला त्रिशूल		

अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः
ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणम् ।
तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभू-
दिति द्विजा द्विजपत्न्यश्च दध्युः ॥७॥

अथ ऋत्विजः यजमानः सदस्याः ककुभिः उदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुं तमः किं एतत् कुत एतत् रजः अभूत् इति द्विजाः द्विजपत्न्यः च दध्युः ॥७॥

अथ उदीच्यां ककुभिः रेणुं प्रसमीक्ष्य	इधर उत्तर दिशामें धूलि (उठती) देखकर	**सदस्याः द्विजाः च द्विजपत्न्यः**	सदस्य ब्राह्मण, और ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ
ऋत्विजः यजमानः	ऋत्विक, यजमान,	**दध्युः**	विचार करने लगे

एतत् तमः किं	'यह अन्धकार कैसा है ?	**एतत् रजः कुत अभूत**	यह धूलि कहांसे उठ रही है ? ॥७॥

वाता न वान्ति न हि सन्ति दस्यवः
प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदण्डः ।
गावो न काल्यन्त इदं कुतो रजो
लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥८॥

वाता न वान्ति न हि सन्ति दस्यवः प्राचीनबर्हिः जीवति ह उग्रदण्डः गावः न काल्यन्त इदं कुतः रजः लोकः आधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥८॥

वाता न वान्ति	आँधी नहीं चल रही है,	**गावः काल्यन्त न**	गायोंके (वनसे) आनेका समय नहीं है,
दस्यवः न सन्ति	(कहीं) डाकू भी नहीं हैं	**इदं रजः कुतः**	(फिर) यह धूलि कहांसे उठ रही है ?
हि उग्रदंडः	क्योंकि कठोर दण्ड देने वाले	**किं अधुना**	क्या इस समय
प्राचीन बर्हिः		**लोकः प्रलयाय**	
जीवति ह	राजा प्राचीन वर्हि जीवित ही हैं,	**कल्पते**	लोकोंकी प्रलय तो नहीं हो रही है? ॥८॥

प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता
ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैष तस्य ।
यत्पश्यन्तीनां दुहितॄणां प्रजेशः
सुतां सतीमवदध्यावनागाम् ॥९॥

प्रसूति मिश्राः स्त्रिय उद्विग्न चित्ताः ऊचुः विपाकः वृजिनस्य एष तस्य यत् पश्यन्तीनां दुहितॄणां प्रजेशः सुतां सतीं अवदध्याः अनागाम् ॥९॥

प्रसूति मिश्रा	(दक्षपत्नी) प्रसूति प्रभृत
स्त्रिय उद्विग्न चित्ताः	स्त्रियां व्याकुल चित्त
उचुः	बोलीं
यत् प्रजेशः दुहितृणां	क्योंकि प्रजापति (दक्ष) ने अपनी पुत्रियोंके
पश्यन्तीनां अनागां सुतां	देखते हुए अपनी निरपराध पुत्री,
सतीं अवदध्याः	सतीका अनादर किया,
एष तस्य वृजिनस्य विपाकः	यह उसी पापका फल है ॥९॥

यस्त्वन्तकाले व्युप्तजटाकलापः
स्वशूलशूच्यर्पितदिग्गजेन्द्रः ।
वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजा-
नुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥१०॥

यः तु अन्तकाले व्युप्त जटा कलापः स्वशूल शूच्य अर्पित दिक् गजेन्द्रः वितत्य नृत्यति उदित अस्त्र दोः ध्वजान् उच्चाट हासः तनयित्नु भिन्न दिक् ॥१०॥

अन्तकाले यः तु	प्रलय कालमें जो (रुद्र) तो
व्युप्त जटा कलापः	जटाएँ विखेरे
स्वशूल शूच्य दिक् गजेन्द्रः अर्पितः	अपने त्रिशूलकी नोकपर दिग्गजोंको बींधकर
उदित अस्त्र दोः	अस्त्र लिए भुजाओंको
ध्वजान् वितत्य	ध्वजाके समान फैलाकर
नृत्यति	नाचते हैं (एवं)
उच्चाट हासः	अट्टहाससे
भिन्न तनयित्नु दिक्	दिशाओंको विदीर्ण करते हैं ॥१०॥

अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं
मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या ।

करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं
स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥११॥

अमर्षयित्वा तंत्र असह्य तेजसं मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या करालदंष्ट्राभिः उदस्त भागणं स्यात् स्वस्ति किं कोपयतः विधातुः ॥११॥

तं असह्य तेजसं	उन असह्य तेजा,	अमर्षयित्वा	कुपित करके
मन्युप्लुत		कोपयतः	उनको कुपित करने वाला
भ्रुकुट्या	क्रोधसे टेढी भौंहे किये	विधातुः किं स्वस्ति स्यात्	विधाता भी क्या सकुशल रह सकता है ॥११॥
दुर्विषहं	असहनीय,		
कराल-दंष्ट्राभिः	भयानक दाढ़ोंसे		
भागणं उदस्त	तारा-मंडलको अस्त-व्यस्त कर देनेवालेको		

बह्वेवमुद्विग्नदृशोच्यमाने
जनेन दक्षस्य मुहुर्महात्मनः ।
उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो
भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥१२॥

बहु एवं उद्विग्न दृशः उच्यमाने जनेन दक्षस्य मुहुः महात्मनः उत्पतुः उत्पाततमाः सहस्रशः भय आवहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥१२॥

महात्मनः दक्षस्य	महात्मा दक्षके यहाँ	सहस्रशः उत्पाततमाः	(तभी) हजारों महान अपशकुन
उद्विग्न दृशः जनेन	व्याकुल नेत्र लोगों द्वारा	दिवि च भूमौ	आकाश और पृथ्वीमें
एवं बहु उच्यमाने	ऐसी बहुत बातें कही जा रही थीं	पर्यक् उत्पेतुः	चारों ओर होने लगे ॥१२॥

तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्
नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ।
पिङ्गैः पिशङ्गैर्मकरोदराननैः
पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥१३॥

तावत् स रुद्र अनुचरैः मखः महान् नाना आयुधैः वामनकैः उदायुधैः पिङ्गैः पिशङ्गैः मकर उदर आननैः परि अद्रवत्भिः विदुर अन्वरुध्यत ॥१३॥

विदुर	विदुर !	वामनकैः पिङ्गैः	वामन, पीले,
तावत् स	तब तक वह	पिशङ्गैः	भूरे रंग वाले,
महान् मखः	महायज्ञ (शाला)	मकर उदर	
परि अद्रवत्भिः	चारों ओर भागते लोगों सहित	आननैः	मगरके समान पेट और मुख वाले,
नाना आयुधैः	अनेक प्रकारके शस्त्र	रुद्र अनुचरैः	रुद्रके सेनकों द्वारा
उदायुधैः	उठाये	अन्वरुध्यत	घेर लिया गया॥१३

केचिद्बभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथापरे ।
सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसम् ॥१४॥

केचित् बभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नी शालां तथा अपरे सद आग्नीध्रशालां च तत् विहारं महानसम् ॥१४॥

केचित्	किसीने	सद	यज्ञशालाके सामनेका मंडप
प्राग्वंशं	प्राग्वंश (पूर्व और पश्चिमके खम्भोंके बीच रखे आड़े डंडे)	च आग्नी-ध्रशालां	और अग्निशालाको
बभञ्जुः	तोड़ दिये,	तत् बिहारं	उस (यजमान) के गृहको तथा
तथा अपरे	तथा दूसरोंने	महानसं	रसोईघरको (नष्ट कर दिया) ॥१४॥
पत्नी शालां	(यज्ञ शालाके पश्चिम बनी)पत्नी-शाला (नष्ट कर दी)		

रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन् ।
कुण्डेष्वमूत्रयन् केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥१५॥

रुरुजुः यज्ञपात्राणि तथा एके अग्नीन् अनाशयन् कुण्डेषु अमूत्रयन् केचित् बिभिदुः वेदिमेखलाः ॥१५॥

यज्ञपात्राणि	यज्ञके बर्तनोंको	**कुण्डेषु अमूत्रयन्**	कुण्डोंमें पेशाबकर दिया,
रुरुजुः	फोड़ दिये,		
तथा एके	तथा किन्हींने	**केचित्**	
अग्नीन्		**वेदिमेखलाः**	किन्हींने वेदीकी
अनाशयन्	अग्नियां बुझा दीं,		सीमाके सूत्र
		बिभिदुः	तोड़ दिये ॥१५॥

अबाधन्त मुनीनन्य एके पत्नीरतर्जयन् ।
अपरे जगृहुर्देवान् प्रत्यासन्नान् पलायितान् ॥१६॥

अबाधन्त मुनीन् अन्य एके पत्नीन् अतर्जयन् अपरे जगृहुः देवान् प्रत्यासन्नान् पलायितान् ॥१६॥

अन्य मुनीन्	दूसरोंने मुनियोंको	**अपरे**	
अबाधन्त	तंग किया,	**प्रत्यासन्नान्**	दूसरोंने अपने
एके पत्नीन्	किन्हींने ब्राह्मण-		समीपसे
	पत्नियोंको	**पलायितान्**	
अतर्जयन्	धमकाया,	**देवान्**	भागते देवताओंको
		जगृहुः	पकड़ लिया ॥१६॥

भृगुं बबन्ध मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिम् ।
चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥१७॥

भृगुं बबन्ध मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिं चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरः अग्रहीत् ॥१७॥

मणिमान् भृगुं बबन्ध	मणिमानने भृगुको बाँध लिया,	**पूषणं देवं चण्डीशः**	पूषा देवताको चण्डीशने और
प्रजापतिं वीरभद्रः	प्रजापति (दक्ष) को वीरभद्रने,	**भगं नन्दीश्वरः अग्रहीत्**	भग देवताको नन्दीश्वरने पकड़ लिया ॥१७॥

सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः ।
तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाद्रवन् ॥१८॥

सर्व एव ऋत्विजः दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः तैः अर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिः न एकधा अद्रवन् ॥१८॥

सर्व एव ऋत्विजः	सभी	**तैः सुभृशं**	उन (शिवगणों) की बार-बार
सदस्याः	ऋत्विक्, सदस्य,	**ग्रावभिः अर्द्यमानाः**	पत्थरोंकी वर्षासे घायल होकर
सदिवौकसः	देवताओंके साथ	**न एकधा अद्रवन्**	जहां-तहां भाग गये ॥१८॥
दृष्ट्वा	यह (उत्पात) देखकर और		

जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान् भवः ।
भृगोर्लुलुञ्चे सदसि योऽहसच्छ्मश्रु दर्शयन् ॥१९॥

जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान् भवः भृगोः लुलुञ्चे सदसि यः अहसन् श्मश्रुदर्शयन् ॥१९॥

सदसि यः	(प्रजापतियोंकी) सभामें जो	**स्रुवहस्तस्य जुह्वतः भृगोः श्मश्रूणि**	स्रुवा हाथमें लेकर आहुत देते भृगुकी
श्मश्रु दर्शयन्	दाढ़ी दिखलाते (सहलाते)	**लुलुञ्चे**	दाढ़ी उखाड़ ली॥१९॥
भगवान भवः	भगवान शंकर को		
अहसन्	हँसे थे (उन)		

भगस्य नेत्रे भगवान् पातितस्य रुषा भुवि ।
उज्जहार सदःस्थोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत् ॥२०॥

भगस्य नेत्रे भगवान् पातितस्य रुषा भुवि उज्जहार सदःस्थः अक्ष्णा यः शपन्तं असूसुचत् ॥२०॥

रुषा भुवि पातितस्य	क्रोध पूर्वक पृथ्वीमें पटके	**उज्जहार**	भगवान् (वीरभद्रने) निकाल लिए,
भगस्य नेत्रे	भग देवाताके नेत्र	**यः सदःस्थः**	जो (उस) सभामें
भगवान्		**शपन्तं अक्ष्णा**	शाप देते समय नेत्रसे
		असूसुचत्	(संकेतसे दक्षको) उकसाया था ॥२०॥

पूष्णश्चापातयद्दन्तान् कालिङ्गस्य यथा बलः ।
शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥२१॥

पूष्णः च अपातयत् दन्तान् कालिङ्गस्य यथा बलः शप्यमाने गरिमणि यः अहसत् दर्शयन् दतः ॥२१॥

गरिमणि शप्यमाने	महादेवजीको शाप देते समय	**पूष्णः च दन्तान्**	पूषा देवताके दाँत
यः दतः दर्शयन्	जो दाँत दिखाकर	**यथा कालिङ्गस्य**	जैसे कलिङ्गराजके
अहसत्	हँसते थे (उन)	**बलः**	बलरामजीने (तोड़े थे)*
		अपातयत्	तोड़ दिये ॥२१॥

आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना ।
छिन्दन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत् त्र्यम्बकस्तदा ॥२२॥

आक्रम्य उरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना छिन्दन् अपि तत् उद्धर्तुं न अशक्नोत् त्र्यम्बकः तदा ॥२२॥

---

* यह उपमा बहुत अटपटी है । दक्ष-यज्ञध्वंस प्रथम कल्पके सतयुगमें हुआ । वहाँकी घटनाके सहस्रों कल्प पीछेके वर्तमान चतुर्युगीकी घटनासे उपमित किया गया ।

दक्षस्य उरसि		**छिन्दन् अपि**	काटनेपर भी
आक्रम्य	दक्षकी छातीपर चढ़कर	**तत् उद्धर्तुं**	उनका सिर उखाड़ने में
तदा त्र्यम्बकः	तब वीरभद्र	**न अशक्नोत्**	नहीं समर्थ हुए ॥२२॥
शितधारेण हेतिना	तीक्ष्ण धारके खांड़ेसे		

शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः ।
विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥२३॥

शस्त्रैः अस्त्र अन्वितैः एवं अनिर्भिन्न त्वचं हरः विस्मयं परम आपन्नः दध्यौ पशुपतिः चिरम् ॥२३॥

एवं शस्त्रैः अस्त्र अन्वितैः	इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंसे	**आपन्नः पशुपतिः चिरं**	हुआ, वीरभद्रने (तब) देर तक
त्वचं अनिर्भिन्न	(दक्षकी) चमड़ी न कटनेपर	**दध्यौ**	विचार किया ॥२३॥
हरः परम विस्मयं	वीरभद्रको अत्यन्त आश्चर्य		

दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे ।
यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥२४॥

दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिः मखे यजमानः पशोः कस्य कायात् तेन अहरत् शिरः ॥२४॥

मखे	यज्ञमें	**योगंदृष्ट्वा**	विधि देखकर
पशूनां संज्ञपनं	पशुओंको मारे जानेकी	**स पशूनां पतिः**	उन पशुपति (वीरभद्रने)

तेन कायात्	उसी विधिसे शरीरसे	**कस्य शिरः**	प्रजापति दक्षका सिर
यजमानः पशोः	यजमान रूपी पशु	**अहरत्**	अलग कर दिया ॥२४॥

साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शंसताम् ।
भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥२५॥

साधुवादः तदा तेषां कर्म तत् तस्य शंसतां भूत प्रेत पिशाचानां अन्येषां तत् विपर्ययः ॥२५॥

तदा तस्य तत् कर्म शंसतां	उस समय उनके उस कर्मकी प्रशंसा करते	**साधुवादः**	'वाह ! वाह !' होने लगा तथा
तेषां भूत प्रेत पिशाचानां	उनके भूत, प्रेत पिशाचोंका	**अन्येषां तत् विपर्ययः**	दूसरों(दक्षके लोगों) का इससे उलटा (हाय-हाय होने लगा) ॥२५॥

जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्दक्षिणाग्नावमर्षितः ।
तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद् गुह्यकालयम् ॥२६॥

जुहाव एतत् शिरः तस्मिन् दक्षिणाग्नाः अमर्षितः तत् देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठत् गुह्यक आलयम् ॥२६॥

अमर्षितः	क्रोधमें भरकर	**तत् देवयजनं**	उस देवयज्ञशालाको
एतत् शिरः तस्मिन्	इस (दक्षके) सिरको	**दग्ध्वा**	जलाकर
दक्षिणाग्नाः	उस (यज्ञ) की दक्षिणाग्निमें	**गुह्यक आलयं**	यक्षोंके निवास (कैलास)
जुहाव	हवन कर दिया,	**प्रातिष्ठत्**	लौट गये ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ।
शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥१॥

अथ देवगणाः सर्वे रुद्र अनीकैः पराजिताः शूल पट्टिश निःत्रिंश गदा परिघ मुद्गरैः ॥१॥

अथ रुद्र अनीकैः	तब रुद्रकी सेनाके	परिघ, मुद्गरैः	लाठी, मुद्गरसे
शूल पट्टिश	त्रिशूल, पट्टिश,	सर्वे देवगणाः	सब देवगण
निःत्रिंश गदा	खड्ग, गदा,	पराजिताः	हार गये ॥१॥

संछिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः ।
स्वयम्भुवे नमस्कृत्य कात्स्न्र्येनैतन्न्यवेदयन् ॥२॥

संछिन्न भिन्न सर्वाङ्गाः स ऋत्विक् सभ्याः भय आकुलाः स्वयम्भुवे नमस्कृत्य कात्स्न्र्येन एतत् न्यवेदयन् ॥२॥

सर्वाङ्गाः	(उनके) सब अंग	स्वयम्भुवे	ब्रह्माजी (के पास जाकर)
संछिन्न भिन्न	कट-फट गये थे,	नमस्कृत्य	प्रणाम करके
स ऋत्विक् सभ्याः	ऋत्विकोंके साथ सभासद	एतत् कात्स्न्र्येन न्यवेदयन्	यह सब पूरा निवेदन किया ॥२॥
भय आकुलाः	भयसे व्याकुल होकर		

उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसम्भवः ।
नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥३॥

उपलभ्य पुरा एव एतत् भगवान् अब्ज सम्भवः नारायणः च विश्वात्मा न कस्य अध्वरं ईयतुः ॥३॥

पुरा एव एतत्	पहिले ही यह (होगा)	**च विश्वात्मा नारायणः**	और विश्वात्मा नारायण
उपलभ्य	जानकर	**कस्य अध्वरं**	प्रजापति दक्षके यज्ञमें
भगवान् अब्ज सम्भवः	भगवान् ब्रह्मा	**न ईयतुः**	नहीं आये थे ॥३॥

तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि ।
क्षेमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥४॥

तत् आकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृत आगसि क्षेमाय तत्र सा भूयात् न प्रायेण बुभूषताम् ॥४॥

तत् आकर्ण्य	उसे सुनकर	**बुभूषतां**	अपराधीका
विभुः प्राह	ब्रह्माजीने कहा—	**तत्र सा**	वहाँ वह (कार्य)
तेजीयसि	तेजस्वीका	**प्रायेण क्षेमाय**	प्रायः कल्याणकारी
आगसि कृत	अपराध करनेपर	**न भूयात्**	नहीं होता ॥४॥

अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं
ये बर्हिषो भागभाजं परादुः ।
प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा
क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् ॥५॥

अथ अपि यूयं कृत किल्बिषा भवं ये बर्हिषः भाग भाजं परादुः प्रसादयध्वं परिशुद्ध चेतसा क्षिप्र प्रसादं प्रगृहीत अङ्घ्रि पद्मम् ॥५॥

ये यूयं	जिन तुम लोगोंने	**भवं परादुः**	शंकरजीको (उनका) भाग नहीं दिया ।
बर्हिषः भाग भाजं	यज्ञमें भाग पानेवाले		

किल्बिषा कृत	अपराध किया है,	**अङ्घ्रि पद्मं**	चरण-कमल
अथ अपि	फिर भी	**प्रगृहीतं**	पकड़ लेनेपर
परिशुद्ध चेतसा	विशुद्ध चित्तसे	**क्षिप्र प्रसादं**	(वे) शीघ्र प्रसन्न
प्रसादयध्वं	(उन्हें) प्रसन्न करो।		होने वाले हैं ॥५॥

आशासाना जीवितमध्वरस्य
लोकः सपालः कुपिते न यस्मिन् ।
तमाशु देवं प्रियया विहीनं
क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥६॥

आशासाना जीवितं अध्वरस्य लोकः सपालः कुपिते न यस्मिन् तं आशु देवं प्रियया विहीनं क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥६॥

दुरुक्तैः	(दक्षके) दुर्वचनोंसे	**आशासाना**	आशा करते हो तो
हृदि विद्धं	(उनका) हृदय (पहिले ही) बिंधा है,	**तं देवं आशु**	उन महादेवसे शीघ्र
		क्षमापयध्वं	क्षमा कराओ,
प्रियया विहीनं	(अब) प्रिया रहित हो गये,	**यस्मिन् कुपिते**	जिनके क्रुद्ध होनेपर
		लोकः सपालाः	लोकपालोंके साथ लोक
अध्वरस्य			
जीवितं	इस यज्ञको (फिर) जीवन देनेकी	**न**	नहीं बचेंगे ॥६॥

नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये
ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ।
विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा
यस्यात्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥७॥

न अहं न यज्ञः न च यूयं अन्ये ये देह भाजः मुनयः च तत्त्वं विदुः प्रमाणं बल वीर्ययोः वा यस्य आत्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥७॥

यस्य आत्म-		**तत्त्वं वा**	
तन्त्रस्य	जिन परम स्वतन्त्र (शिव) के	**बल वीर्ययोः**	तत्त्व अथवा बल-पराक्रमकी

प्रमाणं	सीमाको	**मुनयः**	जो देहधारी मुनिगण हैं
अहं न यज्ञः	मैं और न भगवान् विष्णु	**न विदुः**	नहीं जानते
च न यूयं अन्ये	तथा न तुम लोग कोई दूसरे,	**क उपायं**	(उनके विरुद्ध) कौन उपाय
ये देह भाजः		**विधित्सेत्**	कर सकता है ॥७॥

स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः
समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ।
ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः
कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥८॥

स इत्थं आदिश्य सुरान् अजः तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ययौ स्वधिष्ण्यात् निलयं पुरद्विषः कैलासं अद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥८॥

सुरान् इत्थं	देवताओंको इस प्रकार	**तैः समन्वितः**	उन (देवताओं) के साथ
आदिश्य	आदेश देकर	**स्वधिष्ण्यात्**	अपने धामसे
स अजः	वे ब्रह्माजी	**पुरद्विषः निलयं**	त्रिपुरारिके निवास
सप्रजेशैः		**प्रभोः प्रियं**	शंकरजीके प्रिय
पितृभिः	प्रजापतियों, पितरों एवं	**अद्रिप्रवरं**	पर्वत श्रेष्ठ
		कैलासं ययौ	कैलासपर गये ॥८॥

जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः ।
जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ॥९॥

जन्म औषधि तपः मन्त्र योगसिद्धैः नरेतरैः जुष्टं किन्नर गन्धर्वैः अप्सरोभिः वृतं सदा ॥९॥

जन्म औषधि	जन्मसे ही, औषधि प्रयोगसे,	**नरेतरैः जुष्टं**	देवताओंसे युक्त
तपः मन्त्र	तप या मन्त्र-जपसे,	**किन्नर गन्धर्वैः**	किन्नरों, गन्धर्वों,
योगसिद्धैः	या योगसे सिद्धि प्राप्त	**अप्सरोभिः**	अप्सराओंसे
		सदा वृतं	सदा घिरा हुआ ॥९॥

नानामणिमयैः शृङ्गैर्नानाधातुविचित्रितैः ।
नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ॥१०॥

नाना मणिमयैः शृङ्गैः नाना धातु विचित्रितैः नाना द्रुम लता गुल्मैः नाना मृगगण आवृतैः ॥१०॥

नाना मणिमयैः		**नाना द्रुम लता**	
शृङ्गैः	अनेक मणियोंवाले शिखरवाला	**गुल्मैः**	अनेक वृक्ष, लता, कुञ्जोंसे युक्त
नाना धातु		**नाना मृगगण**	
विचित्रितैः	अनेक धातुओंसे रंग-बिरंगा,	**आवृतैः**	अनेक पशुगणोंसे भरा हुआ ॥१०॥

नानामलप्रस्रवणैर्नानाकन्दरसानुभिः ।
रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥११॥

नाना अमल प्रस्रवणैः नाना कन्दर सानुभिः रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥११॥

नाना कन्दर		**रमणं**	
सानुभिः	अनेक गुफाओं तथा चोटियोंसे	**सिद्धयोषितां**	(वहाँ) पतियोंको सिद्धोंकी पत्नियां
नाना अमल		**रमणैः**	
प्रस्रवणैः	अनेक निर्मल झरनोंसे युक्त,	**विहरन्तीनां**	अपनी क्रीड़ाओंसे विहार करा रही थीं ॥११॥

मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्च्छितम् ।
प्लावितै रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्त्रिणाम् ॥१२॥

मयूर केकाभिः रुतं मदान्ध अलि विमूर्च्छितं प्लावितैः रक्तकण्ठानां कूजितैः च पतत्त्रिणाम् ॥१२॥

मयूर केकाभिः		**मदान्ध अलि**	मतवाले भौंरोंसे
रुतं	मयूरोंकी केकाध्वनि से ध्वनित	**विमूर्च्छितं**	गुञ्जायमान,

रक्तकण्ठानां प्लाविते:	कोकिलके कुहकनेसे	च पतत्त्रिणां कूजितै:	तथा पक्षियोंके चहकनेसे (भरा) ॥१२॥

आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान् कामदुघैर्द्रुमै: ।
व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निर्झरै: ॥१३॥

आह्वयन्तं इव उद्हस्तै: द्विजान् कामदुघै: द्रुमै: व्रजन्तं इव मातङ्गै: गृणन्तं इव निर्झरै: ॥१३॥

उद्हस्तै: द्विजान् आह्वयन्तं इव कामदुघै: द्रुमै: मातङ्गै: व्रजन्तं इव	ऊपर हाथ उठाकर पक्षियोंको बुलाते हुएसे कल्पवृक्षोंसे, हाथियोंके द्वारा मानो (पर्वत ही) चलता-सा हो,	निर्झरै: गृणन्तं इव	झरनों (की ध्वनि) से मानो बातचीत करता हो ॥१३॥

मन्दारै: पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् ।
तमालै: शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनै: ॥१४॥

मन्दारै: पारिजातै: च सरलै: च उपशोभितं तमालै: शालतालै: च कोविदार असन अर्जुनै: ॥१४॥

मन्दारै: च पारिजातै:	आक और हर-शृंगार,	कोविदार असन च अर्जुनै:	कचनार, असन,
सरलै, तमालै: शालतालै:	सरल, तमाल, शाल, ताड़,	उपशोभितं	एवं अर्जुनसे सुशोभित ॥१४॥

चूतै: कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नागचम्पकै: ।
पाटलाशोकबकुलै: कुन्दै: कुरबकैरपि ॥१५॥

चूतैः कदम्बैः नीपैः च नाग पुन्नाग चम्पकैः पाटल अशोक बकुलैः कुन्दैः कुरबकैः अपि ॥१५॥

चूतैः कदम्बैः	(स्वयं टपकनेवाले) आम, कदम्ब,	**अशोक बकुलैः च कुन्दैः**	अशोक, मौलिश्री,
नीपैः	नीप*	**कुरबकैः अपि**	और कुन्द तथा कुरबकसे भी ॥१५॥
नाग पुन्नाग	नाग, पुंनाग,		
चम्पकैः पाटल	चम्पा, गुलाब,		

स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वररेणुकजातिभिः ।
कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥१६॥

स्वर्ण अर्ण शतपत्रैः च वर रेणुक जातिभिः कुब्जकैः मल्लिकाभिः च माधवीभिः च मण्डितम् ॥१६॥

स्वर्ण अर्ण च शतपत्रैः	पीत कमल, तथा शतदल कमल,	**कुब्जकैः मल्लिकाभिः च माधवीभिः च**	कुब्जक (बेला) चमेलीसे तथा
वर रेणुक जातिभिः	उत्तम इलायची, जाति (कुन्दी या जूही)	**मण्डितं**	माधवीसे भी सुशोभित ॥१६॥

पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिङ्गुभिः ।
भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः ॥१७॥

पनसः उदुम्बर अश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध हिङ्गुभिः भूर्जैः ओषधिभिः पूगैः राजपूगैः च जम्बुभिः ॥१७॥

पनसः	कटहल,	**प्लक्ष**	पाकर,
उदुम्बर	गूलर,	**न्यग्रोध**	बट,
अश्वत्थ	पीपल,	**हिङ्गुभिः**	गूगल,

---

* नीप और बकुल दोनों मौलिश्रीके नाम हैं। इसी श्लोकमें बकुल भी आया है, अतः शायद यहाँ 'नीमैः' नीम हो। पर सभी प्रतियोंमें 'नीप' पाठ ही है।

भूर्जैः	भोजपत्र वृक्ष,	राजपूगैः	बड़ी सुपारी,
ओषधिभिः	हर्रसे,	च जम्बुभिः	तथा जामुनसे ॥१७
पूगैः	सुपारी,		

खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेङ्गुदैः ।
द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः ॥१८॥

खर्जूरैः आम्रातक आम्र आद्यैः प्रियाल मधुक इंगुदैः द्रुम जातिभिः अन्यैः च राजितं वेणुकीचकैः ॥१८॥

खर्जूरैः	खजूरसे,	अन्यैः च	दूसरे भी
आम्रातक	आमड़ा	द्रुम जातिभिः	अनेक जातिके वृक्षोंसे तथा
आम्र आद्यैः	स्वयं न टपकनेवाले आम	वेणुकीचकैः	ठोस और पोले बाँसोंसे
प्रियाल	पियाल (पयाल),	राजितं	बहुत सुन्दर लगता था ॥१८॥
मधुक	महुआ,		
इंगुदैः	इंगुदी (या लिसौड़ा)		

कुमुदोत्पलकल्हारशतपत्रवनर्द्धिभिः ।
नलिनीषु कलं कूजत्खगवृन्दोपशोभितम् ॥१९॥

कुमुद उत्पल कल्हार शतपत्र वन ऋद्धिभिः नलिनीषु कलं कूजत् खगवृन्द उपशोभितम् ॥१९॥

कुमुद	कुमुदिनी,	नलिनीषु	सरोवरोंमें
उत्पल	नीलकमल,	कलं कूजत्	मधुर कूजन करते
कल्हार	श्वेत कमल,	खगवृन्द	
शतपत्र	लाल कमल	उपशोभितं	पक्षि समूहसे सुशोभित था ॥१९॥
वन ऋद्धिभिः	वनकी सम्पत्तिसे (सम्पन्न था)		

मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैर्ऋक्षशल्यकैः ।
गवयैः शरभैर्व्याघ्रै रुरुभिर्महिषादिभिः ॥२०॥

मृगैः शाखामृगैः क्रोडैः मृगेन्द्रैः ऋक्षः शल्यकैः गवयैः शरभैः व्याघ्रैः रुरुभिः महिष आदिभिः ॥२०॥

मृगैः शाखामृगैः	हिरन, बन्दर,
क्रोडैः मृगेन्द्रैः	सुअर, सिंह,
ऋक्षः शल्यकैः	रीछ, साही,
गवयैः शरभैः	नीलगाय, सांभर
व्याघ्रैः रुरुभिः	बाघ, चित्तल मृग,
महिष आदिभिः	भैंसे आदि (वहाँ थे।) ॥२०॥

कर्णान्त्रैकपदाश्वास्यैर्निर्जुष्टं वृकनाभिभिः ।
कदलीषण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥२१॥

कर्णान्त्र एकपदा अश्व आस्यैः निर्जुष्टं वृक नाभिभिः कदली षण्डसंरुद्ध नलिनी पुलिन श्रियम् ॥२१॥

कर्णान्त्र एकपदा	कर्णान्त्र, एकपदा *
अश्व आस्यैः	अश्वमुख
वृक नाभिभिः	भेड़िये, कस्तूरी-मृगोंसे
निर्जुष्टं	भरा हुआ था।
नलिनी पुलिन	सरोवरोंके तट
कदली षण्ड-संरुद्ध	केलोंके वृक्षोंसे घिरे
श्रियं	सुन्दर लगते थे ॥२१॥

पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया ।
विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः ॥२२॥

पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नान पुण्यतरोदयाः विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधाः विस्मयं ययुः ॥२२॥

सत्याः स्नान	देवी सतीके स्नान करनेसे
पुण्यतरोदयाः	अत्यन्त पवित्र हुई
नन्दया पर्यस्तं	नन्दा नदीसे घिरे हुए
भूतेशगिरिं विलोक्य	शंकरजीके पर्वतको देखकर
विबुधाः विस्मयं ययुः	देवताओंको आश्चर्य हुआ ॥२२॥

---

* इन पशुओंकी जाति ही लुप्त हो गयी लगती है।

ददृशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम् ।
वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नाम पङ्कजम् ॥२३॥

ददृशुः तत्र ते रम्यां अलकां नाम वै पुरीं वनं सौगन्धिकं च अपि यत्र तत् नाम पङ्कजम् ॥२३॥

ते तत्र	उन्होंने वहाँ
अलकां नाम	अलका नामवाली
पुरीं वै ददृशुः	पुरीको भी देखा
सौगन्धिकं वनं च अपि	सौगन्धिक वनको भी
यत्र तत् नाम	जहाँ उसी (सौगंधिक) नामका
पङ्कजम्	कमल (ब्रह्म कमल) होता है ॥२३॥

नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः ।
तीर्थपादपदाम्भोजरजसातीव पावने ॥२४॥

नन्दा च अलकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः* तीर्थपाद पदाम्भोज रजसा अतीव पावने ॥२४॥

बाह्यतः पुरः	पुरीसे बाहरकी ओर
तीर्थपाद पदाम्भोज	तीर्थचरण (भगवान के) चरण-कमलकी
रजसा अतीव पावने	रजसे अत्यन्त पावन
नन्दा च अलक-नन्दा च	नन्दा तथा अलक-नन्दा
सरितौ पुरः बाह्यतः	सरिताएँ पुरीके बाहर हैं ॥२४॥

---

* यहाँ दो बातें स्पष्ट की गयी हैं—

१. नन्दा और अलकनन्दा गंगाजीकी ही धारा हैं जो भागीरथीसे पहिलेसे हैं।

२. तिब्बतमें मानसरोवरके पास वाला कैलास भगवान् शंकरका कैलास नहीं है। भगवान् शंकरका कैलास नन्दा और अलक-नन्दासे घिरा चौखम्भा पर्वतके पास कहीं है। यह क्षेत्र अगम्य है और सदा कुहरेसे ढका रहता है।

ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः ।
क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ॥२५॥

ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तः अवरुह्य स्वधिष्ण्यतः क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यः विगाह्य रतिकर्शिताः ॥२५॥

क्षत्तः	विदुर !	**ययोः विगाह्य**	जिनमें स्नान करके
रतिकर्शिताः	कामक्रीड़ासे थककर	**पुंसः सिञ्चन्त्यः**	पुरुषोंपर जल उलीचती
सुरस्त्रियः	देवांगनाएँ	**क्रीडन्ति**	क्रीड़ा करती हैं ॥२५
स्वधिष्ण्यतः	अपने स्थानसे		
अवरुह्य	उतरकर		

ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुङ्कुमपिञ्जरम् ।
वितृषोऽपि पिबन्त्यम्भः पाययन्तो गजा गजीः ॥२६॥

ययोः तत् स्नान विभ्रष्ट नव कुकुंम पिञ्जरं वितृषः अपि पिबन्ति अम्भः पाययन्तः गजाः गजीः ॥२६॥

तत् स्नान विभ्रष्ट नव कुङ्कुम पिञ्जरं	उनके स्नानसे घुले नवीन केशरसे पीले हुए	**अम्भः वितृषः अपि**	जलको प्यास न होनेपर भी
		गजाः गजीः पाययन्तः पिबन्ति	हाथी हथिनियोंको पिलाते हुए पीते हैं ॥२६॥

तारहेममहारत्नविमानशतसंकुलाम् ।
जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं सतडिद्घनम् ॥२७॥

तारहेम महारत्न विमान शत संकुलां जुष्टां पुण्यजनः स्त्रीभिः यथा खं सतडित् घनम् ॥२७॥

तारहेम महारत्न	चांदी, सोने और महारत्नोंसे बने	**शत विमान संकुलां**	सैकड़ों विमानोंसे भरी

पुण्यजनः स्त्रीभिः	यक्ष पत्नियोंसे (ऐसी लगती थी)	यथा सतडित् घनं खं	जैसे बिजली सहित मेघोंसे आकाश हो ॥२७॥

हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् ।
द्रुमैः कामदुघैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥२८॥

हित्वा यक्षेश्वर पुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् द्रुमैः कामदुघैः हृद्यं चित्र माल्य फलः छदैः ॥२८॥

यक्षेश्वर पुरीं हित्वा	कुवेरकी पुरीको छोड़कर	कामदुघैः द्रुमैः चित्र माल्य फलः छदैः	कल्पवृक्षोंसे तथा विचित्र फूल, फल, पत्तोंसे
तत् सौगन्धिकं वनं	उस सौगन्धिक वनमें (आये)	हृद्यं	(जो) मनोहर था ॥२८॥

रक्तकण्ठखगानीकस्वरमण्डितषट्पदम् ।
कलहंसकुलप्रेष्ठखरदण्डजलाशयम् ॥२९॥

रक्तकण्ठ खग अनीक स्वर मण्डित षट्पदं कलहंस कुलप्रेष्ठ खरदण्ड जलाशयम् ॥२९॥

रक्तकण्ठ खग अनीक	कोकिल आदि पक्षि समूह	कलहंस कुलप्रेष्ठ खरदण्ड जलाशयं	राजहंसोंके प्रिय कमलपूर्ण जलाशय थे ॥२९॥
षट्पदं स्वर मण्डित	(तथा) भौंरोंके स्वरसे भूषित,		

वनकुञ्जरसंघृष्टहरिचन्दनवायुना ।
अधि पुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः ॥३०॥

वन कुञ्जर संघृष्ट हरिचन्दन वायुना अधि पुण्यजन स्त्रीणां मुहुः उन्मथयन् मनः ॥३०॥

वन कुञ्जर संघृष्ट	जंगली हाथियोंके (शरीर) रगड़नेसे	**अधि पुण्यजन स्त्रीणां मनः मुहुः उन्मथयन्**	यक्ष स्त्रियोंके मनको बार-बार क्षुब्ध करना था ॥३०॥
हरिचन्दन वायुना	श्वेत चन्दन वृक्षोंसे आती वायु		

वैदूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः ।
प्राप्ताः किम्पुरुषैर्दृष्ट्वा त आराद्दद्दशुर्वटम् ॥३१॥

वैदूर्यकृत सोपानाः वाप्य उत्पल मालिनीः प्राप्ताः किम्पुरुषैः दृष्ट्वा त आरात् ददृशुः वटम् ॥३१॥

उत्पल मालिनीः	कमलोंसे भरी	**दृष्ट्वा त**	(यह) देखकर उन्होंने
वाप्य	बावलियोंमें	**आरात् वटं**	पास ही वटवृक्ष
वैदूर्यकृत सोपानाः	वैदूर्य मणिकी सीढ़ियां बनी थीं	**ददृशुः**	देखा ॥३१॥
किम्पुरुषैः प्राप्ताः	वहाँ किम्पुरुष आये हैं		

स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः ।
पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥३२॥

स योजन शत उत्सेधः पाद ऊन विटपायतः पर्यक् कृत अचलत्छायः निर्नीडः ताप वर्जितः ॥३२॥

स योजन शत उत्सेधः	वह सौ योजन* ऊँचा था,	**पादऊन**	एक अंश कम (पचहत्तर योजन)

---

* यह सम्पूर्ण कैलासका वर्णन दिव्य अभौतिक वर्णन है। व्यासजीका आश्रम बदरीनाथसे आगे ही था। अतः हिमालयमें आम-सुपारी आदि वृक्ष नहीं होते यह वे जानते थे। वहाँ कौनसे पशु-पक्षी होते हैं, यह भी उन्हें पता

(पृष्ठ १०२ पर)

विटपायतः	चारों ओर फैला था,	निर्नीडः	(उस पर) कोई घोंसला नहीं था,
पर्यक् कृत अचलत् छायः	(उसके) चारों ओर स्थिर छाया रहती थी,	ताप वर्जितः	(वहाँ) कभी गर्मी नहीं होती थी ॥३२

तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणे सुराः ।
ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ॥३३॥

तस्मिन् महायोगमये मुमुक्षुशरणे सुराः ददृशुः शिवं आसीनं त्यक्त अमर्षम् इव अन्तकम् ॥३३॥

महायोगमये	महायोगमय	अन्तकं इव	कालके समान
मुमुक्षेशरणे	मुमुक्षुओंके आश्रय-भूत	आसीनं शिवं	बैठे भगवान शंकर-को
तस्मिन्	उस (वटवृक्ष) के नीचे	सुराः ददृशुः	देवताओं ने देखा ॥३३॥
त्यक्त अमर्षम्	क्रोध रहित		

सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्तविग्रहम् ।
उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥३४॥

सनन्दन आद्यैः महासिद्धैः शान्तैः संशान्त विग्रहं उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यक रक्षसाम् ॥३४॥

संशान्त विग्रहं	वे अत्यन्त शान्त स्वरूप	शान्तैः सनन्दन आद्यैः	शान्त सनन्दन आदि

(पृष्ठ १०१ से आगे)

था और इतना बड़ा वटवृक्ष वहाँ कोई नहीं है, बद्रीनाथकी ऊँचाईपर ही वटवृक्ष नहीं होता, यह भी वे जानते-देखते थे; किन्तु भगवान शंकर और उनका निवास भौतिक नहीं है। अतः उनके निवास दिव्य स्थल-का यह वर्णन है। उसे देवता ही देख सकते थे।

महासिद्धैः च	महासिद्धों तथा	उपास्यमानं	सेवित (हो रहे
गुह्यक रक्षसां	यक्ष राक्षसोंके		थे) ॥३४॥
भर्त्रा सख्या	स्वामी अपने सखा		
	(कुवेर) से		

विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् ।
चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम् ॥३५॥

विद्या तपः योगपथं आस्थितं तं अधीश्वरं चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्यात् लोक मङ्गलम् ॥३५॥

विश्वसुहृदं	सम्पूर्ण विश्वके	विद्या तपः योग-	
	सुहृद	पथं	उपासना, तपस्या,
वात्सल्यात्	वात्सल्यके कारण		योग साधन
लोक मङ्गलं	लोकके मंगलके	आस्थितं चरन्तं	अपना कर उनका
	लिए		पालन करते
		तं अधीश्वरं	उन सर्वेश्वर-
			को ॥३५॥

लिङ्गं च तापसाभीष्टं भस्मदण्डजटाजिनम् ।
अङ्गेन संध्याभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥३६॥

लिङ्गं च तापस अभीष्टं भस्म दण्ड जटा अजिनं अङ्गेन सन्ध्या अभ्र रुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥३६॥

तापस अभीष्टं	तपस्वियोंको अभीष्ट	अङ्गेन चन्द्र-	
भस्म दण्ड जटा	विभूति, दण्ड, जटा	लेखां च	शरीरमें चन्द्रकला
अजिनं लिङ्गं	मृगचर्म आदि चिन्ह		भी
च सन्ध्या अभ्र		विभ्रतं	धारण किये
रुचा	तथा सन्ध्या कालीन		थे ॥३६॥
	मेघके समान		

उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्म सनातनम् ।
नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥३७॥

उपविष्टं दर्भ मय्यां बृस्यां ब्रह्म सनातनं नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥३७॥

दर्भ मय्यां बृस्यां	कुशास्तरण वाली वेदीपर	**सनातनं ब्रह्म**	सनातन (नित्य) ब्रह्मका
उपविष्टं	बैठे हुए	**प्रवोचन्तं**	उपदेश कर रहे थे ॥३७॥
पृच्छते नारदाय	प्रश्न कर्ता नारदको		
सतां शृण्वतां	(सनकादि) महात्माओंके सुनते		

कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि ।
बाहुं प्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ॥३८॥

कृत्वा उरौ दक्षिणे सव्यं पाद पद्मं च जानुनि बाहुं प्रकोष्ठे अक्षमालां आसीनं तर्क मुद्रया ॥३८॥

दक्षिणे उरौ	दाहिनी जंघापर	**प्रकोष्ठे**	
सव्यं पाद पद्मं		**अक्षमालां**	कलाईमें रुद्राक्षकी माला पहिने
च	बायें चरण-कमलको	**तर्क मुद्रया**	
कृत्वा जानुनि	रखे, घुटनेपर	**आसीनं**	तर्क-मुद्रा (ज्ञान-मुद्रा) बनाये बैठे थे ॥३८॥
बाहुं	(बायां) हाथ रखे,		

तं ब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितं
व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ।
सलोकपाला मुनयो मनूना-
माद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥३९॥

तं ब्रह्म निर्वाण समाधिं आश्रितं व्युपाश्रितं गिरिशं योग कक्षां स लोकपालाः मुनमः मनूनां आद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥३९॥

ब्रह्म निर्वाण	ब्रह्मानन्दका	**समाधिम् आश्रितं**	एकाग्र चित्तसे अवम्बन किये

योग कक्षां व्युपाश्रितं	योग पट्टिकाका सहारा लिए
तं मनूनां आद्यं मनुं	उन मननशीलोंमें सर्वश्रेष्ठ मननशील
गिरिशं	शंकरजीको
स लोकपालाः मुनयः	लोकपालोंके साथ मुनियोंने
प्राञ्जलयः प्रणेमुः	हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥३९॥

स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं
सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः ।
उत्थाय चक्रे शिरसाभिवन्दन-
मर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ॥४०॥

स तु उपलभ्य आगतं आत्मयोनिं सुर असुरेशैः अभिवन्दित अङ्घ्रिः उत्थाय चक्रे शिरसा अभिवन्दनं अर्हत्तमः कस्य यथा इव विष्णुः ॥४०॥

सुर असुरेशैः	सुर और असुरोंके स्वामियों द्वारा
अभिवन्दित अङ्घ्रिः	जिनके चरणोंकी वन्दना होती है
स तु आत्मयोनिं आगतं उपलभ्य	उन (शंकरजी)ने तो ब्रह्माजीको आया देखकर
यथा कस्य	जैसे प्रजापति (कश्यपजी) की
अर्हत्तमः विष्णुः इव	पूज्यतम वामन भगवान करते हैं वैसे
उत्थाय शिरसा अभिवन्दनं चक्रे	उठकर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥४०॥

तथापरे सिद्धगणा महर्षिभि-
र्ये वै समन्तादनु नीललोहितम् ।
नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं
कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः ॥४१॥

तथा अपरे सिद्धगणाः महर्षिभिः ये वै समन्तात् अनु नीललोहितं नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं कृत प्रणामं प्रहसन् इव आत्मभूः ॥४१॥

तथा अपरे ये वै अनुनील लोहितं समन्तात् सिद्धगणाः	इसी प्रकार दूसरे जो भी शंकरजी के चारों ओर (बैठे)
महर्षिभिः	सिद्धगण महर्षियोंके साथ थे,
नमस्कृतः	(उन्होंने ब्रह्माजीको) प्रणाम किया
कृत प्रणामं प्रहसन् इव आत्मभूः शशाङ्कशेखरं प्राह	उनके प्रणाम कर लेनेपर हँसते हुएसे ब्रह्माजी भगवान चन्द्रशेखर-से बोले ॥४१॥

ब्रह्मोवाच–

जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः ।
शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥४२॥

जाने त्वां ईशं विश्वस्य जगतः योनि बीजयोः शक्तेः शिवस्य च परं यत् ब्रह्म निरन्तरम् ॥४२॥

त्वां विश्वस्य ईशं जाने जगतः योनि	आपको संसारका स्वामी जानता हूँ,
शक्तेः	जगत् उत्पादिका शक्ति
च वीजयोः शिवस्य	तथा उसके मूल-कारण शिवसे
परं यत् निरन्तरं ब्रह्म	परे जो (वह) अखण्ड ब्रह्म (आप) हैं ॥४२॥

त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः सरूपयोः ।
विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥४३॥

त्वं एव भगवन् एतत् शिव शक्त्योः सरूपयोः विश्वं सृजसि पासि अत्सि क्रीडन् उर्णपटः यथा ॥४३॥

यथा उर्णपटः	जैसे मकड़ी	सरूपयोः	स्वरूपसे
भगवन् त्वं एव	(वैसे ही) भगवन् आप ही	क्रीडन्	क्रीडा करते हुए
		विश्वं सृजसि	विश्वकी सृष्टि करते हैं,
एतत् शिव शक्त्योः	इस शिव तथा शक्तिके	पासि अत्सि	पालन करते तथा खा लेते हैं ॥४३॥

त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये
दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ।
त्वय्यैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो
यान्ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ॥४४॥

त्वं एव धर्म अर्थ दुधा अभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथ अध्वरं त्वयि एव लोके अवसिताः च सेतवः यान् ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ॥४४॥

धर्म अर्थ दुधा	धर्म और अर्थको देनेवाले (वेदों) की	ब्राह्मणाः श्रद्दधते	ब्राह्मण श्रद्धा करते हैं,
अभिपत्तये	रक्षाके लिए	त्वयि एव	आपने ही
त्वं एव	आपने ही	सेतवः च	(वे वर्णाश्रमकी)
दक्षेण सूत्रेण	दक्षके माध्यमसे		मर्यादाएँ भी
अध्वरं ससर्जिथ	यज्ञको उत्पन्न किया,	लोके अवसिताः	संसारमें स्थापित
यान् धृतव्रताः	जिनपर व्रतधारी		की हैं ॥४४॥

त्वं कर्मणां मङ्गलमङ्गलानां
कर्तुः स्म लोकं तनुषे स्वः परं वा ।
अमङ्गलानां च तमिस्रमुल्बणं
विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ॥४५॥

त्वं कर्मणां मङ्गलं मङ्गलानां कर्तुः स्म लोकं तनुषे स्वः परं वा अमङ्गलानां च तमिस्रम् उल्बणं विपर्ययः केन तत् एव कस्यचित् ॥४५॥

मङ्गलानां कर्मणां	शुभ कर्म	कर्तुः स्म	करने वालेको तो
		मङ्गलं स्वः	मंगलमय स्वर्ग

वा परं	अथवा मोक्ष	**तत् एव**	
तनुषे	देते हैं,	**कस्यचित्**	फिर भी किसीके
च अमङ्गलानां	और अशुभ (कर्म करने वालों) को	**केन विपर्ययः**	लिए कैसे उलटा (फल)
उल्बणं तमिस्रं	घोर नरक (देते हैं)		हो जाता है ?॥४५॥

न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां
भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ।
भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां
प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥४६॥

न वै सतां त्वत् चरण अर्पित आत्मनां भूतेषु सर्वेषु अभिपश्यतां तव भूतानि च आत्मनि अपृथक् दिदृक्षतां प्रायेण रोषः अभिभवेत् यथा पशुम् ॥४६॥

त्वत् चरण	आपके चरणोंमें	**दिदृक्षतां सतां वै**	देखने वाले संतोंको तो
अर्पित आत्मनां	अर्पित चित्त,	**पशुं**	पशुओंके समान
सर्वेषु भूतेषु	सब प्राणियोंमें	**प्रायेण**	प्रायः
तव अभिपश्यतां	आपको देखने वाले,	**रोषः न**	
भूतानि च	तथा प्राणियोंको	**अभिभवेत्**	क्रोध नहीं अभिभूत करता ॥४६॥
आत्मनि अपृथक्	अपनेसे अभिन्न		

पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः
परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ।
परान् दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदा-
स्तान्मा वधीद्दैववधान् भवद्विधः ॥४७॥

पृथक्धियः कर्मदृशः दुराशयाः परउदयेन अर्पित हृत् रुजः अनिशं परान् दुरुक्तैः वितुदन्ति अरुन्तुदाः तान् मा वधीत् दैववधान् भवत् विधः ॥४७॥

पृथक् धियः कर्मदृशः	भेद बुद्धि होनेसे
दुराशयाः	कर्मासक्त, दुरभिप्राय,
पर उदयेन	दूसरोंकी उन्नतिसे (अपना)
अनिशं	रात-दिन
हृत् रुजः अर्पित दुरुक्तैः परान्	हृदय जलाने वाले, दुर्वचनोंसे (जो) दूसरोंको
वितुदन्ति	वेधते रहते हैं,
अरुन्तुदाः	वे उत्पीड़क
दैववधान्	(पहिलेसे ही) दैवके मारे हैं,
भवत् विधः	आप जैसोंको
तान् मा वधीत्	उन्हें नहीं मारना चाहिए ॥४७॥

यस्मिन् यदा पुष्करनाभमायया
दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ।
कुर्वन्ति तत्र ह्यनुकम्पया कृपां
न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥४८॥

यस्मिन् यदा पुष्कर नाभ मायया दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथक् दृशः कुर्वन्ति तत्र हि अनुकम्पया कृपां न साधवः दैव बलात् कृते क्रमम् ॥४८॥

पुष्कर नाभ दुरन्तया मायया	भगवान नारायणकी दुष्पार मायासे
स्पृष्टधियः	आक्रान्त बुद्धि
पृथक्	भेद वाले लोग
यदा यस्मिन् कुर्वन्ति	जब जिस विषयमें कुछ करते हैं,
तत्र हि साधवः	उसमें क्योंकि सत्पुरुष
अनुकम्पया कृपां	अनुग्रहशील स्वभाव वश कृपा (ही करते हैं)
दैव बलात् कृते	दैववश जो हो जाता है (उसे)
क्रमं न	रोकते नहीं ॥४८॥

भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया
दुरन्तयास्पृष्टमतिः समस्तदृक् ।
तया हृतात्मस्वनुकर्मचेतः-
स्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥४९॥

भवान् तु पुंसः परमस्य मायया दुरन्तया अस्पृष्ट मतिः समस्त दृक् तया हत आत्मसु अनुकर्म चेतः सु अनुग्रहं कर्तुं इह अर्हसि प्रभो ॥४९॥

प्रभो	प्रभो !
भवान् तु	आप तो
परमस्य पुंसः	परम पुरुषकी
दुरन्तया मायया	दुष्पार मायासे
अस्पृष्ट मतिः	अछूती बुद्धि
समस्त दृक्	पूर्ण ज्ञानी हैं,
तया हत आत्मसु	उस (माया) के मारे चित्त वाले
अनुकर्म चेताःसु	कर्मोंमें चित्त लगाये लोगोंपर
इह अनुग्रहं	यहाँ (आपको) अनुग्रह
कर्तुं अर्हसि	करना चाहिए ॥४९

कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोः
त्वयासमाप्तस्य मनो प्रजापतेः ।
न यत्र भागं तव भागिनो ददुः
कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥५०॥

कुरु अध्वरस्य उद्धरणं हतस्य भोः त्वया समाप्तस्य मनः प्रजापतेः न यत्र भागं तव भागिनः ददुः कुयज्विनः येन मखः निनीयते ॥५०॥

भोः	हे प्रभो !
हतस्य	नष्ट हुए
प्रजापतेः	
अध्वरस्य	प्रजापति (दक्ष) के यज्ञका
उद्धरणं कुरु	उद्धार कीजिए
यत्र कुयज्विनः	जिसमें बुद्धिहीन याजकोंने
येन मखः	
निनीयते	जिनके द्वारा यज्ञ पूर्ण किये जाते हैं
तव भागिनः	उस आप भागके अधिकारीको
भागं न ददुः	भाग नहीं दिया
त्वया मनः	
समाप्तस्य	अतः आपने (उसे) अपने संकल्पोंसे (वीरभद्र उत्पन्न करके) समाप्त कर दिया ॥५०॥

जीवितात्तयजमानोऽयं प्रपद्येताक्षिणी भगः ।
भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णो दन्ताश्च पूर्ववत् ॥५१॥

जीवितात् यजमानः अयं प्रपद्येत अक्षिणी भगः भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णः दन्ताः च पूर्ववत् ॥५१॥

अयं यजमानः	यह यजमान (दक्ष)
जीवितात्	जीवित हो जाय,
भगः अक्षिणी	भग देवता नेत्र
प्रपद्येत	प्राप्त करें,
भृगोः श्मश्रूणि	भृगुकी दाढ़ी
रोहन्तु	उगे,
च पूष्णः दन्ताः	तथा पूषाके दाँत
पूर्ववत्	पहिले जैसे हो जायँ ॥५१॥

देवानां भग्नगात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः ।
भवतानुगृहीतानामाशु मन्योऽस्त्वनातुरम् ॥५२॥

देवानां भग्न गात्राणां ऋत्विजां च आयुध अश्मभिः भवता अनुगृहीतानां आशु मन्यो अस्तु अनातुरम् ॥५२॥

मन्यो	रुद्रदेव !
भवता अनुगृहीतानां	आपका अनुग्रह प्राप्त करके
आयुध अश्मभिः	शस्त्रों तथा पत्थरोंसे
भग्न गात्राणां	कटे-फटे शरीरवाले
देवानां च ऋत्विजां	देवताओं तथा ऋत्विजोंको
आशु अनातुरं अस्तु	शीघ्र स्वास्थ्य प्राप्त हो ॥५२॥

एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै ।
यज्ञस्ते रुद्र भागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥५३॥

एष ते रुद्र भागः अस्तु यत् उच्छिष्टः अध्वरस्य वै यज्ञः ते रुद्र भागेन कल्पतां अद्य यज्ञहन् ॥५३॥

यत् वै अध्वरस्य	जो कुछ यज्ञ होनेपर	**यज्ञहन्**	यज्ञविध्वंसक !
उच्छिष्टः	बचा रहे	**अद्य ते रुद्र भागेन**	आज आपके रुद्र भागसे ही
एष ते रुद्र भागः अस्तु	यह आपका रुद्र भाग हो,	**यज्ञः कल्पतां**	यज्ञ (पूर्ण) कराइये ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे रुद्रसान्त्वनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता ।
अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥१॥

इति अजेन अनुनीतेन भवेन परितुष्यता अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतां इति ॥१॥

महाबाहो	महाबाहु विदुर !	परितुष्यता	
इति अजेन	इस प्रकार ब्रह्माजी द्वारा	भवेन	सन्तुष्ट होकर शिवने
अनुनीतेन	प्रार्थना करनेपर	प्रहस्य इति	हँसकर ऐसा
		अभ्यधायि	कहा—
		श्रूयतां	'सुनिये ! ॥१॥

रुद्र उवाच*-

नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये ।
देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया ॥२॥

न अघं प्रजेश बालानां वर्णये न अनुचिन्तये देवमाया अभिभूतानां दण्डः तत्र धृतः मया ॥२॥

प्रजेश	ब्रह्माजी !	न वर्णये	(मैं) न चर्चा करता हूँ,
देवमाया अभिभूतानां	भगवानकी मायासे मोहित	न अनुचिन्तये	न उसे बार-बार सोचता हूँ
बालानां अघं	अज्ञानियोंके अपराधकी		

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें 'श्रीमहादेव उवाच' है; किन्तु इससे पहिले और आगे भी उन्होंने 'रुद्र उवाच' ही दिया है ।

तत्र मया	उनके (अपराध करनेपर, मैंने	**दण्डः धृतः**	दण्ड दे दिया ॥२॥

प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वजमुखं शिरः ।
मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ॥३॥

प्रजापतेः दग्धशीर्ष्णः भवतु अजमुखं शिरः मित्रस्य चक्षुषा ईक्षेत भागं स्वं बर्हिषः भगः ॥३॥

दग्धशीर्ष्णः	जले सिरवाले	**स्वं बर्हिषः भागं**	अपना यज्ञीय भाग
प्रजापतेः	प्रजापति दक्षका	**भगः**	भग देवता
अजमुखं शिरः	बकरेके मुँहवाला सिर	**मित्रस्य चक्षुषा ईक्षेत**	मित्र देवताके नेत्रोंसे देखा करें ॥३॥
भवतु	होवे,		

पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक् ।
देवाः प्रकृतसर्वाङ्गा ये म उच्छेषणं ददुः ॥४॥

पूषा तु यजमानस्य दद्भिः जक्षतु पिष्टभुक् देवाः प्रकृत सर्वाङ्गाः ये म उच्छेषणं ददुः ॥४॥

पूषा तु पिष्टभुक्	पूषा तो पिसा अन्न खानेवाले हैं	**ददुः**	जिन्होंने मुझे (यज्ञसे) बचा दिया है,
यजमानस्य दद्भिः	(अतः) यजमानके दांतसे	**देवाः प्रकृत सर्वाङ्गाः**	उन देवताओंके सब अंग यथावत (स्वस्थ) हो जायँ ॥४॥
जक्षतु ये म उच्छेषणं	खाया करें,		

बाहुभ्यामश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः ।
भवन्त्वध्वर्यवश्चान्ये बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥५॥

बाहुभ्यां अश्विनोः पूष्णः हस्ताभ्यां कृत बाहवः भवन्तु अध्वर्यवः च अन्ये बस्तश्मश्रुः भृगुः भवेत् ॥५॥

अन्ये च	
अध्वर्यवः	दूसरे अध्वर्यु आदि (जिनकी भुजा या हाथ टूटे हैं)
अश्विनोः बाहुभ्यां	अश्विनी कुमारोंकी भुजाओंसे
पूष्णः हस्ताभ्यां	पूषाके हाथोंसे
कृत बाहवः	भुजाओंवाले
भवन्तु	हों (भुजाओंका काम लें)
भृगुः बस्तश्मश्रुः	भृगु बकरेकी दाढ़ी वाले
भवेत्	होवें ॥५॥

मैत्रेय उवाच–

तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टमोदितम् ।
परितुष्टात्मभिस्तात साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥६॥

तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टं उदितं परितुष्टात्मभिः तात साधु साधु इति अथ अब्रुवन् ॥६॥

तात्	तात् !
तदा मीढुष्टं उदितं	तब शंकरजीकी बात
श्रुत्वा सर्वाणि भूतानि	सुनकर सब प्राणी
परितुष्टात्मभिः	सन्तुष्ट चित्त होकर
अथ साधु साधु	यह 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'
इति अब्रुवन्	हुआ यह कहने लगे ॥६॥

ततो मीढ्वांसमामन्त्र्य शुनासीराः सहर्षिभिः ।
भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसो ययुः ॥७॥

ततः मीढ्वांसं आमन्त्र्य शुनासीराः सह ऋषिभिः भूयः तत् देव यजनं समीढ्वत् वेधसः ययुः ॥७॥

ततः शुनासीराः	तब देवता
सह ऋषिभिः	ऋषियोंके साथ
मीढ्वांसं आमन्त्र्य	शंकरजीको आमन्त्रण देकर
समीढ्वत् वेधसः	शिव और ब्रह्माके साथ
तत् देव यजनं	उस देव यज्ञशालामें
भूयः ययुः	फिर गये ॥७॥

विधाय कात्स्न्र्येन च तद्यदाह भगवान् भवः ।
संदधुः कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः ॥८॥

विधाय कात्स्न्र्येन च तत् यत् आह भगवान् भवः संदधुः कस्य कायेन सवनीय पशोः शिरः ॥८॥

च भगवान् भवः	और भगवान् शंकरने	**कस्य कायेन**	दक्षके धड़पर
यत् आह	जो बतलाया	**सवनीय पशोः**	यज्ञ-पशुका
तत् कात्स्न्र्येन		**शिरः संदधुः**	सिर जोड़
विधाय	उसे पूर्णतः करके		दिया ॥८॥

संधीयमाने शिरसि दक्षो रुद्राभिवीक्षितः ।
सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतो मृडम् ॥९॥

संधीयमाने शिरसि दक्षः रुद्र अभिवीक्षितः सद्यः सुप्त इव उत्तस्थौ ददृशे च अग्रतः मृडम् ॥९॥

शिरसि सन्धीय-		**सुप्त इव सद्यः**	सोतेसे जगेके समान
माने	सिरके जोड़े जानेपर		तत्काल
रुद्र अभिवीक्षितः	शङ्करजीकी दृष्टि	**दक्षः उत्तस्थौ**	दक्षजी उठे,
	पड़नेपर	**च अग्रतः**	और सामने ही
		मृडं ददृशे	शिवजीको देखा ॥९

तदा वृषध्वजद्वेषकलिलात्मा प्रजापतिः ।
शिवावलोकादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥१०॥

तदा वृषध्वज द्वेष कलिल आत्मा प्रजापतिः शिव अवलोकात् अभवत् शरत् ह्रद इव अमलः ॥१०॥

वृषध्वज द्वेष	शङ्कर द्वेषकी	**शिव अवलोकात्**	शङ्करजीके दर्शनसे
कलिल आत्मा	कालिमासे कलुषित	**शरत् ह्रद इव**	शरत् कालीन
प्रजापतिः तदा	प्रजापति दक्ष उसी		सरोवरके समान
	समय	**अमलः अभवत्**	निर्मल हो गये ॥१०

भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनुरागतः ।
औत्कण्ठ्याद्बाष्पकलया सम्परेतां सुतां स्मरन् ॥११॥

भवस्तवाय कृतधीः न अशक्नोत् अनुरागतः औत्कण्ठ्यात् वाष्पकलया सम्परेतां सुतां स्मरन् ॥११॥

भवस्तवाय	शङ्करजीकी स्तुति-का	**अनुरागतः वाष्पकलया**	प्रेमके कारण
कृतधीः	विचार किया; किन्तु	**औत्कण्ठ्यात्**	आँसूसे गला रुक जानेके कारण
सम्परेतां सुतां स्मरन्	मृत पुत्रीका स्मरण करके	**अशक्नोत् न**	(स्तुति) कर नहीं सके ॥११॥

कृच्छ्रात्संस्तभ्य च मनः प्रेमविह्वलितः सुधीः ।
शशंस निर्व्यलीकेन भावेनेशं प्रजापतिः ॥१२॥

कृच्छ्रात् संस्तभ्य च मनः प्रेम विह्वलितः सुधीः शशंस निर्व्यलीकेन भावेन ईशं प्रजापतिः ॥१२॥

सुधीः प्रजापतिः	विचारवान् प्रजापति दक्षने	**निर्व्यलीकेन भावेन**	निष्कपट भावसे
कृच्छ्रात् च	कठिनाईसे ही	**ईशं शशंस**	शङ्करजीकी प्रशंसा करने लगे ॥१२॥
मनः संस्तभ्य	मनको स्थिर करके		
प्रेम विह्वलितः	प्रेम विह्वल होकर		

दक्ष उवाच–

भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे
दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः ।
न ब्रह्मबन्धुषु च वां भगवन्नवज्ञा
तुभ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु ॥१३॥

भूयान् अनुग्रहः अहो भवता कृतः मे दण्डः त्वया मयि भृतः यदपि प्रलब्धः न ब्रह्म बन्धुषु च वां भगवन् अवज्ञा तुभ्यं हरेः च कुत एव धृत व्रतेषु ॥१३॥

भगवन् अहो	भगवन् अहो !	**त्वया मे दण्डः भृतः**	आपने मुझे दण्ड देकर
यदपि प्रलब्धः	यद्यपि (मैंने आपको) ठगा (भागवंचित) किया था,		

मयि भूयान् भवता	मुझपर बड़ा भारी आपने
अनुग्रहः कृतः	अनुग्रह किया,
तुभ्यं हरेः	आप और श्रीहरि
वां ब्रह्म बन्धुषु च	दोनों ब्राह्मणाधमकी भी
अवज्ञा न	अवहेलना नहीं करते,
धृत व्रतेषु	(मेरे जैसे) व्रतनिष्ठ-की
कुत एव	फिर कैसे कर सकते हैं ॥१३॥

विद्यातपोव्रतधरान् मुखतः स्म विप्रान्
ब्रह्माऽऽत्मतत्त्वमवितुं प्रथमं त्वमस्राक् ।
तत्ब्राह्मणान् परम सर्वविपत्सु पासि
पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः ॥१४॥

विद्या तपः व्रतधरान् मुखतः स्म विप्रान् ब्रह्म आत्मतत्त्वं अवितुं प्रथमं त्वं अस्राक् तत् ब्राह्मणान् परम सर्व विपत्सु पासि पालः पशून् इव विभो प्रगृहीत दण्डः ॥१४॥

विभो	प्रभो !
आत्मतत्त्वं ब्रह्म	अपने ही स्वरूप वेदकी
अवितुं प्रथमं	रक्षाके लिए पहले
विद्या तपः व्रत-धरान्	विद्या, तप, व्रतनिष्ठ
विप्रान् स्म त्वं मुखतः	ब्राह्मणोंको
अस्राक्	आपने अपने मुखसे उत्पन्न किया
तत् ब्राह्मणान्	अतः उन ब्राह्मणोंकी
दण्डः प्रगृहीतः	दण्ड लेकर
पशून् पालः इव	पशुओंको उनके पालकके समान
सर्व विपत्सु परम	सब विपत्तियोंमें अच्छी तरह
पासि	रक्षा करते हैं ॥१४॥

योऽसौ मयाविदिततत्त्वदृशा सभायां
क्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्य तन्माम् ।
अर्वाक् पतन्तमर्हत्तमनिन्दयापाद्
दृष्ट्याऽऽर्द्रया स भगवान् स्वकृतेन तुष्येत् ॥१५॥

यः असौ मया अविदित तत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तः दुरुक्ति विशिखैः अगणय्य तत् मां अर्वाक् पतन्तं अर्हत्तम निन्दया पात् दृष्ट्या आर्द्रया स भगवान् स्वकृतेन तुष्येत् ॥१५॥

तत्त्वदृशा अविदित	(आपके) तत्त्वको न जानकर
असौ मया दुरुक्ति विशिखैः	जो मैंने दुर्वचन-रूप वाणोंसे
सभायां क्षिप्तः	भरी सभामें आक्षेप किया था,
तत् अगणय्य	उसकी गणना न करके
अर्हत्तम निन्दया	परम पूज्यकी निन्दा करनेसे
अर्वाक् पतन्तं मां	अधः पतित होते मुझे
आर्द्रया दृष्ट्या यः पात्	करुणा-द्रवित दृष्टिसे जिन्होंने बचा लिया,
स भगवान् स्वकृतेन तुष्येत्	वे भगवान अपनी उदारतासे ही सन्तुष्ट हों (उन्हें सन्तुष्ट करने योग्य मेरे पास कुछ नहीं है) ॥१५॥

मैत्रेय उवाच–

क्षमाप्यैवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रितः ।
कर्म सन्तानयामास सोपाध्यायर्त्विगादिभिः ॥१६॥

क्षमाप्य एवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा च अनुमन्त्रितः कर्म सन्तान यामास स उपाध्याय ऋत्विक् आदिभिः ॥१६॥

स एवं मीढ्वांसं	उन (दक्ष) ने इस प्रकार शिवसे
क्षमाप्य च ब्रह्मणा	क्षमा मांग कर और
अनुमन्त्रितः	ब्रह्माजीसे अनुमति पाकर
स उपाध्याय ऋत्विक् आदिभिः	उपाध्याय, ऋत्विकों आदिके साथ
कर्म सन्तान यामास	(यज्ञीय) कार्य फैलाया ॥१६॥

वैष्णवं यज्ञसन्तत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः ।
पुरोडाशं निरवपन् वीरसंसर्गशुद्धये ॥१७॥

वैष्णवं यज्ञ सन्तत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः पुरोडाशं निरवपन् वीर संसर्ग शुद्धये ॥१७॥

द्विजोत्तमाः	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने
वीर संसर्ग शुद्धये	भूत-प्रेतोंके स्पर्श-दोषकी शुद्धिके लिए
त्रिकपालं	तीन पात्रोंमें तैयार
पुरोडाशं	पुरोडाश नामक चरुका
वैष्णवं यज्ञ सन्तत्यै	भगवान् विष्णुके निमित्त होने वाले यज्ञके विस्तारके लिए
निरवपन्	हवन किया ॥१७॥

अध्वर्युणाऽऽत्तहविषा यजमानो विशाम्पते ।
धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥१८॥

अध्वर्युणा आत्त हविषा यजमानः विशाम्पते धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुः अभूत् हरिः ॥१८॥

विशाम्पते	विदुर !
आत्त हविषा	उस हविष्यको लेकर
अध्वर्युणा	अध्वर्यके (खड़े होनेपर)
विशुद्धया धिया	विशुद्ध बुद्धिसे
यजमानः दध्यौ	यजमान (दक्ष) ने ध्यान किया
तथा हरिः	वैसे ही श्रीहरि
प्रादुः अभूत्	प्रकट होगये ॥१८॥

तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशो दश ।
मुष्णंस्तेज उपानीतस्तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना ॥१९॥

तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशः दश मुष्णन् तेजः उपानीतः तार्क्ष्येण स्तोत्र वाजिना ॥१९॥

स्तोत्र	(वृहत् एवं रथन्तर नामक) सामवेदके स्तोत्र रूपी
वाजिना	पंख वाले
तार्क्ष्येण उपानीतः	गरुड़पर बैठकर समीप आये
स्वप्रभया	अपनी कान्तिसे
दिशः दश	दशों दिशाओंको
द्योतयन्त्या	प्रकाशित करते,
तेषां तेजः मुष्णन्	उन (सब देवताओं) के तेजको हर लिया ॥१९॥

श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो
नीलालकभ्रमरमण्डितकुण्डलास्यः ।
कम्बवब्जचक्रशरचापगदासिचर्म-
व्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः ॥२०॥

श्यामः हिरण्यरशनः अर्ककिरीट जुष्टः नील अलक भ्रमर मण्डित कुण्डल आस्यः कम्बु अब्ज चक्र शर चाप गदा असि चर्म व्यग्रैः हिरण्मय भुजैः इव कर्णिकारः ॥२०॥

श्यामः	श्याम वर्ण,
हिरण्यरशनः	सोनेकी करधनी पहिने,
अर्ककिरीट जुष्टः	सूर्यके समान प्रकाशमान मुकुट धारण किये,
नील अलक भ्रमर	काली भौंरों जैसी अलकों तथा
कुण्डल मण्डित आस्यः	कुण्डलोंसे शोभित मुख,
कम्बु अब्ज	शंख, कमल,
चक्र शर चाप	चक्र, वाण, धनुष,
गदा असि चर्म	गदा, तलवार, ढाल
हिरण्मय भुजैः	स्वर्णाभरण भूषित भुजाओंमें
व्यग्रैः	लिए हुए
कर्णिकारः इव	(पुष्पित) कनैरके समान थे ॥२०॥

वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदार-
हासावलोककलया रमयंश्च विश्वम् ।
पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः
श्वेतातपत्रशशिनोपरि रज्यमानः ॥२१॥

वक्षसि अधिश्रित वधूः वनमाल्य उदार हास अवलोक कलया रमयन् च विश्वं पार्श्व भ्रमत् व्यजन चामर राजहंसः श्वेत आतपत्र शशिना उपरि रज्यमानः ॥२१॥

वक्षसि	वक्षस्थलपर
वधूः अधिश्रित	लक्ष्मी (श्रीवत्स) विराजमान तथा
उदार वनमल्य	विशाल वनमाला है,
हास अवलोक	
कलया	सस्मित दृष्टिपातसे–
विश्वं च रमयन्	सम्पूर्ण विश्वको आनन्दित कर रहे हैं,
व्यजन राजहंसः	
चामर	पंखे तथा राजहंस
	जैसे श्वेत चामर
पार्श्व भ्रमत्	दोनों ओर चलते हैं,
उपरि शशिना	
रज्यमानः	ऊपर चन्द्रके समान शोभावाला
श्वेत आतपत्र	श्वेत छत्र लगा है ॥२१॥

तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः ।
प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षनायकाः ॥२२॥

तं उपागतं आलक्ष्य सर्वे सुरगण आदयः प्रणेमुः सहसा उत्थाय ब्रह्म इन्द्रत्र्यक्ष नामकाः ॥२२॥

तं उपागतं	
आलक्ष्य	उनको आया देखकर
ब्रह्म इन्द्रत्र्यक्ष	ब्रह्मा, इन्द्र, शिव
नामकाः सर्वे	प्रमुख सब
सुरगण आदयः	देवादिगणने
सहसा उत्थाय	सहसा उठकर
प्रणेमुः	प्रणाम किया ॥२२॥

तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः ।
मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटा उपतस्थुरधोक्षजम् ॥२३॥

तत् तेजसा हतरुचः सन्न जिह्वाः स साध्वसाः मूर्ध्ना धृत आञ्जलिपुटाः उपतस्थुः अधोक्षजम् ॥२३॥

तत् तेजसा	उनके तेजसे
हतरुचः	(सबकी) कान्ति मलिन हो गयी,
सन्न जिह्वाः	जीभ स्तब्ध हो गयी,
स साध्वसाः	वे (सबके सब) सकपका गये
अञ्जलिपुटाः	अञ्जलि बाँधकर
मूर्ध्ना धृत	उसे सिरसे लगाकर
अधोक्षजं	भगवान् हृषीकेशके
उपतस्थुः	सामने खड़े हो गये ॥२३॥

अप्यर्वाग्वृत्तयो यस्य महि त्वात्मभुवादयः ।
यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् ॥२४॥

अपि अर्वाक् वृत्तयः यस्य महो तु आत्मभुव आदयः यथामति गृणन्ति स्म कृत अनुग्रह विग्रहम् ॥२४॥

आत्मभुव आदयः	ब्रह्मादि देवताओंकी	**कृतं स्म**	किये हुए (भगवानकी)
वृत्तयः	वृत्तियाँ	**यथा मति**	अपनी बुद्धिके अनुसार
महि अपि	(भगवानकी) महिमासे यद्यपि	**गृणन्ति**	स्तुति करने लगे ॥२४॥
अर्वाक्	नीचे ही रहती हैं,		
अनुग्रह विग्रहं	कृपापूर्वक शरीर धारण		

दक्षो गृहीतार्हणसादनोत्तमं
यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुम् ।
सुनन्दनन्दाद्यनुगैर्वृतं मुदा
गृणन् प्रपेदे प्रयतः कृताञ्जलिः ॥२५॥

दक्षः गृहीत अर्हण सादन उत्तमं यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुं सुनन्द नन्द आदि अनुगैः वृतं मुदा गृणन् प्रपेदे प्रयतः कृताञ्जलिः ॥२५॥

दक्षः उत्तमं अर्हण सादन गृहीत	दक्ष उत्तम पूजन सामग्री लेकर	**अनुगैः वृतं**	अनुचरोंसे घिरे (भगवानके)
यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुं	यज्ञेश्वर प्रजापतियोंके परम गुरु	**मुदा प्रपेदे**	पास प्रसन्नतासे गये,
		कृताञ्जलिः प्रयतः गृणन्	हाथ जोड़कर एकाग्र होकर स्तुति करने लगे ॥२५॥
सुनन्द नन्द आदि	सुनन्द नन्द आदि		

दक्ष उवाच-

शुद्धं स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं
चिन्मात्रमेकमभयं प्रतिषिध्य मायाम् ।

तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्या-
मास्ते भवानपरिशुद्ध इवात्मतन्त्रः ॥२६॥

शुद्धं स्वधाम्नि उपरतं अखिल बुद्ध्यवस्थं चिन्मात्रं एकं अभयं प्रतिषिध्य मायां तिष्ठन् तया एव पुरुषत्वं उपेत्य तस्यां आस्ते भवान् अपरिशुद्ध इव आत्मतन्त्रः ॥२६॥

स्वधाम्नि	अपने स्वरूपमें	**मायां प्रतिषिध्य**	मायाका तिरस्कार करके
अखिल बुद्ध्यवस्थं	बुद्धिकी समस्त अवस्थासे	**आत्मतन्त्रः तिष्ठन्**	स्वतन्त्र स्थित हैं,
उपरतं	रहित	**तया एव**	उस (माया) से ही
भवान् शुद्धं	आप शुद्ध	**पुरुषत्वं उपेत्य**	जीव भाव ग्रहण करके
चिन्मात्रं एकं अभयं	चिन्मय, अद्वितीय, अभय स्वरूप हैं,	**तस्यां अपरिशुद्ध इव आस्ते**	उस (माया) में ही अशुद्ध (अज्ञानी)जैसे हो जाते हैं ॥२६॥

ऋत्विज ऊचुः—

तत्त्वं न ते वयमनञ्जन रुद्रशापात्
कर्मण्यवग्रहधियो भगवन्विदामः ।
धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं
ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदोव्यवस्थाः ॥२७॥

तत्त्वं न ते वयं अनञ्जन रुद्र शापात् कर्मणि अवग्रह धियः भगवन् विदामः धर्म उपलक्षणं इदं त्रिवृत् अध्वराख्यं ज्ञातं यत् अर्थम् अधिदैवं अदोः व्यवस्थाः ॥२७॥

अनञ्जन भगवन्	परम शुद्ध भगवन् !	**तत्त्वं न विदामः**	तत्त्व नहीं जानते,
रुद्र शापात्	रुद्र (के प्रधानानुचर) के शापसे	**कर्मणि अवग्रह**	कर्ममें दुराग्रह रखने वाला
वयं ते	हम आपका	**धियः**	बुद्धिके कारण

यत् अर्थ	जिसके लिए
अदोः अधिदैवं	'इसका यह अधि-देवता है'
व्यवस्थाः	ऐसी व्यवस्था है,
धर्म उपलक्षणं	(उस) धर्म प्रवृत्तिके नियामक
त्रिवृत्	वेदत्रयीसे (प्रतिपादित)
इदं अध्वराख्यं	इस यज्ञ रूपको ही
ज्ञातं	(हम आपका स्वरूप) जानते हैं ॥२७॥

सदस्या ऊचुः-

उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्र-
व्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ।
द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः
पादौकस्ते शरणद कदा यात्यमोपसृष्टः ॥२८॥

उत्पत्ति अध्वनि अशरण उरु क्लेश दुर्ग अन्तक उग्र व्याल अन्विष्टे विषय मृग तृष्या आत्मगेह उरु भारः द्वन्द्वषु अभ्रे खल मृग भये शोकदावे अज्ञ सार्थः पादौ कः ते शरणद कदा याति काम उपसृष्टः ॥२८॥

शरणद	शरणदाता !
उरु क्लेश दुर्गे	बहुत क्लेशोंके कारण दुर्गम,
अन्तक उग्र	कालरूपी भयानक
व्याल अन्विष्टे	सर्प ताकमें जहां बैठा है,
विषय मृग तृष्या	विषय-भोगरूपी मृग तृष्णासे
आत्मगेह	
उरु भारे	शरीर और घरके भारी भारको लिए
द्वन्द्वषु अभ्रे	द्वन्द्व रूपी गड्ढोंसे भरे
खल मृग भये	दुर्जन रूपी पशुओंके भयसे युक्त
शोकदावे	शोक रूपी दावाग्नि लगे
अशरणे	विश्राम-स्थान रहित
उत्पत्ति अध्वनि	जन्म (मरण) रूपी मार्गमें
अज्ञ सार्थः	अज्ञानियोंके साथ
काम उपसृष्टः	कामनाओंसे प्रेरित (जाते)
ते कः कदा ते पादौ याति	वे कौन हैं और कब आपके चरणोंमें जायँगे ॥२८॥

रुद्र उवाच-

तव वरद वराङ्घ्रावाशिषेहाखिलार्थे
ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ।
यदि रचितधियं मामविद्यलोकोऽपविद्धं
जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण ॥२९॥

तव वरद वर अङ्घ्राः आशिष इह अखिल अर्थे हि अपि मुनिभिः असक्तैः आदरेण अर्हणीये यदि रचित धियं मा अविद्य लोकः अपविद्धं जपति न गणये तत् त्वत् पर अनुग्रहेण ॥२९॥

हि वरद	क्योंकि वरदायक प्रभु !	रचित धियं	उनमें चित्त लगा रहनेसे
इह	इस (संसार) में	यदि मा अविद्य	मुझे यदि अज्ञानी
अखिल अर्थे	समस्त प्रयोजनोंको	लोकः	लोग
तव वर अङ्घ्राः	आपके श्रेष्ठ चरण देने वाले हैं	अपविद्धं	आचरणभ्रष्ट
असक्तैः मुनिभिः	अनासक्त मुनियों द्वारा	जपति	कहते हैं (तो)
अपि आदरेण	भी आदरपूर्वक	त्वत् पर अनुग्रहेण	आपके परमानुग्रहसे
अर्हणीये	(वे) पूजनीय हैं,	तत् न गणये	उसकी (मैं) गणना नहीं करता ॥२९॥

भृगुरुवाच-

यन्मायया गहनयापहृतात्मबोधा
ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपन्तः ।
नात्मन् श्रितं तव विदन्त्यधुनापि तत्त्वं
सोऽयं प्रसीदतु भवान् प्रणतात्मबन्धुः ॥३०॥

यत् मायया गहनया अपहृत आत्मबोधाः ब्रह्मादयः तनुभृतः तमसि स्वपन्तः न आत्मन् श्रितं तव विदन्ति अधुना अपि तत्त्वं सः अयं प्रसीद तु भवान् प्रणत आत्म बन्धुः ॥३०॥

यत् गहनया मायया	जिनकी गम्भीर मायासे
आत्मबोधाः अपहृत	आत्मज्ञान लुप्त हो जानेसे
तमसि स्वपन्तः ब्रह्मादयः तनुभृतः	अज्ञान निद्रामें सोये ब्रह्मादि देहधारी
आत्मन् श्रितं	अपने भीतर ही स्थित
तव तत्त्वं	आपके तत्त्वको
अधुना अपि	अब तक भी
न विदन्ति	नहीं जानते
सः अयं	वह ये (प्रभु)
प्रणत	शरणागतके
आत्म बन्धुः	आत्मा और स्वजन
प्रसीद तु	(मुझपर) प्रसन्न हों ॥३०॥

ब्रह्मोवाच-

नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थ-
भेदग्रहैः पुरुषो यावदीक्षेत् ।
ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो
मायामयाद् व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥३१॥

न एतत् स्वरूपं भवतः असौ पदार्थ भेद ग्रहैः पुरुषः यावत् ईक्षेत् ज्ञानस्य च अर्थस्य गुणस्य च आश्रयः माया मयात् व्यतिरिक्तः यतः त्वम् ॥३१॥

पदार्थ भेद ग्रहैः	पदार्थोंकी पृथकता जानने वाला (इन्द्रियोंसे)
पुरुषः यावत् ईक्षेत्	पुरुष जो कुछ देखता है
असौ एतत् भवतः स्वरूपं न	वह यह सब आपका स्वरूप नहीं है,
ज्ञानस्य च	ज्ञानके और
अर्थस्य गुणस्य च	विषयोंके, इन्द्रियोंके भी (आप)
आश्रयः यतः त्वं माया मयात् व्यतिरिक्तः	अधिष्ठान हैं, अतएव आप मायामय (संसारसे) (सर्वथा) पृथक हैं ॥३१॥

इन्द्र उवाच-

इदमप्यच्युत विश्वभावनं
वपुरानन्दकरं मनोदृशाम् ।
सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधै-
र्भुजदण्डैरुपपन्नमष्टभिः ॥३२॥

इदं अपि अच्युत विश्व भावनं वपुः आनन्दकरं मनः दृशां सुरविद्विट् क्षपणैः उदायुधैः भुजदण्डैः उपपन्नं अष्टभिः ॥३२॥

अच्युत	अच्युत !	इदं वपुः अपि	यह (आपका) शरीर भी
सुरविद्विट्	देवद्रोहियोंका	विश्व भावनं	विश्व रक्षक तथा
क्षपणैः	नाश करनेवाले	मनः दृशां	(हमारे) मन एवं नेत्रोंको
उदायुधैः	शस्त्र उठाये	आनन्दकरं	आनन्द देने वाला है ॥३२॥
अष्टभिः			
भुजदण्डैः	आठ भुजदण्डोंसे		
उपपन्नं	युक्त		

पत्न्य ऊचुः-

यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो
विध्वस्तः पशुपतिनाद्य दक्षकोपात् ।
तं नस्त्वं शवशयनाभशान्तमेधं
यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥३३॥

यज्ञः अयं तव यजनाय केन सृष्टः विध्वस्तः पशु पतिना अद्य दक्षकोपात् तं नः त्वं शव शयनाभ शान्तं एधं यज्ञात्मन् नलिन रुचा दृशा पुनीहि ॥३३॥

अयं यज्ञः	यह यज्ञ	केन सृष्टः	प्रजापति (दक्ष) ने प्रारम्भ किया था,
तव यजनाय	आपके पूजनके लिए		

दक्षकोपात्	दक्षपर क्रोधके कारण
पशुपतिना विध्वस्तः	रुद्रने (उसे) नष्ट कर दिया,
यज्ञात्मन्	यज्ञ स्वरूप !
तं नः	उस हमारे
शव शयनाभ	मुर्देके समान निश्चेष्ट पड़े
शान्तं एधं	बुझी अग्निवाले (यज्ञ) को
त्वं नलिन रुचा	आप नीलकमल जैसी सुन्दर
दृशा पुनीहि	दृष्टिसे (देखकर) पवित्र कर दीजिये ॥३३॥

ऋषय ऊचुः—

अनन्वितं ते भगवन् विचेष्टितं
यदात्मना चरसि हि कर्म नाज्यसे ।
विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं
न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ॥३४॥

अन अन्वितं ते भगवन् विचेष्टितं यत् आत्मना चरसि हि कर्म न अज्यसे विभूतये यत उपसेदुः ईश्वरीं न मन्यते स्वयं अनुवर्ततीं भवान् ॥३४॥

भगवन्	भगवन् !
ते विचेष्टितं	आपकी लीला
अन अन्वितं	अनोखी है,
हि आत्मना चरसि	क्योंकि आप व्यवहार करते हैं,
यत् कर्म न अज्यसे	पर उसके कर्मसे लिप्त नहीं होते,
यत विभूतये	जिनसे ऐश्वर्य पानेके लिए
ईश्वरीं उपसेदुः	(दूसरे जिस) लक्ष्मीजीकी उपासना करते हैं—
स्वयं अनुवर्ततीं	उन स्वयं अनुगामिनी वनीका
भवान् न मन्यते	आप मान नहीं करते ॥३४॥

सिद्धा ऊचु :-

अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां
मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः ।
तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं
न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्नः ॥३५॥

अयं त्वत् कथा मृष्ट पीयूष नद्यां मनः वारणः क्लेश दावाग्नि दग्धः तृषार्तः अवगाढः न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवत् नः ॥३५॥

अयं नः मनः वारणः	यह हमारा मन रूपी हाथी	नद्यां	नदीमें (वहाँ)
		अवगाढः	गोता लगाये हैं,
		ब्रह्मसम्पन्नवत्	ब्रह्मानन्द लीनसार (अब)
क्लेश दावाग्नि दग्धः	क्लेशोंरूपी दावाग्निसे संतप्त	दावं न सस्मार	दावाग्निका स्मरण भी नहीं करता और
तृषार्तः	प्यासा	न निष्क्रामति	न (वहांसे) निकलता ॥३५॥
त्वत् कथा मृष्ट पीयूष	आपकी कथा रूपी विशुद्ध अमृत		

यजमान्युवाच-

स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः
श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ।
त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते
शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः ॥३६॥

स्वागतं ते प्रसीद ईश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः त्वां ऋते अधीश न अङ्गैः मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धः यथा पूरुषः ॥३६॥

ईश	सर्वेश्वर !	**अधीश**	यज्ञेश्वर !
ते स्वागतं	आपका स्वागत है,	**त्वां ऋते**	आपके बिना
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार,	**न अङ्गैः मखः**	अंगहीन यज्ञ
श्रीनिवास		**यथा पूरुषः**	जैसे पुरुष
कान्तया	श्रीनिवास ! अपनी प्रिया	**शीर्षहीनः**	
		कबन्धः	सिर रहित धड़ हो
श्रिया नः त्राहि	लक्ष्मी सहित हमारी रक्षा कीजिए ।	**शोभते**	ऐसा लगता है ॥३६॥

लोकपाला ऊचुः :-

दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं
प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ।
माया ह्येषा भवदीया हि भूमन्
यस्त्वं षष्ठः पञ्चभिर्भासि भूतैः ॥३७॥

दृष्टः किं नः दृक्भिः असत् ग्रहैः त्वं प्रत्यक् द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यं माया हि एषा भवदीया हि भूमन् यः त्वं षष्ठः पञ्चभिः भासि भूतैः ॥३७॥

भूमन्	सर्वव्यापी प्रभु !	**त्वं दृष्टः**	(इन्द्रियों) से आप देखे जा सकते हैं ?
त्वं प्रत्यक् द्रष्टा	आप सब अन्तः करणोंके साक्षी हैं,	**हि एषा**	
		भवदीया	क्योंकि यह आपकी
येन दृश्यं दृश्यते	जिसके द्वारा यह दृश्य जगत दीखता है ।	**माया हि**	माया ही है कि
		यः त्वं षष्ठः	जो आप पंचभूतोंसे परे छठवें हैं,
किं नः असत्			
ग्रहैः	क्या हमारी मायिक जगत देखनेवाली	**पञ्चभिः भूतैः**	पञ्चभूतोंसे युक्त
		भासि	प्रतीत हो रहे हैं ॥३७॥

योगेश्वरा ऊचुः-

प्रेयान्न तेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो
विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ।
अथापि भक्त्येशतयोपधावता-
मनन्यवृत्त्यानुगृहाण वत्सल ॥३८॥

प्रेयान् न ते अन्यः अस्ति यं उतः त्वयि प्रभो विश्व आत्मनि ईक्षेत् न पृथक् य आत्मनः अथापि भक्ति ईश तया उपधावतां अनन्य वृत्त्या अनुगृहाण वत्सल ॥३८॥

प्रभो	प्रभो !
य त्वयि विश्व आत्मनः	जो आपसे विश्वको,
आत्मनि	तथा अपने आत्मासे
पृथक् न ईक्षेत्	पृथक (विश्वको) नहीं देखता
यं उतः अन्यः ते प्रेयान् न अस्ति	उससे भिन्न दूसरा आपको अधिक प्रिय नहीं है ।
अथापि	फिर भी
भक्ति ईश तया	भक्तिके स्वामी होनेसे
अनन्य वृत्त्या उपधावतां	अनन्य भावसे भजन करने वोंलों पर
वत्सल अनुगृहाण	भक्तवत्सल ! अनुग्रह कीजिए ॥३८

जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो
बहुभिद्यमानगुणयाऽऽत्ममायया ।
रचितात्मभेदमतये स्वसंस्थया
विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥३९॥

जगत् उद्भव स्थिति लयेषु दैवतः बहुभिद्यमान गुणया आत्ममायया रचित आत्मभेद मतये स्वसंस्थया विनिवर्तित भ्रम गुणात्मने नमः ॥३९॥

दैवतः	(जीवोंके) अदृष्ट वश
बहुभिद्यमान गुणया	अनेक प्रकारसे भेद उत्पन्न करती
आत्ममायया	गुणमयी अपनी मायासे

जगत् उद्भव स्थिति लयेषु	विश्वकी सृष्टि, स्थिति, प्रलयके लिए	**मतये विनिर्वर्तित भ्रम**	भ्रम रहित बुद्धिमें प्रकाशित
आत्मभेद रचित	अपने ही (ब्रह्मादि) भेद बनाकर भी	**गुणात्मने नमः**	निखिल गुणगण रूप आपको
स्वसंस्थया	अपने स्वरूपमें		नमस्कार ॥३९॥

*वेदोवाच**–

नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये ।
निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहं वेदापरेऽपि च । ४०॥

नमः ते श्रित सत्त्वाय धर्म आदीनां च सूतये निर्गुणाय च यत् काष्ठां न अहं वेद अपरे अपि च ॥४०॥

धर्म आदीनां च	धर्म आदि (सत्कर्मों) की	**ते नमः**	आपको नमस्कार
सूतये	उत्पत्तिके लिए	**यत् काष्ठां**	जिसके स्वरूपको
श्रित सत्त्वाय	सत्व गुणको स्वीकार किये	**अहं अपरे अपि च**	हम और दूसरे भी
च निर्गुणाय	तथा निर्गुण स्वरूप	**न वेद**	नहीं जानते ॥४०॥

अग्निरुवाच–

यत्तेजसाहं सुसमिद्धतेजा
हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम् ।
तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः
स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोऽस्मि यज्ञम् ॥४१॥

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'ब्रह्मोवाच' है; किन्तु ब्रह्माजी बोल चुके हैं और टीकाकारोंने इसे वेदवाणी ही माना है।

यत् तेजसा अहं सुसमिद्ध तेजाः हव्यं वहे स्वध्वर आज्य सिक्तं तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतः अस्मि यज्ञम् ॥४१॥

यत् तेजसा अहं सुसमिद्ध तेजाः	जिसके तेजसे मैं भली प्रकार तेजसे प्रज्वलित होकर
स्वध्वर आज्य सिक्तं	यज्ञमें घृत मिश्रित
हव्यं वहे	हवि (देवताओंके पास) पहुँचाता हूँ
तं पञ्चविधं यज्ञियं	उन पाँच प्रकारके (अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य तथा पशु सोम) यज्ञीय रूप वाले
पञ्चभिः	पांच (आश्रावय, अस्तु श्रौषट्, यजे, ये प्रजामहे, बषट्) इन प्रकारोंके
यजुर्भिः	यजुः मन्त्रोंसे
स्विष्टं यज्ञं प्रणतः अस्मि	पूजित होनेवाले यज्ञ पुरुषको प्रणाम करता हूँ ॥४१॥

देवा ऊचुः—

पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं
त्वमेवाद्यस्तस्मिन् सलिल उरगेन्द्राधिशयने ।
पुमान् शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविः
स एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ॥४२॥

पुरा कल्प अपाये स्वकृतं उदरीकृत्य विकृतं त्वं एव आद्यः तस्मिन् सलिल उरगेन्द्र अधिशयने पुमान् शेषे सिद्धैः हृदि विमृशित अध्यात्म पदविः स एव अद्यः अक्ष्णः यः पथि चरसि भृत्यान् अवसि नः ॥४२॥

पुरा कल्प अपाये	पहिले कल्पके प्रलय समय
स्वकृतं विकृतं	अपने बनाये विकारी जगतको
उदरीकृत्य	अपने भीतर समेट कर
सलिल	(प्रलय) जलमें

उरगेन्द्र अधिशयने	शेष शैय्यापर
त्वं एव आद्यः पुमान्	आप ही आदि पुरुष
शेषे	शयन करते हैं,
सिद्धैः अध्यात्म पदविः	सिद्धों द्वारा अध्यात्म स्थितिका
विमृशित हृदि	मनन करनेपर (उन्हें) हृदयमें प्राप्त होते हैं
स एव अद्यः	वही (आप) आज
यः अक्ष्णः पथि चरसि	जो आंखोंके सामने उपस्थित हैं,
नः भृत्यान् अवसि	हम सेवकोंकी रक्षा करें ॥४२॥

गन्धर्वा ऊचुः-

अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते
ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ।
क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य विभूमन्
तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम ॥४३॥

अंशांशाः ते देव मरीचि आदय एते ब्रह्म इन्द्र आद्याः देवगणाः रुद्र पुरोगाः क्रीडाभाण्डं विश्वं इदं यस्य विभूमन् तस्मै नित्यं नाथ नमः ते करवाम ॥४३॥

देव	देव !
एते मरीचि आदय	ये मरीचि आदि ऋषि,
ब्रह्म इन्द्र आद्याः देवगणाः	ब्रह्मा, इन्द्रादि देवगण,
रुद्र पुरोगाः	रुद्रादि प्रमुख सब
ते अंशांशाः	आपके क्षुद्र अंश हैं,
इदं विश्वं	यह संसार
यस्य विभूमन्	जिस सर्वव्यापकका
क्रीडाभाण्डं	खिलौना पात्र है
तस्मै नाथ ते नित्यं नमः करवाम	उस स्वामी आपको (हम) सदा नमस्कार करते हैं ॥४३॥

विद्याधर ऊचु :-

त्वन्माययार्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन्
कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ।

क्षिप्तोऽप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं
युष्मत्कथामृतनिषेवक उद् व्युदस्येत् ॥४४॥

त्वन् मायया अर्थं अभिपद्य कलेवरे अस्मिन् कृत्वा मम अहं इति दुर्मतिः पथः स्वः क्षिप्तः अपि असत् विषय लालस आत्म मोहं युष्मत् कथा अमृत निषेवक उद् व्युदस्येत् ॥४४॥

त्वन् मायया	आपकी मायासे	असत् विषय आत्म मोहं लालसः	मिथ्या भोगोंकी अपनेको मोहमें डालने वाली लालसाको
अर्थं	परम पुरुषार्थदायी		
अस्मिन् कलेवरे	इस (मनुष्य) शरीरमें		
अभिपद्य	आकर भी	युष्मत् कथा अमृत निषेवक	आपके कथामृतका सेवन करनेवाला ही
मम अहं इति दुर्मतिः कृत्वा	'मेरा' 'मैं' इस प्रकार दुर्बुद्धि करके	उद् व्युदस्येत्	नष्ट कर सकता है ॥४४॥
स्वः पथः	अपने मार्गसे		
क्षिप्तः अपि	गिरनेपर भी		

ब्राह्मणा ऊचुः :-

त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं
त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ।
त्वं सदस्यर्त्विजो दम्पती देवता
अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥४५॥

त्वं क्रतुः त्वं हविः त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मन्त्रः समित् दर्भ पात्राणि च त्वं सदस्य ऋत्विजः दम्पती देवताः अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥४५॥

हि त्वं क्रतुः	क्योंकि आप ही सम्पूर्ण यज्ञरूप हैं,	त्वं स्वयं हुताशः	आप स्वयं अग्नि हैं,
त्वं हविः	आप ही हविष्य हैं,	त्वं मन्त्रः समित्	आप ही मन्त्र, समिधा,

दर्भ पात्राणि च	कुश तथा (यज्ञीय) पात्र हैं,	**दम्पती देवताः**	यजमान दम्पति, देवता
त्वं सदस्य ऋत्विजः	आप ही सदस्य, ऋत्विक्,	**अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः**	अग्नि होत्र स्वधा, सोमरस, घी और पशु हैं ॥४५॥

त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो
दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा ।
स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभि-
र्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥४६॥

त्वं पुरा गां रसाया महासूकरः दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रः यथा स्तूयमानः नदत् लीलया योगिभिः व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥४६॥

त्रयीगात्र	वेद मूर्ते !	**दंष्ट्रया**	(अपनी) दाढ़पर उठाकर
त्वं यज्ञक्रतुः	आप ही यज्ञ और उसका संकल्प हैं,	**योगिभिः स्तूयमानः**	योगियों द्वारा स्तुत होते
पुरा रसाया गां	पहिले रसातल गयी पृथ्वीको	**नदत् लीलया**	गर्जना करते लीला पूर्वक
त्वं महासूकरः यथा वारणेन्द्रः	आप महावाराहने जैसे गजराज	**व्युज्जहर्थ**	ऊपर ले आये थे ॥४६॥
पद्मिनीं	कमलिनी उठाये		

स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां
दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ।
कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते
यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥४७॥

स प्रसीद त्वं अस्माकं आकाङ्क्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्ट सत् कर्मणां कीर्त्यमाने नृभिः नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥४७॥

ते दर्शनं		**नृभिः ते नाम्नि**	मनुष्यों द्वारा आपके नामोंका
आकांक्षतां	आपका दर्शन चाहने वाले	**कीर्त्यमाने**	कीर्तन किये जानेपर
सत् कर्मणां		**यज्ञविघ्नाः**	यज्ञोंके विघ्न
परिभ्रष्ट	सत्कर्मसे भ्रष्ट हुए	**क्षयं यान्ति**	नष्ट हो जाते हैं,
अस्माकं	हम लोगोंपर	**तस्मै नमः**	उस आपको नमस्कार ॥४७॥
स त्वं प्रसीद	वह आप प्रसन्न हों,		
यज्ञेश	यज्ञेश !		

मैत्रेय उवाच–

इति दक्षः कविर्यज्ञं भद्र रुद्रावमर्शितम् ॥
कीर्त्यमाने हृषीकेशे संनिन्ये यज्ञभावने ॥४८॥

इति दक्षः कविः यज्ञं भद्र रुद्र अवमर्शितं कीर्त्यमाने हृषीकेशे सन्निन्ये यज्ञ भावने ॥४८॥

भद्र	भद्र विदुर !	**कविः दक्षः**	चतुर दक्षने
इति यज्ञ भावने	इस प्रकार यज्ञ-रक्षक	**रुद्र अवमर्शितं**	रुद्रगणों द्वारा नष्ट किया
हृषीकेशे	भगवान हृषीकेशकी	**यज्ञं सन्निन्ये**	यज्ञ (फिर) प्रारम्भ किया ॥४८॥
कीर्त्यमाने	स्तुति होते समय		

भगवान् स्वेन भागेन सर्वात्मा सर्वभागभुक् ।
दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥४९॥

भगवान् स्वेन भागेन सर्वात्मा सर्व भाग भुक् दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इव अनघ ॥४९॥

अनघ	निष्पाप विदुर !	स्वेन भागेन	(त्रिकपाल पुरोडाश रूप) अपने भागसे
सर्वात्मा	सर्वान्तर्यामी	प्रीयमाण इव	प्रसन्नसे होकर
सर्व भाग भुक्	सभीके भागोंके भोक्ता	दक्षं आभाष्य	दक्षको संबोधित करके
भगवान्	भगवान् (श्रीहरि)	बभाष	बोले ॥४९॥

श्रीभगवानुवाच–

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥५०॥

अहं ब्रह्मा च शर्वः च जगतः कारणं परं आत्मा ईश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृक् अविशेषणः ॥५०॥

अहं ब्रह्मा च च शर्वः जगतः परं कारणं	मैं तथा ब्रह्माजी एवं शंकरजी जगतके परम कारण हैं,	आत्मा, ईश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृक् अविशेषणः	(हम) सबके आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयं प्रकाश और निर्विशेष हैं ॥५०॥

आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥५१॥

आत्म मायां समाविश्य स अहं गुणमयीं द्विज सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥५१॥

द्विज	ब्रह्मन् (दक्ष) !	विश्वं सृजन्	विश्वकी सृष्टि करते,
स अहं गुणमयीं आत्म मायां	वही मैं अपनी त्रिगुणमयी मायामें	रक्षन् हरन्	पालन तथा संहार करते हुए
समाविश्य	प्रवेश करके	क्रियोचिताम् संज्ञां दध्रे	उस क्रियाके अनुसार नाम धारण कर लेता हूँ ॥५१॥

तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥५२॥

तस्मिन् ब्रह्मणि अद्वितीये केवले परमात्मनि ब्रह्म रुद्रौ च भूतानि भेदेन अज्ञः अनुपश्यति ॥५२॥

तस्मिन् ब्रह्मणि	उस ब्रह्म	च भूतानि	तथा सब प्राणियोंको
अद्वितीये	अद्वितीय	भेदेन	
केवले		अनुपश्यति	भेदसे (भिन्न-भिन्न)
परमात्मनि	शुद्ध परमात्मा (मुझ) में		देखता है ॥५२॥
अज्ञः ब्रह्म रुद्र	अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्र		

यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरः पाण्यादिषु क्वचित् ।
पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥५३॥

यथा पुमान् न स्व अङ्गेषु शिरः पाणि आदिषु क्वचित् पारक्य बुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥५३॥

यथा पुमान्	जैसे पुरुष	न कुरुते	नहीं करता,
शिरः पाणि		एवं मत्परः	इसी प्रकार मेरे
आदिषु	सिर, हाथ आदि		परायण भक्त
स्व अङ्गेषु	अपने अङ्गोंमें	भूतेषु	प्राणियोंमें (पराया-
क्वचित्	कभी भी		पन नहीं करते) ॥५३
पारक्य बुद्धिं	परायेपनका भाव		

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥५४॥

त्रयाणां एक भावानां यः न पश्यति वै भिदां सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिं अधिगच्छति ॥५४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	यः वै भिदां	जो भी भेद
त्रयाणां	(हम ब्रह्म और शिव) तीनों जो	न पश्यति	नहीं देखता
एक भावानां	स्वरूपतः एक ही हैं,	स शान्तिं	वह शान्ति
सर्वभूतात्मनां	सब प्राणियोंकी आत्मा हैं,	अधिगच्छति	पाता है ॥५४॥

मैत्रेय उवाच–

एवं भगवताऽऽदिष्टः प्रजापतिपतिर्हरिम् ।
अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥५५॥

एवं भगवता आदिष्टः प्रजापति पतिः हरिं अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवान् उभयतः अयजत् ॥५५॥

एवं भगवता	इस प्रकार भगवानके	अर्चित्वा	पूजा करके
आदिष्टः	आदेश देनेपर	उभयतः	दोनों प्रकारके (अंग-भूत और प्रधान)
प्रजापति पतिः	प्रजापतियोंके अध्यक्ष (दक्ष) ने	देवान् अयजत	देवताओंकी पूजा की ॥५५॥
हरिं क्रतुना	श्रीहरिकी (त्रिक-पाल) यज्ञ द्वारा		

रुद्रं च स्वेन भागेन ह्युपाधावत्समाहितः ।
कर्मणोदवसानेन सोमपानितरानपि ।
उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नावभृथं ततः ॥५६॥

रुद्रं च स्वेन भागेन हि उपाधावत् समाहितः कर्मणा उद् अवसानेन सोमपान् इतरान् अपि उदवस्य सह ऋत्विक्भिः सस्ना अवभृथं ततः ॥५६॥

हि स्वेन भागेन च	फिर (यज्ञ शेषरूप) अपने भागसे ही	सोमपान्	सोमपान करनेवाले तथा
समाहितः	एकाग्र चित्तसे	इतरान् अपि	दूसरे भी (देवताओं) को
रुद्र उपाधावत्	शंकरजीकी पूजा की,	उदवस्य	उद्वासन करके,
उद् अवसानेन कर्मणा	(समाप्तिमें किये जाने वाले) उदवसान कर्मसे	ततः ऋत्विक्भिः सह	फिर ऋत्विजोंके साथ
		अवभृथं सस्ना	अवभृथ स्नान किया ॥५६॥

तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधते ।
धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥५७॥

तस्मा अपि अनुभावेन स्वेन एव आप्त राधसे धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशाः ते दिवं ययुः ॥५७॥

स्वेन एव आप्त राधसे	अपने पुरुषार्थसे ही सब सिद्धि प्राप्त	दत्त्वा	(यह आशीर्वाद) देकर
तस्मा अनुभावेन	उन प्रभावशाली दक्षको भी	ते त्रिदशाः	वे देवता
धर्म एव मतिं	'तुम्हारी बुद्धि धर्ममें ही लगी रहे'	दिवं ययुः	स्वर्ग चले गये ॥५७

एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् ।
जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥५८॥

एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्व कलेवरं जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायां इति शुश्रुम ॥५८॥

एवं दाक्षायणी सती	इस प्रकार दक्ष कन्या सती	पूर्व कलेवरं हित्वा	पहिला शरीर त्यागकर

हिमवतः क्षेत्रे	हिमाचलकी पत्नी	इति शुश्रुम	ऐसा सुना है ॥५८॥
मेनायां जज्ञे	मेनासे उत्पन्न हुई,		

तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका ।
अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ॥५९॥

तं एव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिं अम्बिका अनन्य भाव एक गतिं शक्तिः सुप्त एव पूरुषम् ॥५९॥

सुप्त एव पूरुषं	जैसे सोये हुए पुरुष-की	एक गतिं	(अपनी) एकमात्र गति
शक्तिः	शक्ति (उसीमें रहती है, वैसे)	अनन्य भाव	अनन्यभाव वाली
		अम्बिका	जगदम्बा (पार्वती)ने
तं एव दयितं	उन्हीं अपने प्रियतम (शिव) की	भूय पतिं	फिरसे पति
		आवृङ्क्ते	वरण किया ॥५९॥

एतद्भगवतः शम्भोः कर्म दक्षाध्वरद्रुहः ।
श्रुतं भागवताच्छिष्यादुद्धवान्मे बृहस्पतेः ॥६०॥

एतत् भगवतः शम्भोः कर्म दक्ष अध्वर द्रुहः श्रुतं भागवतात् शिष्यात् उद्धवात् मे बृहस्पतेः ॥६०॥

एतत् भगवतः	यह भगवान	बृहस्पतेः	
दक्ष अध्वर द्रुहः	दक्ष-यज्ञ-विनाशक	शिष्यात्	बृहस्पतिके शिष्य
शम्भोः	शंकरका	भागवतात्	महाभागवत
कर्म मे	कर्म मैंने	उद्धवात् श्रुतं	उद्धवसे सुना है ॥६०

इदं पवित्रं परमीशचेष्टितं
यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ।
यो नित्यदोऽऽकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद्
धुनोत्यघं कौरव भक्तिभायतः ॥६१॥

इदं पवित्रं परं ईश चेष्टितं यशस्यं आयुष्यं अघ ओघ मर्षणं यः नित्यदा आकर्ण्य नरः अनुकीर्तयेत् धुनोति अघं कौरव भक्ति भावतः ॥६१॥

कौरव	विदुर !	**यः भक्ति भावतः**	जो भक्तिभाव पूर्वक
इदं ईश चेष्टितं	यह शिव-चरित	**नरः नित्यदा**	
परं पवित्रं	परम पवित्र है,	**आकर्ण्य**	मनुष्य नित्य सुनकर
यशस्यं आयुष्यं	यश तथा आयु देने वाला है,	**अनुकीर्तयेत्**	फिर इसका वर्णन करता है
अघ ओघ मर्षणं	पापराशिका नाशक है,	**अघं धुनोति**	वह अपने) पाप नष्ट कर देता है ॥६१

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे **पारमहंस्यां** संहितायां

चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञसंधानं नाम सप्तमोऽध्यायः।

अथ अष्टमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः ।
नैते गृहान् ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ॥१॥

सनक आद्याः नारदः च ऋभुः हंसः अरुणिः यतिः न एते गृहान् ब्रह्मसुताः हि आवसन् ऊर्ध्वरेतसः ॥१॥

सनक आद्याः	सनकादि (चारों कुमार)	**ब्रह्मसुताः**	ये ब्रह्माके पुत्र
		एते गृहान् न	ये लोग गृहस्थ नहीं हुए,
नारदः ऋभुः	नारद, ऋभु,		
हंसः अरुणिः	हंस, अरुणि,	**हि अर्ध्वरेतसः**	क्योंकि ब्रह्मचारी ही
च यतिः	तथा यति	**आवसन्**	बने रहे ॥१॥

मृषाधर्मस्य भार्याऽऽसीद्दम्भं मायां च शत्रुहन् ।
असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥२॥

मृषा अधर्मस्य भार्या आसीत् दम्भं मायां च शत्रुहन् असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिः जगृहे अप्रजः ॥२॥

शत्रुहन्	शत्रु (कामादि) नाशक विदुर !	**दम्भं मायां च मिथुनं असूत**	दम्भ और मायाका (उसने) जोड़ा उत्पन्न किया
अधर्मस्य भार्या मृषा आसीत्	अधर्मकी पत्नी मृषा (मिथ्या) थी	**तत्तु अप्रजः**	उन्हें तो सन्तान हीन
		निर्ऋतिः जगृहे	निर्ऋतिने ले लिया ॥२॥

तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महामते ।
ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥३॥

तयोः समभवत् लोभः निकृतिः च महामते ताभ्यां क्रोधः च हिंसा च यत् दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥३॥

महामते	महामति विदुर !	**ताभ्यां च**	उनसे तो
तयोः	उन दोनों (दम्भ और माया) से	**क्रोधः च हिंसा**	क्रोध और हिंसा
लोभः च निकृतिः	लोभ और निकृति (शठता)	**यत् कलिः**	जिनसे कलि
समभवत्	उत्पन्न हुए*	**स्वसा दुरुक्तिः**	और उसकी बहिन दुरुक्ति उत्पन्न हुई ॥३॥

दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम ।
तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरयस्तथा ॥४॥

दुरुक्तौ कलिः आधत्त भयं मृत्युं च सत्तम तयोः च मिथुनं जज्ञे यातनाः निरयः तथा ॥४॥

सत्तम	साधु श्रेष्ठ !	**यातनाः तथा निरयः**	यातना और नरक
भयं मृत्युं च	भय और मृत्यु,	**मिथुनं जज्ञे**	यह जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥४॥
कलिः दुरुक्तौ	कलिने दुरुक्तिसे		
आधत्त	उत्पन्न किया,		
तयोः च	उनसे भी		

संग्रहेण मयाऽऽख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ ।
त्रिःश्रुत्वैतत्पुमान् पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ॥५॥

संग्रहेण मया आख्यातः प्रतिसर्गः तव अनघ त्रिःश्रुत्वा एतत् पुमान् पुण्यं विधुनोति आत्मनः मलम् ॥५॥

अनघ तव	निष्पाप विदुर ! तुमसे	**प्रतिसर्गः**	प्रलयका कारण (अधर्मका वंश)
मया संग्रहेण	मैंने संक्षेपमें	**आख्यातः**	सुनाया,

---

*यह अधर्मका वंश है, अतः इसमें बहिन भाइयोंके परस्पर विवाह-की परम्परा चली है ।

एतत् पुण्यं पुमान् त्रिःश्रुत्वा	यह पुण्यका कारण पुरुष तीन बार सुनकर	आत्मनः मलं विधुनोति	(अपने) चित्तके दोषोंको दूर कर देता है ॥५॥

अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह ।
स्वायम्भुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥६॥

अथ अतः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह स्वायम्भुवस्य अपि मनोः हरेः अंश अंश जन्मनः ॥६॥

कुरूद्वह	कुरुनन्दन !	अंश जन्मनः	अंशसे जन्म लेने-वाले
अथ अतः	अब इस (चित्त शुद्धि) के लिए	पुण्यकीर्तेः	पवित्र यशा
हरेः अंशं	श्रीहरिके अंश (ब्रह्मा) के	स्वायम्भुवस्य मनोः	स्वायम्भू मनुका
		अपि वंशं कीर्तये	भी वंश वर्णन करता हूँ ॥६॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ ।
वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥७॥

प्रियव्रत उत्तान पादौ शतरूपापतेः सुतौ वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥७॥

प्रियव्रत उत्तान पादौ	प्रियव्रत और उत्तान-पाद	वासुदेवस्य कलया	भगवान वासुदेवकी कला होनेसे
शतरूपापतेः	शतरूपाके पति (स्वायम्भूमनु) के	जगतः रक्षायां स्थितौ	संसारकी रक्षामें लगे रहते थे ॥७॥
सुतौ	पुत्र थे,		

जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः ।
सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः ॥८॥

जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिः तयोः सुरुचिः प्रेयसी पत्युः न इतरा यत् सुतः ध्रुवः ॥८॥

उत्तानपादस्य	उत्तानपादकी	**यत् सुतः ध्रुवः**	पर जिसके पुत्र ध्रुव थे
सुनीतिः सुरुचिः जाये	सुनीति और सुरुचि दो पत्नियाँ थीं	**इतरा न**	वह दूसरी (सुनीति पति-प्रिया) नहीं थी ॥८॥
तयोः सुरुचिः	उनमें-से सुरुचि		
पत्युः प्रेयसी	पतिकी प्रिया थी,		

एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् ।
उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाभ्यनन्दत ॥९॥

एकदा सुरुचेः पुत्रं अङ्कं आरोप्य लालयन् उत्तमं न आरुरुक्षन्तं ध्रुवं राजा अभ्यनन्दत ॥९॥

एकदा सुरुचेः पुत्रं	एक बार सुरुचिके पुत्र	**लालयन् राजा**	स्नेह करते राजाने
उत्तमं अङ्कं आरोप्य	उत्तमको गोदमें लेकर	**आरुरुक्षन्तं ध्रुवं**	गोदमें चढ़नेको उद्यत ध्रुवका
		अभ्यनन्दत न	अभिनन्दन नहीं किया। (गोदमें नहीं लिया।) ॥९॥

तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम् ।
सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥१०॥

तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्याः तनयं ध्रुवं सुरुचिः शृण्वतः राज्ञः स ईर्ष्यं आह अति गर्विता ॥१०॥

तं सपत्न्याः तनयं ध्रुवं तथा	उस सौतके बेटे ध्रुवको वैसा (पिताकी गोदमें चढ़नेकी)	**राज्ञः शृण्वतः**	राजाके सुनाते हुए
		स ईर्ष्यं	ईर्ष्यापूर्वक
		अति गर्विता	अत्यन्त गर्वसे
चिकीर्षमाणं	चेष्टा करते (देखकर)	**सुरुचिः आह**	सुरुचिने कहा ॥१०॥

*सुरुच्युवाच**-

न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं भवानारोढुमर्हति ।
न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ॥११॥

न वत्स नृपतेः धिष्ण्यं भवान् आरोढुं अर्हति न गृहीतः मया यत् त्वं कुक्षाः अपि नृप आत्मजः ॥११॥

वत्स नृपतेः धिष्ण्यं भवान् आरोढुं अर्हति न नृप आत्मजः	बच्चे ! राज-सिंहासनपर तुम चढ़नेके अधिकारी नहीं हो,	**अपि यत् त्वं मया कुक्षाः न गृहीतः**	राजाके पुत्र होनेपर भी, क्योंकि तुमको मैंने (अपनी) कोखमें नहीं धारण किया ॥११॥

बालोऽसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसम्भृतम् ।
नूनं वेद भवान् यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः ॥१२॥

बालः असि बत न आत्मानं अन्य स्त्री गर्भ सम्भृतं नूनं वेद भवान् यस्य दुर्लभे अर्थे मनोरथः ॥१२॥

बालः असि नूनं बत अन्य स्त्री गर्भ सम्भृतं न वेद	अभी नासमझ हो निश्चय इसीसे दूसरी स्त्रीके गर्भसे (अपना) उत्पन्न होना नहीं जानते	**यस्य भवान् दुर्लभे अर्थे मनोरथः**	जिससे तुम दुर्लभ विषयको पाना चाहते हो ॥१२॥

तपसाऽऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे ।
गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ॥१३॥

तपसा आराध्य पुरुषं तस्य एव अनुग्रहेण मे गर्भे त्वं साधय आत्मानं यत् ईच्छसि नृप आसनम् ॥१३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यत् नृप आसनं ईच्छसि	यदि राज्यसिंहासन चाहते हो तो
तपसा पुरुषं आराध्य	तपस्यासे भगवानको प्रसन्न करके
तस्य एव अनुग्रहेण	उन्हींकी कृपासे
त्वं गर्भे आत्मानं साधय	तुम मेरे गर्भमें अपनेको ले आओ ॥१३॥

विशेष—

इसमें दो बातें गर्वमें सुरुचिने विकट कही हैं—

१. इस जन्ममें तुम्हें राज्यासन नहीं मिल सकता। अतः मरकर मेरे गर्भमें आओ।

२. भगवान भी तुम्हें इस जन्ममें सिंहासन नहीं दे सकते। वे भी कृपा करें तो तुम्हें मेरे पेटसे जन्म देकर ही सिंहासन दे सकेंगे।

इसी गर्वका फल हुआ कि सुरुचि और उसके पुत्रको मरना पड़ा।

मैत्रेय उवाच–

मातुः सपत्न्याः स दुरुक्तिविद्धः
श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाहिः।
हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं
जगाम मातुः प्ररुदन् सकाशम् ॥१४॥

मातुः स पत्न्याः स दुरुक्ति विद्धः श्वसन् रुषा दण्डहतः यथा अहिः हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन् सकाशं ॥१४॥

सपत्न्याः मातुः	सौतेली मां द्वारा
दुरुक्ति विद्धः	दुर्वचनों-सी वींधा
यथा अहिः	जैसे सर्प
दण्डहतः	डंडेसे घायल हो
रुषा श्वसन्	क्रोधसे लम्बी श्वास छोड़ता
सन्नवाचं	स्तब्ध मौन
मिषन्तं	देखते हुए
पितरं हित्वा	पिताको छोड़कर
स प्ररुदन्	वह रोते हुए
मातुः सकाशं जगाम	माताके पास गया ॥१४॥

तं निःश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठं
सुनीतिरुत्सङ्ग उदूह्य बालम् ।
निशम्य तत्पौरमुखान्नितान्तं
सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्या ॥१५॥

तं निःश्वसन्तं स्फुरित अधर ओष्ठं सुनीतिः उत्सङ्गं उदूह्य बालं निशम्य तत् पौरमुखात् नितान्तं सा विव्यथे यत् गदितं सपत्न्या ॥१५॥

तं निःश्वसन्तं	उस लम्बी श्वास छोड़ते,	यत् सपत्न्या गदितं	जो सौतने कहा था
स्फुरित अधर ओष्ठं	फड़कते ओठ वाले	तत् पौरमुखात् निशम्य	वह पुरवासियोंके मुखसे सुनकर
बालं उत्सङ्गं उदूह्य	पुत्रको गोदमें उठाकर,	सा सुनीतिः नितान्तं विव्यथे	वह सुनीति अत्यन्त व्यथित हुई ॥१५॥

सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोक-
दावाग्निना दावलतेव बाला ।
वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोज-
श्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ॥१६॥

स उत्सृज्य धैर्यं विललाप शोक दावाग्निना दाव लता इव बाला वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोजश्रिया दृशा बाष्प कलां उवाह ॥१६॥

धैर्यं उत्सृज्य स बाला	धैर्य त्यागकर वह रानी	सपत्न्याः वाक्यं स्मरती	सौतकी बातें स्मरण करके
शोक दावाग्निना	शोकरूपी दावाग्निसे	सरोजश्रिया दृशा	कमलके समान सुन्दर नेत्रोंमें
लता इव दाव विललाप	लताके समान झुलसी विलाप करने लगी,	बाष्पकलां उवाह	आँसू भर लिये ॥१६॥

दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पार-
मपश्यती बालकमाह बाला ।

दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारं अपश्यती बालकं आह बाला ।

दीर्घं श्वसन्ती	लम्बी श्वास लेती	**अपश्यती बाला**	न देखती हुई रानी
वृजिनस्य पारं	विपत्तिका अन्त	**बालकं आह**	पुत्रसे बोली—

*सुनीत्युवाच**

मामङ्गलं तात परेषु मंस्था
भुङ्क्ते जनो यत्परदुःखदस्तत् ॥१७॥

मा अमङ्गलं तात परेषु मंस्था भुङ्क्ते जनः यत् परदुःखदः तत् ॥१७॥

तात परेषु अमङ्गलं मा मंस्था	बेटा ! दूसरोंके लिए अमंगल मत मनाना,	**यत् परदुःखदः**	क्योंकि जो दूसरोंको दुख देता है
		तत् जनः भुङ्क्ते	उसे वह जन स्वयं भोगता है ॥१७॥

सत्यं सुरुच्याभिहितं भवान्मे
यद् दुर्भगाया उदरे गृहीतः ।
स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते यां
भार्येति वा वोढुमिडस्पतिर्माम् ॥१८॥

सत्यं सुरुच्या अभिहितं भवान् मे यत् दुर्भगाया उदरे गृहीतः स्तन्येन वृद्धः च विलज्जते यां भार्या इति वा वोढुं इडस्पतिः माम् ॥१८॥

सुरुच्या सत्यं अभिहितं	सुरुचिने ठीक ही कहा है	**भवान् उदरे गृहीतः**	तुम्हें (अपने) पेटमें धारण किया,
यत् मे दुर्भगायाः	कि मुझ अभागिनीने	**च स्तन्येन वृद्धः**	और इसीका स्तन-पान करके बढ़े हो,

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इडस्पतिः यां मां भार्यां इति वोढुं	महाराज जिस मुझे 'यह मेरी पत्नी है' यह स्वीकार करनेमें	**विलज्जते**	लज्जित होते हैं ॥१८॥

आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्व-
मुक्तं समात्रापि यदव्यलीकम् ।
आराधयाधोक्षजपादपद्मं
यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा ॥१९॥

आतिष्ठ तत् तात विमत्सरः त्वं उक्तं समात्रा अपि यत् अव्यलीकं आराधय अधोक्षज पादपद्मं यत् इच्छसे अध्यासनं उत्तमः यथा ॥१९॥

तात	प्रिय पुत्र !	**इच्छसे**	यदि राजसिंहासन चाहते हो
समात्रा उक्तं अपि	सौतेली मां का कहा होनेपर भी	**अधोक्षज पाद-पद्मं**	तो भगवान हृषीकेशके चरण-कमलकी
यत् अव्यलीकं	क्योंकि निर्दोष है,	**आराधय**	आराधना करो ॥१९
तत् विमत्सरः	वह द्वेष भाव छोड़कर		
आतिष्ठ	आचरण करो,		
उत्तमः यथा यत् अध्यासनं	उत्तमके समान		

यस्याङ्घ्रिपद्मं परिचर्य विश्व-
विभावनायात्तगुणाभिपत्तेः ।
अजोऽध्यतिष्ठत्खलु पारमेष्ठ्यं
पदं जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् ॥२०॥

यस्य अङ्घ्रि पद्मं परिचर्य विश्वविभावनाय आत्तगुण अभिपत्तेः अजः अध्यतिष्ठत् खलु पारमेष्ठ्यं पदं जित आत्मश्वसन अभिवन्द्यम् ॥२०॥

विश्व-विभावनाय	संसारका पालन करनेके लिए	**आत्तगुण अभिपत्तेः**	सत्त्वगुण स्वीकार करनेवाले

यस्य अङ्घ्रि पद्मं	जिनके चरण कमलों- की
परिचर्य	पूजा करके
आत्मश्वसन जित	चित्त और श्वासपर विजय पानेवाले
अभिवन्द्य	(लोगोंसे) अभि- वन्दित
पारमेष्ठ्यं पदं	सर्वश्रेष्ठ पदपर
अजः अध्यतिष्ठत्	ब्रह्माजी स्थित हुए ॥२०॥

तथा मनुर्वो भगवान् पितामहो
यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ।
इष्ट्वाभिपेदे दुरवापमन्यतो
भौमं सुखं दिव्यमथापवर्ग्यम् ॥२१॥

तथा मनुः वः भगवान् पितामहः यं एकमत्या पुरुदक्षिणैः मखैः इष्ट्वा अभिपेदे दुरवापम् अन्यतः भौमं सुखं दिव्यं अथ अपवर्ग्यम् ॥२१॥

तथा वः पितामहः	ऐसे ही तुम्हारे पितामह
भगवान् मनुः	भगवान मनुने
पुरुदक्षिणैः मखैः	बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंसे
एकमत्या यं इष्ट्वा	अनन्यभावसे जिनका यजन करके
अन्यतः दुरवापं	दूसरोंके लिए दुष्प्राप्य
दिव्यं भौमं सुखं	दिव्य तथा पार्थिव सुख
अथ अपवर्ग्यं अभिपेदे	तथा मोक्ष भी प्राप्त किया ॥२१॥

तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं
मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् ।
अनन्यभावे निजधर्मभाविते
मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥२२॥

तं एव वत्स आश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिः मृग्य पदाब्ज पद्धतिं अनन्यभावे निजधर्म भाविते मनसि अवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥२२॥

वत्स	बेटा !
तं एव	उन्हीं
आश्रय भृत्य-वत्सलं	शरणागत भक्त-वत्सल,
मुमुक्षुभिः	जन्म-मृत्युसे छूटना चाहनेवाले
मृग्य पदाब्ज पद्धतिं	(जिनके) चरण-कमलोंके मार्गकी खोज करते रहते हैं,
निजधर्म भाविते मनसि	स्वधर्म पालनसे शुद्ध
अवस्थाप्य	चित्तमें (उन्हें) बैठाकर
अनन्यभावे	अनन्य भावसे
पूरुषं भजस्व	(उन) परमपुरुषका भजन करो ॥२२॥

नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्
दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन
यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया
श्रियेतरैरङ्ग विमृग्यमाणया ॥२३॥

न अन्यं ततः पद्मपलाश लोचनात् दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन यः मृग्यते हस्त गृहीत पद्मया श्रिय इतरैः अङ्ग विमृग्यमाणया ॥२३॥

अङ्ग इतरैः	प्रिय पुत्र !
विमृग्यमाणया	दूसरों द्वारा जिनकी खोज होती रहती है,
हस्त गृहीत पद्मया	हाथमें कमल लेकर
श्रिय यः मृग्यते	(उन) लक्ष्मी द्वारा जो ढूंढ़े जाते हैं,
ततः पद्मपलाश लोचनात्	उन कमलदल-लोचनको
अन्यं	छोड़कर दूसरे किसीको
ते दुःखच्छिदं	तुम्हारे दुःखका नाशक
मृगयामि न	(मैं) ढूंढ़ नहीं पाती हूँ ॥२३॥

मैत्रेय उवाच

एवं संजल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः ।
संनियम्यात्मनाऽऽत्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ॥२४॥

एवं संजल्पितं मातुः आकर्ण्य अर्थ आगमं वचः संनियम्य आत्मना आत्मानं निःचक्राम पितुः पुरात् ॥२४॥

एवं मातुः संजल्पितं	इस प्रकार माताका कहा	**आत्मना आत्मानं**	अपने आपसे चित्तको
अर्थ आगमं	प्रयोजन सिद्ध करने वाली	**संनियम्य**	नियन्त्रित करके
वचः आकर्ण्य	बात सुनकर	**पितुः पुरात्**	पिताके नगरसे
		निःचक्राम	निकल पड़े ॥२४॥

नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ।
स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥२५॥

नारदः तत् उपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितं स्पृष्ट्वा मूर्धनि अघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥२५॥

तत् उपाकर्ण्य	यह सब सुनकर	**मूर्धनि स्पृष्ट्वा**	(उनका) मस्तक छू कर
तस्य चिकीर्षितं	वे जो करना चाहते थे वह	**विस्मितः प्राह**	चकित होकर बोले—॥२५॥
ज्ञात्वा नारदः	जानकर नारदजीने		
अघघ्नेन पाणिना	(अपने) पाप-नाशक हाथसे		

*नारद उवाच**–

अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गममृष्यताम् ।
बालोऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातुरसद्वचः ॥२६॥

अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गं अमृष्यतां बालः अपि अयं हृदा धत्ते यः समातुः असत् वचः ॥२६॥

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें इस श्लोकके आगे यह उवाच है ।

अहो क्षत्रियाणां तेजः मानभङ्गं अमृष्यतां यः अयं बालः	अहो ! क्षत्रियोंकी (आश्चर्य जनक) तेजस्विता (ये) सम्मान नाश नहीं सह सकते,	**अपि समातुः असत् वचः हृदा धत्ते**	कि यह बच्चा होने पर भी सौतेली मांके कटु-वचन हृदयमें पकड़े है ॥२६

नाधुनाप्यवमानं ते सम्मानं वापि पुत्रक ।
लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥२७॥

न अधुना अपि अवमानं ते सम्मानं वा अपि पुत्रक लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडन आदिषु ॥२७॥

पुत्रक	मेरे नन्हे बच्चे !	**अधुना ते**	अभी तुम्हारा (इस आयुमें)
कुमारस्य	(तुम) बालकका	**अवमानं अपि**	अपमान भी
क्रीडन आदिषु सक्तस्य	खिलौनों आदिमें आसक्त	**वा सम्मानं अपि**	अथवा सम्मान भी
		लक्षयामः न	(मुझे) जान नहीं पड़ता है ॥२७॥

विकल्पे विद्यमानेऽपि न ह्यसंतोषहेतवः ।
पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥२८॥

विकल्पे विद्यमाने अपि न हि असंतोष हेतवः पुंसः मोहं ऋते भिन्ना यत् लोके निजकर्मभिः ॥२८॥

विकल्पे	विकल्प (मानापमानका विचार)	**हि यत् लोके पुंसः निज-कर्मभिः**	क्योंकि संसारमें पुरुषको अपने कर्मों-से ही (मानापमान मिलता है ।) ॥२८॥
विद्यमाने अपि	रहनेपर भी		
असंतोष हेतवः	असन्तुष्ट होनेका कारण		
मोहं ऋते भिन्ना न	अज्ञानके अतिरिक्त दूसरा नहीं है,		

परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः ।
दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥२९॥

परितुष्येत् ततः तात तावत् मात्रेण पूरुषः दैव उपसादितं यावत् वीक्ष्य ईश्वर गतिं बुधः ॥२९॥

तात	प्रिय वत्स !	**यावत् दैव उपसादितं**	जितना प्रारब्धसे प्राप्त हो
बुधः पूरुषः	बुद्धिमान पुरुष		
ईश्वर गतिं वीक्ष्य	भगवानकी (विचित्र) गति देखकर	**तावत् मात्रेण**	उतने मात्रमें
		ततः परितुष्येत्	उससे सन्तुष्ट रहे ॥२९

अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुरुत्ससि ।
यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥३०॥

अथ मात्राः उपदिष्टेन योगेन अवरुरुत्ससि यत् प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यः मतः मम ॥३०॥

अथ मात्राः उपदिष्टेन	अभी माताके बतलाये	**मम मतः**	मेरे मतसे
		वै स	निश्चय वह
योगेन		**पुंसां दुराराध्यः**	पुरुषोंके लिए बड़ी कठिनतासे प्रसन्न होनेवाले हैं ॥३०॥
अवरुरुत्ससि	योगके द्वारा जिसे पाने चला है,		

मुनयः पदवीं यस्य निःसङ्गेनोरुजन्मभिः ।
न विदुर्मृगयन्तोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥३१॥

मुनयः पदवीं यस्य निःसङ्गेन उरु जन्मभिः न विदुः मृगयन्तः अपि तीव्र योग समाधिना ॥३१॥

मुनयः	मुनिगण	**तीव्र योग समाधिना**	तीव्र योगकी एकाग्रतासे
उरु जन्मभिः	बहुत जन्मों तक		
निःसङ्गेन	अनासक्त रहकर		

मृगयन्तः अपि	ढूंढ़ते हुए भी	**न विदुः**	नहीं जान सके ॥३१॥
यस्य पदवीं	जिन (भगवान) के पथको		

अतो निवर्ततामेष निर्बन्धस्तव निष्फलः ।
यतिष्यति भवान् काले श्रेयसां समुपस्थिते ॥३२॥

अतः निवर्ततां एष निर्बन्धः तव निष्फलः यतिष्यति भवान् काले श्रेयसां समुपस्थिते ॥३२॥

अतः निवर्ततां	अतः लौट जाओ	**समुपस्थिते**	आनेपर
एष तव निर्बन्धः	यह तुम्हारा हठ	**भवान् यतिष्यति**	तुम साधन
निष्फलः	निष्फल है,		करोगे ॥३२॥
श्रेयसां काले	कल्याणका समय		

यस्य यद् दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः ।
आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ॥३३॥

यस्य यत् दैव विहितं स तेन सुखदुःखयोः आत्मानं तोषयत् देही तमसः पारं ऋच्छति ॥३३॥

यस्य यत्	जिसके लिए जो	**देही तमसः**	शरीरधारी अज्ञान्ध-कारसे
दैव विहितं	दैवका विधान है,	**पारं ऋच्छति**	पार पहुँच जाता है ॥३३॥
स तेन	वह उस		
सुखदुःखयोः	सुख-दुःखमें		
आत्मानं तोषयत्	अपनेको सन्तुष्ट रखता		

गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् ।
मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ॥३४॥

गुण अधिकान् मुदं लिप्सेत् अनुक्रोशं गुण अधमात् मैत्रीं समानात् अन्विच्छेन् न तापैः अभिभूयते ॥३४॥

गुण अधिकात्	अपनेसे अधिक गुणवालोंसे	**समानात् मैत्रीं**	समान (गुणवाले) से मित्रता
मुदं लिप्सेत्	(उनको देखकर) प्रसन्न हो,	**अन्विच्छेत्**	करना चाहे (तब)
गुण अधमात्	अपनेसे कम गुण-वालोंपर	**तापैः न अभिभूयते**	सन्ताप ग्रस्त नहीं होता ॥३४॥
अनुक्रोशं	अनुग्रह करे		

ध्रुव उवाच–

सोऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम् ।
दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥३५॥

सः अयं शमः भगवता सुखदुःख हत आत्मनां दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दशः अस्मत् विधैः तु यः ॥३५॥

अस्मत् विधैः	मेरे जैसोंके लिए	**सुख दुःख हत आत्मनां**	सुख-दुःखसे
यः तु दुर्दशः	जो तो दुर्दर्श (समझमें न आने वाला) है,	**पुंसां**	आहत चित्त पुरुषोंके लिए
सः अयं शमः	वह यह शान्तिका मार्ग	**भगवता कृपया दर्शितः**	आपने कृपा पूर्वक दिखलाया ॥३५॥

अथापि मेऽविनीतस्य क्षात्त्रं घोरमुपेयुषः ।
सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥३६॥

अथापि मे अविनीतस्य क्षात्रं घोरं उपेयुषः सुरुच्या दुर्वचः बाणैः न भिन्ने श्रयते हृदि ॥३६॥

अथापि घोरं क्षात्रं	फिर भी	**सुरुच्या दुर्वचः**	सुरुचिके दुर्वचनों रूपी
उपेयुषः	घोर क्षत्रिय स्व-भाववाले,	**बाणैः भिन्ने हृदि**	बाणोंसे विदीर्ण हृदयमें
अविनीतस्य	विनय रहित के	**न श्रयते**	नहीं ठहर पाता ॥३६

पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे ।
ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यै रप्यनधिष्ठितम् ॥३७॥

पदं त्रिभुवन उत्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे ब्रूहि अस्मत् पितृभिः ब्रह्मन् अन्यैः अपि अनधिष्ठितम् ॥३७॥

अस्मत् पितृभिः	मेरे पिता-पितामह
अन्यैः अपि	तथा दूसरोंसे भी
अनधिष्ठितं	न पाया हुआ
त्रिभुवन उत्कृष्टं	त्रिभुवनमें सर्वश्रेष्ठ
पदं जिगीषोः	पदको जीतना चाहता हूँ,
ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
साधु वर्त्म	(इसका) उत्तम मार्ग
मे ब्रूहि	मुझे बतलाइये ॥३७॥

नूनं भवान् भगवतो योऽङ्गजः परमेष्ठिनः ।
वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत् ॥३८॥

नूनं भवान् भगवतः यः अङ्गजः परमेष्ठिनः वितुदन् अटते वीणां हितार्थं जगतः अर्कवत् ॥३८॥

यः भगवतः परमेष्ठिनः अङ्गजः नूनं भवान्	क्योंकि भगवान् ब्रह्माजीके पुत्र हैं, निश्चय वह आप हैं,
वीणां वितुदन्	वीणा बजाते
अर्कवत्	सूर्यके समान
जगतः हितार्थं	संसारके कल्याणके लिए
अटते	घूमते रहते हैं ॥३८॥

मैत्रेय उवाच :-

इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान्नारदस्तदा ।
प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकम्पया ॥३९॥

इति उदाहृतं आकर्ण्य भगवान् नारदः तदा प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद् वाक्यं अनुकम्पया ॥३९॥

इति उदाहृतं	इस प्रकारकी बात
आकर्ण्य	(ध्रुवकी) सुनकर
तदा भगवान् नारदः	तब भगवान नारद
प्रीतः तं बालं	प्रसन्न होकर उस बालकपर
अनुकम्पया	कृपा करके
सद् वाक्यं प्रत्याह	उपदेश देने लगे ॥३९

नारद उवाच :-

जनन्याभिहितः पन्थाः स वै निःश्रेयसस्य ते ।
भगवान् वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥४०॥

जनन्या अभिहितः पन्थाः स वै निःश्रेयसस्य ते भगवान् वासुदेवः तं भज तत् प्रवण आत्मना ॥४०॥

जनन्या अभिहितः	माताके द्वारा बतलाया	**तं भगवान् वासुदेवं**	उन भगवान वासुदेवका
स पन्थाः वै ते निःश्रेयसस्य	वही मार्ग निश्चय तुम्हारे लिए परम-कल्याणकारी है,	**तत् प्रवण आत्मना भज**	उनमें चित्त लगाकर भजन करो ॥४०॥

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।
एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥४१॥

धर्म अर्थ काम मोक्ष आख्यं य इच्छेत श्रेय आत्मनः एकं एव हरेः तत्र कारणं पाद सेवनम् ॥४१॥

धर्म अर्थ काम मोक्ष आख्यं श्रेय य आत्मनः इच्छेत	धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक पुरुषार्थोंमें जो अपने लिए चाहे	**तत्र एकं एव कारणं हरेः पाद सेवनम्**	उसमें एक मात्र उपाय श्रीहरिकी चरण सेवा ही है ॥४१॥

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ।
पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः ॥४२॥

तत् तात गच्छ भद्रं ते यमुनायाः तटं शुचि पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥४२॥

तात	प्रियवत्स !	**तत् यमुनायाः**	उस यमुनाके
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो,	**शुचि तटं**	पवित्र किनारे
यत्र नित्यदा	जहाँ सर्वदा	**पुण्यं मधुवनं**	पावन मधुवनमें
हरेः सान्निध्यं	श्रीहरिका सन्निध्य है	**गच्छ**	जाओ ॥४२॥

स्नात्वानुसवनं तस्मिन् कालिन्द्याः सलिले शिवे ।
कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ॥४३॥

स्नात्वा अनुसवनं तस्मिन् कालिन्द्याः सलिले शिवे कृत्वा उचितानि निवसन् आत्मनः कल्पित आसनः ॥४३॥

तस्मिन् शिवे कालिन्द्याः	वहाँ	**उचितानि कृत्वा**	नित्य दैनिक कर्म करके
सलिले	निर्मल यमुना-जलमें	**आत्मनः कल्पित**	अपने द्वारा बनाये
अनुसवनं		**आसनः निवसन्**	आसनपर स्थिर बैठना ॥४३॥
स्नात्वा	तीनों समय स्नान करके		

प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेन्द्रियमनोमलम् ।
शनैर्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणा गुरुम् ॥४४॥

प्राणायामेन त्रिवृता प्राण इन्द्रिय मनः मलं शनैः व्युदस्य अभिध्यायेत् मनसा गुरुणा गुरुम् ॥४४॥

त्रिवृता	तीन प्रकारके (पूरक, कुम्भक, रेचक)	**शनैः व्युदस्य**	धीरे-धीरे दूर करके
प्राणायामेन	प्राणायामसे	**मनसा**	मनके द्वारा
प्राण इन्द्रिय	प्राण, इन्द्रिय तथा	**गुरुणा गुरुं**	गुरुओंके भी परम-गुरु
मनः मलं	मनकी मलिनता	**अभिध्यायेत्**	(भगवानका) ध्यान करे ॥४४॥

प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् ।
सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ॥४५॥

प्रसाद अभिमुखं शश्वत् प्रसन्न वदन ईक्षणं सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ॥४५॥

सुरसुन्दरं	सभी देवताओंमें परम सुन्दर,	**प्रसन्न वदन ईक्षणं**	प्रसन्न मुख एवं नेत्र
सुनासं सुभ्रुवं	सुन्दर नासिका, सुन्दर भौंह,	**शश्वत् प्रसाद अभिमुखं**	सदा कृपा करनेको उद्यत ॥४५॥
चारुकपोलं	सुन्दर कपोलवाले,		

तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोष्ठेक्षणाधरम् ।
प्रणताश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम् ॥४६॥

तरुणं रमणीय अङ्गं अरुण ओष्ठ ईक्षणं अधरं प्रणत आश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम् ॥४६॥

तरुणं	तरुण अवस्थाके	**प्रणत आश्रयणं**	प्रणतजनोंके आश्रयदाता,
रमणीय अङ्गं	मनोहर अङ्गोंवाले	**नृम्णं**	सुखदायक
अरुण ओष्ठ अधरं	लाल लाल दोनों ओठ	**शरण्यं**	शरणागत-वत्सल, और
ईक्षणं	रतनारे नेत्रोंवाले,	**करुणार्णवं**	करुणा-सागर हैं ॥४६॥

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥४७॥

श्रीवत्स अङ्कम् घनश्यामं पुरुषं वनमालिनं शङ्ख चक्र गदा पद्मैः अभिव्यक्त चतुर्भुजम् ॥४७॥

श्रीवत्स अङ्कम्	श्रीवत्सलाञ्छन,	**शंख चक्र गदा पद्मैः अभिव्यक्तं**	शंख, चक्र, गदा, पद्म-
घनश्यामं	मेघके समान श्याम,	**चतुर्भुजम्**	धारी चतुर्भुज हैं ॥४७॥
वनमालिनं पुरुषं	वनमालाधारी परम-पुरुष,		

किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् ।
कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ॥४८॥

किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलय अन्वितं कौस्तुभ आभरणं ग्रीवं पीतकौशेय वाससम् ॥४८॥

किरीटिनं	मुकुटधारी,	**ग्रीवं कौस्तुभ आभरणं**	गलेमें कौस्तुभमणि पहिने,
कुण्डलिनं	कुण्डल पहिने,		
केयूरवलय अन्वितं	बाजूबंद, कंकणधारी	**पीतकौशेय वाससं**	पीले रेशमी कपड़े वाले ॥४८॥

काञ्चीकलापपर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम् ।
दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥४९॥

काञ्ची कलाप पर्यस्तं लसत् काञ्चन नूपुरं दर्शनीयतमं शान्तं मनः नयन वर्धनम् ॥४९॥

काञ्ची कलाप पर्यस्तं	सोनेकी करधनी पहिने,	**दर्शनीयतमं**	अत्यन्त दर्शनीय,
		शान्तं	शान्त,
काञ्चन नूपुरं लसत्	सोनेके नूपुरोंसे शोभित,	**मनः नयन वर्धनं**	मन तथा नेत्रोंको आनन्द देने वाले हैं ॥४९॥

पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम् ।
हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥५०॥

पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चतां हृत् पद्म कर्णिका-धिष्ण्यं आक्रम्य आत्मनि अवस्थितम् ॥५०॥

नखमणि श्रेण्या	मणियोंके समान नखावलीवाले	**पद्भ्यां विलसद्भ्यां**	चरणोंसे लीलापूर्वक

समर्चतां	(मानसिक) पूजन करनेवालोंके	आक्रम्य आत्मनि	चढ़कर
हृत् पद्म कर्णिकाधिष्ण्यं	हृदय कमलकी कर्णिकाके स्थानपर	अवस्थितं	अपने भीतर ही स्थित हैं ॥५०॥

स्मयमानमभिध्यायेत्सानुरागावलोकनम् ।
नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥५१॥

स्मयमानं अभिध्यायेत् स अनुराग अवलोकनं नियतेन एक भूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥५१॥

नियतेन एक भूतेन	नियन्त्रित तथा एकाग्र	अवलोकनं	प्रेम भरे नेत्रोंसे देखते
मनसा	मनसे	वरदर्षभं	वरदानी शिरोमणि (भगवान) का
स्मयमानं स अनुराग	मुस्कराते हुए	अभिध्यायेत्	ध्यान करे ॥५१॥

एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः ।
निर्वृत्या परया तूर्णं सम्पन्नं न निवर्तते ॥५२॥

एवं भगवतः रूपं सुभद्रं ध्यायतः मनः निर्वृत्या परया तूर्णं सम्पन्नं न निवर्तते ॥५२॥

एवं सुभद्रं	इस प्रकार परम कल्याणमय	परया निर्वृत्या सम्पन्नं मनः	परमानन्द प्राप्त मन
भगवतः रूपं	भगवानके स्वरूपका	निवर्तते न	(वहांसे) हटता नहीं ॥५२॥
ध्यायतः तूर्णं	ध्यान करनेसे शीघ्र		

जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज ।
यं सप्तरात्रं प्रपठन् पुमान् पश्यति खेचरान् ॥५३॥

जप्यः च परमः गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज यं सप्तरात्रं प्रपठन् पुमान् पश्यति खेचरान् ॥५३॥

नृपात्मज	राजकुमार !	**सप्तरात्रं प्रपठन्**	सात दिन-रात (अखंड) जपकर
मे परमः गुह्यः	मुझसे परम रहस्य-मय	**खेचरान् पश्यति**	देवताओंको देखने लगता है ॥५३॥
जप्यः च श्रूयतां	जप मन्त्र भी सुनो,		
यं पुमान्	जिसे पुरुष		

"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।"

मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद् द्रव्यमयीं बुधः ।
सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ॥५४॥

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रेण अनेन देवस्य कुर्यात् द्रव्यमयीं बुधः सपर्यां विविधैः द्रव्यैः देशकाल विभागवित् ॥५४॥

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।'

अनेन मन्त्रेण	इस मन्त्रसे	**विविधैः द्रव्यैः**	अनेक प्रकारके पदार्थोंसे
देशकाल विभागवित्	देश तथा समयका विभाग जाननेवाला	**देवस्य**	भगवानकी
		द्रव्यमयीं सपर्यां	पदार्थार्पण रूप पूजा
बुधः	बुद्धिमान (देशकाल-के अनुसार)	**कुर्यात्**	करे ॥५४॥

सलिलैः शुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः ।
शस्ताङ्कुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रियया प्रभुम् ॥५५॥

सलिलैः शुचिभिः माल्यैः वन्य मूल फलादिभिः शस्त अङ्कुर अंशुकैः च अर्चेत् तुलस्याः प्रियया प्रभुम् ॥५५॥

प्रभुं शुचिभिः	भगवानकी	**मूल फलादिभिः**	कन्द, फल आदिसे
सलिलैः	पवित्र जलसे	**शस्त अङ्कुर**	शास्त्र विहित (पूर्वादि) अङ्कुरों-से,
वन्य माल्यैः	वनमें होनेवाले पुष्पोंकी माला,	**अंशुकैः**	वल्कल वस्त्रसे तथा

प्रियया तुलस्याः	उनकी प्रिया तुलसीसे	**अर्चेत्**	पूजा करे ॥५५॥

लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां क्षित्यम्ब्वादिषु वार्चयेत् ।
आभृतात्मा मुनिः शान्तो यतवाङ् मितवन्यभुक् ॥५६॥

लब्ध्वा द्रव्यमयीं अर्चा क्षिति अम्बु आदिषु वार्चयेत् आभृत आत्मा मुनिः शान्तः यत वाक् मितवन्यभुक् ॥५६॥

द्रव्यमयीं	द्रव्य (शिला आदि) की	**आभृत आत्मा मुनिः शान्तः**	संयत चित्त, मननशील, शान्त,
अर्चा लब्ध्वा	मूर्ति मिल जाय तो उसमें	**यत वाक्**	वाणीको संयममें रखनेवाला
क्षिति अम्बु आदिषु	(अन्यथा) पृथ्वी, जल आदिमें	**मितवन्यभुक्**	परिमित वनमें हुए (फलादि) का भोजन करे ॥५६॥
वार्चयेत्	(भगवानकी) पूजा करे,		

स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया ।
करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद् ध्यायेद्धृदयङ्गमम् ॥५७॥

स्वेच्छा अवतार चरितैः अचिन्त्य निज मायया करिष्यन् उत्तम श्लोकः तत् ध्यायेत् हृदयङ्गमम् ॥५७॥

निज अचिन्त्य मायया	अपनी अचिन्त्य मायासे	**उत्तम श्लोकः चरितैः करिष्यन्**	पुण्य श्लोक भगवान् जो चरित करेंगे
स्वेच्छा अवतार	इच्छानुसार अवतार लेकर	**हृदयङ्गमं तत् ध्यायेत्**	मन ही मन उनका चिन्तन करे ॥५७॥

परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविताः ।
ता मन्त्रहृदयेनैव प्रयुञ्ज्यान्मन्त्रमूर्तये ॥५८॥

परिचर्या भगवतः यावत्यः पूर्व सेविताः ता मन्त्र हृदयेन एव प्रयुञ्ज्यात् मन्त्र मूर्तये ॥५८॥

भगवतः यावत्यः	भगवानकी जितनी	**ताः मन्त्र**	
पूर्वसेविताः	पहिले लोगों द्वारा की गयी	**हृदयेन एव**	उन्हें द्वादशाक्षर मन्त्रसे ही
परिचर्याः	पूजा विधियां हैं,	**मन्त्र मूर्तये**	मन्त्र मूर्ति भगवान-को
		प्रयुञ्ज्यात्	अर्पण करे ॥५-॥

एवं कायेन मनसा वचसा च मनोगतम् ।
परिचर्यमाणो भगवान् भक्तिमत्परिचर्यया ॥५९॥

एवं कामेन मनसा वचसा च मनः गतं परिचर्यमाणः भगवान् भक्तिमत् परिचर्यया ॥५९॥

एवं कामेन	इस प्रकार शरीरसे,	**भक्तिमत्**	
मनसा च वचसा	मनसे तथा वाणीसे	**परिचर्यया**	भक्तिमान (पुरुष) की पूजासे
मनः गतं			
भगवान्	चित्तमें स्थित भगवान्	**परिचर्यमाणः**	पूजित होकर ॥५९॥

पुंसाममायिनां सम्यग्भजतां भाववर्धनः ।
श्रेयो दिशत्यभिमतं यद्धर्मादिषु देहिनाम् ॥६०॥

पुंसां अमायिनां सम्यक् भजतां भाववर्धनः श्रेयः दिशति अभिमतं यत् धर्म आदिषु देहिनां ॥६०॥

सम्यक् भजतां	भली प्रकार भजन करनेवाले	**देहिनां**	शरीरधारियोंका
		धर्म आदिषु	धर्म (काम) आदिमें
अमायिनां पुंसां	निश्छल पुरुषोंको	**यत् अभिमतं**	जो अभीष्ट हो
भाववर्धनः	उनके भावको बढ़ानेके लिए	**दिशति**	(वह) प्रदान करते हैं ॥६०॥

विरक्तश्चेन्द्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा ।
तं निरन्तरभावेन भजेताद्धा विमुक्तये ॥६१॥

विरक्तः च इन्द्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा तं निरन्तर भावेन भजेत अद्धा विमुक्तये ॥६१॥

इन्द्रियरतौ च		**अद्धा भावेन**	सम्पूर्ण भावसे
विरक्तः	इन्द्रियोंके भोगसे वैराग्य हो तो	**विमुक्तये**	मोक्ष प्राप्तिके लिए
निरन्तर भूयसा	अनन्य प्रबल	**तं भजेत**	उन (भगवान) का भजन करे ॥६१॥
भक्तियोगेन	भक्तियोगसे		

*मैत्रेय उवाच**–

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः ।
ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥६२॥

इति उक्तः तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृप अर्भकः ययौ मधुवनं पुण्यं हरेः चरण चर्चितम् ॥६२॥

इति उक्तः	(नारदजीके) ऐसा कहनेपर	**प्रणम्य हरेः चर्चितं**	श्रीहरिके चरण-चिह्नोंसे भूषित
नृप अर्भकः	राजकुमार (ध्रुव)	**पुण्यं मधुवनं ययौ**	पवित्र मधुवन गये ॥६२॥
तं परिक्रम्य च	उनकी परिक्रमा करके		

तपोवनं गते तस्मिन्प्रविष्टोऽन्तःपुरं मुनिः ।
अर्हितार्हणको राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥६३॥

तपोवनं गते तस्मिन् प्रविष्टः अन्तःपुरं मुनिः अर्हितः अर्हणकः राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥६३॥

तस्मिन् तपोवनं गते	उन (ध्रुव) के तपोवन जानेपर	**मुनिः अन्तःपुरं प्रविष्टः**	मुनि (नारदजी राजाके) अन्तः-पुरमें गये

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

अर्हणकैः	पूजा सामग्रीसे	**सुखासीन**	सुखपूर्वक बैठकर
राज्ञा अर्हितः	राजा द्वारा पूजित होकर	**तम् उवाच**	उन (राजा उत्तानपाद) से बोलो ॥६३

नारद उवाच–

राजन् किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता ।
किं वा न रिष्यते कामो धर्मो वार्थेन संयुतः ॥६४॥

राजन् किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता किं वा न रिष्यते कामः धर्मः वा अर्थेन संयुतः ॥६४॥

दीर्घं मुखेन परिशुष्यता	देरसे सूखते मुखसे	**धर्मः वा कामः अर्थेन संयुतः**	धर्म या काम धनके साथ
किं ध्यायसे	क्या सोच रहे हो ?	**रिष्यते न**	कोई कम तो नहीं हुआ ॥६४॥
किं वा	अथवा		

राजोवाच–

सुतो मे बालको ब्रह्मन् स्त्रैणेनाकरुणात्मना ।
निर्वासितः पञ्चवर्षः सह मात्रा महान्कविः ॥६५॥

सुतः मे बालकः ब्रह्मन् स्त्रैणेन अकरुण आत्मना निर्वासितः पञ्चवर्षः सह मात्रा महान् कविः ॥६५॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**अकरुण आत्मना**	निर्दय चित्त
महान् कविः	बड़े बुद्धिमान	**मात्रा सह**	माताके साथ
पञ्चवर्षः	पांच वर्षके	**निर्वासितः**	(मैंने) निकाल
मे सुतः	अपने पुत्रको		दिया ॥६५॥
स्त्रैणेन	स्त्री जित		

अप्यनाथं वने ब्रह्मन्मारमादन्त्यर्भकं वृकाः ।
श्रान्तं शयानं क्षुधितं परिम्लानमुखाम्बुजम् ॥६६॥

अपि अनाथं वने ब्रह्मन् मा अस्मत् अन्त्य अर्भकं वृकाः श्रान्तं शयानं क्षुधितं परिम्लान मुख श्रियम् ॥६६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**वने अनाथं**	
परिम्लान मुख		**अपि**	वनमें असहाय हुए
श्रियं	कुम्हलाये मुखवाले	**अस्मत् अर्भकं**	मेरे बच्चेको
श्रान्तं	थककर	**वृकाः मा अन्त्य**	भेड़िये न खा
क्षुधितं शयानं	भूखे ही सोये		जायँ ॥६६॥

अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय ।
योऽङ्कं प्रेम्णाऽऽरुरुक्षन्तं नाभ्यनन्दमसत्तमः ॥६७॥

अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्री जितस्य उपधारय यः अङ्कं प्रेम्णा आरुरुक्षन्तं न अभ्यनन्दं असत्तमः ॥६७॥

अहो बत	अरे यह	**यः प्रेम्णा**	जिसने प्रेमसे
मे असत्तमः	मुझ अत्यन्त दुष्ट	**अङ्कं**	
स्त्री जितस्य	स्त्री जिनकी	**आरुरुक्षन्तं**	गोदमें चढ़नेका
दौरात्म्यं		**अभ्यनन्दं न**	अभिनन्दन नहीं
उपधारय	कुटिलता तो सुनिये		किया ॥६७॥

नारद उवाच–

मा मा शुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशाम्पते ।
तत्प्रभावमविज्ञाय प्रावृङ्क्ते यद्यशो जगत् ॥६८॥

मा मा शुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशाम्पते तत् प्रभावं अविज्ञाय प्रावृङ्क्ते यत् यशः जगत् ॥६८॥

विशाम्पते	राजन् !	**तत् प्रभावं**	उसके प्रभावको
देवगुप्तं	भगवानसे रक्षित्	**अविज्ञाय**	न जानकर,
स्वतनयं	अपने पुत्रके लिए	**यत् यशः जगत्**	जिसके यशसे संसार
मा मा शुचः	शोक मत कीजिए, मत कीजिए !	**प्रावृङ्क्ते**	भर जायगा ॥६८॥

सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः ।
ऐष्यत्यचिरतो राजन् यशो विपुलयंस्तव ॥६९॥

सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैः अपि प्रभुः एष्यति अचिरतः राजन् यशः विपुलयन् तव ॥६९॥

राजन्	राजन् !	**तव यशः**	
लोकपालैः अपि	लोकपालोंसे भी	**विपुलयन्**	तुम्हारे यशको बढ़ाता
सुदुष्करं कर्म	अत्यन्त दुष्कर कर्म	**एष्यति**	आ जायगा ॥६९॥
कृत्वा अचिरतः	करके शीघ्र		
प्रभुः	वह समर्थ		

मैत्रेय उवाच-

इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः ।
राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिन्तयत् ॥७०॥

इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगती पतिः राजलक्ष्मीं अनादृत्य पुत्रं एव अनुचिन्तयत् ॥७०॥

इति देवर्षिणा	इस प्रकार नारदजीका	**अनादृत्य**	अनादर करके
प्रोक्तं विश्रुत्य	कहा सुनकर	**पुत्रं एव**	पुत्रकी ही
जगती पतिः	सारे संसारके स्वामी	**अनुचिन्तयत्**	बार बार चिन्ता करने लगेगा ॥७०॥
राजलक्ष्मीं	राजलक्ष्मीका		

तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् ।
समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥७१॥

तत्र अभिषिक्तः प्रयतः तां उपोष्य विभावरीं समाहितः पर्यचरत् हृष्य आदेशेन पूरुषम् ॥७१॥

तत्र	वहाँ (मधुवन) में	**तां विभावरीं**	उस रात
अभिषिक्तः	स्नान करके	**उपोष्य**	उपवास करके

दृष्य आदेशेन	(नारदजीकी) बतलायी विधिसे	**पूरुषं पर्यचरत्**	परम पुरुषकी पूजा करने लगे ॥७१॥
समाहितः	एकाग्र होकर		

त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः ।
आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम् ॥७२॥

त्रिरात्र अन्ते त्रिरात्र अन्ते कपित्थ बदर अशनः आत्मवृत्ति अनुसारेण मासं निन्ये अर्चयन् हरिम् ॥७२॥

आत्मवृत्ति अनुसारेण	अपनी आजीविकाके अनुसार	**कपित्थ बदर अशनः**	कैथ और बेर खाकर
त्रिरात्र अन्ते त्रिरात्र अन्ते	तीन-तीन दिनोंके बाद	**हरिं अर्चयन्**	श्रीहरिकी पूजा करते
		मासं निन्ये	एक महीना बिताया ॥७२॥

द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने ।
तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥७३॥

द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठे अर्भकः दिने तृण पर्ण आदिभिः शीर्णैः कृत अन्नः अभ्यर्चयत् विभुम् ॥७३॥

तथा द्वितीयं च मासं	इसी प्रकार दूसरे महीनेमें	**शीर्णैः तृण पर्ण आदिभिः**	सूखकर गिरे तिनकों-पत्तों आदिका
अर्भकः	वह बच्चा	**कृत अन्नः**	आहार करके
षष्ठे षष्ठे दिने	हर छठवें दिन	**विभुं अभ्यर्चयत्**	भगवानकी पूजा करता था ॥७३॥

तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि ।
अङ्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥७४॥

तृतीयं च अनयत् मासं नवमे नवमे अहनि अब्भक्ष उत्तम श्लोकं उपाधावत् समाधिना ॥७४॥

नवमे नवमे		**समाधिना**	
अहनि	हर नौवें दिन	**उपाधावत्**	समाधि लगाकर पूजा (ध्यान) करते
अब्भक्षः	केवल जल पीकर	**तृतीयं च मासं**	तीसरे महीनेको
उत्तम श्लोकं	उत्तम श्लोक भगवानकी	**अनयत्**	बिताया ॥७४॥

चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि ।
वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥७५॥

चतुर्थम् अपि वै मासं द्वादशे द्वादशे अहनि वायुभक्षः जितश्वासः ध्यायन् देवं अधारयत् ॥७५॥

चतुर्थं मासं		**जितश्वासः**	श्वासको जीतकर
वै अपि	चौथे महीनेमें भी	**ध्यायन्**	ध्यान करते हुए
द्वादशे द्वादशे		**देवं अधारयत्**	भगवानको (हृदयमें) स्थिर कर लिया ॥७५॥
अहनि	हर बारहवें दिन		
वायुभक्षः	केवल श्वास लेकर		

पञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ।
ध्यायन् ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥७६॥

पञ्चमे मासि अनुप्राप्ते जितश्वासः नृपात्मजः ध्यायन् ब्रह्म पद एकेन तस्थौ स्थाणुः इव अचलः ॥७६॥

पञ्चमे मासि		**ब्रह्म ध्यायन्**	ब्रह्म ध्यान करते हुए
अनुप्राप्ते	पाँचवां महीना लगनेपर	**पद एकेन**	एक पैरसे
जितश्वासः		**स्थाणु इव**	
नृपात्मजः	श्वासको जीतकर राजकुमार ध्रुव	**अचलः**	ठूंठके समान निश्चल
		तस्थौ	खड़े हो गये ॥७६॥

सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् ।
ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम् ॥७७॥

सर्वतः मन आकृष्य हृदि भूत इन्द्रिय आशयं ध्यायन् भगवतः रूपं न अद्राक्षीत् किंचन अपरम् ॥७७॥

सर्वतः	चारों ओरसे	भगवतः रूपं	
भूत इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रियों	ध्यायन्	भगवानके रूपका
आशयं मन	के आधार मनको		ध्यान करते हुए
हृदि आकृष्य	हृदयमें खींचकर	किंचन अपरं	कुछ भी दूसरेको
		न अद्राक्षीत्	नहीं देखा ॥७७॥

आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् ।
ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकम्पिरे ॥७८॥

आधारं महत् आदीनां प्रधान पुरुष ईश्वरं ब्रह्म धारय माणस्य त्रयः लोकाः चकम्पिरे ॥७८॥

महत् आदीनां	महत्तत्त्व आदि	ब्रह्म धारय	
	(सब तत्त्वों) के	माणस्य	परंब्रह्मकी धारणा
आधारं	आधार		करनेपर
प्रधान पुरुष		त्रयः लोकाः	
ईश्वरं	प्रकृति और पुरुषके	चकम्पिरे	तीनों लोक काँप
	स्वामी		उठे ॥७८॥

यदैकपादेन स पार्थिवार्भक-
स्तस्थौ तदङ्गुष्ठनिपीडिता मही ।
ननाम तत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता
तरीव सव्येतरतः पदे पदे ॥७९॥

यदा एक पादेन स पार्थिव अर्भकः तस्थौ तत् अंगुष्ठ निपीडिता मही ननाम तत्र अर्धं इभेन्द्र धिष्ठिता तर इव सव्य इतरतः पदे पदे ॥७९॥

स पार्थिव		महो तत्र अर्ध	
अर्भकः	वह राजकुमार	ननाम	पृथ्वी उस ओर आधी झुक जाती थी,
यदा एक पादेन			
तस्थौ	जब एक पैरसे खड़ा होता था	इभेन्द्रधिष्ठिता	गजराजके चढ़नेपर
		पदे पदे	पद पदपर
तत् अंगुष्ठ		सव्य इतरतः	बायें-दाहिने
निपीडिता	उसके अंगूठेसे दबकर	तरी इव	नौकाके समान ॥७९

तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो
द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया ।
लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं
सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम् ॥८०॥

तस्मिन् अभिध्यायति विश्व मात्मनः द्वारं निरुध्य असुं अनन्यया धिया लोकाः निरुच्छ्वास निपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुः हरिम् ॥८०॥

तस्मिन्	उन (ध्रुव) के	लोकाः	
असुं द्वारं		निरुच्छ्वास	सब लोक श्वास रुकनेसे
निरुध्य	प्राणके द्वारोंको रोककर	भृशं निपीडिता	अत्यन्त पीड़ित होकर
अनन्यया धिया	अनन्य बुद्धिसे	सलोकपालाः	लोकपालोंके साथ
विश्व मात्मनः	विश्वात्माका	हरिं शरणं ययुः	श्रीहरिकी शरण गये ॥८०॥
अभिध्यायति	ध्यान करनेपर		

देवा ऊचुः-

नैवं विदामो भगवन् प्राणरोधं
चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।
विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं
प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥८१॥

न एवं विदामः भगवन् प्राणरोधं चराचरस्य अखिल सत्त्व धाम्नः विधेहि तत् नः वृजिनात् विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥८१॥

भगवन्	भगवन् !	**तत् वृजिनात्**	अतः इस संकटसे
अखिल सत्त्व		**नः विमोक्षं**	
धाम्नः	समस्त प्राणियोंके स्वरूप !	**विधेहि**	हमारा छुटकारा कीजिए
चराचरस्य	सम्पूर्ण चर-अचरका	**त्वां शरण्यम्**	आप शरणदाताकी
एवं प्राणरोधं	इस प्रकार श्वास रुकना	**वयं शरणं**	
न विदामः	(हम) नहीं जानते,	**प्राप्ताः**	हम शरण आये हैं ॥८१॥

श्रीभगवानुवाच—

मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्यया-
न्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ।
यतो हि वः प्राणनिरोध आसी-
दौत्तानपादिर्मयि संगतात्मा ॥८२॥

मा भैष्ट बालं तपसः दुरत्ययात् निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम यतः हि वः प्राण निरोध आसीत् औत्तानपादिः मयि संगत आत्मा ॥८२॥

हि		**बालं दुरत्ययात्**	उस बालकको दुष्कर
औत्तानपादिः	क्योंकि उत्तान पादका पुत्र ध्रुव	**तपसः**	तपस्यासे
आत्मा मयि		**निवर्तयिष्ये**	निवृत्त कर दूंगा,
संगत	चित्तको मुझमें लगा चुका है,	**भैष्ट मा**	डरो मत,
यतः वः	जिससे तुम लोगोंका	**स्वधाम**	
प्राण निरोध		**प्रतियात**	अपने धाम लौट जाओ ॥८२॥
आसीत्	श्वास रुक गया है,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरितेऽष्टमोऽध्यायः ।

अथ नवमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे
कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम् ।
सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता
मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥१॥

त एवं उत्सन्न भया उरुक्रमे कृत अवनामाः प्रययुः त्रिविष्टपं सहस्रशीर्षा अपि ततः गरुत्मता मधोः वनं भृत्य दिदृक्षया गतः ॥१॥

त एवं	वे (देवता) इस प्रकार	सहस्रशीर्षा अपि	भगवान नारायण भी
भया उत्सन्न	भय दूर हो जानेपर	ततः गरुत्मता	वहाँसे गरुड़पर बैठकर
उरुक्रमे	अनन्त पराक्रम भगवानको	भृत्य दिदृक्षया	अपने सेवक (ध्रुव) को देखनेके लिए
कृत अवनामाः	प्रणाम करके	मधोः वनं गतः	मधुवन गये ॥१॥
त्रिविष्टपं प्रययुः	स्वर्ग चले गये ।		

स वै धिया योगविपाकतीव्रया
हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम् ।
तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य
बहिःस्थितं तदवस्थं ददर्श ॥२॥

स वै धिया योगविपाक तीव्रया हृत् पद्मकोशे स्फुरितं तडित् प्रभं तिरोहितं सहसा एव उपलक्ष्य बहिःस्थितं तदवस्थं ददर्श ॥२॥

स वै	वे (ध्रुव) भी	तीव्रया धिया	अत्यन्त एकाग्र बुद्धिसे
योगविपाक	परिपक्व योगसे		

हृत् पद्मकोशे तडित् प्रभं स्फुरितं सहसा एव	हृदय कमलमें बिजलीके समान प्रकाशित (भगवानको) अचानक ही
तिरोहितं उपलक्ष्य	अदृश्य हुआ देखकर (घबरा कर नेत्र खोलनेपर)
तदवस्थं बहिः स्थितं ददर्श	उसी स्वरूपमें बाहर उपस्थित देखा ॥२॥

तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षिता-
ववन्दताङ्गं विनमय्य दण्डवत् ।
दृग्भ्यां प्रपश्यन् प्रपिबन्निवार्भक-
श्चुम्बन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ॥३॥

तत् दर्शनेन आगत साध्वसः क्षिता ववन्दत अङ्गं विनमय्य दण्डवत् दृग्भ्यां प्रपश्यन् प्रपिबन् इव अर्भकः चुम्बन् इव आस्येन भुजैः इव आश्लिषन् ॥३॥

तत् दर्शनेन	उन (भगवान) के दर्शनसे
साध्वसः आगतः	बड़ा कुतूहल हुआ,
क्षिता अङ्गं दण्डवत्	पृथ्वीपर शरीरसे
विनमय्य	दण्डवत् पड़कर
ववन्दत	प्रणाम किया
अर्भकः	बालक (ध्रुव)
दृग्भ्यां प्रपिबन् इव	आंखोंसे पी लेनेके समान
प्रपश्यन्	देखते हुए
आस्येन चुम्बन् इव	मुखसे मानो चूम लेंगे
भुजैः आश्लिषन् इव	भुजाओंसे मानो आलिंगन कर लेंगे (ऐसे उत्सुक हो गये) ॥३॥

स तं विवक्षन्तमतद्विदं हरि-
र्ज्ञात्वास्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः ।

कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना
पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥४॥

स तं विवक्षन्तं अतत् विदं हरिः ज्ञात्वा अस्य सर्वस्य च हृदि अवस्थितः कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥४॥

अस्य च सर्वस्य	इन (ध्रुव) के और सबके
हृदि अवस्थितः	हृदयमें स्थित
स हरिः	उन भगवानने
तं कृताञ्जलिं	उस हाथ जोड़े
अतत् विदं	
बालं	अज्ञानी बालकको
विवक्षन्तं	
ज्ञात्वा	कुछ कहना चाहता है यह जानकर
कृपया	
ब्रह्ममयेन	कृपा करके वेदमय
कम्बुना कपोले	शंखसे (उसके) कपोलका
पस्पर्श	स्पर्श कर दिया ॥४॥

स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं
दैवीं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः ।
तं भक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरं
परिश्रुतोरुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥५॥

स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञात पर आत्म निर्णयः तं भक्ति भावः अभ्यगृणात् असत्वरं परिश्रुतः उरु श्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥५॥

स वै तदैव	वे तो उसी समय
दैवीं गिरं	
प्रदिपादितां	दिव्यवाणीसे सम्पन्न हो गये,
पर आत्म	
निर्णयः	ब्रह्म तथा जीवके स्वरूपका निर्णय
परिज्ञात	पूर्णज्ञान होगया,
असत्वरं	बिना हड़बड़ाहटके
भक्ति भावः	भक्ति भाव सहित
तं उरु श्रवसं	
अभ्यगृणात्	उन अनन्त यशस्वी (भगवान) की स्तुति करने लगे,
ध्रुवक्षितिः	ध्रुवलोक मिलनेका
परिश्रुतः	वरदान मिल गया था ॥५॥

ध्रुव उवाच–

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥६॥

यः अन्तः प्रविश्य मम वाचं इमां प्रसुप्तां संजीवयति अखिल शक्तिधरः स्वधाम्ना अन्यांः च हस्त चरण श्रवण त्वक् आदीन् प्राणान् नमः भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥६॥

यः अन्तः		**श्रवण त्वक्**	कान, त्वचा
प्रविश्य	जो भीतर प्रवेश करके	**आदीन्**	आदि इन्द्रियोंको
		प्राणान्	तथा प्राणको
मम इमां	मेरी इस	**संजीवयति**	जीवन दे रहे हैं
प्रसुप्तां वाचं	सोयी वाणीको	**तुभ्यं भगवते**	उन आप भगवान्
च अन्यांः	तथा दूसरे	**पुरुषाय नमः**	परम पुरुषको नमस्कार ॥६॥
हस्त चरण	हाथ-पैर		

एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या
मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ।
सृष्ट्वानुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु
नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥७॥

एकः त्वं एव भगवन् इदं आत्म शक्त्या माया आख्यया उरु गुणया महत् आदि अशेषं सृष्ट्वा अनुविश्य पुरुषः तत् असत् गुणेषु नाना इव दारुषु विभावसुवत् विभासि ॥७॥

भगवन्	भगवन् !	**आत्म शक्त्या**	अपनी शक्तिसे
त्वं एकः एव	आप एक ही हैं,	**इदं महत् आदि**	इस महत्तत्त्वादि
माया आख्यया	माया नामक	**अशेषं सृष्ट्वा**	सम्पूर्ण (विश्व) को बनाकर
उरु गुणया	बहुत गुणोंवाली		

तत् असत् गुणेषु	इन (इन्द्रियादि) असत् गुणोंमें	**दारुषु**	
पुरुषः अनुविश्य	जीव रूपसे प्रवेश करके	**विभावसुवत्**	लकड़ियोंमें अग्निके समान
		नाना इव	अनेक जैसे
		विभासि	प्रतीत हो रहे हैं ॥७

त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं
सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ।
तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं
विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो ॥८॥

त्वत् दत्तया वयुना इदं अचष्ट विश्वं सुप्त प्रबुद्ध इव नाथ भवत् प्रपन्नः तस्य अपवर्ग्यं शरणं तव पाद मूलं विस्मर्यते कृतविदा कथं आर्तबन्धो ॥८॥

त्वत् दत्तया वयुना इदं	आपके दिये	**नाथ भवत् प्रपन्नः**	स्वामी आपके शरणगत
विश्वं	ज्ञानसे इस संसार-को	**अपवर्ग्यं शरणं**	मुक्त पुरुषोंके आश्रय
सुप्त प्रबुद्ध इव	सोकर जगेके समान	**तव पाद मूलं**	आपके चरणोंको
अचष्ट	(ब्रह्माने) देखा था,	**आर्तबन्धो**	दीनबन्धु !
		कृतविदा कथं	कृतज्ञ पुरुष कैसे
		विस्मर्यते	भूल सकते हैं ॥८॥

नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते
ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्य-
मिच्छन्ति यत्स्पर्शजंनिरयेऽपि नृणाम् ॥९॥

नूनं विमुष्ट मतयः तव मायया ते ये त्वां भव अप्यय विमोक्षणं अन्य-हेतोः अर्चन्ति कल्प कतरुं कुणप उपभोग्यं इच्छन्ति यत् स्पर्शजं निरये अपि नृणाम् ॥९॥

कुणप उपभोग्यं	शव तुल्य शरीरोंसे भोगे जानेवाला
स्पर्शजं यत्	इन्द्रिय-विषय संयोगसे जो सुख
नृणां निरये	
अपि	मनुष्योंको नरकमें भी मिलता है,
ये इच्छन्ति	जो (उसकी) इच्छा करते हैं,
भव अप्यय	जन्म-मरणसे
विमोक्षणं	छुड़ा देनेवाले
कल्पकतरुं	कल्पवृक्ष स्वरूप
त्वां अन्यहेतोः	आपकी और किसी कारणसे
अर्चन्ति	पूजा करते हैं,
नूनं तव मायया	निश्चय आपकी मायासे
ते विमुष्ट	
मतयः	वे हरण की गयी बुद्धिवाले हैं ॥९॥

या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म-
ध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्
किं त्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥१०॥

या निर्वृतिः तनुभृतां तव पादपद्म ध्यानात् भवत् जन कथा श्रवणेन वा स्यात् सा ब्रह्मणि स्वमहिमनि अपि नाथ मा भूत् किं तु अन्तक असि लुलितात् पततां विमानात् ॥१०॥

नाथ	नाथ !
तनुभृतां	शरीरधारियोंको
या निवृतिः	जो आनन्द
तव पादपद्म	आपके चरण-कमलोंके
ध्यानात् वा	ध्यानसे अथवा
भवत् जन कथा	आपके भक्तोंके चरित
श्रवणेन स्यात्	सुननेसे मिलता है,
सा ब्रह्मणि	वह ब्रह्मके
स्वमहिमनि	
अपि	अपने स्वरूपमें भी
मा	नहीं हो सकता,
अन्तक असि	
लुलितात्	कालकी तलवारसे काटे गये
विमानात्	
पततां	विमानोंसे गिरते
किं तु	(देवताओंको) वह कैसे मिल सकता है ॥१०॥

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥११॥

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गः भूयात् अनन्त महतां अमल-आशयानां येन अञ्जसा उल्बणं उरुव्यसनं भव अब्धिं नेष्ये भवत् गुण कथा अमृत पान मत्तः ॥११॥

अनन्त	अनन्त !	**उरुव्यसनं**	बहुत कष्टोंवाले
अमल		**भव अब्धि**	संसार-सागरसे
आशयानां	निर्मल चित्तवाले	**भवत् गुण कथा**	आपके गुणोंकी कथा रूपी
त्वयि मुहुः	आपमें सदा	**अमृत पान मत्तः**	अमृत पीनेसे मत्त (मैं)
भक्ति प्रवहतां	भक्ति करनेवाले	**येन अञ्जसा**	
महतां	महापुरुषोंसे	**नेष्ये**	जिससे सरलतासे पार हो जाऊँ ॥११॥
मे प्रसङ्गः	मेरा साथ		
भूयात्	होवे,		
उल्बणं	भयानक		

ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्य
ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ।
ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्द-
सौगन्ध्यलुब्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥१२॥

ते न स्मरन्ति अतितरां प्रियं ईश मर्त्यं ये च अन्वदः सुतसुहृत् गृह वित्त दाराः ये तु अब्जनाभ भवदीय पदारविन्द सौगन्ध्य लुब्ध हृदयेषु कृत प्रसङ्गाः ॥१२॥

अब्जनाभ ईश	कमलनाभ स्वामी !	**सौगन्ध्य लुब्ध**	सुगन्धिके लोभी
ये तु भवदीय		**हृदयेषु**	हृदयवाले (संतों)से
पदारविन्द	जो लोग तो आपके चरण-कमलोंकी	**प्रसङ्गाः कृत**	साथ करते हैं,
		ते प्रियं मर्त्यं	वे अपने प्रिय शरीर,

च ये अन्वदः	और जो उसके पीछे लगे	दाराः अतितरां	पत्नीको बहुत
		न स्मरन्ति	स्मरण नहीं करते ॥१२॥
सुतसुहृत्	पुत्र, सम्बन्धी,		
गृह वित्त	घर, धन,		

तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्य-
मर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ।
रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं
नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥१३॥

तिर्यङ् नग द्विज सरीसृप देव दैत्य मर्त्य आदिभिः परिचितं सत् असत् विशेषं रूपं स्थविष्ठं अज ते महत् आदि अनेकं न अतः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥१३॥

अज	अजन्मा प्रभु !	ते स्थविष्ठं	
तिर्यङ् नग	वृक्ष-पर्वत,	रूपं	आपके इस स्थूल रूपको
द्विज सरीसृप	पक्षी, सरीसृप,		
देव दैत्य मर्त्य आदिभिः	देवता, दैत्य, मनुष्य,	वेद्मि	जानता हूँ,
		यत्र वादः न	जिसमें वाणीकी
परिचितं	आदिसे परिपूर्ण,		गति नहीं है,
महत् आदि अनेकं सत्	महत्तत्वादि	अतः परं न	इस (स्थूल रूपसे) परेको नहीं (जानता) ॥१३॥
असत्	अनेक कारण-कार्य		
विशेषं	स्वरूप		

कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन्
शेते पुमान् स्वदृगनन्तसखस्तदङ्के ।
यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चनलोकपद्म-
गर्भद्युमान् भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥१४॥

कल्पान्त एतत् अखिलं जठरेण गृह्णन् शेते पुमान् स्वदृक् अनन्त सखः तत् अङ्के यत् नाभि सिन्धु रुह काञ्चन लोक पद्म गर्भ द्युमान् भगवते प्रणतः अस्मि तस्मै ॥१४॥

कल्पान्त	कल्पके अन्तमें
एतत् अखिलं	यह सम्पूर्ण (जगत)
जठरेण गृह्णन्	(अपने) पेटमें लेकर
स्वदृक् पुमान्	स्वयं प्रकाश परम-पुरुष
अनन्त सखः	शेषके मित्र
तत् अङ्के शेते	उनकी गोदमें सो जाते हैं,
यत् नाभि सिन्धु रुह	जिनकी नाभि समुद्रसे उत्पन्न
काञ्चन लोक पद्म	स्वर्णमय लोक पद्मके
गर्भे द्युमान्	भीतर प्रकाशमय (ब्रह्माजी उत्पन्न हुए)
तस्मै भगवते	उन भगवानको
प्रणतः अस्मि	प्रणाम करता हूँ ॥१४॥

त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा
कूटस्थ आदि पुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ।
यद्बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या
द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥१५॥

त्वं नित्य मुक्त परिशुद्ध विबुद्ध आत्मा कूटस्थ आदि पुरुषः भगवान् त्र्यधीशः यत् बुद्धि अवस्थितिम् अखण्डितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितः अधिमखः व्यतिरिक्त आस्से ॥१५॥

भगवान्	भगवन् !
त्वं नित्य मुक्त	आप नित्य मुक्त,
परिशुद्ध विबुद्ध	परम शुद्ध, ज्ञान-स्वरूप,
आत्मा, कूटस्थ आदि पुरुषः	आत्मा, कूटस्थ,
त्र्यधीशः	आदिपुरुष, त्रिलोकीनाथ हैं,
यत् बुद्धि अवस्थितिं	जो बुद्धिकी सभी अवस्थाओंमें
अखण्डितया स्वदृष्ट्या	अपने अखण्ड ज्ञानसे
द्रष्टा स्थितः	द्रष्टा रूपमें स्थित हैं,
अधिमखः	अधियज्ञ तथा
व्यतिरिक्त आस्से	(इन सबसे) पृथक भी हैं ॥१५॥

यस्मिन् विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति
विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ।

तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्य-
मानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥१६॥

यस्मिन् विरुद्ध गतयः हि अनिशं पतन्ति विद्या आदयः विविध शक्तयः आनुपूर्व्यात् तत् ब्रह्म विश्व भवं एकं अनन्तं आद्यं आनन्द मात्रं अविकारं अहं प्रपद्ये ॥१६॥

हि यस्मिन्	क्योंकि जिसमें	**पतन्ति**	प्रकट होती रहती हैं,
आनुपूर्व्यात्	एकके पीछे दूसरीके क्रमसे	**तत् विश्व भवं**	उस जगतके कारण
		ब्रह्म एकं	ब्रह्म, अद्वितीय,
विद्या आदयः	विद्या आदि	**अनन्तं आद्यं**	अनन्त, सबके आदि
विविध	अनेक प्रकारकी	**आनन्द मात्रं**	आनन्द स्वरूप,
विरुद्ध गतयः	परस्पर विरोधी स्वरूपवाली	**अविकारं**	निर्विकारकी
		अहं प्रपद्ये	मैं शरण हूँ ॥१६॥
शक्तयः अनिशं	शक्तियाँ रात-दिन		

सत्याऽऽशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म-
माशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ।
अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान्
वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥१७॥

सत्य आशिषः हि भगवन् तव पादपद्म् आशीः तथा अनुभजतः पुरुषार्थ मूर्तेः अपि एवं अर्य भगवान् परिपाति दीनान् वाश्रेव वत्सकं अनुग्रह कातरः अस्मान् ॥१७॥

हि भगवन् आशीः तव	क्योंकि भगवन् !	**पुरुषार्थ मूर्तेः**	सम्पूर्ण पुरुषार्थ-मूर्ति !
पादपद्मं	आशा पूर्वक आपके चरण-कमलोंका	**तथा अपि**	आपके ऐसा होनेपर भी
अनुभजतः	बराबर भजन करने वालोंकी	**अर्य भगवान्**	आप आराध्य भगवान्
आशिषः सत्य	कामनाएँ सफल होती हैं,	**वत्सकं वाश्रेव**	छोटे बछड़ेको तुरन्त व्यायी गौ के समान

अनुग्रह कातरः	स्वयं कृपाद्रवित होकर (भजन न करने वाले)	**अस्मान् दीनान् परिपाति**	हम दीनजनोंकी रक्षा करते हैं ॥१७॥

मैत्रेय उवाच–

अथाभिष्टुत एवं वै सत्संकल्पेन धीमता ।
भृत्यानुरक्तो भगवान् प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥१८॥

अथ अभिष्टुत एवं वै सत् सङ्कल्पेन धीमता भृत्य अनुरक्तः भगवान् प्रतिनन्द्य इदं अब्रवीत् ॥१८॥

सत् सङ्कल्पेन धीमता एवं वै	श्रेष्ठ संकल्पवाले, बुद्धिमान (ध्रुव) द्वारा इस प्रकारसे	**भृत्य अनुरक्तः**	अपने सेवकसे स्नेह करके
अभिष्टुत	स्तुति करनेपर	**प्रतिनन्द्य**	उनकी प्रशंसा करके
अथ भगवान्	तब भगवान्	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच–

वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ।
तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥१९॥

वेद अहं ते व्यवसितं हृदि राजन्य बालक तत् प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापं अपि सुव्रत ॥१९॥

सुव्रत	उत्तम व्रत करनेवाले	**तत् दुरापं अपि**	वह दुष्प्राप्य होनेपर भी
राजन्य बालक	राजकुमार !	**प्रयच्छामि**	देता हूँ,
अहं ते हृदि व्यवसितं वेद	मैं तुम्हारे हृदयका संकल्प जानता हूँ,	**ते भद्रं**	तुम्हारा कल्याण हो ॥१९॥

नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति ।
यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥२०॥

न अन्यैः अधिष्ठितं भद्र यत् भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति यत्र ग्रह ऋक्ष ताराणां ज्योतिषां चक्रं आहितम् ॥२०॥

भद्र	भद्र !	**ध्रुवक्षिति**	ध्रुवलोक है,
अन्यैः न		**यत्र ग्रह ऋक्ष**	जिसके ग्रह, नक्षत्र,
अधिष्ठितं	दूसरे किसीसे अप्राप्त	**ताराणां**	तारोंका
		ज्योतिषां चक्रं	ज्योतिर्मण्डल
यत् भ्राजिष्णु	जो प्रकाशमय	**आहितम्**	आश्रित है ॥२०॥

मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनाम् ।
धर्मोऽग्निः कश्यपः शुक्रो मुनयो ये वनौकसः ।
चरन्ति दक्षिणीकृत्य भ्रमन्तो यत्सतारकाः ॥२१॥

मेढ्यां गोचक्रवत् स्थास्नु परस्तात् कल्प वासिनां धर्मः अग्निः कश्यपः शुक्रः मुनयः ये वनौकसः चरन्ति दक्षिणी कृत्य भ्रमन्तः यत् सतारकाः ॥२१॥

गोचक्रवत्	दँवरीके बैलोंके चक्रमें	**ये वनौकसः मुनयः**	जो वनवासी मुनि हैं, (सप्तर्षि)
मेढ्यां	केन्द्रके	**यत् दक्षिणी कृत्य**	जिसे दाहिने करके
स्थास्नु	समान स्थिर रहने वाला*	**सतारकाः**	तारा-मंडलके साथ (उसके)
कल्प वासिनां	एक कल्प जीवित रहने वालोंसे	**भ्रमन्तः चरन्ति**	चारों ओर घूमते चलते रहते हैं ॥२१॥
परस्तात्	से भी परे,		
धर्मः अग्निः	धर्म, अग्नि,		
कश्यपः शुक्रः	कश्यप, शुक्र		

प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः ।
षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिताव्याहतेन्द्रियः ॥२२॥

---

* कटी फसल सुखाकर उसे कुचलनेके लिए कई बैल एक साथ बांधकर बीचमें एक खम्भा गाड़ते थे, उसे मेढ़ी कहते थे, उससे एक सिरेपर बैल बँधा रहता था। सब उसके चारों ओर घूमते थे।

प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्म संश्रयः षट्त्रिंशत् वर्ष साहस्रं रक्षिता अव्याहत इन्द्रियः ॥२२॥

गां दत्त्वा	पृथ्वी (का राज्य) देकर	**अव्याहत इन्द्रियः**	इन्द्रिय शक्ति अक्षीण रहते
पित्रा तु	पिताके तो	**षट् त्रिंशत् वर्ष साहस्रं**	छत्तीस हजार वर्ष
वनं प्रस्थिते	वनमें चले जानेपर	**रक्षिता**	(पृथ्वीके) रक्षक रहोगे ॥२२॥
धर्म संश्रयः	धर्म पूर्वक		

त्वद्भ्रातर्युत्तमे नष्टे मृगयायां तु तन्मनाः ।
अन्वेषन्ती वनं माता दावाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥२३॥

त्वत् भ्रातः उत्तमे नष्टे मृगयायां तु तत् मनाः अन्वेषन्ती वनं माता दावाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥२३॥

त्वत् भ्रातः	तुम्हारे भाई	**माता तु**	उसकी मां तो
उत्तमे मृगयायां	उत्तमके शिकार खेलते हुए	**वनं अन्वेषन्ती**	वनमें (उसे) ढूंढ़ती
नष्टे	मारे जानेपर	**सा दावाग्निं**	वह दावाग्निमें
तत् मनाः	उसमें आसक्त चित्त	**प्रवेक्ष्यति**	प्रवेश कर (जल) जायगी ॥२३॥

इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः ।
भुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥२४॥

इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कल दक्षिणैः भुक्त्वा च इह आशिषः सत्या अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥२४॥

मां यज्ञहृदयं	मुझ यज्ञस्वरूपका	**सत्याः आशिषः**	उत्तम भोगोंको
पुष्कल दक्षिणैः	बहुत दक्षिणा दिये जानेवाले	**भुक्त्वा**	भोगकर
यज्ञैः इष्ट्वा	यज्ञोंसे यजन करके,	**अन्ते मां**	अन्त समयमें मुझे
इह च	इस लोकमें भी	**संस्मरिष्यसि**	स्मरण करोगे ॥२४॥

ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
उपरिष्टाद्ऋषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥२५॥

ततः गन्ता असि मत् स्थानं सर्व लोक नमस्कृतं उपरिष्टात् ऋषिभ्यः त्वं यतः न आवर्तते गतः ॥२५॥

यतः गतः	जहाँ जाकर	**ततः मत् स्थानं**	तब उस मेरे
न आवर्तते	फिर (संसारमें)		स्थानको
	नहीं लौटता,	**ऋषिभ्यः**	
सर्व लोक		**उपरिष्टात्**	सप्तर्षियोंसे ऊपर
नमस्कृतं	सब लोक जिसे	**त्वं गन्ता असि**	तुम जानेवाले
	प्रणाम करते हैं,		हो ॥२५॥

मैत्रेय उवाच–

इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम् ।
बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥२६॥

इति अर्चितः स भगवान् अतिदिश्य आत्मनः पदं बालस्य पश्यतः धाम स्वं अगात् गरुडध्वजः ॥२६॥

स गरुडध्वजः		**अतिदिश्य**	प्रदान करके,
भगवान्	वे गरुड़ध्वज भगवान्	**बालस्य पश्यतः**	बालकके देखते हुए
इति अर्चितः	इस प्रकार पूजित	**स्वं धाम आगात्**	अपने धाम चले
	होकर,		गये ॥२६॥
आत्मनः पदं	अपना पद		

सोऽपि संकल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम् ।
प्राप्य संकल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥२७॥

सः अपि संकल्पजं विष्णोः पाद सेवा उपसादितं प्राप्य संकल्प निर्वाणं न अति प्रीतः अभ्यगात् पुरम् ॥२७॥

सः अपि	वे (ध्रुव) भी	**संकल्प निर्वाणं**	उस संकल्पकी पूर्ति
विष्णोः		**प्राप्य न अति**	
पाद सेवा	भगवान् विष्णुकी चरण सेवासे	**प्रीतः**	पाकर बहुत प्रसन्न नहीं हुए,
उपसादितं	उपलब्ध	**पुरं अभ्यगात्**	अपने नगर लौट
संकल्पजं	अपने संकल्पके अनुसार		चले ॥२७॥

विदुर उवाच–

सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरे-
र्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्जितम् ।
लब्ध्वाप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना
कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित् ॥२८॥

सुदुर्लभं यत् परमं पदं हरेः मायाविनः तत् चरण अर्चन अर्जितं लब्ध्वा अपि असिद्धार्थं इव एक जन्मना कथं स्वं आत्मानं अमन्यत अर्थवित् ॥२८॥

मायाविनः हरेः	मायाधीश श्रीहरिका		करके भी
यत् परमं पदं	जो परमपद	**अर्थवित्**	वे प्रयोजन समझने
सुदुर्लभं	अत्यन्त दुर्लभ है,		वाले
एक जन्मना	एक ही जन्ममें	**असिद्धार्थ इव**	असफलकी भाँति
तत् चरण		**स्वं आत्मानं**	स्वयं अपनेको
अर्चन	उनके चरणोंकी पूजासे	**कथं**	क्यों
अर्जितं लब्ध्वा		**अमन्यत**	तिरस्कार योग्य माना ? ॥२८॥
अपि	उपार्जित प्राप्त		

मैत्रेय उवाच :–

मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान् स्मरन् ।
नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्ति तस्मात्तापमुपेयिवान् ॥२९॥

मातुः सपत्न्या बाग्बाणैः हृदि विद्धः तु तान् स्मरन् न ईच्छन् मुक्तिपतेः मुक्तिं तस्मात् तापं उपेयिवान् ॥२९॥

सपत्न्या मातुः	सौतेली मांके
बाग्बाणैः	वाणी रूप बाणोंसे
विद्धः हृदि तु	बींधे हृदय होनेसे
तान् स्मरन्	उनका स्मरण करके
मुक्तिपतेः	मुक्तिके स्वामीसे
मुक्तिं न ईच्छन्	मुक्ति नहीं चाही
तस्मात्	इसलिए (उन्हें)
तापं उपेयिवान्	पश्चाताप हुआ ॥२९॥

ध्रुव उवाच–

समाधिना नैकभवेन यत्पदं
विदुः सनन्दादय ऊर्ध्वरेतसः ।
मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयो-
श्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ॥३०॥

समाधिना न एक भवेन यत् पदं विदुः सनन्द आदय ऊर्ध्व रेतसः मासैः अहं षड्भिः अमुष्य पादयोः छायां उपेत्य अपगतः पृथक् मतिः ॥३०॥

सनन्द आदयः	सनन्दन आदि
ऊर्ध्व रेतसः	आजन्म ब्रह्मचारी
समाधिना	समाधिके द्वारा
न एक भवेन	अनेक जन्मोंमें
यत् पदं विदुः	जिसके स्वरूपको जान सके,
अहं षड्भिः मासैः	मैं छः महीनेमें ही
अमुष्य पादयोः	उन्हींके चरणोंकी
छायां उपेत्य	छायामें पहुँचकर
पृथक् मतिः	भिन्नदर्शी (होनेके कारण)
अपगतः	उससे दूर हो गया ॥३०॥

अहो बत ममानात्म्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत ।
भवच्छिदः पादमूलं गत्वायाचे यदन्तवत् ॥३१॥

अहो बत मम अनात्म्यं मन्द भाग्यस्य पश्यत भवच्छिदः पादमूलं गत्वा याचे यत् अन्तवत् ॥३१॥

अहो बत	अहो यह
मम मन्द	
भाग्यस्य	मुझ मंदभागीकी
अनात्म्यं पश्यत	मूर्खता तो देखो,
यत् भवच्छिदः	जो आवागमन नाशकके (प्रभु)
पादमूलं गत्वा	चरणोंके समीप जाकर
अन्तवत् याचे	विनाशी वस्तु मांगी ॥३१॥

मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः ।
यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः ॥३२॥

मतिः विदूषिता देवैः पतत्भिः असहिष्णुभिः यः नारद वचः तथ्यं न अग्राहिषं असत्तमः ॥३२॥

पतत्भिः	(स्वर्ग भोगकर) गिरनेवाले
असहिष्णुभिः	दूसरेकी उन्नति न सह सकनेवाले
देवैः	देवताओंने
मतिः विदूषिता	(मेरी) बुद्धि भ्रष्ट कर दी,
यः नारद	जिससे नारदजीकी
तथ्यं वचः	यथार्थ बात
असत्तमः	(मुझ) दुष्टने
अग्राहिषं न	ग्रहण नहीं की ॥३२

दैवीं मायामुपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक् ।
तप्ये द्वितीयेऽप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ॥३३॥

दैवीं मायां उपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्न दृक् तप्ये द्वितीये अपि असति भातृ भ्रातृव्य हृद् रुजा ॥३३॥

द्वितीये अपि असति	(संसारमें आत्माके सिवा) दूसरा कोई न होनेपर भी
प्रसुप्त इव	सोये हुएके समान
भिन्न दृक्	पृथक्-पृथक् (तत्त्व स्वप्नमें) देखनेवाला
दैवीं मायां	भगवानकी मायासे
उपाश्रित्य	मोहित होकर
भ्रातृ भ्रातृव्य	भाईको शत्रु मानकर
हृद् रुजा तप्ये	(मैं अपने ही) हृदयके संतापसे तप्त होने लगा ॥३३॥

मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि ।
प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ।
भवच्छिदमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः ॥३४॥

मया एतत् प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सा इव गत आयुषि प्रसाद्य जगत् आत्मानं तपसा दुष्प्रसादनं भवच्छिदं याचे अहं भवं भाग्य विवर्जितः ॥३४॥

गत आयुषि	जिसकी आयु समाप्त हो गयी है,
चिकित्सा इव	उसकी चिकित्साके समान
मया एतत्	मैंने जो यह
प्रार्थितं व्यर्थ	माँगा, व्यर्थ है ।
दुष्प्रसादनं	जिनको प्रसन्न करना बहुत कठिन है
जगत् आत्मानं	उन जगदात्मा
भवच्छिदं	आवागमन नाशकको
प्रसाद्य	प्रसन्न करके
अहं भाग्य विवर्जितः	मैं भाग्यहीन हूँ
मया भवं याचे	(अतः) मैंने संसार ही मांगा ॥३४॥

स्वाराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत ।
ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥३५॥

स्वाराज्यं यच्छतः मौढ्यात् मानः मे भिक्षितः बत ईश्वरात् क्षीण पुण्येन फलीकारान् इव अधनः ॥३५॥

क्षीण पुण्येन	पुण्य हीन
अधनः इव	कंगाल जैसे
ईश्वरात्	समर्थ (सम्राट्) से
फलीकारान्	भूसी सहित चावल-की कनी मांगे,
स्वाराज्यं यच्छतः	आत्मानन्द देनेवाले (प्रभु) से
मौढ्यात्	मूर्खतावश
बत मे	अरे मैंने
मानः भिक्षितः	अभिमान (बढ़ाने वाला उच्च पद) मांग लिया ॥३५॥

मैत्रेय उवाच–

न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो
रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ।
वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो
यदृच्छयालब्धमनः समृद्धयः ॥३६॥

न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयोः रजः जुषः तात भवादृशा जनाः वाञ्छन्ति तत् दास्यं ऋते अर्थं आत्मनः यदृच्छया लब्धमनः समृद्धयः ॥३६॥

तात	प्रिय विदुर !	**यदृच्छया लब्धमनः**	अपने आप
मुकुन्दस्य पदार-विन्दयोः	मुकुन्दके चरण-कमल	**समृद्धयः**	प्राप्त परिस्थितिमें सन्तुष्ट रहते है ।
रजः जुषः	मकरन्दके सेवन-कर्ता	**तत् दास्यं ऋते**	उन (भगवान) की सेवाको छोड़कर
भवादृशा जनाः वै	आपके समान भक्त लोग तो	**आत्मनः अर्थं**	अपने लिए दूसरा कोई पदार्थ
		न वाञ्छन्ति	नहीं चाहते ॥३६॥

आकर्ण्यात्मजमायान्तं सम्परेत्य यथाऽऽगतम् ।
राजा न श्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥३७॥

आकर्ण्य आत्मजं आयान्तं सम्परेत्य यथा आगतं राजा न श्रद्दधे भद्रं अभद्रस्य कुतः मम ॥३७॥

यथा सम्परेत्य आगतं	जैसे कोई मरकर लौटा हो,	**राजा न श्रद्दधे**	राजाने विश्वास नहीं किया
आत्मजं आयान्तं	पुत्रको आता	**मम अभद्रस्य भद्रं कुतः**	'मुझ अभागेका ऐसा भाग्य कहाँ ॥३७॥
आकर्ण्य	सुनकर		

श्रद्धाय वाक्यं देवर्षेर्हर्षवेगेन धर्षितः ।
वार्ताहर्तुरतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनम् ॥३८॥

श्रद्धाय वाक्यं देवर्षेः हर्षवेगेन धर्षितः वार्ताहर्तुः अति प्रीत्या हारं प्रादात् महाधनम् ॥३८॥

देवर्षेः वाक्यं	देवर्षि नारदजीकी बातपर	वार्ताहर्तुः	समाचार लाने-वालेको
श्रद्धाय	विश्वास करके,	अति प्रीत्या	बहुत प्रसन्न होकर
हर्षवेगेन धर्षितः	हर्षातिरेकसे अधीर होकर	महाधनं हारं प्रादात्	बहुमूल्य हार दिया ॥३८॥

सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम् ।
ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबन्धुभिः ॥३९॥

सत् अश्वं रथं आरुह्य कार्तस्वर परिच्छदं ब्राह्मणैः कुल वृद्धैः च पर्यस्तः अमात्य बन्धुभिः ॥३९॥

सत् अश्वं कार्तस्वर परिच्छदं रथं आरुह्य ब्राह्मणैः च कुल वृद्धैः	अच्छे घोड़ेवाले स्वर्ण जटित रथपर बैठकर, ब्राह्मणों तथा कुल-के बड़ों,	आमात्य बन्धुभिः	मन्त्रियों, सम्बन्धियोंसे
		पर्यस्तः	चारों ओरसे घिरे हुए ॥३९॥

शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः ।
निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥४०॥

शङ्ख दुन्दुभि नादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः निश्चक्राम पुरात् तूर्णं आत्मज अभीक्षण उत्सुकः ॥४०॥

आत्मज	पुत्रसे
अभीक्षण	
उत्सुकः	मिलनेको सदा उत्सुक (राजा उत्तानपाद)
शङ्ख दुन्दुभि	शंख, नगाड़े
वेणुभिः नादेन	वंशीको बजवाते
ब्रह्मघोषेण	वेद-पाठ कराते
तूर्णं पुरात्	शीघ्र नगरसे
निश्चक्राम	बाहर निकले ॥४०॥

सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते ।
आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥४१॥

सुनीतिः सुरुचिः च अस्य महिष्यौ रुक्म भूषिते आरुह्य शिबिकां सार्धं उत्तमेन अभिजग्मतुः ॥४१॥

अस्य महिष्यौ	इनकी दोनों रानियां
सुनीतिः च	
सुरुचिः	सुनीति और सुरुचि
रुक्म भूषिते	स्वर्णालंकारोंसे आभूषित
उत्तमेन सार्धं	कुमार उत्तमके साथ
शिबिकां आरुह्य	पालकीपर बैठकर
अभिजग्मतुः	चल रही थीं ॥४१॥

तं दृष्ट्वोपवनाभ्याश आयान्तं तरसा रथात् ।
अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वलः ॥४२॥

तं दृष्ट्वा उपवन अभ्याश आयान्तं तरसा रथात् अवरुह्य नृपः तूर्णं आसाद्य प्रेम विह्वलः ॥४२॥

तं उपवन	
अभ्याश	उन (ध्रुव) के बगीचेके पास
आयान्तं	
दृष्ट्वा	आते देखकर
प्रेम विह्वलः	
नृपः	प्रेमसे व्याकुल राजा
तरसा रथात्	
अवरुह्य	झट रथसे कूदकर
तूर्णं आसाद्य	शीघ्र समीप पहुँचे ॥४२॥

परिरेभेऽङ्गजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन् ।
विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम् ॥४३॥

परिरेभे अङ्गजं दोर्भ्यां दीर्घ उत्कण्ठ मनाः श्वसन् विष्वक्सेन अङ्घ्रि संस्पर्श हतशेष अघ बन्धनम् ॥४३॥

विष्वक्सेन		**अङ्गजं**	पुत्रको
अङ्घ्रि	भगवान् नारायणके चरणोंके	**दीर्घ उत्कण्ठ मनाः**	अत्यन्त उत्कण्ठा-युक्त चित्तसे
संस्पर्श	स्पर्शसे	**श्वसन्**	लम्बी श्वास लेते
अघ बन्धनं	पाप तथा बन्धन	**दोर्भ्यां परिरेभे**	भुजाओंमें भरकर आलिंगन किया ॥४३
हतशेष	जिनके नष्ट हो गये थे उस		

अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः ।
स्नापयामास तनयं जातोद्दाममनोरथः ॥४४॥

अथ अजिघ्रन् मुहुः मूर्ध्नि शीतैः नयन वारिभिः स्नापयामास तनयं जात उद्दाम मनोरथः ॥४४॥

जात उद्दाम मनोरथः	बहुत बड़ी कामना पूर्ण होनेसे	**शीतैः नयन वारिभिः**	शीतल अश्रुओंसे
अथ मुहुः मूर्ध्नि अजिघ्रन्	फिर बार-बार सिर सूंघते हुए*	**तनयं स्नापयामास**	पुत्रको स्नान करा दिया ॥४४॥

अभिवन्द्य पितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमन्त्रितः ।
ननाम मातरौ शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ॥४५॥

अभिवन्द्य पितुः पादाः आशीर्भिः च अभिमन्त्रितः ननाम मातरः शीर्ष्णाः सत्कृतः सज्जन अग्रणीः ॥४५॥

सज्जन अग्रणीः	सज्जनोंमें श्रेष्ठ (ध्रुव) ने	**पितुः पादाः अभिवन्द्य**	पिताके चरणोंमें प्रणाम करके

---

* पहिले बच्चोंको प्यारसे चूमते नहीं थे, उनका मस्तक सूंघ लेते थे।

च आशीभिः अभिमन्त्रितः	तथा आशीर्वाद पाकर	सत्कृतः शीर्ष्णा मातरः ननाम	सत्कार पूर्वक मस्तक झुकाकर माताओंको प्रणाम किया ॥४५॥

सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम् ।
परिष्वज्याह जीवेति बाष्पगद्गदया गिरा ॥४६॥

सुरुचिः तं समुत्थाप्य पादावनतं अर्भकं परिष्वज्य आह जीव इति बाष्प गद्गदया गिरा ॥४६॥

पादावनतं	(अपने) पैरोंपर झुके	परिष्वज्य	गोदसे लगाकर
		बाष्प गद्गद्या	आँसूसे गद्गद
तं अर्भकं	उस बालकको	गिरा जीव	वाणीसे 'जीते रहो'
सुरुचिः		इति आह	यह कहा ॥४६॥
समुत्थाप्य	सुरुचिने उठाकर		

यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः ।
तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ॥४७॥

यस्य प्रसन्नः भगवान् गुणैः मैत्र्यादिभिः हरिः तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नं आप इव स्वयम् ॥४७॥

मैत्र्यादिभिः गुणैः यस्य भगवान्		स्वयं आप निम्नं इव	स्वयं जल जैसे नीचे-की ओर जाता है,
हरिः प्रसन्नः	जिसपर भगवन् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं	तस्मै भूतानि	उसके सम्मुख सब प्राणी
		नमन्ति	झुक जाते हैं ॥४७॥

उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योन्यं प्रेमविह्वलौ ।
अङ्गसङ्गादुत्पुलकावस्रौघं मुहुरूहतुः ॥४८॥

उत्तमः च ध्रुवः च उभाः अन्योन्यं प्रेम विह्वलौ अङ्ग सङ्गात् उत्पुलकाः अस्रौघं मुहुः ऊहतुः ॥४८॥

उत्तमः च ध्रुवः	उत्तम और ध्रुव	**उत्पुलकाः**	रोमांचित हो गये और
उभाः च	दोनों ही	**मुहुः अस्रोघं**	
प्रेम विह्वलौ	प्रेमसे विह्वल होकर	**ऊहतुः**	बार-बार बहुत आँसू बहाने लगे ॥४८॥
अन्योन्यं अङ्ग सङ्गात्	एक दूसरेको आलिंगन करके		

सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम् ।
उपगुह्य जहावार्धि तदङ्गस्पर्शनिर्वृता ॥४९॥

सुनीतिः अस्य जननी प्राणेभ्यः अपि प्रियं सुतं उपगुह्य जहाः आर्धि तत् अङ्गस्पर्श निर्वृता ॥४९॥

अस्य जननी	इन (ध्रुव) की माता	**उपगुह्य**	हृदयसे लगाकर
सुनीतिः	सुनीतिने	**तत् अंगस्पर्श**	उनके अंग स्पर्शसे
प्राणेभ्यः अपि	प्राणसे भी	**निर्वृता**	आनन्दमग्न होकर
प्रियं सुतं	प्रिय पुत्रको	**आर्धि जहाः**	निश्चिन्त हो गयी ॥४९॥

पयःस्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः ।
तदाभिषिच्यमानाभ्यां वीर वीरसुवो मुहुः ॥५०॥

पयः स्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः तत् अभिषिच्य मानाभ्यां वीर वीर सुवः मुहुः ॥५०॥

स्तनाभ्यां पयः सुस्राव	स्तनोंसे दूध टपकने लगा,	**नेत्रजैः शिवैः सलिलैः**	नेत्रोंके पवित्र जल (आँसू) से
वीर सुवः मुहुः	(उन) वीरमाताने बार-बार	**तत् वीर अभिषिच्य मानाभ्यां**	उस समय पुत्रको भिगाती रहीं ॥५०॥

तां शशंसुर्जना राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा ।
प्रतिलब्धश्चिरं नष्टो रक्षिता मण्डलं भुवः ॥५१॥

तां शशंसुः जना राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा प्रतिलब्धः चिरंनष्टः रक्षिता मण्डलं भुवः ॥५१॥

जनां तां राज्ञीं	लोग उस महारानीकी	**ते पुत्र प्रतिलब्धः**	आपका पुत्र फिर मिल गया,
शशंसुः	प्रशंसा करनें लगे–		
दिष्ट्या	'सौभाग्यसे	**आर्तिहा**	सबका दुःख दूर करनेवाला यह
चिरंनष्टः	बहुत दिनसे खोया	**भुवः मण्डलं रक्षिता**	भूमण्डलका रक्षक होगा ॥५१॥

अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान् प्रणतार्तिहा ।
यदनुध्यायिनो धीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥५२॥

अभ्यर्चितः त्वया नूनं भगवान् प्रणत आर्तिहा यत् अनुध्यायिनः धीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥५२॥

यत् अनुध्यायिनः	जिनका निरन्तर चिन्तन करनेवाले	**नूनं त्वया प्रणत आर्तिहा**	निश्चय आपने (उन) शरणागत दुःख नाशक
धीराः	धीर पुरुष	**भगवान् अभ्यर्चितः**	भगवानकी भली प्रकार पूजा की है ॥५२॥
सुदुर्जयं मृत्युं	अत्यन्त दुर्जय मृत्युको		
जिग्युः	जीत लेते हैं,		

लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः ।
आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥५३॥

लाल्यमानं जनैः एवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानः अविशत् पुरम् ॥५३॥

जनैः एवं	लोगों द्वारा इस प्रकार	**हृष्टः नृपः**	प्रसन्न होकर राजाने
ध्रुवं लाल्यमानं	ध्रुवको लाड़ दिखलानेपर	**सभ्रातरं**	भाई (उत्तम) के साथ (उन्हें)

करिणीं आरोप्य स्तूयमानः	हथिनीपर बैठाकर (लोगों द्वारा) प्रशंसित होते	पुरं अविशत्	नगरमें प्रवेश किया ॥५३॥

तत्र तत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः ।
सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैश्च तद्विधैः ॥५४॥

तत्र तत्र उपसंक्लृप्तैः लसत् मकर तोरणैः सवृन्दैः कदली स्तम्भैः पूगपोतैः च तत् विधैः ॥५४॥

तत्र तत्र मकर तोरणैः उपसंक्लृप्तैः सवृन्दैः कदली	(नगरमें) जहां-तहां मकरके आकारके तोरण बनाये थे,	स्तम्भैः तत् विधैः पूगपोतैः लसत्	फलोंके गुच्छे सहित केलेके खम्भे उसी प्रकारके (फलों सहित) सुपारीके पौधे सुशोभित थे ॥५४॥

चूतपल्लववासःस्रङ्मुक्तादामविलम्बिभिः ।
उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुम्भैः सदीपकैः ॥५५॥

चूतपल्लव वासः स्रङ् मुक्तादाम विलम्बिभिः उपस्कृतं प्रतिद्वारं अपां कुम्भैः सदीपकैः ॥५५॥

प्रतिद्वारं	प्रत्येक द्वार	सदीपकैः	
चूतपल्लव	आमके पत्तोंके तोरण	अपां कुम्भैः	दीपकके साथ जल भरे कलशसे
वासः स्रङ् मुक्तादाम	वस्त्र, मालाएँ,	उपस्कृतं	सज्जित थे ॥५५॥
विलम्बिभिः	मोतियोंकी झालर लटकानेसे		

प्रकारैर्गोपुरागारैः शातकुम्भपरिच्छदैः ।
सर्वतोऽलंकृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥५६॥

प्राकारैः गोपुर आगारैः शातकुम्भ परिच्छदैः सर्वतः अलंकृतं श्रीमत् विमान शिखर द्युभिः ॥५६॥

प्राकारैः	(वह नगर) चहार दीवारीसे,	**आगारैः**	भवनोंसे
गोपुर	तोरण द्वारसे,	**श्रीमत् विमान**	सुन्दर छज्जोंसे,
शातकुम्भ		**शिखर द्युभिः**	शिखरोंकी चमकसे
परिच्छदैः	सोनेके उपकरणों-वाले	**सर्वतः**	
		अलङ्कृतं	सब ओर सजा हुआ था ॥५६॥

मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् ।
लाजाक्षतैः पुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्युतम् ॥५७॥

मृष्ट चत्वर रथ्या अट्टमार्गं चन्दन चर्चितं लाजा अक्षतैः पुष्प फलैः तण्डुलैः बलिभिः युतम् ॥५७॥

चत्वर रथ्या	चौराहे, गलियाँ,	**लाजा अक्षतैः**	धानकी खील,
अट्टमार्गं	बाजारोंके मार्ग	**पुष्प फलैः**	
मृष्ट चन्दन		**तण्डुलैः**	पुष्प, फल, अक्षतोंसे
चर्चितं	स्वच्छ करके चंदनसे सजाये गये थे,	**बलिभिः युतं**	(जहाँ तहाँ)पूजा की गयी थी ॥५७॥

ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः ।
सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च ॥५८॥

ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरः स्त्रियः सिद्धार्थ अक्षत दधि अम्बु दूर्वा पुष्प फलानि च ॥५८॥

ध्रुवाय पथि		**सिद्धार्थ, अक्षत्**	पीली सरसों, अक्षत,
दृष्टाय	ध्रुवको मार्गमें देखनेके लिए	**दधि अम्बु**	दही, जल,
तत्र तत्र	जहाँ तहाँ	**पुष्प दूर्वा च**	
पुरः स्त्रियः	नगरकी स्त्रियाँ (आ गयीं)	**फलानि**	पुष्प, दूर्वा तथा फलका ॥५८॥

उपजह्रुः प्रयुञ्जाना वात्सल्यादाशिषः सतीः ।
शृण्वंस्तद्वल्गु गीतानि प्राविशद्भवनं पितुः ॥५९॥

उपजह्रु प्रयुञ्जाना वात्सल्यात् आशिषः सतीः शृण्वन् तद् वल्गु गीतानि प्राविशत् भवनं पितुः ॥५९॥

उपजह्रुः	उपहार दिया ।	शृण्वन् पितुः भवनं	सुनते हुए पिताके भवनमें
वात्सल्यात्	वात्सल्य भावसे	प्राविशत्	प्रवेश किया ॥५९॥
सतीः आशिषः	उत्तम आशीर्वाद		
प्रयुञ्जानाः	देते हुए ।		
तद् बल्गु गीतानि	उनके मनोहर गीत		

महामणिव्रातमये स तस्मिन् भवनोत्तमे ।
लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ॥६०॥

महामणि व्रातमये स तस्मिन् भवन उत्तमे लालितः नितरां पित्रा न्यवसत् दिवि देववत् ॥६०॥

महामणि व्रातमये	महामणियोंकी लड़ियोंसे युक्त	नितरां लालितः	बहुत लाड़-प्यार पाते
तस्मिन् उत्तमे भवने	उस श्रेष्ठ भवनमें	दिवि देववत्	स्वर्गमें देवताओंके समान
स पित्रा	वे पिता द्वारा	न्यवसत्	निवास करने लगे ॥६०॥

पयःफेन निभाःशय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ।
आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥६१॥

पयः फेन निभाःशय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्माः उपस्कराः ॥६१॥

पयः फेन निभाः शय्याः	दूधके फेनके समान (कोमल) पलंग,	दान्ताः रुक्म-	हाथी दांतके स्वर्ण जटित

परिच्छदाः	पाये आदि थे,	**रौक्माः**	
यत्र महार्हाणि		**उपस्कराः**	तथा सोनेके दूसरे
आसनानि	जहाँ बहुमूल्य आसन		सामान थे ॥६१॥

यत्र स्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ।
मणिप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥६२॥

यत्र स्फटिक कुड्येषु महामारकतेषु च मणि प्रदीपा आभान्ति ललनारत्न संयुताः ॥६२॥

यत्र स्फटिक च महामार-	जहाँ स्फटिक	**ललनारत्न**	सुन्दर स्त्रियोंकी मूर्तियाँ
कतेषु	तथा महामरकत मणिकी	**मणि प्रदीपा संयुताः**	मणियोंके दीपक सहित
कुड्येषु	दीवारोंमें	**आभान्ति**	सुशोभित थीं ॥६२॥

उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः ।
कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥६३॥

उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैः अमर द्रुमैः कूजत् विहङ्ग मिथुनैः गायन् मत्त मधुव्रतैः ॥६३॥

विचित्रैः अमर द्रुमैः रम्याणि	अनेक प्रकारके दिव्य वृक्षोंवाले	**कूजत् च मत्त मधुव्रतैः गायन्**	कलरव करते थे तथा मदमत्त भौंरे गुंजार करते थे ॥६३॥
उद्यानानि विहङ्ग मिथुनैः	रमणीय बगीचे थे, (जिनमें) पक्षियोंके जोड़े		

वाप्यो वैदूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः ।
हंसकारण्डवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसैः ॥६४॥

वाप्यः वैदूर्य सोपानाः पद्म उत्पल कुमुद्वतीः हंस कारण्डव कुलैः जुष्टाः चक्राह्व सारसैः ॥६४॥

वैदूर्य सोपानाः	वैदूर्यकी सीढ़ियों-वाली	**कुलैः**	हंस, कारण्डवों (जलकाक)
पद्म उत्पल	लाल तथा नीले कमल,	**चक्राह्व सारसैः**	चकवा तथा सारसों-से
कुमुद्वतीः हंस कारण्डव	कुमुदिनी वाली	**जुष्टाः वाप्यः**	युक्त वावली थीं ॥६४॥

उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम् ।
श्रुत्वा दृष्ट्वाद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥६५॥

उत्तानपादः राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तं श्रुत्वा दृष्ट्वा अद्भुत तमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥६५॥

राजर्षिः उत्तान-पादः	राजर्षि उत्तान-पादको	**प्रभावं श्रुत्वा दृष्ट्वा परम् विस्मयं प्रपेदे**	प्रभावको सुनकर, (वैसा ही) देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ ॥६५॥
तनयस्य तं अद्भुत तमं	पुत्रके उस अत्यन्त अद्भुत		

वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च सम्मतम् ।
अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥६६॥

वीक्ष्य ऊढ वयसं तं च प्रकृतीनां च सम्मतं अनुरक्तं प्रजां राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥६६॥

तं च ऊढ वयसं	उन (ध्रुव) को भी तरुणावस्थाका	**प्रजां अनुरक्तं**	प्रजाका उनपर अनुराग
प्रकृतीनां सम्मतं	अमात्यवर्ग द्वारा आदर प्राप्त	**वीक्ष्य ध्रुवं भुवः पतिं चक्रे**	देखकर ध्रुवको पृथ्वीका स्वामी बना दिया ॥६६॥

आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशाम्पतिः ।
वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥६७॥

आत्मानं च प्रवयसं आकलय्य विशाम्पतिः वनं विरक्तः प्रातिष्ठत् विमृशन् आत्मनः गतिम् ॥६७॥

विशाम्पतिः	राजाने	**विमृशन्**	विचार करते हुए
आत्मानं च	अपनेको भी	**विरक्तः**	विरक्त होकर
प्रवयसं		**वनं प्रातिष्ठत्**	वनको प्रस्थान
आकलय्य	वृद्ध हुआ समझकर		किया ॥६७॥
आत्मनः गतिं	आत्मस्वरूपका		

इति **श्रीमद्भागवते महापुराणे** पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे ध्रुवराज्याभिषेकवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः।

अथ दशमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ।
उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥१॥

प्रजापतेः दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः उपयेमे भ्रमिं नाम तत् सुतौ कल्प वत्सरौ ॥१॥

प्रजापतेः		**ध्रुवः वै उपयेमे**	ध्रुवने तो विवाह किया,
शिशुमारस्य	प्रजापति शिशु मारकी	**तत् सुतौ**	उससे दो पुत्र
भ्रमिं नाम		**कल्प वत्सरौ**	कल्प और वत्सर
दुहितरं	भ्रमि नामकी पुत्रीसे		हुए ॥१॥

इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः ।
पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥२॥

इलायां अपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः पुत्रं उत्कल नामानं योषित् रत्नं अजीजनत् ॥२॥

इलायां भार्यायं		**पुत्रं योषित्**	
अपि	इला नामक दूसरी पत्नीसे भी	**रत्नं**	पुत्र तथा कन्यारत्न
		अजीजनत्	उत्पन्न किया ॥२॥
उत्कल नामानं	उत्कल नामवाला		

उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा ।
हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्मातास्य गतिं गता ॥३॥

उत्तमः तु अकृत उद्वाहः मृगयायां बलीयसा हतः पुण्यजनेन अद्रौ तत् माता अस्य गतिं गता ॥३॥

उद्वाहः अकृत	विवाह न करके
उत्तमः तु	उत्तम तो
अद्रौ मृगयायां	पहाड़ (हिमालय) पर आखेट करने जाकर
बलीयसा पुण्यजनेन	बलवान यक्षों द्वारा
हतः	मारा गया,
तत् माता	उसकी माता (सुरुचि)
अस्य गतिं गता	उसीकी गति (मृत्युको) प्राप्त हुई ॥३॥

ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचार्पितः ।
जैत्रं स्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥४॥

ध्रुवः भ्रातृ वधं श्रुत्वा कोप अमर्ष शुच अर्पितः जैत्रं स्यन्दनं आस्थाय गतः पुण्यजन आलयम् ॥४॥

ध्रुवः	ध्रुवने
भ्रातृ वधं श्रुत्वा	भाईका वध सुनकर
कोप अमर्ष शुच	क्रोध, असहन शक्ति, शोक
अर्पितः	से भरकर
जैत्रं स्यन्दनं आस्थाय	विजयदायी रथपर बैठकर
पुण्यजन आलयं गतः	यक्षोंके नगरके पास गये ॥४॥

गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचरसेविताम् ।
ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यकसंकुलाम् ॥५॥

गत्वा उदीचीं दिशं राजा रुद्र अनुचर सेवितां ददर्श हिमवत् द्रोण्यां पुरीं गुह्यक संकुलाम् ॥५॥

रुद्र अनुचर सेवितां	रुद्रके सेवकों (प्रेत-पिशाचों) से सेवित
उदीचीं दिशं गत्वा राजा	उत्तर दिशामें जाकर राजा ध्रुवने
हिमवत् द्रोण्यां गुह्यक संकुलां पुरीं	हिमालयकी घाटीमें यक्षोंसे भरे नगरको
ददर्श	(अलकाको) देखा ॥५॥

दध्मौ शङ्खं बृहद्बाहुः खं दिशश्चानुनादयन् ।
येनोद्विग्नदृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥६॥

दध्मौ शङ्खं बृहद् बाहुः खं दिशः च अनुनादयन् येन उद्विग्न दृशः क्षत्तः उपदेव्यः अत्रसन् भृशम् ॥६॥

क्षत्तः	विदुर !	**शङ्खं दध्मौ**	शंख बजाया,
बृहद् बाहुः	विशाल बाहु (ध्रुव) ने	**येन उद्विग्न दृशः**	जिससे व्याकुल नयना
खं दिशः च	आकाश और दिशाओंको भी	**उपदेव्यः**	यक्षस्त्रियां
अनुनादयन्	गुञ्जित करते	**भृशं अत्रसन्**	बहुत डर गयीं ॥६॥

ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः ।
असहन्तस्तन्निनादमभिपेतुरुदायुधाः ॥७॥

ततः निष्क्रम्य बलिनः उपदेव महाभटाः असहन्तः तत् निनादं अभिपेतुः उदा युधाः ॥७॥

ततः तत् निनादं	तब उस उग्र ध्वनिको	**उपदेव**	
असहन्तः	सहन न करके	**उदा युधाः**	यक्षगण हथियार उठाये
बलिनः		**निष्क्रम्य**	
महाभटाः	बलवान महाशूर	**अभिपेतुः**	निकलकर टूट पड़े ॥७॥

स तानापततो वीर उग्रधन्वा महारथः ।
एकैकं युगपत्सर्वानहन् बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥८॥

स तान् आपततः वीर उग्रधन्वा महारथः एक एकं युगपत् सर्वान् अहन् बाणैः त्रिभिः त्रिभिः ॥८॥

तान् आपततः	उन आक्रमण करने वालोंको	**युगपत एक एकं**	एक साथ प्रत्येकको,
स वीर	उस वीर	**सर्वान्**	सबको
उग्रधन्वा		**त्रिभिः त्रिभिः**	
महारथः	प्रचण्ड धनुर्धर महारथीने	**बाणैः**	तीन-तीन बाणोंसे
		अहन्	मारा ॥८॥

ते वै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि ।
मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन् कर्म तस्य तत् ॥९॥

ते वै ललाट लग्नैः तैः इषुभिः सर्व एव हि मत्वा निरस्तं आत्मानं आशंसन् कर्म तस्य तत् ॥९॥

ते वै सर्व एव हि उन सबने ही	**मत्वा तस्य तत्** मानकर उनके उस
तैः ललाट लग्नैः उन ललाटमें लगे	**कर्म आशंसन्** पराक्रमकी प्रशंसा
इषुभिः वाणोंसे	की ॥९॥
आत्मानं निरस्तं अपनेको पराजित	

तेऽपि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्शमिवोरगाः ।
शरैरविध्यन् युगपद् द्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥१०॥

ते अपि च अमुं अमृष्यन्तः पादस्पर्शं इव उरगाः शरैः अविध्यन् युगपत् द्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥१०॥

पादस्पर्शः	**प्रचिकीर्षवः** बदला लेनेकी
उरगाः इव पैरसे ठुकराये सर्पके समान	इच्छासे
	युगपत् द्विगुणं एक साथ दुगुने (६६)
ते अपि च वे (यक्ष) भी	
अमुं अमृष्यन्तः (ध्रुवके) इस (पराक्रम) को न सहकर	**शरैः अविध्यन्** वाणोंसे मारा ॥१०॥

ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः ।
शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥११॥

ततः परिघ निस्त्रिंशैः प्रास शूल परशु अधैः शक्ति ऋषिभिः भुशुण्डीभिः चित्रवाजैः शरैः अपि ॥११॥

ततः परिघ फिर डंडे,	**प्रास शूल** भाले, त्रिशूल
निस्त्रिंशैः खड्ग	**परशु** फरसे

शक्ति ऋषिभिः	शक्ति, ऋष्टि,	शरैः अपि अधैः	वाणोंसे भी प्रहार
भुशुण्डीभिः	बन्दूकोंसे		करने लगे ॥११॥
चित्रवाजैः	विचित्र पंखोंवाले		

अभ्यवर्षन् प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् ।
इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानि त्रयोदश ॥१२॥

अभ्यवर्षन् प्रकुपिताः सरथं सह सारथि इच्छन्तः तत् प्रतीकर्तुं अयुतानि त्रयोदश ॥१२॥

अयुतानि त्रयोदश	(वे) एक लाख तीस हजार (तेरह अयुत यक्ष)	प्रकुपिताः	अत्यन्त क्रुद्ध होकर
तत् प्रतीकर्तुं इच्छन्त	उन (ध्रुव) से बदला लेनेकी इच्छा-से	सरथं सह सारथि	रथ और सारथी सहितपर
		अभ्यवर्षन्	(शस्त्रोंकी) चारों ओरसे वर्षा करने लगे ॥१२॥

औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा ।
न उपादृश्यतच्छन्न आसारेण यथा गिरिः ॥१३॥

औत्तानपादिः स तदा शस्त्र वर्षेण भूरिणा न उपादृश्यत छन्नः आसारेण यथा गिरिः ॥१३॥

यथा आसारेण गिरिः	जैसे भारी वर्षासे पर्वत (नहीं दीखता)	भूरिणा शस्त्र वर्षेण	बहुत अधिक शस्त्र वर्षासे
तदा स औत्तानपादिः	उस समय वे ध्रुव	छन्नः	ढककर
		न उपादृश्यत	नहीं दिखायी पड़े ॥१३॥

हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् ।
हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥१४॥

हाहाकारः तदा एव आसीत् सिद्धानां दिवि पश्यतां हतः अयं मानवः सूर्यः मग्नः पुण्यजन अर्णवे ॥१४॥

दिवि पश्यतां	आकाशसे (युद्ध) देखनेवाले	**अयं मानवः सूर्यः**	यह मानव-सूर्य
सिद्धानां तदा एव हाहाकारः आसीत्	सिद्धोंमें उसी समय हाहाकार होने लगा कि	**पुण्यजन अर्णवे मग्नः**	यक्षों रूपी समुद्रमें डूबकर
		हतः	मारा गया ॥१४॥

नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे ।
उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥१५॥

नदत्सु यातु धानेषु जयकाशिषु अथ मृधे उदतिष्ठत् रथः तस्य नीहारात् इव भास्करः ॥१५॥

जयकाशिषु	अपनी विजय घोषणा करते	**मृधे तस्य रथः नीहारात्**	युद्धमें उनका रथ
यातु धामेषु	यक्षोंके	**भास्करः इव**	कुहरेसे सूर्यके समान
नदत्सु अथ	गर्जते समय ही	**उदतिष्ठत्**	निकल आया ॥१५॥

धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् ।
अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥१६॥

धनुः विस्फूर्जयन् दिव्यं द्विषतां खेदं उद्वहन् अस्त्र ओघं व्यधमत् बाणैः घन अनीकं इव अनिलः ॥१६॥

द्विषतां खेदं उद्वहन्	शत्रुओंको खिन्न करते	**घन अनीकं**	मेघोंकी घटाको (हटा दे)
दिव्यं धनुः	(अपने) दिव्य धनुषकी	**बाणैः अस्त्र ओघं**	वाणोंसे अस्त्रोंकी बाढ़
विस्फूर्जयन् इव अनिलः	टंकार करते, जैसे वायु	**व्यधमत्**	नष्ट कर दी ॥१६॥

तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम् ।
कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥१७॥

तस्य ते चाप निर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसां कायान् आविविशुः तिग्मा गिरीन् अशनयः यथा ॥१७॥

तस्य चाप		**रक्षसां वर्माणि**	
निर्मुक्ता	उनके धनुषसे छूटे	**भित्त्वा**	यक्षोंके कवच फोड़कर
ते तिग्मा	वे तीक्ष्ण (वाण)		
यथा अशनयः		**कायान्**	
गिरीन्	जैसे वज्र पर्वतोंपर पड़े	**आविविशुः**	(उनके) शरीरोंमें घुस गये ॥१७॥

भल्लैः संछिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ।
उरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥१८॥

भल्लैः संछिद्य मानानां शिरोभिः चारुकुण्डलैः उरुभिः हेमताल आभैः दोर्भिः बलय वल्गुभिः ॥१८॥

भल्लैः	(ध्रुवके) वाणोंसे	**उरुभिः**	स्वर्ण-ताड़-वृक्षके समान जांघें
चारुकुण्डलैः			
शिरोभिः	सुन्दर कुण्डल पहिने सिर	**वलय वल्गुभिः**	
हेमताल आभैः		**दोर्भिः**	कंकण भूषित भुजाएँ
		संछिद्य मानानां	(यक्षोंकी) कट रही थीं ॥१८॥

हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः ।
आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥१९॥

हार केयूर मुकुटैः उष्णीषैः च महाधनैः आस्तृताः ता रणभुवः रेजुः वीर मनोहराः ॥१९॥

हार केयूर मुकुटैः	हार, अंगद, मुकुटों	**च महाधनैः**	
		उष्णीषैः	तथा बहुमूल्य पगड़ियोंसे

आस्तृताः वीर मनोहराः	बिछी वीरोंकी मनोहारिणी	ता रणभुवः रेजुः	वह युद्ध भूमि शोभित हुई ॥१९॥

हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्
रक्षोगणाः क्षत्रियवर्यसायकैः ।
प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवु-
र्मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपा इव ॥२०॥

हताः अवशिष्टा इतरे रण अजिरात् रक्षोगणाः क्षत्रिय वर्य सायकैः प्रायः विवृक्ण अवयवा विदुद्रुवुः मृगेन्द्र विक्रीडित यूथपा इव ॥२०॥

क्षत्रिय वर्य सायकैः	क्षत्रियोत्तम (ध्रुव)के बाणोंसे	मृगेन्द्र विक्रीडित यूथपा इव	सिंहसे क्रीडा-युद्धमें (हारे) गजराजके समान
हताः अवशिष्टाः	मारे जानेसे बचे	रण अजिरात्	रणांगनसे
इतरे रक्षोगणाः	दूसरे यक्ष	विदुद्रुवुः	भाग गये ॥२०॥
प्रायः विवृक्ण अवयवा	प्रायः कटे-फटे अंगवाले		

अपश्यमानः स तदाऽऽततायिनं
महामृधे कंचन मानवोत्तमः ।
पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद् द्विषां
न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥२१॥

अपश्यमानः स तदा आततायिनं महामृधे कंचन मानवोत्तमः पुरीं दिदृक्षन् अपि न अविशत् द्विषां न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥२१॥

स मानवोत्तमः	वे मानव श्रेष्ठ ध्रुव	कंचन आततायिनं	किसी भी आक्रमण-कारीको
तदा	उस समय		
महामृधे	महायुद्धमें		

अपश्यमानः	न देखते हुए	मायिनां	
द्विषां पुरीं	शत्रुओंके नगरको	चिकीर्षितं	'मायावी क्या करना
दिदृक्षन् अपि	देखनेकी इच्छा		चाहते हैं'
	होनेपर भी	जनः न वेद	सामान्यजन नहीं
अविशत् न	(उसमें) प्रविष्ट नहीं		जान पाते ॥२१॥
	हुए (क्योंकि)		

इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं
यत्तः परेषां प्रतियोगशङ्कितः ।
शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं
नभस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत ॥२२॥

इति ब्रुवन् चित्ररथः स्वसारथिं यत्तः परेषां प्रतियोग शङ्कितः शुश्राव शब्दं जलधेः इव ईरितं नभस्वतः दिक्षु रजः अन्वदृश्यत ॥२२॥

चित्ररथः	विचित्र रथमें बैठे	जलधेः इव	
	(ध्रुव)	ईरितं	समुद्रकी गर्जनाके
स्वसारथिं	अपने सारथिसे		समान
इति ब्रुवन्	ऐसा कह ही रहे थे,	शब्दं शुश्राव	शब्द सुनाई पड़ा
परेषां	(क्योंकि उनको)		और
	शत्रुओंसे	दिक्षु नभस्वतः	
प्रतियोग		रजः	दिशाओंमें आंधीसे
शङ्कितः	प्रतिकारकी		उठी धूलि
	आशङ्का थी,	अन्वदृश्यत	दीख पड़ी ॥२२॥
यत्तः	सावधान थे (तभी)		

क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः ।
विस्फुरत्तडिता दिक्षु त्रासयत्स्तनयित्नुना ॥२३॥

क्षणेन आच्छादितं व्योम घन अनीकेन सर्वतः विस्फुरत् तडिता दिक्षु त्रासयत् स्तनयित्नुना ॥२३॥

क्षणेन		स्तनयित्नुना	गड़गड़ाहटके साथ
घन अनीकेन	एक क्षणमें मेघोंकी घटासे	त्रासयत्	डराती हुई
		दिक्षु तडिता	दिशाओंमें बिजलियां
सर्वतः व्योम	सब ओरसे आकाश	विस्फुरत्	चमकने लगीं ॥२३॥
आच्छादितं	ढक लिया गया,		

ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः ।
निपेतुर्गगनादस्य कबन्धान्यग्रतोऽनघ ॥२४॥

ववृषू रुधिर औघ असृक् पूय विट् मूत्र मेदसः निपेतुः गगनात् अस्य कबन्धान् अग्रतः अनघ ॥२४॥

अनघ	निष्पाप विदुर !	अस्य अग्रतः	इन (ध्रुव) के आगे
रुधिर असृक्	रक्त, कफ,	गगनात्	आकाशसे
पूय विट्	पीव, विष्ठा	कबन्धान्	
मूत्र मेदसः	मूत्र, चर्बीकी	निपेतुः	सिरहीन धड़
औघ ववृषुः	बाढ़ जैसी वर्षा होने लगी		गिरने लगे ॥२४॥

ततः खेऽदृश्यत गिरिर्निपेतुः सर्वतोदिशम् ।
गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलाः साश्मवर्षिणः ॥२५॥

ततः खे अदृश्यत गिरिः निपेतुः सर्वतः दिशं गदा परिघ निस्त्रिंश मुसलाः स अश्म वर्षिणः ॥२५॥

स अश्म वर्षिणः	पत्थरोंकी वर्षा करता	सर्वतः दिशं	(उससे) चारों ओर
		गदा परिघ	गदा, डंडे,
गिरिः ततः	पर्वत फिर	निस्त्रिंश	
ख अदृश्यत	आकाशमें दीख पड़ा,	मुसलाः	खड्ग, मूसल
		निपेतुः	गिरने लगे ॥२५॥

अहयोऽशनिनिःश्वासा वमन्तोऽग्निं रुषाक्षिभिः ।
अभ्यधावन् गजा मत्ताः सिंहव्याघ्रश्च यूथशः ॥२६॥

अहयः अशनि निःश्वासा वमन्तः अग्निं रुषा अक्षिभिः अभ्यधावन् गजा मत्ताः सिंह व्याघ्र वरूथशः ॥२६॥

अशनि		**मत्ताः गजा**	पागल हाथी
निःश्वासा	वज्रकी तरह फुफकारते	**सिंह व्याघ्र**	सिंह और बाघ
		वरूथशः	झुंडके झुंड
रुषा अक्षिभिः	क्रुद्ध होकर आंखोंसे	**अभ्यधावन्**	चारों ओर दौड़ने लगे ॥२६॥
अग्निं वमन्तः	आग उगलने लगे,		

समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन् सर्वतो भुवम् ।
आससाद महाह्रादः कल्पान्त इव भीषणः ॥२७॥

समुद्र ऊर्मिभिः भीमः प्लावयन् सर्वतः भुवं आससाद महाह्रादः कल्पान्त इव भीषणः ॥२७॥

कल्पान्त इव		**प्लावयन्**	डुबाता हुआ
भीषणः	प्रलय कालके समान भयानक	**महाह्रादः**	महागर्जन करता
		समुद्र आससाद	समुद्र बढ़ आया ॥२७॥
भीमः ऊर्मिभिः	भयङ्कर लहरोंसे		
सर्वतः भुवं	सब ओरसे पृथ्वीको		

एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनाम् ।
ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययासुराः ॥२८॥

एवं विधानि अनेकानि त्रासनानि अन्य मनस्विनां ससृजुः तिग्म गतयः आसुर्या मायया असुराः ॥२८॥

असुराः	असुर (यक्षों) ने	**त्रासनानि**	डरानेवाली
आसुर्या मायया	आसुरी मायासे	**तिग्म गतयः**	तीक्ष्ण (उग्र) परिस्थितियाँ
एवं विधानि	इस प्रकारकी		
अनेकानि	अनेकों	**ससृजुः**	निर्मित कीं ॥२८॥
अन्य मनस्विनां	दूसरे मनस्वियोंको		

ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्तराम् ।
निशाम्य तस्य मुनयः शमाशंसन् समागताः ॥२९॥

ध्रुवे प्रयुक्तां असुरैः तां मायां अतिदुस्तरां निशाम्य तस्य मुनयः शं आशंसन् समागताः ॥२९॥

असुरैः	असुर (यक्षों) द्वारा
तां अतिदुस्तरां मायां ध्रुवे	उस अत्यन्त दुस्तर
प्रयुक्तां	मायाका प्रयोग ध्रुवपर हुआ
निशाम्य	देखकर
तस्य शं आशंसन्	उसकी शान्ति चाहते
मुनयः	
समागताः	कुछ मुनि आ गये ॥२९॥

मुनय ऊचुः–

औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा
देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान् ।
यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा
लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम् ॥३०॥

औत्तानपादे भगवान् तव शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोति अवनत आर्तिहरः विपक्षान् यत् नामधेयं अभिधाय निशम्य च अद्धा लोकः अञ्जसा तरति दुस्तरं अङ्ग मृत्युम् ॥३०॥

अङ्ग देवः	प्यारे प्रभु !
शार्ङ्गधन्वा	शारंगधन्वा !
यत् नामधेयं	जिस (आपके) नामोंको
अद्धा	भली प्रकार
अभिधाय निशम्य च	उच्चारण करके तथा सुनकर
दुस्तरं मृत्युं	दुष्पार मृत्युको
लोकः अञ्जसा तरति	लोग अनायास पार कर लेते हैं
भगवान् अवनत आर्तिहरः	भगवन् शरणागत विपत्ति-हारी !
औत्तानपादे	उत्तानपादके पुत्र ध्रुव
तव विपक्षान् क्षिणोति	आपके विरोधियोंका क्षय करें ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे दशमोऽध्यायः ।

अथ एकादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः ।
संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम् ॥१॥

निशम्य गदतां एवं ऋषीणां धनुषि ध्रुवः संदधे अस्त्रं (अप्) उपस्पृश्य यत् नारायण निर्मितम् ॥१॥

एवं ऋषीणां	इस प्रकार ऋषियोंकी
गदतां निशम्य	बात सुनकर
ध्रुवः (अप्) उपस्पृश्य	ध्रुवने आचमन करके
यत् नारायण निर्मितं	जो भगवान नारायण द्वारा निर्मित था
अस्त्रं धनुषि सन्दधे	वह अस्त्र धनुषपर चढ़ाया ॥१॥

संधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिर्मिताः ।
क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥२॥

सन्धीयमान एतस्मिन् माया गुह्यक निर्मिताः क्षिप्रं विनेशुः विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥२॥

विदुर	विदुर !
एतस्मिन् सन्धीयमाने	उस (अस्त्र) के सन्धान करनेपर
गुह्यक निर्मिताः माया क्षिप्रं विनेशुः	यक्षों द्वारा प्रकट की गयी माया शीघ्र नष्ट हो गयी,
यथा ज्ञानोदये क्लेशा	जैसे ज्ञान हो जानेपर (अविद्यादि) क्लेश (नष्ट हो जाते हैं) ॥२॥

तस्यार्षास्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः
सुवर्णपुङ्खाः कलहंसवाससः ।
विनिःसृता आविविशुर्द्विषद्बलं
यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः ॥३॥

तस्य आर्षं अस्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः सुवर्णपुङ्खाः कलहंस वाससः विनिः सृता आविविशुः द्विषत् बलं यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः ॥३॥

तस्य आर्षं	उस ऋषि (नारायण) निर्मित	विनिःसृता	निकलकर
		द्विषत् बलं	शत्रु सेनामें
अस्त्रं धनुषि	अस्त्रको धनुषपर	आविविशुः	प्रविष्ट हुए
प्रयुञ्जतः	चढ़ाते ही	यथा वनं	जैसे वनमें
सुवर्णपुङ्खाः	सोनेके फल और	भीमरवाः	
कलहंस वाससः	राजहंसके पंखवाले (वाण)	शिखण्डिनः	उग्रध्वनि मोर (प्रवेश करते हैं)॥३॥

तैस्तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखै-
रितस्ततः पुण्यजना उपद्रुताः ।
तमभ्यधावन् कुपिता उदायुधाः
सुपर्णमुन्नद्धफणा इवाहयः ॥४॥

तैः तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखैः इतः ततः पुण्यजनाः उपद्रुताः तं अभ्यधावन् कुपिता उदायुधाः सुपर्णं उन्नद्ध फणा इव अहयः ॥४॥

तैः तिग्मधारैः	उन तीक्ष्ण धारवाले	सुपर्णं	गरुड़की ओर
शिलीमुखैः	वाणोंसे	उन्नद्ध फणा	फण उठाये
प्रधने पुण्यजनाः	युद्धमें यक्ष	अहयः इव	सर्पोंकी भाँति
इतः ततः		उदायुधाः	
उपद्रुताः	जहाँ-तहाँ बेचैन हो गये,	अभ्यधावन्	शस्त्र उठाकर दौड़े ॥४॥
कुपिता तं	क्रुद्ध होकर उन (ध्रुव) की ओर		

स तान् पृषत्कैरभिधावतो मृधे
निकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरान् ।
निनाय लोकं परमर्कमण्डलं
व्रजन्ति निर्भिद्य यमूर्ध्वरेतसः ॥५॥

स तान् पृषत् कैः अभिधावतः मृधे निकृत्त बाहु उरु शिरोधर उदरान् निनाय लोकं परं अर्क मण्डलं व्रजन्ति निर्भिद्य यं उर्ध्वरेतसः ॥५॥

स तान्	उन (ध्रुव) ने उन (यक्षों) को	**अर्क मण्डलं**	
कैः पृषत्	अपने सामने	**निर्भिद्य**	सूर्य मण्डलका वेधन करके
मृधे		**यं उर्ध्वरेतसः**	जहाँ आजन्म ब्रह्मचारी
अभिधावतः	युद्धमें दौड़कर आते (देखकर)	**व्रजन्ति**	जाते हैं (उस)
बाहु उरु	भुजा, जांघें,	**परं लोकं**	
शिरोधर	कन्धे	**निनाय**	परमलोकमें भेज दिया* ॥५॥
उदरान् निकृत्त	पेट काट कर		

तान् हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यका-
ननागसश्चित्ररथेन भूरिशः ।
औत्तानपादिं कृपया पितामहो
मनुर्जगादोपगतः सहर्षिभिः ॥६॥

तान् हन्यमानान् अभिवीक्ष्य गुह्यकान् अनागसः चित्ररथेन भूरिशः औत्तानपादिं कृपया पितामहः मनुः जगाद उपगतः सहर्षिभिः ॥६॥

तान् अनागसः	उन निरपराध	**चित्ररथेन**	विचित्र रथमें बैठे (ध्रुव द्वारा
गुह्यकान्	यक्षोंको		

---

* शास्त्र-वाणी है कि सम्मुख, युद्धमें मारे वीर योगीके समान सूर्य-मण्डल वेधकर परमलोक जाते हैं।

हन्यमानान्	मारे जाते हुए	**सर्षिभिः**	ऋषियोंके साथ
अभिवीक्ष्य	देखकर	**उपगतः**	पास आकर
कृपया	कृपापूर्वक	**औत्तानपादिं**	उत्तानपाद-नन्दनसे
पितामहः मनुः	पितामह मनु	**जगाद**	बोले ॥६॥

मनुरुवाच–

अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना ।
येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ॥७॥

अलं वत्स अतिरोषेण तमः द्वारेण पाप्मना येन पुण्यजनान् एतान् अवधीः त्वं अनागसः ॥७॥

वत्स !	बेटा !	**अनागसः एतान् पुण्यजनान्**	निरपराध इन
तमः द्वारेण	नरकके द्वार	**अवधीः**	यक्षोंको मारा
पाप्मना	पाप करानेवाले		है ॥७॥
अतिरोषेण अलं	बहुत क्रोधको रोको,		
येन त्वं	जिसके कारण तुमने		

नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्विगर्हितम् ।
वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥८॥

न अस्मत् कुलोचितं तात कर्म एतत् सत् विगर्हितं वधः यत् उपदेवानां आरब्धः ते अकृत एनसाम् ॥८॥

यत् ते	जो तुमने	**सत् विगर्हितं**	सज्जनों द्वारा निन्दित
एनसां अकृत	अपराध न करनेवाले	**एतत् कर्म**	यह कर्म
उपदेवानां	उपदेवताओंका	**अस्मत् कुलोचितं न**	हमारे कुलके लिए उचित नहीं है ॥८॥
वधः आरब्धः	वध प्रारम्भ किया है,		
तात	तात !		

नन्वेकस्यापराधेन प्रसङ्गाद् बहवो हताः ।
भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयाङ्ग भ्रातृवत्सल ॥९॥

ननु एकस्य अपराधेन प्रसङ्गात् बहवः हताः भ्रातुर्वध अभितप्तेन त्वया अङ्ग भ्रातृ वत्सल ॥९॥

अङ्ग	प्रिय !	**एकस्य**	
भ्रातुर्वध		**अपराधेन**	एकके अपराधके
अभितप्तेन	भाईके वधसे संतप्त		कारण
त्वया भ्रातृ		**प्रसङ्गात्**	उसके साथके कारण
वत्सल	तुम भ्रातृवत्सल	**बहवः हताः**	बहुतसे (यक्ष) मारे
	द्वारा		गये ॥९॥
ननु	निश्चय		

नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् ।
यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥१०॥

न अयं मार्गः हि साधूनां हृषीकेश अनुवर्तिनां यत् आत्मानं पराक् गृह्य पशुवत् भूत वैशसम् ॥१०॥

यत् आत्मानं	जो (जड़) शरीरको	**हृषीकेश**	
पराक् गृह्य	आत्मा मानकर	**अनुवर्तिनां**	भगवान हृषीकेशके
पशुवत्	पशुओंके समान		अनुचर
भूत वैशसं	प्राणियोंकी हिंसा	**साधूनां न**	सत्पुरुषोंका नहीं
	करता है		है ॥१०॥
हि अयं मार्गः	निश्चय यह मार्ग		

सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् ।
आराध्याप दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥११॥

सर्वभूत आत्मभावेन भूत आवासं हरिं भवान् आराध्य आप दुराराध्यं विष्णोः तत् परमं पदम् ॥११॥

भवान्	तुमने	**भूत आवासं**	
सर्वभूत		**हरिं**	सब प्राणियोंमें रहने
आत्मभावेन	सब प्राणियोंमें		वाले श्रीहरिकी
	आत्मभाव करके	**आराध्य**	आराधना करके

तत् दुराराध्यं विष्णोः	उस दुष्प्राप्य	**आप**	प्राप्त किया ॥११॥
परमं पदं	भगवान विष्णुके परम-पदको		

स त्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि सम्मतः ।
कथं त्ववद्यं कृतवाननुशिक्षन् सतां व्रतम् ॥१२॥

स त्वं हरेः अनुध्यातः तत् पुंसां अपि सम्मतः कथं तु अवद्यं कृतवान् अनुशिक्षन् सतां व्रतम् ॥१२॥

त्वं हरेः		**सतां व्रतं**	सत्पुरुषोंकी रहनी
अनुध्यातः	तुम श्रीहरिके प्रिय हो,	**अनुशिक्षन्**	सिखलानेवाले होकर
तत् पुंसां अपि	उनके भक्तोंके भी	**स तु कथं**	उस तुमने तो कैसे
सम्मतः	सम्मानित हो,	**अवद्यं कृतवान्**	निन्दनीय कर्म किया ॥१२॥

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु ।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति ॥१३॥

तितिक्षया करुणया मैत्र्या च अखिल जन्तुषु समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति ॥१३॥

तितिक्षया	(दूसरों द्वारा प्राप्त कष्टको)सहन करके,	**अखिल जन्तुषु**	सम्पूर्ण प्राणियोंमें
करुणया	(दुःखियोंपर) दया करके,	**समत्वेन च**	समत्व रखनेसे ही
च मैत्र्या	तथा (बराबर वालोंसे) मित्रता करके,	**सर्वात्मा भगवान्**	सबके आत्मा भगवान
		सम्प्रसीदति	पूर्ण प्रसन्न होते हैं ॥१३॥

सम्प्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ।
विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ॥१४॥

सम्प्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैः गुणैः विमुक्तः जीव निर्मुक्तः ब्रह्म निर्वाणं ऋच्छति ॥१४॥

भगवति		**विमुक्तः**	छूटकर
सम्प्रसन्ने	भगवानके पूर्ण प्रसन्न होनेपर	**जीव निर्मुक्तः**	जीवत्वसे छूटकर
		ब्रह्म निर्वाणं	
पुरुषः प्राकृतैः		**ऋच्छति**	ब्रह्म-निर्वाण पाता है ॥१४॥
गुणैः	पुरुष प्रकृतिके गुणोंसे		

भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि ।
तयोर्व्यवायात्सम्भूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ॥१५॥

भूतैः पञ्चभिः आरब्धैः योषित् पुरुष एव हि तयोः व्यवायात् सम्भूतिः योषित् पुरुषयोः इह ॥१५॥

हि योषित्		**तयोः**	
पुरुष एव	क्योंकि स्त्री-पुरुष दोनोंका ही	**व्यावायात्**	उन्हींके समागमसे
		इह योषित्	
पञ्चभिः भूतैः	(शरीर) पञ्च महाभूतोंसे	**पुरुषयोः**	इस संसारमें स्त्री-पुरुषकी
आरब्धैः	बना हुआ है,	**सम्भूतिः**	उत्पत्ति होती है ॥१५

एवं प्रवर्त्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च ।
गुणव्यतिकराद्राजन् मायया परमात्मनः ॥१६॥

एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च गुण व्यतिकरात् राजन् मायया परमात्मनः ॥१६॥

राजन्	राजन् ।	**स्थितिः**	स्थिति,
परमात्मनः		**संयम एव च**	तथा प्रलय भी
मायया	परमात्माकी मायासे	**गुण व्यतिकरात्**	गुणोंमें विकार होनेसे
सर्गः एवं	संसारकी इस प्रकार	**प्रवर्तते**	चलता रहता है ॥१६

निमित्तमात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः ।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥१७॥

निमित्त मात्रं तत्र आसीत् निर्गुणः पुरुषर्षभः व्यक्त अव्यक्तं इदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥१७॥

पुरुषर्षभ	पुरुष श्रेष्ठ !	**इदं विश्वं**	यह जगत्
तत्र निर्गुणः	इसमें निर्गुण (परमात्मा)	**व्यक्त अव्यक्तं**	कार्य-कारणात्मक
		यत्र लोहवत्	जिसमें (चुम्बकके समीप) लोहेके समान
निमित्त मात्रं	केवल निमित्त		
आसीत्	है	**भ्रमति**	घूमता रहता है ॥१७

स खल्विदं भगवान् कालशक्त्या
गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ।
करोत्यकर्तैव निहन्त्यहन्ता
चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥१८॥

स खलु इदं भगवान् कालशक्त्या गुण प्रवाहेण विभक्त वीर्यः करोति अकर्तैव निहन्ति अहन्ता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥१८॥

खलु स इदं भगवान्	निश्चय वही ये भगवान	**अकर्तैव करोति**	अकर्ता रहते ही करते हैं,
कालशक्त्या	(अपनी) काल-शक्तिसे	**अहन्ता निहन्ति**	अहिंसक रहते ही मारते हैं
गुण प्रवाहेण	गुणोंमें क्षोभ होनेसे	**विभूम्नः चेष्टा**	उन सर्वव्यापककी चेष्टा
विभक्त वीर्यः	अपनी शक्तियोंको (ब्रह्मा, रुद्र रूपमें) बाँटकर	**खलु दुर्विभाव्या**	निश्चय अनुमानसे परे है ॥१८॥

सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ।
जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥१९॥

स अनन्तः अन्तकरः कालः अनादिः आदि कृत् अव्ययः जनं जनेन जनयन् मारयन् मृत्युना अन्तकम् ॥१९॥

स अनन्तः	वे अनन्त	**जनं जनेन**	
अन्तकरः	(सबका) अन्त करनेवाले	**जनयन्**	लोगोंको लोगोंसे ही उत्पन्न करते,
कालः अनादिः	काल, अनादि	**अन्तकं**	मारनेवालेको भी
आदि कृत्	(सबका) प्रारम्भ करनेवाले	**मृत्युना मारयन्**	मृत्यु द्वारा मार देते हैं ॥१९॥
अव्ययः	अविनाशी हैं।		

न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वा
परस्य मृत्योर्विशतः समं प्रजाः ।
तं धावमानमनुधावन्त्यनीशा
यथा रजांस्यनिलं भूतसङ्घाः ॥२०॥

न वै स्वपक्षः अस्य विपक्ष एव वा परस्य मृत्योः विशतः समं प्रजाः तं धावमानं अनुधावन्ति अनीशा यथा रजांसि अनिलं भूतसङ्घाः ॥२०॥

वै अस्य	निश्चय इनका परम पुरुषका	**यथा रजांसि अनिलं**	जैसे धूलि वायुके साथ (उड़ती है)
न स्वपक्षः	न कोई अपना पक्ष है,	**तं धावमानं**	उनके गतिशील होनेपर
एव वा विपक्षः	अथवा कोई विपक्ष है,	**अनीशा भूत-सङ्घाः अनुधावन्ति**	विवश प्राणि-समूह उनके पीछे दौड़ते हैं ॥२०॥
मृत्योः प्रजाः समं विशतः	मृत्युरूपसे प्रजामें शान्तिके लिए प्रविष्ट हैं		

आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः ।
उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ ॥२१॥

आयुषः अपचयं जन्तोः तथैव उपचयं विभुः उभाभ्यां रहितः स्वस्थः दुःस्थस्य विदधाति असौ ॥२१॥

दुःस्थस्य	कर्म बन्धनसे बँधे	उभाभ्यां	
जन्तोः आयुषः	जीवकी आयुका	रहितः	इन दोनोंसे रहित
अपचयं तथैव		असौ विभुः	ये सर्वव्यापक
उपचयं	ह्रास तथा वृद्धिका		भगवान
		विदधाति	विधान करते हैं ॥२१॥

केचित्कर्म वदन्त्येनं स्वभावमपरे नृप ।
एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥२२॥

केचित् कर्म वदन्ति एनं स्वभावं अपरे नृप एके कालं परे दैवं पुंसः कामं उत अपरे ॥२२॥

नृप	राजन् !	परे दैवं	दूसरे भाग्य
एनं केचित्	इसीको कोई	उत अपरे	तथा दूसरे
कर्म अपरे		पुंसः कामं	भगवानकी इच्छा
स्वभावं	कर्म, दूसरे प्रकृति,	वदन्ति	कहते हैं ॥२२॥
एके कालं	कोई-कोई काल (समयका प्रभाव)		

अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नानाशक्त्युदयस्य च ।
न वै चिकीर्षितं तात को वेदाथ स्वसम्भवम् ॥२३॥

अव्यक्तस्य अप्रमेयस्य नाना शक्ति उदयस्य च न वै चिकीर्षितं तात कः वेद अथ स्वसम्भवम् ॥२३॥

तात	तात !	वै चिकीर्षितं	वे निश्चित क्या करना चाहते हैं,
अव्यक्तस्य	प्रमाणातीत,		
अप्रमेयस्य	अप्रमेय,	वेद न	(कोई) नहीं जानता,
च नाना शक्ति		स्वसम्भवं	अपने उत्पन्नकर्ताको
उदयस्य	तथा नाना शक्तियोंके कारण	कः वेद	कौन जान सकता है ॥२३॥

न चैते पुत्रक भ्रातुर्हन्तारो धनदानुगाः ।
विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥२४॥

न च एते पुत्रक भ्रातुः हन्तारः धनद अनुगाः विसर्गात् आनयोः तात पुंसः दैवं हि कारणम् ॥२४॥

तात पुत्रक	तात ! मेरे नन्हे मुन्ने !
एते धनद अनुगाः च भ्रातुः हन्तारः न	ये कुबेरके अनुचर तो (तुम्हारे) भाईके हत्यारे नहीं हैं,
हि पुंसः विसर्गात्	क्योंकि पुरुषके
आनयोः कारणं दैवं	जन्म-मरणका कारण ईश्वर है ॥२४॥

स एव विश्वं सृजति स एवावति हन्ति च ।
अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ॥२५॥

स एव विश्वं सृजति स एव अवति हन्ति च अथ अपि हि अनहंकारात् न आज्यते गुण कर्मभिः ॥२५॥

स एव विश्वं सृजति	वही विश्वकी सृष्टि करता है,
स एव अवति हन्ति च	वही रक्षा करता है तथा मारता भी है,
अथ अपि हि अनहंकारात्	फिर भी क्योंकि अहंकार रहित है
गुण कर्मभिः आज्यते न	गुण तथा कर्मोंसे लिप्त नहीं होता ॥२५

एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः ।
स्वशक्त्या मायया युक्तः सृजत्यत्ति च पाति च ॥२६॥

एष भूतानि भूतात्मा भूत ईशः भूत भावनः स्व शक्त्या मायया युक्तः सृजति अत्तिच पाति च ॥२६॥

एष भूतात्मा	यह सब प्राणियोंका आत्मा
भूत ईशः	सब प्राणियोंका स्वामी
भूत भावनः	सब प्राणियोंका सर्जक
स्व मायया शक्त्या युक्तः	अपनी माया-शक्तिसे युक्त होकर
भूतानि सृजति	प्राणियोंको उत्पन्न करता है,
अत्ति च	खा लेता है और
पाति च	पालन भी करता है ॥२६॥

तमेव मृत्युममृतं तात दैवं
सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणम् ।
यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति
गावो यथा वै नसि दामयन्त्रिताः ॥२७॥

तं एव मृत्युं अमृतं तात दैवं सर्वात्मना उपेहि जगत परायणं यस्मै बलिं विश्वसृजः हरन्ति गावः यथा वै नसि दाम यन्त्रिताः ॥२७॥

तात	तात !
तं एव मृत्युं	**उसी मृत्यु एवं**
अमृतं दैवं	**अमृत स्वरूप ईश्वर**
जगत् परायणं	संसारके आश्रयकी
सर्वात्मना उपेहि	सम्पूर्ण मनसे शरण लो,
यथा नसि दाम-	
यन्त्रिताः	जैसे नाकमें रस्सी डालकर नियन्त्रित
गावः	बैल हों (ऐसे)
विश्वसृजः	प्रजापति लोग
यस्मै बलिं	
हरन्ति	जिसे उपहार देते हैं ॥२७॥

यः पञ्चवर्षो जननीं त्वं विहाय
मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा ।
वनं गतस्तपसा प्रत्यगक्ष-
माराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥२८॥

यः पञ्चवर्षः जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्याः वचसा भिन्न मर्मा वनं गतः तपसा प्रत्यक् अक्षं आराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥२८॥

यः त्वं	जो तुम
सपत्न्याः मातुः	सौतेली माताके
वचसा	
भिन्न मर्मा	वाणीसे व्यथित चित्त
पञ्चवर्षः	पांच वर्षकी आयुमें
जननीं विहाय	माताको छोड़कर
तपसा वनं गतः	तपस्या करने वनमें गये,
प्रत्यक् अक्षं	(वहाँ) भगवान अधोक्षजकी
आराध्य	आराधना करके
त्रिलोक्याः	
मूर्ध्नि	त्रिलोकीके मस्तकपर
पदं लेभे	स्थान प्राप्त किया ॥२८॥

तमेनमङ्गात्मनि मुक्तविग्रहे
व्यपाश्रितं निर्गुणमेकमक्षरम् ।
आत्मानमन्विच्छ विमुक्तमात्मदृग्
यस्मिन्निदम्भेदमसत् प्रतीयते ॥२९॥

तं एनं अङ्ग आत्मनि मुक्त विग्रहे व्यपाश्रितं निर्गुणं एकं अक्षरं आत्मानं अन्विच्छ विमुक्तं आत्मदं यस्मिन् इदं भेदं असत् प्रतीयते ॥२९॥

अङ्ग	प्रिय ध्रुव !
मुक्त विग्रहे	शत्रुताहीन
आत्मनि	चित्तमें
व्यपाश्रितं	विद्यमान
तं एनं	उन इन
निर्गुणं एकं	निर्गुण, अद्वितीय,
अक्षरं	अविनाशी
आत्मानं	परमात्मा
विमुक्तम् आत्मदृ	मुक्त पुरुषोंका अपनेको ही दे देने वाले (भगवान) की
अन्विच्छ	शरण लो,
यस्मिन् इदं	जिसमें यह (जगतका)
भेदं असत्	भेद न होनेपर भी
प्रतीयते	प्रतीत हो रहा है ॥२ ॥

त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त
आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ ।
भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्या-
ग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ॥३०॥

त्वं प्रत्यक् आत्मनि तदा भगवति अनन्त आनन्द मात्र उपपन्न समस्त शक्तौ भक्तिं विधाय परमां शनकैः अविद्या ग्रन्थिं विभेत्स्यसि मम अहं इति प्ररुढम् ॥३०॥

तदा त्वं	तब (ऐसा करनेपर) तुम
प्रत्यक् आत्मनि	अपने अन्तरात्मा
भगवति अनन्त	भगवान अनन्त
आनन्द मात्र	आनन्दघन
समस्त शक्तौ	
उपपन्न	सर्वशक्ति सम्पन्नकी

परमां भक्तिं विधाय	परम भक्ति करके	मम अहं इति प्ररूढं ग्रन्थिम्	'मेरा-मैं' इस दृढ़ ग्रन्थिको
शनकैः अविद्या	धीरे-धीरे अविद्याकी	विभेत्स्यसि	काट सकोगे ॥३०॥

संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् ।
श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथाऽऽमयम् ॥३१॥

संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परं श्रुतेन भूयसा राजन् अगदेन यथा आमयम् ॥३१॥

राजन्	राजन् !	श्रेयसां परं प्रतीपं	कल्याण मार्गके अत्यन्त विरोधी
भूयसा श्रुतेन	मेरे इस) बहुत उपदेशसे	रोषं संयच्छ	क्रोधको नियन्त्रित करो,
यथा अगदेन आमयं	जैसे औषधिसे। रोग (दूर किया जाता है)	ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो ॥३१॥

येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् ।
न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ॥३२॥

येन उपसृष्टात् पुरुषात् लोक उद्विजते भृशं न बुधः तत् वशं गच्छेत् इच्छन् अभयं आत्मनः ॥३२॥

येन उपसृष्टात्	जिस (क्रोधसे) अभिभूत	बुधः आत्मनः अभयं इच्छन्	बुद्धिमान अपनी निर्भयता चाहते हुए
पुरुषात् लोक भृशं उद्विजते	पुरुषसे लोग बहुत उद्विग्न होते हैं,	तत् वशं न गच्छेत्	उसके वशमें न हो ॥३२॥

हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् ।
यज्जघ्निवान् पुण्यजनान् भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥३३॥

हेलनं गिरिशः भ्रातुः धनदस्य त्वया कृतं यत् जघ्निवान् पुण्यजनान् भ्रातृघ्नान् इति अमर्षितः ॥३३॥

भ्रातृघ्नान् इति	ये मेरे भाईके हत्यारे हैं (ऐसा)	**गिरिशः भ्रातुः**	भगवान शंकरके भाई
		धनदस्य	कुबेरका
अमर्षितः	असहनशील होकर	**त्वया हेलनं कृतं**	तुमने अवहेलना की है ॥३३॥
यत् पुण्यजनान्	जो यक्षोंको		
जघ्निवान्	(तुमने) मारा है (यह)		

तं प्रसादय वत्साशु संनत्या प्रश्रयोक्तिभिः ।
न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥३४॥

तं प्रसादय वत्स आशु संनत्या प्रश्रय उक्तिभिः न यावत् महतां तेजः कुलं नः अभिभविष्यति ॥३४॥

वत्स तं आशु	वत्स ! उन्हें शीघ्र	**नः कुलं**	हमारे कुलको
सन्नत्या	प्रणाम करके,	**अभिभविष्यति**	
प्रश्रय उक्तिभिः	विनयपूर्ण वाणीसे	**न**	आक्रान्त नहीं कर लेता ॥३४॥
प्रसादय	प्रसन्न करो !		
यावत् महतां			
तेजः	जब तक उन महान पुरुषका तेज		

*मैत्रेय उवाच**–

एवं स्वायम्भुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम् ।
तेनाभिवन्दितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ॥३५॥

एवं स्वायम्भुवः पौत्रं अनुशास्य मनुः ध्रुवं तेन अभिवन्दितः सार्कं ऋषिभिः स्वपुरं ययौ ॥३५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

एवं स्वायम्भुवः मनुः	इस प्रकार स्वयम्भू मनु
पौत्रं ध्रुवं अनुशास्य	अपने पौत्र ध्रुवको आज्ञा देकर
तेन अभिवन्दितः	उनके द्वारा वन्दना किये जानेपर
ऋषिभिः साकं	ऋषियोंके साथ
स्वपुरं ययौ	अपने लोक चले गये ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे एकादशोऽध्यायः।

अथ द्वादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुद्धच वैशसा-
दपेतमन्युं भगवान् धनेश्वरः ।
तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः
संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृताञ्जलिम् ॥१॥

ध्रुवं निवृत्तं प्रति बुद्धच वैशसात् अपेत मन्युं भगवान् धनेश्वरः तत्र आगतः चारण यक्ष किन्नरैः संस्तूयमानः अभ्यवदत् कृताञ्जलिम् ॥१॥

वैशसात् निवृत्तं	(यक्षोंकी) हिंसा छोड़कर	चारण यक्ष किन्नरैः	चारण, यक्ष, किन्नरों द्वारा
मन्युं अपेत	क्रोध रहित हुए	संस्तूयमानः	स्तुत होते
ध्रुवं प्रति बुद्धच	ध्रुवको जानकर	तत्र आगतः	वहाँ आये और
भगवान् धनेश्वरः	भगवान कुबेर	कृताञ्जलि अभ्यवदत्	हाथ जोड़े (ध्रुव) से बोले ॥१॥

धनद उवाच-

भो भोः क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ ।
यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः ॥२॥

भो भोः क्षत्रिय दायाद परितुष्टः अस्मि ते अनघ यः त्वं पितामह आदेशात् वैरं दुस्त्यजं अत्यजः ॥२॥

भो भोः क्षत्रिय दायाद	हे क्षत्रिय कुमार !	अनघ	तुम निष्पाप हो,
		यः त्वं	जो तुमने

पितामह		**अत्यजः**	त्याग दी (अतः)
आदेशात्	अपने पितामहकी आज्ञासे	**ते परितुष्टः अस्मि**	तुमपर बहुत प्रसन्न हूं ॥२॥
दुस्त्यजं वैरं	दुस्त्याज्य शत्रुता		

न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव ।
काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः ॥३॥

न भवान् अवधीत् यक्षान् न यक्षा भ्रातरं तव काल एव हि भूतानां प्रभुः अप्यय भावयोः ॥३॥

भवान् यक्षान्	तुमने यक्षोंको	**हि भूतानां**	क्योंकि प्राणियोंके
न अवधीत्	नहीं मारा,	**अप्यय भावयोः**	मरण-जन्मका
न तव भ्रातरं	न तुम्हारे भाईको	**प्रभुः काल एव**	स्वामी काल ही है ॥४॥
यक्षा	यक्षोंने (मारा)		

अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि ।
स्वाप्नीवाभात्यतद्ध्यानाद्यया बन्धविपर्ययौ ॥४॥

अहं त्वं इति अपार्था धीः अज्ञानात् पुरुषस्य हि स्वाप्नी इव आभाति अतत् ध्यानात् यया बन्ध विपर्ययौ ॥४॥

हि अहं त्वं इति	क्योंकि 'मैं-तुम' इस प्रकारकी	**अतत् ध्यानात्**	शरीरादिको आत्मा माननेसे
अपार्था धीः	मिथ्या बुद्धि	**आभाति**	होती है,
पुरुषस्य अज्ञानात्	पुरुषको अज्ञानसे	**यया बन्ध विपर्ययौ**	जिससे बन्धन एवं (दुःखादि) विपरीत दशा मिलती है ॥४॥
स्वाप्नी इव	स्वप्नके समान		

तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तमधोक्षजम् ।
सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥५॥

तद् गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तं अधोक्षजं सर्वभूत आत्म भावेन सर्वभूत आत्म विग्रहम् ॥५॥

तद् ध्रुव गच्छ	अतः ध्रुव जाओ,	सर्वभूत आत्म विग्रहं	अपनेको सब प्राणि रूप समझकर
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो,	भगवन्तं	
सर्वभूत आत्म भावेन	सब प्राणियोंको अपना आत्मा समझ कर	अधोक्षजं	भगवान्‌को अधोक्षज (इन्द्रियातीत) जानकर ॥५॥

भजस्व भजनीयाङ्घ्रिमभवाय भवच्छिदम् ।
युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्याऽऽत्ममायया ॥६॥

भजस्व भजनीय अङ्घ्रि अभवाय भवच्छिदं युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्या आत्ममायया ॥६॥

गुणमय्या	गुणमयी	भजनीय अङ्घ्रि	भजन करने योग्य श्रीचरण
आत्ममायया	अपनी माया	अभवाय	(भगवानका) मोक्षके लिए
शक्त्या युक्तं	शक्तिसे युक्त (होकर भी)	भजस्व	भजन करो ॥६॥
विरहितं	इनसे रहित		
भवच्छिदं	आवागमन नाशक		

वृणीहि कामं नृप यन्मनोगतं
मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशङ्कितः ।
वरं वरार्होऽम्बुजनाभपादयो-
रनन्तरं त्वां वयमङ्ग शुश्रुम ॥७॥

वृणीहि कामं नृप यन् मनोगतं मत्तः त्वं औत्तानपदे अविशङ्कितः वरं वरार्हः अम्बुजनाभ पादयोः अनन्तरं त्वां वयं अङ्ग शुश्रुम ॥७॥

नृप	राजन् !	औत्तानपदे	उत्तानपाद-नन्दन !
यन् मनोगतं	(तुम्हारे) जो मनमें आवे	अविशङ्कितः	निःशंक होकर
मत्तः त्वं	मुझसे तुम	वरं वृणीहि	वरदान मांग लो,

अंग त्वां वयं शुश्रुम	प्रिय ! तुमको हम सुनते हैं कि	अनन्तरं	निरन्तर रहते हो (अतः)
अम्बुजनाभ पादयोः	भगवान पद्मनाभके चरणोंमें	वरार्हः	वरदान पाने योग्य हो ॥७॥

मैत्रेय उवाच–

स राजराजेन वराय चोदितो
ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ।
हरौ स वव्रेऽचलितां स्मृतिं यया
तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ॥८॥

स राजराजेन वराय चोदितः ध्रुवः महाभागवतः महामतिः हरौ स वव्रे अचलितां स्मृतिं यया तरन्ति अयत्नेन दुरत्ययं तमः ॥८॥

राजराजेन	यक्षराज कुबेर द्वारा	स्मृतिं वव्रे	स्मृति वरदानमें मांगी*
स ध्रुवः वराय	वे ध्रुव वरदान मांगनेकी	यया अयत्नेन	जिससे अनायास
चोदितः	प्रेरणा दिए जानेपर	दुरत्ययं तमः	दुष्पार अज्ञानसे
स महाभागवतः	उन महाभागवत	तरन्ति	पार हो जाते हैं ॥८॥
महामतिः	परम बुद्धिमानने		
हरौ अचलितां	भगवानकी निश्चल		

तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडस्ततः ।
पश्यतोऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥९॥

---

* सहज प्रश्न है—कुबेर यह वरदान दे सकते हैं ? कुबेरने यह वरदान दिया, इसका अर्थ है कि उनके अधिकार क्षेत्रमें आना लोभ भगवत्-स्मृतिमें बाधक नहीं बनेगा ।

तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वा इडविडः ततः पश्यतः अन्तः दधे सः अपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥९॥

तस्य प्रीतेन मनसा	उनपर प्रसन्न चित्त होकर	**अन्तः दधे**	देखते-देखते अन्तर्धान हो गये ।
तां दत्त्वा	वह वरदान देकर	**सः अपि**	वे (ध्रुव) भी
ततः इडविडः पश्यतः	वहांसे कुबेरजी	**स्वपुरं प्रत्यपद्यत**	अपनी राजधानी चले गये ॥९॥

अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥१०॥

अथ अयजत यज्ञेशं क्रतुभिः भूरिदक्षिणैः द्रव्य क्रिया देवतानां कर्म कर्मफल प्रदम् ॥१०॥

द्रव्य क्रिया देवतानां	पदार्थ, क्रिया, देवताओंके,	**भूरिदक्षिणैः क्रतुभिः**	बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंसे
कर्म	कर्मके स्वरूप और	**अथ अयजत**	फिर आराधना की ॥१०॥
कर्मफल प्रदं	कर्मफलके दाता		
यज्ञेशं	भगवान् यज्ञेशका		

सर्वात्मन्यच्युतेऽसर्वे तीव्रौधां भक्तिमुद्वहन् ।
ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ॥११॥

सर्वात्मनि अच्युते असर्वे तीव्रौघां भक्ति उद्वहन् ददर्श आत्मनि भूतेषु तं एव अवस्थितं विभुम् ॥११॥

सर्वात्मनि	सर्वात्मा	**तं एव विभुं**	उन्हीं सर्वव्यापकको
असर्वे	और सबसे रहित	**आत्मनि भूतेषु**	अपनेमें और सब प्राणियोंमें
अच्युते	अच्युतमें	**अवस्थितं ददर्श**	स्थित देखने लगे ॥११॥
तीव्रौधां भक्ति	तीव्र वेगात्मक भक्ति		
उद्वहन्	करते हुए		

तमेवं शीलसम्पन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् ।
गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥१२॥

तं एवं शीलसम्पन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलं गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥१२॥

तं एवं शील-सम्पन्नं	उन ऐसे शील-सम्पन्न,	**धर्मसेतूनां गोप्तारं**	धर्म-मर्यादाके रक्षकको
ब्रह्मण्यं दीनवत्सलं	ब्राह्मण भक्त, दीनोंपर स्नेह करनेवाले,	**प्रजाः पितरं मेनिरे**	प्रजा अपना पिता मानने लगी ॥१२॥

षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमण्डलम् ।
भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥१३॥

षट् त्रिंशत् वर्ष साहस्रं शशास क्षितिमण्डलं भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन् अभोगैः अशुभ क्षयम् ॥१३॥

भोगैः	भोगोंके उपभोगसे	**षट् त्रिंशत्**	छत्तीस
पुण्यक्षयं	पुण्योंका क्षय तथा	**साहस्रं वर्षं**	हजार वर्ष
अभोगैः	भोगोंके त्यागसे (यज्ञादिके द्वारा)	**क्षितिमण्डलं शशास**	भूमंडलका शासन किया ॥१३॥
अशुभ क्षयं कुर्वन्	पापका क्षय करते हुए		

एवं बहुसवं कालं महात्माविचलेन्द्रियः ।
त्रिवर्गोपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥१४॥

एवं बहुसवं कालं महात्मा अविचल इन्द्रियः त्रिवर्ग उपयिकं नीत्वा पुत्राय अदात् नृपासनम् ॥१४॥

अविचल इन्द्रियः	जितेन्द्रिय	**एवं बहुसवं कालं**	इस प्रकार बहुत दिनोंका समय
महात्मा	महात्मा ध्रुवने		

त्रिवर्ग उपयिकं	अर्थ, धर्म, कामके सम्पादनमें	पुत्राय नृपासनं अदात्	पुत्र (उत्कल) को राजसिंहासन दे दिया ॥१४॥
नीत्वा	बिताकर		

मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि ।
अविद्यारचितस्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥१५॥

मन्यमान इदं विश्वं माया रचितं आत्मनि अविद्या रचितं स्वप्न गन्धर्व नगरोपमम् ॥१५॥

इदं विश्वं	इस विश्वको	आत्मनि माया रचितं	आत्मामें माया रचित
अविद्या रचितं	अविद्या-निर्मित	मन्यमान	मानते हुए ॥१५॥
स्वप्न गन्धर्व नगरोपमं	स्वप्न (अथवा) गन्धर्व-नगरके समान		

आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोश-
मन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ।
भूमण्डलं जलधिमेखलमाकलय्य
कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥१६॥

आत्म स्त्री अपत्य सुहृदः बलं ऋद्ध कोशं अन्तःपुरं परिविहार भुवः च रम्याः भूमण्डलं जलधिमेखलं आकलय्य काल उपसृष्टं इति स प्रययौ विशालाम् ॥१६॥

आत्म स्त्री अपत्य सुहृदः	शरीर, पत्नी, पुत्र, सम्बन्धी,	च जलधि-मेखलं	और समुद्रसे घिरे
बलं	सेना,	भूमण्डलं	पूरी पृथ्वीको
ऋद्ध कोशं	समृद्ध खजाना,	काल उपसृष्टं	कालके मुखमें पड़े हैं,
अन्तःपुरं रम्याः	जनाने-महल,	इति स विशालां प्रययौ	ऐसा जानकर वे बदरीनाथ चले गये ॥१६॥
परिविहार	रमणीय विहार-स्थली		

तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य
बद्ध्वाऽऽसनं जितमरुन्मनसाऽऽहृताक्षः ।
स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्
ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ॥१७॥

तस्यां विशुद्ध करणः शिव वारि विगाह्य बद्ध्वा आसनं जित मरुत् मनसा आहृत अक्षः स्थूले दधार भगवति प्रतिरूप एतत् ध्यायत् तत् व्यवहितः व्यसृजत् समाधौ ॥१७॥

तस्यां शिव वारि	वहाँ पवित्र जलमें	**भगवति एतत्**	भगवान्‌के इस
विगाह्य	स्नान करके	**स्थूले प्रतिरूप**	विराट् रूपका
विशुद्ध करणः	इन्द्रियोंको शुद्ध (शान्त) करके,	**ध्यायत्**	ध्यान करते हुए
आसनं बद्ध्वा	आसनसे बैठकर,	**तत् अव्यहितः**	उसमें (ध्याता, ध्यान, ध्येय रूप) भेद छूट जानेसे
जित मरुत्	प्राण वायुको जीतकर	**समाधौ**	समाधि लग जानेसे
मनसा आहृत अक्षाः	मनके द्वारा इन्द्रियों-को (हृदयमें) एकाग्र करके,	**व्यसृजत्**	उसे भी छोड़ दिया ॥१७॥

भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्र-
मानन्दवाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः ।
विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाचिताङ्गो
नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः ॥१८॥

भक्तिं हरौ भगवति प्रवहत् अजस्रं आनन्द वाष्प कलया मुहुः अर्द्यमानः विक्लिद्यमान हृदयः पुलक आचित अङ्गः न आत्मानं अस्मरत् असाः इति मुक्त लिङ्गः ॥१८॥

अजस्रं भगवति हरौ भक्तिं	निरन्तर भगवान श्रीहरिकी भक्ति	**प्रवहत् आनन्द वाष्प कलया**	करते रहनेसे आनन्दाश्रुका

मुहुः अर्द्यमानः	बार-बार (प्रवाह) चलता था,	आत्मानं असाः	अपनेको 'यह मैं हूँ ।
		इति न अस्मरत्	इस प्रकार स्मरण नहीं करते थे,
विक्लिद्यमान हृदयः	हृदय अत्यन्त द्रवित होता,	मुक्त लिङ्गः	लिङ्ग देह (देहाभिमान) छूट गया ॥१८॥
पुलक आचित अङ्गः	शरीर रोमाञ्चित होता,		

स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरद् ध्रुवः ।
विभ्राजयद्दश दिशो राकापतिमिवोदितम् ॥१९॥

स ददर्श विमान अग्र्यं नभसः अवतरत् ध्रुवः विभ्राजयत् दश दिशः राकापतिं इव उदितम् ॥१९॥

स ध्रुवः	उन ध्रुवने	विभ्राजयत्	प्रकाशित करते
उदितं राकापतिं		विमान अग्र्यं	श्रेष्ठ विमानको
इव	उदय हुए पूर्णिमाके चन्द्रके समान	ददर्श	देखा ॥१९॥
नभसः अवतरत्	आकाशसे उतरते		
दश दिशः	दसो दिशाओंको		

तत्रानु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ
श्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ ।
स्थिताववष्टभ्य गदां सुवाससौ
किरीटहाराङ्गदचारुकुण्डलौ ॥२०॥

तत्र अनु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोराः अरुण अम्बुज ईक्षणौ स्थिताः अवष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीट हार अङ्गद चारु कुण्डलौ ॥२०॥

तत्र अनु	उसमें	अरुण अम्बुज ईक्षणौ	लाल कमलके समान नेत्रों वाले
चतुर्भुजौ श्यामौ	चतुर्भुज, श्याम वर्ण,		
किशोराः	किशोरावस्थाके,		

सुवाससौ	उत्तम वस्त्र पहिने	गदां अवष्टभ्य	गदा लिए
किरीट हार		देवप्रवरौ	
अङ्गद	मुकुट, हार, अङ्गद,	स्थिताः	दो श्रेष्ठ देवता खड़े
चारु कुण्डलौ	सुन्दर कुण्डल पहिने		थे ॥२०॥

विज्ञाय तावुत्तमगायकिङ्करा-
वभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः ।
ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः
पार्षत्प्रधानाइति संहताञ्जलिः ॥२१॥

विज्ञाय ताः उत्तमगाय किङ्कराः अभ्युत्थितः साध्वस विस्मृत क्रमः ननाम नामानि गृणन् मधुद्विषः पार्षत् प्रधानाः इति संहत अञ्जलिः ॥२१॥

ताः उत्तमगाय	उनको उत्तम श्लोकका	मधुद्विषः	भगवान मधूसूदनके
किङ्कराः		पार्षत् प्रधानाः	प्रधान पार्षद हैं
विज्ञाय	सेवक जानकर	इति	ऐसा समझकर
साध्वस	हड़बड़ाहटमें	नामानि गृणन्	(भगवानके) नाम
विस्मृत क्रमः	(पूजादिका) क्रम		लेते हुए
	भूलकर	संहत अञ्जलिः	हाथ जोड़कर
अभ्युत्थितः	उठकर खड़े होगये,	ननाम	(उन्हें) प्रणाम
			किया ॥२१॥

तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं
बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरम् ।
सुनन्दनन्दावुपसृत्य सस्मितं
प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसम्मतौ ॥२२॥

तं कृष्णपादाः अभिनिविष्ट चेतसं बद्ध अञ्जलिं प्रश्रय नम्रकन्धरं सुनन्द नन्दाः उपसृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभ सम्मतौ ॥२२॥

कृष्णपादाः	श्रीकृष्णके चरणोंमें	प्रश्रय	
अभिनिविष्ट		नम्रकन्धरं	विनम्रतासे सिर
चेतसं	लगे चित्त वाले,		झुकाये
बद्ध अञ्जलि	हाथ जोड़े,	तं	उन (ध्रुव) से

पुष्करनाभ	भगवान पद्मनाभके	**सस्मितं**	
सम्मतौ	प्रिय (पार्षद)	**प्रत्यूचतुः**	मुस्कराते हुए बोले ॥२२॥
सुनन्द नन्दाः	सुनन्द और नन्द		
उपसृत्य	समीप आकर		

सुनन्दनन्दावूचतुः –

भो भो राजन् सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु ।
यः पञ्चवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ॥२३॥

भो भो राजन् सुभद्रं ते वाचं नः अवहितः शृणु यः पञ्च वर्षः तपसा भवान् देवं अतीतृपत् ॥२३॥

भो भो राजन्	हे राजन् !	**यः भवान्**	जो तुमने
ते सुभद्रं	तुम्हारा परम कल्याण हो,	**पञ्च वर्षः**	पांच वर्षकी अवस्थामें
नः वाचं	हमारी बात	**तपसा देवं**	तपस्यासे भगवानको
अवहितः शृणु	सावधान होकर सुनें !	**अतीतृपत्**	सन्तुष्ट किया था ॥२३॥

तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः ।
पार्षदावह सम्प्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥२४॥

तस्य अखिल जगत् धातुः आवां देवस्य शार्ङ्गिणः पार्षदाः इह सम्प्राप्ताः नेतुं त्वां भगवत् पदम् ॥२४॥

तस्य	उन्हीं	**आवां पार्षदाः**	हम दोनों पार्षद
अखिल जगत्		**त्वां भगवत् पदं**	तुमको भगवद्धाम
धातुः	निखिल जगन्नियन्ता	**नेतुं इह**	
देवस्य शार्ङ्गिणः	भगवान शारंग-धन्वाके	**सम्प्राप्ताः**	ले जाने यहाँ आये हैं ॥२४॥

सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया
यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ।

आतिष्ठ तच्चन्द्रदिवाकरादयो
ग्रहर्क्षतारा: परियन्ति दक्षिणम् ॥२५॥

सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया यत् सूरयः अप्राप्य विचक्षते परं आतिष्ठ तत् चन्द्र दिवाकरादयः ग्रह अर्क्ष तारा: परियन्ति दक्षिणम् ॥२५॥

यत् त्वया	क्योंकि तुमने
सुदुर्जयं	अत्यन्त दुष्प्राप्य (उस)
विष्णुपदं जितं	विष्णुलोकका अधिकार पा लिया है,
सूरयः अप्राप्य	बड़े-बड़े ज्ञानी उसे) न पाकर
परं विचक्षते	दूरसे देखते हैं,
तत् आतिष्ठ	उसमें चलिए,
ग्रह अर्क्ष तारा:	ग्रह, नक्षत्र, तारे
दक्षिणं परियन्ति	(उसकी) प्रदक्षिणा करते हैं ॥२५॥

अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यङ्ग कर्हिचित् ।
आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२६॥

अनास्थितं ते पितृभिः अन्यैः अपि अङ्ग कर्हिचित् आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तत् विष्णोः परमं पदम् ॥२६॥

अङ्ग	प्रियवर !
ते पितृभिः	तुम्हारे पूर्वज
अन्यैः अपि	तथा दूसरे भी कोई
कर्हिचित्	
अनास्थितं	कभी भी (वहां) नहीं गये हैं,
तत् जगतां वन्द्यं	उस जगतके वन्दनीय
विष्णोः परमं	भगवान विष्णुके परम धाम
पदं आतिष्ठ	चलकर रहिये ॥२६॥

एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना ।
उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥२७॥

एतत् विमान प्रवरं उत्तमश्लोक मौलिना उपस्थापितं आयुष्मन् अधिरोढुं त्वं अर्हसि ॥२७॥

एतत् विमान	
प्रवरं	यह श्रेष्ठ विमान
उत्तमश्लोक	
मौलिना	पुण्यश्लोक शिरोमणिने
उपस्थापितं	भेजा है,
आयुष्मन् त्वं	आयुष्मन् ! तुमको
अधिरोढुं अर्हसि	(इसपर) चढ़ना चाहिए ॥२७॥

मैत्रेय उवाच-

निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुख्ययो-
र्मधुच्युतं वाचमुरुक्रमप्रियः ।
कृताभिषेकः कृतनित्यमङ्गलो
मुनीन् प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ॥२८॥

निशम्य वैकुण्ठ नियोज्य मुख्ययोः मधुच्युतं वाचं उरुक्रम प्रियः कृत अभिषेकः कृत नित्य मङ्गलः मुनीन् प्रणम्य आशिषं अभ्यवादयत् ॥२८॥

वैकुण्ठ नियोज्य	
मुख्ययोः	श्रीहरिके मुख्य सेवकोंकी
मधुच्युतं वाचं	परम मधुरवाणी
निशम्य	सुनकर
उरुक्रम प्रियः	अनन्त पराक्रम भगवानके प्रिय (ध्रुवने)
कृत अभिषेकः	स्नान किया
कृत नित्य	नित्य कर्म (संध्यादि) किया
मङ्गलः	मंगल चिह्न (तिलकादि) किया।
मुनीन् प्रणम्य	मुनियोंको प्रणाम करके
आशिषं	
अभ्यवादयत्	आशीर्वाद लिया ॥२८॥

परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवन्द्य च ।
इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ॥२९॥

परीत्य अभ्यर्च्य धिष्ण्य अग्र्यं पार्षदाः अभिवन्द्य च इयेष तत् अधिष्ठातुं विभ्रत् रूपं हिरण्मयम् ॥२९॥

धिष्ण्य अग्र्यं	(उस) श्रेष्ठ विमानकी
परीत्य अभ्यर्च्य	परिक्रमा तथा पूजा करके
च पार्षदाः	
अभिवन्द्य	और पार्षदोंको प्रणाम करके
हिरण्मयं रूपं	स्वर्णके समान तेजोमय रूप
बिभ्रत्	धारण करके
तत् अधिष्ठातुं	उसपर चढ़नेको
इयेष	उद्यत हुए ॥२९॥

तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम् ।
मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥३०॥

तदा उत्तानपदः पुत्रः ददर्श अन्तकं आगतं मृत्योः मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोह अद्भुतं गृहम् ॥३०॥

उत्तानपदः पुत्रः	उत्तानपादके पुत्र (ध्रुव) ने
तदा अन्तकं	उस समय (मूर्तिमान) कालको
आगतं ददर्श	आया देखा,
मृत्योः मूर्ध्नि	(उस) मृत्युके सिरपर
पदं दत्त्वा	पैर रखकर
अद्भुतं गृहं	
आरुरोह	(उस) अद्भुत विमानमें चढ़ गये ॥३०॥

तदा दुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवादयः ।
गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥३१॥

तदा दुन्दुभयः नेदुः मृदङ्ग पणव आदयः गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुम वृष्टयः ॥३१॥

तदा दुन्दुभयः	उस समय दुन्दुभियां,
मृदङ्गः पणव आदयः	मृदंग, नगाड़े आदि
नेदुः	बजने लगे,
गन्धर्वमुख्याः	श्रेष्ठ गन्धर्व
प्रजगुः	गाने लगे,
कुसुम वृष्टयः पेतुः	पुष्प वर्षा होने लगी ॥३१॥

स च स्वर्लोकमारोक्ष्यन् सुनीतिं जननीं ध्रुवः ।
अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ॥३२॥

स च स्वः लोकं आरोक्ष्यन् सुनीतिं जननीं ध्रुवः अन्वस्मरत् अगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ॥३२॥

स च ध्रुवः	उन ध्रुवने भी	**दीनां हित्वा**	'उस बेचारी (मां) को छोड़कर
स्वः लोकं	दिव्य लोकको	**अगं त्रिविष्टपं यास्ये**	(मैं) अकेला ही स्वर्ग जाऊँगा ॥३२॥
आरोक्ष्यन्	जाते समय		
जननीं सुनीतिं	माता सुनीतिका		
अन्वस्मरत्	स्मरण किया—		

इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ ।
दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम् ॥३३॥

इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ दर्शयामासतुः देवीं पुरः यानेन गच्छतीम् ॥३३॥

इति तस्य व्यवसितं	इस प्रकार उनका विचार	**पुरः यानेन गच्छतीं**	आगे विमानसे जाती
व्यवसाय	जानकर	**देवीं दर्शयामासतुः**	देवी (सुनीति) को दिखलाया ॥३३॥
सुरोत्तमौ	भगवत्पार्षदोंने		

तत्र तत्र प्रसंसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः ।
अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥३४॥

तत्र तत्र प्रशंसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः अवकीर्यमाणः ददृशे कुसुमैः क्रमशः ग्रहान् ॥३४॥

तत्र तत्र	जहां-तहां (मार्गमें)	**कुसुमैः अवकीर्यमाणः**	पुष्प वर्षा होती थी,
वैमानिकैः सुरैः	विमानमें बैठे देवताओं द्वारा	**क्रमशः ग्रहान् ददृशे**	क्रमशः (सूर्यादि) ग्रहोंको देखा ॥३४॥
प्रशंसद्भिः	प्रशंसा करते हुए		

त्रिलोकीं देवयानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि ।
परस्ताद्यद् ध्रुवगतिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥३५॥

त्रिलोकीं देवयानेन सः अतिव्रज्य मुनीन् अपि परस्तात् यत् ध्रुव गतिः विष्णोः पदं अथ अभ्यगात् ॥३५॥

देवयानेन	उस दिव्य विमानसे	ध्रुव गतिः	स्थिर रहनेवाला
त्रिलोकीं मुनीन् अपि	त्रिलोकी तथा सप्तर्षियोंको भी	विष्णोः पदं	भगवान विष्णुका स्थान है
अतिव्रज्य	पार करके	अथ अभ्यगात्	(ध्रुवलोक) वहाँ पहुँच गये ॥३५॥
परस्तात् यत्	उनसे भी ऊपर जो		

यद् भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो
लोकास्त्रयो ह्यनु विभ्राजन्त एते ।
यन्नाव्रजञ्जन्तुषु येऽननुग्रहा
व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिशम् ॥३६॥

यत् भ्राजमानं स्वरुचा एव सर्वतः लोकाः त्रयः हि अनु विभ्राजन्त एते यत् न व्रजन् जन्तुषु ये अननुग्रहा व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति ये अनिशम् ॥३६॥

यत् स्वरुचा एव	जो अपनी कान्तिसे ही	विभ्राजन्त	क्योंकि उससे ही प्रकाशित होते हैं,
सर्वतः भ्राजमानं	चारों ओर प्रकाशित है,	ये जन्तुषु	जो प्राणियोंपर
एते त्रयः लोकाः हि अनु	ये तीनों लोक	अननुग्रहा	दया नहीं करते
		यत् न व्रजन्	जहाँ नहीं जा सकते,
		ये अनिशं	जो रात-दिन
		भद्राणि चरन्ति व्रजन्ति	शुभ कर्म ही करते हैं (वे वहाँ) जाते हैं ॥३६॥

शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः ।
यान्त्यञ्जसाच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः ॥३७॥

शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूत अनुरञ्जनाः यान्ति अञ्जसा अच्युत पदं अच्युत प्रिय बान्धवाः ॥३७॥

शान्ताः समदृशः	शान्त, समदर्शी,	**बान्धवाः**	(उन्हींको) सम्बन्धी माननेवाले
शुद्धाः	शुद्ध चित्त,	**अञ्जसा**	
सर्वभूत अनुरञ्जनाः	सब प्राणियोंको प्रसन्न रखनेवाले	**अच्युत पदं यान्ति**	सरलतासे भगवद्धाम जाते हैं ॥३७॥
अच्युत प्रिय	भगवानको प्यारे,		

इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ।
अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥३८॥

इति उत्तानपदः पुत्रः ध्रुवः कृष्ण परायणः अभूत् त्रयाणां लोकानां चूडामणि इव अमलः ॥३८॥

इति	इस प्रकार	**त्रयाणां**	
उत्तानपदः		**लोकानां**	तीनों लोकोंके
पुत्रः	उत्तानपादके पुत्र	**अमलः**	
कृष्ण परायणः		**चूडामणि इव**	निर्मल चूडामणिके समान
ध्रुवः	श्रीकृष्ण परायण ध्रुव	**अभूत्**	हुए ॥३८॥

गम्भीरवेगोऽनिमिषं ज्योतिषां चक्रमाहितम् ।
यस्मिन् भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥३९॥

गम्भीर वेगः अनिमिषं ज्योतिषां चक्रं आहितं यस्मिन् भ्रमति कौरव्य मेढ्यां इव गवां गणः ॥३९॥

गवां गणः	बैलोंका समूह	**ज्योतिषां चक्रं**	तारा मण्डल
मेढ्यां इव	खलिहानके मेढीके (चारों ओरके) समान	**अनिमिषं**	निरन्तर
		यस्मिन् आहितं	जिसके सहारे
गम्भीर वेगः	तीव्र वेगवाला	**भ्रमति**	घूमता रहता है ॥३९॥

महिमानं विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः ।
आतोद्यं वितुदञ् श्लोकान् सत्रेऽगायत्प्रचेतसाम् ॥४०॥

महिमानं विलोक्य अस्य नारदः भगवान् ऋषिः आतोद्यं वितुदन् श्लोकान् सत्रे अगायत् प्रचेतसाम् ॥४०॥

अस्य	इस (अपने शिष्य ध्रुव) की	आतोद्यं वितुदन्	वीणा बजाते हुए
		प्रचेतासां सत्रे	प्रचेताओंके यज्ञमें
महिमानं		श्लोकान्	
विलोक्य	महिमा देखकर	अगायत्	(इन) श्लोकोंका गान किया ॥४०॥
भगवान् ऋषिः	देवर्षि		
नारदः	नारदने		

नारद उवाच–

नूनं सुनीतेः पतिदेवताया-
स्तपःप्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ।
दृष्ट्वाभ्युपायानपि वेदवादिनो
नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥४१॥

नूनं सुनीतेः पतिदेवतायाः तपः प्रभावस्य सुतस्य तां गतिं दृष्ट्वा अभ्युपायान् अपि वेद वादिनः नैव अधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥४१॥

नूनं	निश्चय	अभ्युपायान्	
पतिदेवतायाः	पतिव्रता	अपि	साधन करते हुए भी
सुनेतेः तपः		वेद वादिनः	वेदज्ञ लोग
प्रभावस्य	सुनीतिके तपके प्रभावसे ही	अधिगन्तुं	(जहाँ) पहुँचनेमें
		नैव प्रभवन्ति	नहीं समर्थ होते,
सुतस्य तां गतिं	(उनके) पुत्रको वह पद	किं नृपाः	फिर राजा कैसे (समर्थ हो सकते हैं) ॥४१॥
दृष्ट्वा	प्राप्त हुआ		

यः पञ्चवर्षो गुरुदारवाक्शरै-
भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता ।
वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं
जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ॥४२॥

यः पञ्चवर्षः गुरुदार वाक्शरैः भिन्नेन यातः हृदयेन दूयता वनं मत् आदेशकरः अजितं प्रभुं जिगाय तद् भक्त गुणैः पराजितम् ॥४२॥

यः पञ्चवर्षः	जो पाँच वर्ष (की आयु) में	मत् आदेशकरः	मेरी आज्ञाका पालन करके
गुरुदार वाक्-	सौतेली माताकी वाणी रूप	तद् भक्त गुणैः पराजितम्	अपने भक्तके गुणोंसे पराजित होनेवाले
शरैः भिन्नेन	वाणोंसे विद्ध	अजितं प्रभुं	अजित भगवानको
दूयता हृदयेन	दुःखी हृदयसे	जिगाय	जीत लिया ॥४२॥
वनं यातः	वनमें चला गया,		

यः क्षत्रबन्धुर्भुवि तस्याधिरूढ-
मन्वारुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ।
षट्पञ्चवर्षो यदहोभिरल्पैः
प्रसाद्य वैकुण्ठमवाप तत्पदम् ॥४३॥

यः क्षत्रबन्धुः भुवि तस्य अधिरूढं अनु आरुरुक्षेत् अपि वर्ष पूगैः षट्पञ्चवर्षः यत् अहोभिः अल्पैः प्रसाद्य वैकुण्ठं अवाप तत् पदम् ॥४३॥

षट्पञ्चवर्षः	पांच-छ वर्षकी आयुमें	भुवि क्षत्रबन्धुः	पृथ्वीपर (दूसरा कौन) क्षत्रिय है
अहोभिः अल्पैः	थोड़े दिनोंमें	यः तस्य अधिरूढं	जो उनके द्वारा प्राप्त (पदपर)
वैकुण्ठं प्रसाद्य	भगवान नारायणको प्रसन्न करके	वर्ष पूगैः अपि	बहुत वर्षोंमें भी
यत् तत् पदं अवाप	जो उनका स्थान (ध्रुवने) प्राप्त किया	अनु आरुरुक्षेत्	पहुँचनेकी इच्छा कर सके ॥४३॥

मैत्रेय उवाच-

एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।
ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितं सम्मतं सताम् ॥४४॥

एतत् ते अभिहितं सर्वं यत् पृष्टः अहं इह त्वया ध्रुवस्य उद्दाम यशसः चरितं सम्मतं सताम् ॥४४॥

सतां सम्मतं	सत्पुरुषोंको प्रिय	**यत् त्वया पृष्टः**	जो तुमने पूछा था,
उद्दाम यशसः	उद्दाम यशस्वी	**ते एतत् सर्वं**	तुमसे यह सब
ध्रुवस्य चरितं	ध्रुवके चरित	**अहं अभिहितं**	मैंने बतला
इह	(के सम्बन्धमें) यहाँ		दिया ॥४४॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥४५॥

धन्यं यशस्यं आयुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यं अघमर्षणम् ॥४५॥

धन्यं यशस्यं	(यह) धन और यश देनेवाला,	**सौमनस्यं**	देवत्वदायी,
		प्रशस्यं	प्रशंसनीय
आयुष्यं	आयुदायक,	**ध्रौव्यं**	अविनाशी-पद देने वाला (तथा)
महत् स्वस्त्ययनं	महान कल्याणकारी,		
स्वर्ग्यं	स्वर्गदायी,	**अघमर्षणं**	पाप नाशक है ॥४५॥

श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् ।
भवेद्भक्तिर्भगवति ययां स्यात्क्लेशसंक्षयः ॥४६॥

श्रुत्वा एतत् श्रद्धया अभीक्ष्णं अच्युतप्रिय चेष्टितं भवेत् भक्तिः भगवति यया स्यात् क्लेश संक्षयः ॥४६॥

एतत् अच्युत-प्रिय	इस भगवत्प्रियका	**चेष्टितं**	चरित
		श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक

अभीक्ष्णं श्रुत्वा	रोज-रोज सुननेसे	**यया क्लेश संक्षयः स्यात्**	जिससे क्लेशोंका नाश हो जाता है ॥४६॥
भगवति भक्तिः भवेत्	भगवानमें भक्ति हो जाती है,		

महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः ।
यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम् ॥४७॥

महत्त्वं इच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयः गुणाः यत्र तेजः तत् इच्छूनां मानः यत्र मनस्विनाम् ॥४७॥

यत्र श्रोतुः महत्त्वं इच्छतां तीर्थं	जिसके सुननेवाले महत्त्व चाहने वालों को (वह) पवित्र होनेकी (इच्छा वालोंको)	**तेजः तत् इच्छूनां**	तेज उस (तेज) को चाहने वालोंको,
		मनस्विनां	सम्मान चाहने वालोंको
शीलादयः गुणाः	शीलादि गुण	**यत्र मानः**	जिससे सम्मान (प्राप्त होगा) ॥४७

प्रयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् ।
सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥४८॥

प्रयतः कीर्तयेत् प्रातः समवाये द्विजन्मनां सायं च पुण्य श्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥४८॥

द्विजन्मनां समवाये	द्विजातियोंके समाजमें	**ध्रुवस्य महत् चरितं**	ध्रुवके महान चरितको
प्रातः सायं च	प्रातः और सायं-काल भी	**प्रयतः कीर्तयेत्**	एकाग्र चित्तसे कीर्तन करना चाहिए ॥४८॥
पुण्य श्लोकस्य	पवित्र कीर्ति		

पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथवा ।
दिनक्षये व्यतीपाते सङ्क्रमेऽर्कदिनेऽपि वा ॥४९॥

पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणे अथवा दिनक्षये व्यतीपाते सङ्क्रमे अर्कदिने अपि वा ॥४९॥

पौर्णमास्यां	पूर्णिमाको,	**व्यतीपाते**	व्यतिपात योगमें,
सिनीवाल्यां	अमावस्याको,	**सङ्क्रमे**	संक्रान्तिको,
द्वादश्यां	द्वादशीको,	**अपि वा**	
अथवा श्रवणे	अथवा श्रवण नक्षत्रमें,	**अर्कदिने**	अथवा रविवारको ॥४९॥
दिनक्षये	तिथिक्षयमें,		

श्रावयेच्छ्रद्दधानानां तीर्थपादपदाश्रयः ।
नेच्छंस्तत्रात्मनाऽऽत्मानं सन्तुष्ट इति सिध्यति ॥५०॥

श्रावयेत् श्रद्दधानां तीर्थपाद पदाश्रयः न इच्छन् तत्र आत्मना आत्मानं सन्तुष्ट इति सिध्यति ॥५०॥

श्रद्दधानानां	श्रद्धालुओंको (उक्त अवसरोंपर)	**सन्तुष्ट**	सन्तुष्ट रखकर
		तत्र न इच्छन्	वहां (कथासे) कुछ नहीं चाहते-
तीर्थपाद			
पदाश्रयः	(भगवानके) पवित्र चरणोंकी शरण लेकर,	**श्रावयेत्**	सुनावे,
		इति सिध्यति	इस प्रकार सिद्ध हो जाता है ॥५०॥
आत्मना			
आत्मानं	अपने आपमें चित्तको		

ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृतम् ।
कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥५१॥

ज्ञानं अज्ञात तत्त्वाय यः दद्यात् सत्पथे अमृतं कृपालोः दीननाथस्य देवाः तस्य अनुगृह्णते ॥५१॥

अज्ञात तत्त्वाय	तत्त्वज्ञान रहित लोगोंको	**सत्पथे**	सत्पथपर लानेके लिए

यः अमृतं ज्ञानं	जो (यह) अमृतरूप ज्ञान	दीननाथस्य	दीनवत्सलपर
		देवाः अनुगृह्णते	देवता अनुग्रह करते हैं ॥५१॥
दद्यात्	देता है,		
तस्य कृपालोः	उस कृपालु		

इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह
ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ।
हित्वार्भकः क्रीडनकानि मातु-
र्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥५२॥

इदं मया ते अभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यात विशुद्ध कर्मणः हित्वा अर्भकः क्रीडनकानि मातुः गृहं च विष्णुं शरणं यः जगाम ॥५२॥

कुरुद्वह	विदुर !	जगाम	गया (उस)
यः अर्भकः	जो बच्चा होनेपर भी	ध्रुवस्य	ध्रुवके
		विख्यात	प्रसिद्ध
क्रीडनकानि	खिलौनोंको,	विशुद्ध कर्मणः	पवित्र कर्मोंको
मातुः गृहं च	तथा माताके घरको	मया ते	मैंने तुमसे
हित्वा	छोड़कर	अभिहितं	सुनाया ॥५२॥
विष्णुं शरणं	भगवान विष्णुकी शरण		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरितं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सूत उवाच-

निशम्य कौषारविणोपवर्णितं
ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणम् ।
प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे
प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥१॥

निशम्य कौषारविणः उपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठ पद अधिरोहणं प्ररूढभावः भगवति अधोक्षजे प्रष्टुं पुनः तं विदुरः प्रचक्रमे ॥१॥

कौषारविणः		भगवति	
उपवर्णितं	मैत्रेयजी द्वारा वर्णित	अधोक्षजे	भगवान हृषीकेशमें
ध्रुवस्य	ध्रुवका	प्ररूढभावः	भक्ति भावका उद्रेक हुआ,
वैकुण्ठ पद	भगवान विष्णुके स्थानको	तं पुनः प्रष्टुं	(उन) मैत्रेयजीसे फिर पूछना
अधिरोहणं	प्राप्त कर लेना	विदुरः प्रचक्रमे	विदुरने प्रारम्भ किया ॥१॥
निशम्य	सुनकर		

विदुर उवाच-

के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत ।
कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासत ॥२॥

के ते प्रचेतसः नाम कस्य अपत्यानि सुव्रत कस्य अन्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रं आसत ॥२॥

सुव्रत	उत्तमव्रती मैत्रेयजी !	कस्य अन्ववाये	किसके वंशमें
ते प्रचेतसः		प्रख्याताः	प्रसिद्ध हुए
नाम के	वे प्रचेता नामवाले कौन थे ?	वा कुत्र सत्रं आसत	तथा कहाँ यज्ञ कर रहे थे ? ॥२॥
कस्य अपत्यानि	किसके पुत्र थे ?		

मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् ।
येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः ॥३॥

मन्ये महाभागवतं नारदं देव दर्शनं येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्या विधिः हरेः ॥३॥

देव दर्शनं	भगवद्दर्शन प्राप्त	परिचर्या विधिः	पूजापद्धति रूप
नारदं	नारदजीको	क्रियायोगः	क्रिया-योग
महाभागवतं	महान् भगवद्-भक्त	प्रोक्तः	(पाञ्चरात्र) का उपदेश किया है ॥३॥
मन्ये	(मैं) मानता हूं		
येन हरेः	जिन्होंने श्रीहरिकी		

स्वधर्मशीलैः पुरुषैर्भगवान् यज्ञपूरुषः ।
इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल ॥४॥

स्वधर्मशीलैः पुरुषैः भगवान् यज्ञपूरुषः इज्यमानः भक्तिमता नारदेन ईरितः किल ॥४॥

स्वधर्मशीलैः	स्वधर्मका पालन करनेवाले	इज्यमानः	जब यज्ञसे पूजन हो रहा था,
पुरुषैः	पुरुषों (प्रचेतागणों) से	किल	उसी समय
भगवान् यज्ञ-पुरुषः	यज्ञ-पुरुष भगवानका	भक्तिमता नारदेन ईरितः	भक्तिमान नारदजीने (ध्रुवकी कथा) कही थी ॥४॥

यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः ।
मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन् कार्त्स्न्येनाचष्टुमर्हसि ॥५॥

याः ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत् कथाः मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन् कात्स्न्येन आचष्टुं अर्हति ॥५॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**तत्र कात्स्न्येन**	उसे पूरी तरह
देवर्षिणा	देवर्षिने	**मह्यं शुश्रूषवे**	मुझ सुननेकी इच्छा वालेसे
याः ता भगवत् कथाः	जो कोई भगवत्-कथा	**आचष्टुं अर्हति**	(आपको) सुनाना चाहिए ॥५॥
तत्र वर्णिता	वहां कही थी		

मैत्रेय उवाच-

ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनम् ।
सार्वभौमश्रियं नैच्छदधिराजासनं पितुः ॥६॥

ध्रुवस्य च उत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनं सार्वभौम श्रियं न इच्छत् अधिराज आसनं पितुः ॥६॥

ध्रुवस्य पुत्रः	ध्रुवके पुत्र	**पितुः अधिराज आसनं**	पिताके सम्राट् सिंहासनको
उत्कलः च	उत्कलने तो	**न इच्छत्**	नहीं लेना चाहा ॥६॥
पितरि वनं प्रस्थिते	पिताके वनमें चले जानेपर		
सार्वभौम श्रियं	सार्वभौम वैभव तथा		

स जन्मनोपशान्तात्मा निःसङ्गः समदर्शनः ।
ददर्श लोके विततमात्मानं लोकमात्मनि ॥७॥

स जन्मनः उपशान्त आत्मा निःसङ्गः समदर्शनः ददर्श लोके विततं आत्मानं लोकं आत्मनि ॥७॥

स जन्मनः	वह जन्मसे	**निःसङ्गः**	अनासक्त
उपशान्त आत्मा	शान्त चित्त,	**समदर्शनः**	समदर्शी था,

आत्मानं लोके	अपने आत्माको लोकमें	**विततं ददर्श**	व्याप्त देखता था ॥७॥
लोकं आत्मनि	लोकको अपने आत्मामें		

आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् ।
अवबोधरसैकात्म्यमानन्दमनुसन्ततम् ॥८॥

आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमित विग्रहं अवबोध रस ऐकात्म्यं आनन्दं अनुसंततम् ॥८॥

प्रत्यस्तमित विग्रहं	अंत: करणसे भेद-बुद्धि नष्ट हो गयी थी,	**अवबोध रस ऐकात्म्य**	विशुद्ध बोधरससे एकात्मता अनुभव करके
आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं	चित्त ब्रह्मानुभूति प्राप्त था,	**आनन्दं अनुसंततं**	सर्वत्र आनन्द ही व्याप्त (देखता) था ॥८॥

अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः ।
स्वरूपमवरुन्धानो नात्मनोऽन्यं ततैक्षत ॥९॥

अव्यवच्छिन्न योगाग्नि दग्ध कर्ममल आशयः स्वरूपं अवरुन्धानः न आत्मनः अन्यं तत् ऐक्षत ॥९॥

अव्यवच्छिन्न योगाग्नि	अखण्ड योगरूप अग्निसे	**तत् आत्मनः अन्यं न ऐक्षत**	वह आत्मासे पृथक (कुछ) नहीं देखता था ॥९॥
आशयः कर्ममल दग्ध	चित्तके कर्मका मल जल गया था,		
स्वरूपं अवरुन्धानः	स्वरूपमें ही स्थित होनेसे		

जडान्धबधिरोन्मत्तमूकाकृतिरतन्मतिः ।
लक्षितः पथि बालानां प्रशान्तार्चिरिवानलः ॥१०॥

जड अन्ध बधिर उन्मत्त मूक आकृतिः अतन् मतिः लक्षितः पथि बालानां प्रशान्त अर्चिः इव अनलः ॥१०॥

जड अन्ध	मूर्ख, अन्धे,	**अतन् मतिः**	उसे न जाननेवाले
बधिर, उन्मत्त	बहिरे, पागल,	**बालानां**	अज्ञानियोंको
मूक आकृतिः	गूंगेके समान	**पथि लक्षितः**	मार्गमें जान पड़ता था ॥१०॥
प्रशान्त अर्चिः	लपट बुझे		
अनलः इव	अग्निके समान		

मत्वा तं जडमुन्मत्तं कुलवृद्धाः समन्त्रिणः ।
वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥११॥

मत्वा तं जडं उन्मत्तं कुल वृद्धाः समन्त्रिणः वत्सरं भूपतिं चक्रुः यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥११॥

कुल वृद्धाः	कुलके बड़े लोगोंने	**यवीयांसं**	उससे छोटे भाई
समन्त्रिणः	मन्त्रियोंके साथ	**भ्रमेः सुतं**	भ्रमिके पुत्र
तं जडं उन्मत्तं	उसे मूर्ख-पागल	**वत्सरं**	वत्सरको
मत्वा	मानकर	**भूपतिं चक्रुः**	राजा बनाया ॥११॥

स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्यासूत षडात्मजान् ।
पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम् ॥१२॥

स्वर्वीथीः वत्सरस्य इष्टा भार्या असूत षट् आत्मजान् पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषं ऊर्जं वसुं जयम् ॥१२॥

वत्सरस्य	वत्सरकी	**इषं ऊर्जं वसुं**	इष, उर्ज, वसु,
इष्टा भार्या	प्रिय पत्नी	**च जयं**	तथा जय (ये)
स्वर्वीथीः	स्वर्वीथीने	**षट् आत्मजान्**	
पुष्पार्णं		**असूत**	छः पुत्र उत्पन्न किये ॥१२॥
तिग्मकेतुं	पुष्पार्ण, तिग्मकेतु,		

पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः ।
प्रातर्मध्यन्दिनं सायमिति ह्यासन् प्रभासुताः ॥१३॥

पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः प्रातः मध्यंदिनः सायं इति हि आसन् प्रभासुताः ॥१३॥

पुष्पार्णस्य	पुष्पार्णकी	**सायं इति**	सायं, इस प्रकार तीन)
प्रभा च दोषा	प्रभा और दोषा		
द्वे भार्या बभूवतुः	दो पत्नियां थीं,	**प्रभासुताः**	
प्रातः मध्यंदिनः	प्रातः, मध्यन्दिन,	**आसन्**	प्रभाके पुत्र थे ॥१३॥

प्रदोषो निशिथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः ।
व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥१४॥

प्रदोषः निशिथः व्युष्ट इति दोषा सुताः त्रयः व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसं आदधे ॥१४॥

प्रदोषः निशिथः	प्रदोष, निशीथ,	**सर्वतेजसं सुतं**	सर्वतेजस नामका पुत्र
व्युष्ट इति	व्युंष्ट, इस प्रकार		
दोषा सुताः त्रयः	दोषाके तीन पुत्र थे,	**आदधे**	उत्पन्न किया ॥१४॥
व्युष्टः पुष्करिण्यां	(उनमें) व्युष्टने पुष्करिणी (पत्नी)में		

स चक्षुः सुतमाकूत्यां पत्न्यां मनुमवाप ह ।
मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान् ॥१५॥

स चक्षुः सुतं आकूत्यां पत्न्यां मनुं अवाप ह मनोः असूत महिषी विरजान् नड्वला सुतान् ॥१५॥

स	उस (सर्वतेजा) ने	**मनोः महिषी**	(इस चक्षु) मनुकी पत्नी
आकूत्या पत्न्यां	आकूति नामक पत्नीसे	**नड्वला**	नड्वलाने
चक्षुः	चक्षुको	**विरजान् सुतान्**	सत्वगुणी पुत्र (१२ उत्पन्न किये) ॥१५॥
मनुं अवाप ह	(चाक्षुष मन्वन्तरके) मनुको (पुत्र रूपमें) पाया,		

पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवन्तमृतं व्रतम् ।
अग्निष्टोममतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबिमुल्मुकम् ॥१६॥

पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवन्तं ऋतंव्रतं अग्निष्टोमं अतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबिं उल्मुकम् ॥१६॥*

उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यां षडुत्तमान् ।
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥१७॥

उल्मुकः अजनयत् पुत्रान् पुष्करिण्यां षट् उत्तमान् अङ्गं सुमनसं ख्यातिं ऋतुं अङ्गिरसं गयम् ॥१७॥

उल्मुकः	(इनमें-से) उल्मुकने	अङ्गं सुमनसं	अंग, सुमना
पुष्करिण्यां	पुष्करिणीसे	ख्यातिं ऋतुं	ख्याति, क्रतु,
षट् उत्तमान्	छः उत्तम	अंगिरसं गयं	अंगिरा और
पुत्रान् अजनयत्	पुत्र उत्पन्न किये		गय ॥१७॥

सुनीथाङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणम् ।
यद्दौःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥१८॥

सुनीथा अङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनं उल्बणं यत् दौः शील्यात् स राजर्षिः निर्विण्णः निरगात् पुरात् ॥१८॥

अङ्गस्य या पत्नी	अंगकी जो पत्नी	स राजर्षिः यत्	वे राजर्षि (अंग)
सुनीथा	सुनीथा थी,	दौः शील्यात्	जिसकी दुष्टतासे
उल्बणं वेनं सुषुवे	क्रूरकर्मा वेनको जन्म दिया	निर्विण्णः पुरात् निरगात्	ऊबकर नगरसे निकल गये ॥१८॥

यमङ्ग शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल ।
गतासोस्तस्य भूयस्ते ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥१९॥

---

* ये सब मनुकी पत्नी नड्वलाके बारह पुत्रोंके नाम हैं ।

यं अङ्ग शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल गत असोः तस्य भूयः ते ममन्थुः दक्षिणं करम् ॥१९॥

अङ्ग	प्रिय विदुर !	**भूयः ते**	फिर उन (मुनियों)ने
वाग्वज्रा	वाणी रूप वज्रवाले	**दक्षिणं करं**	(उसके) दाहिने हाथका
मुनयः कुपिता	मुनियोंने क्रुद्ध होकर	**ममन्थुः**	मन्थन किया ॥१९॥
किल यं शेपुः	अरे, जिसे शाप दिया,		
तस्य गत असोः	उसके निष्प्राण हो जानेपर		

अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः ।
जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ॥२०॥

अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः जातः नारायण अंशेन पृथुः आद्यः क्षितीश्वरः ॥२०॥

तदा लोके	उस समय लोकके	**नारायण अंशेन**	भगवान नारायणके अंशसे
अराजके	शासकहीन होनेपर	**आद्यः**	
दस्युभिः प्रजाः	डाकुओं द्वारा प्रजाके	**क्षितीश्वरः**	आदि राजा
पीडिताः	उत्पीड़ित होनेपर	**पृथुः जातः**	पृथु उत्पन्न हुए ॥२०॥

विदुर उवाच-

तस्य शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः ।
राज्ञः कथमभूद्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ ॥२१॥

तस्य शीलनिधेः साधोः ब्रह्मण्यस्य महात्मनः राज्ञः कथं अभूत् दुष्टा प्रजा यत् विमना ययौ ॥२१॥

तस्य		प्रजा कथं दुष्टा	पुत्र कैसे दुष्ट
शीलनिधेः	उन परम शीलवान,	अभूत्	हो गया ?
साधोः ब्रह्मण्यस्य	सत्पुरुष, ब्राह्मण-भक्त,	यत् विमना	जिससे ऊबकर
महात्मनः राज्ञः	महात्मा राजा (अंग) का	ययौ	(वे) चले गये ॥२१॥

किं वांहो वेन उद्दिश्य ब्रह्मदण्डमयूयुजन् ।
दण्डव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ॥२२॥

किं वा अंहः वेन उद्दिश्य ब्रह्मदण्डं अयूयुजन् दण्डव्रतधरे राज्ञि मुनयः धर्मकोविदाः ॥२२॥

दण्डव्रतधरे	राजदण्डधारी	धर्मकोविदाः	
वेन किं वा अहं:	वेनका ऐसा क्या दोष था	मुनयः	धर्मज्ञ मुनियोंने
उद्दिश्य	जिसके कारण	राज्ञि ब्रह्मदण्डं	राजापर ब्रह्मदण्ड (शाप) का
		अयूयुजन्	प्रयोग किया ?॥२२॥

नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि ।
यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥२३॥

न अवध्येयः प्रजापालः प्रजाभिः अघवान् अपि यत् असौ लोकपालानां बिभर्ति ओजः स्वतेजसा ॥२३॥

प्रजापालः	प्रजाके रक्षकसे	यत् असौ	क्योंकि यह
अघवान् अपि	अपराध हो जाने पर भी	स्वतेजसा लोकपालानां	अपने तेजसे
प्रजाभिः	प्रजाके द्वारा (उसका)	ओजः	(आठो) लोकपालोंके तेजको
अवध्येयः न	अपमान नहीं होना चाहिए	बिभर्ति	धारण करता है ॥२३॥

एतदाख्याहि मे ब्रह्मन् सुनीथात्मजचेष्टितम् ।
श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥२४॥

एतत् आख्याहि मे ब्रह्मन् सूनीथा आत्मज चेष्टितं श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं पर अवर वित्तमः ॥२४॥

ब्रह्मन् त्वं	ब्रह्मन् ! आप	**एतत्**	यह
पर अवर	भूत-भविष्यको	**सुनीथा आत्मज**	सुनीथाके पुत्र (वेन का
वित्तमः	जानने वालोंमें श्रेष्ठ हैं,	**चेष्टितं**	
मे श्रद्दधानाय	मुझ श्रद्धालु	**आख्याहि**	चरित कहिए ॥२४॥
भक्ताय	भक्तसे		

मैत्रेय उवाच–

अङ्गोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम् ।
नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ॥२५॥

अङ्गः अश्वमेधं राजर्षिः आजहार महाक्रतुं न आजग्मुः देवताः तस्मिन् आहूता ब्रह्मवादिभिः ॥२५॥

राजर्षिः अङ्गः	राजर्षि अंगने	**आहूता**	आवाहन किये जानेपर
अश्वमेधं			
महाक्रतुं	अश्वमेध महायज्ञ	**देवताः न**	
आजहार	प्रारम्भ किया,	**आजग्मुः**	देवता नहीं आये ॥२५॥
तस्मिन्			
ब्रह्मवादिभिः	उसमें वेदज्ञों द्वारा		

तमूचुर्विस्मितास्तत्र यजमानमथर्त्विजः ।

तं ऊचुः विस्मिताः तत्र यजमानं अथ ऋत्विजः ।

तं यजमानं	उन यजमान (राजा अंग) से	**तत्र विस्मिताः**	वहाँ आश्चर्यचकित
		अथ ऋत्विजाः	
		ऊचुः	तब ऋत्विक् बोले—

ऋत्विजा ऊचुः*-

हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥२६॥

हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥२६॥

ते हूयमानानि	आपके द्वारा हवन की गयी	**देवताः न गृह्णन्ति**	देवता नहीं ले रहे हैं ॥२६॥
हवींषि	(घृतादि) हविको		

राजन् हवींष्यदुष्टानि श्रद्धयाऽऽसादितानि ते ।
छन्दांस्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥२७॥

राजन् हवींषि अदुष्टानि श्रद्धया आसादितानि ते छन्दांसि अयात यामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥२७॥

राजन्	राजन्	**धृतव्रतैः**	नियम निष्ठ (ब्राह्मणों) द्वारा
हवींषि अदुष्टानि	हवि निर्दोष है ।	**अयात यामानि**	ठीक-ठीक ताजेके समान याद
ते श्रद्धया आसादितानि	आपने श्रद्धापूर्वक (उसे) जुटाया है,	**योजितानि**	प्रयुक्त किये जा रहे हैं ॥२७॥
छन्दांसि	वेदमन्त्र		

न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि ।
यन्न गृह्णन्ति भागान् स्वान् ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥२८॥

न विदाम इह देवानां हेलनं वयं अण्वपि यत् न गृह्णन्ति भागान् स्वान् ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥२८॥

इह अण्वपि देवानां हेलनं	यहाँ तनिक भी देवताओंकी अवहेलना	**देवाः स्वान् भागान्**	देवता हैं वे अपना भाग
वयं न विदाम	(हुई हो) यह हम नहीं जानते,	**गृह्णन्ति न**	स्वीकार नहीं कर रहे हैं ॥२८॥
यत् ये कर्म-साक्षिणः	जिससे जो कर्मसाक्षी		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

मैत्रेय उवाच-

अङ्गो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः ।
तत्प्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया ॥२९॥

अङ्गः द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः तत् प्रष्टुं व्यसृजत् वाचं सदस्यान् तत् अनुज्ञया ॥२९॥

द्विजवचः श्रुत्वा	ब्राह्मणोंकी बात सुनकर	तत् प्रष्टुं	उसे पूछनेके लिए
यजमानः अङ्गः	यजमान राजा अङ्गने	सदस्यान्	सदस्योंसे
सुदुर्मनाः	अत्यन्त खिन्न होकर	तत् अनुज्ञया	उनकी अनुमतिसे
		वाचं व्यसृजत्	मौन तोड़कर पूछा ॥२९॥

अग उवाच*

नागच्छन्त्याहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहानिह ।
सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं मया कृतम् ॥३०॥

न आगच्छन्ति आहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहान् इह सदसस्पतयः ब्रूत किं अवद्यं मया कृतम् ॥३०॥

सदसस्पतयः	सदस्यजनो !	न ग्रहान् गृह्णन्ति	न सोमपात्र ही लेते हैं,
इह	इस यज्ञमें		
आहुता	आह्वान करनेपर	ब्रूत	(अतः) बतलाइये
देवा न आगच्छन्ति	देवता नहीं आ रहे हैं,	मया किं अवद्यं कृतं	मुझसे क्या अपराध हो गया है ? ॥३०॥

सदस्पतय ऊचुः -

नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक् स्थितम् ।
अस्त्येकं प्राक्तन मघं यदिहेदृक् त्वमप्रजः ॥३१॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नरदेव इह भवतः न अघं तावत् मनाक् स्थितं अस्ति एकं प्राक्तनं अघं यत् इह ईदृक् त्वं अप्रजः ॥३१॥

नरदेव	राजन् !	**अघं अस्ति**	पाप है,
इह भवतः अघं	यहां (इस यज्ञमें) आपसे दोष	**यत् इह ईदृक्**	जिससे यहां (इस जन्ममें) इस प्रकार
तावत् मनाक्	अब तक तनिक भी	**त्वं अप्रजः**	आप सन्तानहीन
स्थितं न	हुआ नहीं है,		हैं ॥३१॥
एकं प्राक्तनं	किन्तु एक पुराना (पूर्वजन्मका)		

तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप ।
इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥३२॥

तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप इष्टः ते पुत्र कामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥३२॥

नृप	राजन् !	**पुत्र कामस्य**	पुत्रकी कामनासे
ते भद्रं	आपका कल्याण हो	**इष्टः**	यज्ञ करनेपर
तथा आत्मानं	इस प्रकार अपनेको (यज्ञसे)	**यज्ञभुक्**	यज्ञभोक्ता भगवान
सुप्रजं साधय	सत् पुत्रवान बनाइये—	**ते पुत्रदास्यति**	आपको पुत्र देंगे ॥३२॥

तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः ।
यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥३३॥

तथा स्वभाग धेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः यत् यज्ञ पुरुषः साक्षात् अपत्याय हरिः वृतः ॥३३॥

यत् साक्षात्	जब साक्षात्	**तथा दिवौकसः**	तब देवता
यज्ञ पुरुषः हरिः	यज्ञ पुरुष श्रीहरिका	**स्वभाग धेयानि**	अपने-अपने भाग
अपत्याय वृतः	पुत्रके लिए वरण किया जायगा	**ग्रहीष्यन्ति**	स्वतः ग्रहण करेंगे ॥३३॥

तांस्तान् कामान् हरिर्दद्याद्यान् यान् कामयते जनः ।
आराधितो यथैवैष तथा पुंसा फलोदयः ॥३४॥

तान् तान् कामान् हरिः दद्यात् यान् यान् कामयते जनः आराधितः यथा एव एष तथा पुंसां फलोदयः ॥३४॥

जनः यान् यान्	भक्त जो जो	आराधितः	आराधना की जाती है
कामयते	चाहता है,	पुंसां तथा	पुरुषको वैसा ही
हरिः तान् तान्	श्रीहरि वही वही	फलोदयः	फल प्राप्त होता है ॥२४॥
कामान् दद्यात्	कामना (पूरा) दे देते हैं,		
यथा एव एष	जिस प्रकारसे इन (प्रभु) की		

मैत्रेय उवाच*–

इति व्यवसिता विप्रास्तस्यराज्ञः प्रजातये ।
पुरोडाशं निरवपन् शिपिविष्टाय विष्णवे ॥३५॥

इति व्यवसिता विप्राः तस्य राज्ञः प्रजातये पुरोडाशं निरवपन् शिपि विष्टाय विष्णवे ॥३५॥

विप्राः	ब्राह्मणोंने	शिपि विष्टाय	यज्ञीय पशुमें आविष्ट
इति व्यवसिता	ऐसा निश्चय करके	विष्णवे	भगवान विष्णुको
तस्य राज्ञः	उन राजा (अंग)के	पुरोडाशं	पुरोडाश (नामक चरु)
प्रजातये	पुत्र उत्पत्तिके (संकल्पसे)	निरवपन्	प्रदान किया ॥३५॥

तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः ।
हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥३६॥

तस्मात् पुरुष उत्तस्थौ हेममालि अमल अम्बरः हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धं आदाय पायसं ॥३६॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यह उवाच नहीं है ।

तस्मात्	उस (यज्ञ कुंड) से	**हिरण्मयेन पात्रेण**	सोनेके पात्रमें
हेममालि	स्वर्णकी माला पहिने	**सिद्धं पायसं आदाय**	पकी खीर लिये
अमल अम्बरः	निर्मल वस्त्र धारण किये,	**पुरुष उत्तस्थौ**	एक पुरुष ऊपर निकला ॥३६॥

स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वाञ्जलिनौदनम् ।
अवघ्राय मुदा युक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥३७॥

स विप्र अनुमतः राजा गृहीत्वा अञ्जलिना ओदनं अवघ्राय मुदायुक्तः प्रादात् पत्न्या उदारधीः ॥३७॥

विप्र अनुमतः	ब्राह्मणोंकी आज्ञासे	**अवघ्राय**	उसे सूंघकर
स उदारधीः	उस उदार बुद्धि	**मुदायुक्तः**	प्रसन्न होकर
राजा	राजाने	**पत्न्या प्रादात्**	पत्नीको दे दिया ॥३७॥
अञ्जलिना	अञ्जलिमें		
ओदनं गृहीत्वा	(वह) खीर लेकर		

सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्य वै पत्युरादधे ।
गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥३८॥

सा तत् पुंसवनं राज्ञी प्राश्य वै पत्युः आदधे गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवे अप्रजा ॥३८॥

सा अप्रजा राज्ञी	उस सन्तानहीना रानीने	**पत्युः गर्भं आदधे**	पतिसे गर्भधारण किया,
तत् पुंसवनं	उस पुत्र प्रदायिनी (खीर) को	**काल उपावृत्ते**	(फिर) समय आनेपर
प्राश्य वै	खाकर ही	**कुमारं सुषुवे**	पुत्रको जन्म दिया ॥३८॥

स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः ।
अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥३९॥

स बाल एव पुरुषः मातामहं अनुव्रतः अधर्म अंश उद्भवं मृत्युं तेन अभवत् अधार्मिकः ॥३९॥

स पुरुषः		**तेन अधार्मिकः**	इससे अधार्मिक और
बाल एव	वह बालक बचपनसे ही	**मातामहं मृत्युं**	अपने नाना मृत्युका
अधर्म अंश उद्भवं	अधर्मके अंशसे उत्पन्न था,	**अनुव्रतः अभवत्**	अनुयायी हो गया ॥३ ॥

स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः ।
हन्त्यसाधुर्मृगान् दीनान् वेनोऽसावित्यरौज्जनः ॥४०॥

स शरासनं उद्यम्य मृगयुः वनगोचरः हन्ति असाधुः मृगान् दीनान् वेनः असा इति अरौत् जनः ॥४०॥

स असाधुः	वह दुष्ट	**दीनान् मृगान् हन्ति**	बेचारे हरिणोंको मारता
शरासनं उद्यम्य	धनुष लेकर	**जनः असा वेनः**	लोग 'यह वेन है'
वनगोचरः	वनमें मिलनेवाले (पशुओंको)	**इति अरौत्**	इस प्रकार पुकारने लगे ॥४०॥
मृगयुः	ढूँढ़-ढूँढ़कर		

आक्रीडे क्रीडतो बालान् वयस्यानतिदारुणः ।
प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत् ॥४१॥

आक्रीडे क्रीडतः बालान् वयस्यान् अति दारुणः प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारं अमारयत् ॥४१॥

अति दारुणः	अत्यन्त क्रूर (वह)	**प्रसह्य**	जबरदस्ती
निरनुक्रोशः	निर्दय	**पशुमारं**	पशुकी भाँति पीटकर
आक्रीडे क्रीडतः	मैदानमें खेलते	**अमारयत्**	मार डालता था ॥४१॥
वयस्यान् बालान्	अपनी आयुके बालकोंको		

तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः ।
यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥४२॥

तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैः विविधैः नृपः यदा न शासितुं कल्पः भृशं आसीत् सुदुर्मनाः ॥४२॥

तं पुत्रं खलं	उस पुत्रको दुष्ट	**यदा शासितुं**	
विचक्ष्य	देखकर	**कल्पः न**	जब अनुशासित करनेमें समर्थ नहीं हुए (तब)
यदा नृपः	जब राजा (अङ्ग)		
विविधैः			
शासनैः	अनेक प्रकारसे सुधारनेकी चेष्टा करके	**भृशं सुदुर्मनाः**	अत्यन्त दुःखी
		आसीत	हो गये ॥४२॥

प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः ।
कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥४३॥

प्रायेण अभ्यर्चितः देवः ये अप्रजा गृहमेधिनः कदपत्य भृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥४३॥

ये गृहमेधिनः	(वे राजा मन ही मन कहने लगे) जो गृहस्थ	**देवः अभ्यर्चितः**	भगवानकी पूजा की होगी,
		ये न	जिससे (वे)
अप्रजा	सन्तान हीन हैं	**कदपत्य भृतं**	कुपुत्रकी करतूतसे
प्रायेण	प्रायः (पूर्व जन्ममें उन्होंने)	**दुर्भरं दुःखं**	(होनेवाले) दुःसह दुःखको
		न विन्दन्ति	नहीं पाते ॥४३॥

यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणाम् ।
यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनन्तकः ॥४४॥

यतः पापीयसी कीर्तिः अधर्मः च महान् नृणां यतः विरोधः सर्वेषां यत आधिः अनन्तकः ॥४४॥

यतः कीर्तिः	जिससे यश
पापीयसी	पापमय हो जाय,
च नृणां अधर्मः	और मनुष्यको अधर्ममार्गी बनना पड़े,
यतः सर्वेषां	जिससे सबका
विरोधः	विरोध हो
यतः अनन्तकः	जिससे अन्तहीन
आधिः	चिन्ता (मिले) ॥४४

कस्तं प्रजापदेशं वै मोहबन्धनमात्मनः ।
पण्डितो बहु मन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥४५॥

कः तं प्रजा अपदेशं वै मोहबन्धनं आत्मनः पण्डितः बहु मन्येत यत् अर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥४५॥

यत् अर्थाः	जिसके कारण
गृहाः क्लेशदाः	घर दुःखदायी हो जाय
तं आत्मनः	उस अपनेको
मोहबन्धनं	मोहमें बाँधनेवाले
प्रजा अपदेशं	पुत्र कहे जाने वालेको
वै कः पण्डितः	भला कौन विद्वान
बहु मन्येत	अच्छा मानेगा ॥४५

कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ।
निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥४६॥

कद् अपत्यं वरं मन्ये सद् अपत्यात् शुचां पदात् निर्विद्येत गृहात् मर्त्यः यत् क्लेश निवहा गृहाः ॥४६॥

शुचां पदात्	शोकके स्थान जिसे छोड़नेमें (बहुत शोक होता है)
सद् अपत्यात्	सुपुत्रसे
कद् अपत्यं	कुपुत्रको
वरं मन्ये	(मैं) अच्छा मानता
यत् गृहाः	क्योंकि घर
क्लेश निवहा	क्लेश दायी ही है
मर्त्यः गृहात्	मनुष्य घरसे (कुपुत्र-के कारण)
निर्विद्येत	विरक्त हो जाता है ॥४६॥

एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहा-
न्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ।
अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभि-
र्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥४७॥

एवं स निर्विण्णमना नृपः गृहात् निशीथ उत्थाय महोदय उदयात् अलब्धनिद्रः अनुपलक्षितः नृभिः हित्वा गतः वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥४७॥

एवं स नृपः	इस प्रकार वे राजा (अङ्ग)	**हित्वा**	छोड़कर
निर्विण्णमना	विरक्त चित्त होकर	**निशीथ उत्थाय**	आधी रातमें उठकर
अलब्धनिद्रः	(उन्हें) नींद नहीं आयी,	**नृभिः अनुपलक्षितः**	मनुष्योंसे अलक्षित रहते
महोदय उदयात्	परम कल्याणका समय आनेसे	**गृहात् गतः**	घरसे चले गये ॥४७॥
वेनसुवं प्रसुप्तां	वेनकी माताको सोती		

विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः
पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ।
विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा
यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥४८॥

विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहित अमात्य सुहृत् गण आदयः विचिक्युः उर्व्यां अति शोक कातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥४८॥

यथा निगूढं पुरुषं	जैसे (हृदयमें) छिपे परम पुरुषको	**पतिं**	अपने स्वामीको
		निर्विद्य गतं	विरक्त होकर गया
कुयोगिनः	ठीक साधन न जाननेवाले (बाहर ढूँढ़ते हैं वैसे ही)	**विज्ञाय**	जानकर
		प्रजाः पुरोहित अमात्य सुहृत्-	प्रजा, पुरोहित,

गण आदयः	मन्त्री, सम्बन्धी आदि	**उर्व्यां विचिक्युः**	पृथ्वीपर ढूँढ़ने लगे ॥४८॥
अति शोक कातरा	शोकसे अत्यन्त व्याकुल होकर		

अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापते-
र्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ।
ऋषीन् समेतानभिवन्द्य साश्रवो
न्यवेदयन् पौरव भर्तृविप्लवम् ॥४९॥

अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापतेः हत उद्यमाः प्रति उपसृत्य ते पुरीं ऋषीन् समेतान् अभिवन्द्य साश्रवः न्यवेदयन् पौरव भर्तृ विप्लवम् ॥४९॥

प्रजापतेः पदवीं अलक्षयन्तः	राजाके स्थानका पता न पाकर,	**साश्रवः**	आंसू बहाते
हत उद्यमाः	व्यर्थ उद्योग होकर,	**समेतान् ऋषीन्**	एकत्रित मुनियोंको
ते पुरीं प्रति उपसृत्य	वे लोग लौटकर नगर आये और	**अभिवन्द्य**	प्रणाम करके
		पौरव भर्तृ	पुरुवंशके स्वामीका
		विप्लवं	लापता होना
		न्यवेदयन्	निवेदन किया ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः ।
गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम् ॥१॥

भृग्वादयः ते मुनयः लोकानां क्षेमदर्शिनः गोप्तरि असति वै नृणां पश्यन्तः पशु साम्यताम् ॥१॥

लोकानां		गोप्तरि असति	रक्षक न रहनेपर
क्षेमदर्शिनः	लोगोंकी कुशल चाहनेवाले	नृणां वै	मनुष्योंमें भी
		पशु साम्यतां	पशुओंकी समानता (उच्छृङ्खलता)
ते भृग्वादयः			
मुनयः	उन भृगु आदि मुनियोंने	पश्यन्तः	देखते हुए ॥१॥

वीर मातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः ।
प्रकृत्यसम्मतं वेनमभ्यषिञ्चन् पतिं भुवः ॥२॥

वीर मातरं आहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः प्रकृति असम्मतं वेनं अभ्यषिञ्चन् पतिं भुवः ॥२॥

ब्रह्मवादिनः	(उन) वेदज्ञोंने	प्रकृति असम्मतं	मन्त्रियोंके सहमत न होनेपर भी
वीर मातरं			
सुनीथां	वीरमाता सुनीथाको	वेनं भुवः पतिं	वेनको भूपति पदपर
		अभ्यषिञ्चन्	अभिषिक्त किया ॥२॥
आहूय	बुलाकर		

श्रुत्वा नृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम् ।
निलिल्युर्दस्यवः सद्यः सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥३॥

श्रुत्वा नृप आसन गतं वेनं अति उग्रशासनं निलिल्युः दस्यवः सद्यः सर्पत्रस्ताः इव आखवः ॥३॥

अति उग्रशासनं	अत्यन्त कठोर शासन करनेवाले	**श्रुत्वा**	सुनकर
		सद्यः दस्यवः	तुरन्त सब डाकू
वेनं नृप		**सर्पत्रस्ताः**	सर्पसे डरे
आसन गतं	वेनको राज्यासनपर बैठे	**आखवः इव**	चूहोंके समान
		निलिल्युः	छिप गये ॥३॥

स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः ।
अवमेने महाभागान् स्तब्धः सम्भावितः स्वतः ॥४॥

स आरूढ नृपस्थान उन्नद्धः अष्ट विभूतिभिः अवमेने महाभागान् स्तब्धः सम्भावितः स्वतः ॥४॥

स नृपस्थान	वह (वेन) राज्यासनपर	**स्वतः**	
		सम्भावितः	अपनेको ही सबसे सम्मान्य मानकर
आरूढ	बैठकर		
अष्ट विभूतिभिः	आठो (लोकपालों) के ऐश्वर्यके कारण	**स्तब्धः**	
		महाभागान्	(वह) मूर्ख महात्माओंका
उन्नद्धः	उन्मत्त हो गया,	**अवमेने**	अपमान करने लगा ॥४॥

एवं मदान्ध उत्सिक्तो निरङ्कुश इव द्विपः ।
पर्यटन् रथमास्थाय कम्पयन्निव रोदसी ॥५॥

एवं मदान्ध उत्सिक्तः निरङ्कुश इव द्विपः पर्यटन् रथं आस्थाय कम्पयन् इव रोदसी ॥५॥

एवं मदान्ध	इस प्रकार मदसे अन्धा होकर	**रोदसी**	
		कम्पयन् इव	दिशाओंको कँपात-सा
उत्सिक्तः	ऐश्वर्य पाकर		
रथं आस्थाय	रथपर बैठकर	**पर्यटन्**	घूमने लगा ॥५॥
निरङ्कुश द्विपः इव	अंकुशहीन हाथीके समान		

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ।
इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥६॥

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् इति न्यवारयत् धर्मं भेरी घोषेण सर्वशः ॥६॥

सर्वशः भेरी घोषेण	सर्वत्र नगाड़ा बजवाकर (मुनादी करके)	**न दातव्यं**	दान नहीं करना चाहिए,
		द्विजाः क्वचित्	ब्राह्मणो ! कभी भी
		होतव्यं न	हवन मत करना !'
न यष्टव्यं	(किसीको) यज्ञ नहीं करना चाहिए,	**इति धर्म**	इस प्रकार धर्म करना
		न्यवारयत्	रोकने लगा ॥६॥

वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् ।
विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सत्रिणः ॥७॥

वेनस्य अवेक्ष्य मुनयः दुर्वृत्तस्य विचेष्टितं विमृश्य लोक व्यसनं कृपया उचुः स्म सत्रिणः ॥७॥

दुर्वृत्तस्य वेनस्य विचेष्टितं अवेक्ष्य	दुश्चरित्र वेनका अत्याचार देखकर	**विमृश्य**	विचार करके,
		सत्रिणः स्म मुनयः;	यज्ञ-दीक्षित होनेपर भी मुनियोंने
लोक व्यसनं	संसारपर संकट आया	**कृपया ऊचुः**	कृपा वश कहा ॥७॥

*मुनय उवाच**-

अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् ।
दारुण्युभयतो दीप्ते इव तस्करपालयोः ॥८॥

अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् दारुणि उभयतः दीप्ते इव तस्कर पालयोः ॥८॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो उभयतः	अहो ! दोनों ओरसे	दारुणि इव	लकड़ी (पर स्थित
तस्कर पालयोः	डाकुओं तथा राजासे		चींटी) के समान
लोकस्य	लोकपर	महत् व्यसनं	महान् संकट
उभयतः दीप्ते	दोनों ओरसे जलती	प्राप्तं	आ गया ॥८॥

अराजकभयादेष कृतो राजातदर्हणः ।
ततोऽप्यासीद्भयं त्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनाम् ॥९॥

अराजक भयात् एष कृतः राजा अत दर्हणः ततः अपि आसीत् भयं तु अद्य कथं स्यात् स्वस्ति देहिनाम् ॥९॥

अराजक भयात्	अराजकताके भयसे	तु आसीत्	ही आ गया
एष राजा कृतः	इस (वेन) को राजा बनाया,	अद्य देहिनां	इस समय शरीर धारियोंकी
अत दर्हणः	यह इसके योग्य नहीं था,	स्वस्ति कथं स्यात्	कुशल कैसे हो ? ॥९॥
ततः अपि भयं	उससे भी भय		

अहेरिव पयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत् ।
वेनः प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भसम्भवः ॥१०॥

अहेः इव पयः पोषः पोषकस्य अपि अनर्थभृत् वेनः प्रकृति एव खलः सुनीथा गर्भं सम्भवः ॥१०॥

अहेः पयः पोषः	सांपको दूध पिलाकर पालनेके	सुनीथा गर्भ सम्भवः	मृत्युकी पुत्री) सुनीथाके पेटसे
इव पोषकस्य	समान पालनेवालेके		उत्पन्न
अपि अनर्थभृत्	लिए भी अनर्थ करनेवाला होता है,	वेनः प्रकृति एव खलः	वेन स्वभावसे ही दुष्ट है ॥१०॥

निरूपतिः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः ।
तथापि सान्त्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ॥११॥

निरूपतिः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः तथा अपि सान्त्वये अमुं न अस्मात् तत् पातकं स्पृशेत् ॥११॥

प्रजापालः	प्रजाकी रक्षाके लिए (इसे हमने)	**तथा अपि अमुं**	फिर भी इसे
		सान्त्वये	समझाना चाहिए
निरूपतिः	नियुक्त किया था,	**अस्माकं**	(इससे) हम लोगोंको
स वै	वही अब	**तत् पातकं**	उसका पाप
प्रजाः जिघां-		**न स्पृशेत्**	नहीं लगेगा ॥११॥
सति	प्रजाको मार रहा है,		

तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः ।
सान्त्वितो यदि नो वाचं न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत् ॥१२॥

तत् विद्वद्भिः असत् वृत्तः वेनः अस्माभिः कृतः नृपः सान्त्वितः यदि नः वाचं न ग्रहीष्यति अधर्म कृत् ॥१२॥

तत् विद्वद्भिः	यह जानते हुए कि	**यदि अधर्म कृत्**	यदि (वह) अधर्मी
वेनः असत्		**सान्त्वितः**	समझानेपर
वृत्तः	वेन असदाचारी है	**नः वाचं**	हमारी बात
अस्माभिः नृपः		**न ग्रहीष्यति**	नहीं मानेगा ॥१२॥
कृतः	हम लोगोंने (उसे) राजा बना दिया,		

लोकधिक्कारसन्दग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा ।

लोकधिक्कार सन्दग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा ।

लोकधिक्कार	तो लोगोंके धिक्कारनेसे	**स्वतेजसा**	अपने तेजसे (हम लोग)
सन्दग्धं	(पहिलेसे) जले हुएको	**दहिष्यामः**	जला देंगे ।

*मैत्रेय उवाच**-

एवमध्यवसायैनं मुनयो गूढमन्यवः ।
उपव्रज्याब्रुवन् वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ॥१३॥

एवं अध्यवसाय एनं मुनयः गूढमन्यवः उपव्रज्य अब्रुवन् वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ॥१३॥

एवं अध्यवसाय	इस प्रकारका निश्चय करके	**उपव्रज्य च**	पास जाकर तथा
गूढमन्यवः	छिपे क्रोध वाले	**सामभिः**	सामनीतिके अनुसार
मुनयः	मुनिगण	**सान्त्वयित्वा**	सान्त्वना देकर
एनं वेनं	इस वेनके	**अब्रुवन्**	बोले ॥१३॥

मुनय ऊचुः

नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः ।
आयुः श्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ॥१४॥

नृपवर्य निबोध एतत् ते विज्ञापयाम भोः आयुः श्रीबल कीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ॥१४॥

भोः नृपवर्य	हे राजन्यश्रेष्ठ !	**आयुः श्रीबल कीर्तीनां**	आयु, लक्ष्मी, बल
एतत् निबोध	यह बात सुनिये	**विवर्धनं**	यशको बढ़ानेवाली है ॥१४॥
ते विज्ञापयाम	आपको (हम) बतलाते हैं,		
तात तव	तात ! (यह) आपकी		

धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनः कायबुद्धिभिः ।
लोकान् विशोकान् वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम् ॥१५॥

धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनः काय बुद्धिभिः लोकान् विशोकान् वितरति यथा अनन्त्यं असङ्गिनाम् ॥१५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

पुंसां	पुरुषों द्वारा	लोकान्	शोकहीन (स्वर्गादि) लोक
वाङ्मनः काय बुद्धिभिः	वाणी, मन, शरीर, बुद्धिसे	वितरति	देता है,
		यथा	वही (धर्म) निष्काम
धर्म आचरितः विशोकान्	धर्माचरण करनेपर	असङ्गिनाम् अनन्त्यं	भावसे करनेपर अनन्त फल (मोक्ष देता है) ॥१५॥

स ते मा विनशेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः ।
यस्मिन् विनष्टे नृपतिरैश्वर्यादवरोहति ॥१६॥

स ते मा विनशेत् वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः यस्मिन् विनष्टे नृपतिः ऐश्वर्यात् अवरोहति ॥१६॥

वीर	वीरवर !	यस्मिन् विनष्टे	जिस (धर्म) के नष्ट होनेपर
प्रजानां क्षेम-लक्षणः	प्रजाका कल्याण रूप	नृपतिः	राजा
स ते	वह (धर्म) आपके द्वारा	ऐश्वर्यात् अवरोहति	ऐश्वर्य भ्रष्ट हो जाता है ॥१६॥
मा विनशेत्	नष्ट न हो,		

राजन्नसाध्वमात्येभ्यश्चोरादिभ्यः प्रजा नृपः ।
रक्षन् यथा बलिं गृह्णन्निह प्रेत्य च मोदते ॥१७॥

राजन् असाधु अमात्येभ्यः चोरादिभ्यः प्रजा नृपः रक्षन् यथा बलिं गृह्णन् इह प्रेत्य च मोदते ॥१७॥

राजन्	राजन् !	यथा बलिं गृह्णन्	उचित कर लेकर
असाधु अमात्येभ्यः	दुष्ट मन्त्रियोंसे (तथा)	इह प्रेत्य च	इस लोकमें तथा परलोकमें भी
चोरादिभ्यः	चोर आदिसे	मोदते	सुख पाता है ॥१७॥
नृपः प्रजा रक्षन्	राजा प्रजाकी रक्षा करके		

यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान् यज्ञपूरुषः ।
इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥१८॥

यस्य राष्ट्रे पुरे च एव भगवान् यज्ञपूरुषः इज्यते स्वेन धर्मेण जनैः वर्णाश्रम अन्वितैः ॥१८॥

यस्य राष्ट्रे च पुरे एव भगवान् यज्ञ-पूरुषः वर्णाश्रम	जिसके राज्यमें तथा नगरमें भी भगवान् यज्ञ-पुरुष	**अन्वितैः**	वर्णाश्रम धर्मके पालक
		जनैः स्वेन धर्मेण	लोगों द्वारा अपने धर्म पालनसे
		इज्यते	पूजित होते हैं ॥१८॥

तस्य राज्ञो महाभाग भगवान् भूतभावनः ।
परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥१९॥

तस्य राज्ञः महाभाग भगवान् भूत भावनः परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतः निजशासने ॥१९॥

तस्य महाभाग राज्ञः	उस महाभाग राजापर	**भूत भावनः**	प्राणियोंके रक्षक
		विश्वात्मा भगवान्	विश्वात्मा भगवान
निजशासने तिष्ठतः	अपनी आज्ञा पालन करने वालेपर	**परितुष्यति**	प्रसन्न रहते हैं ॥१९॥

तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे ।
लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरन्ति बलिमादृताः ॥२०॥

तस्मिन् तुष्टे किं अप्राप्यं जगतां ईश्वरेश्वरे लोकाः सपालाः हि एतस्मै हरन्ति बलिं आदृताः ॥२०॥

जगतां		**हि**	क्योंकि
ईश्वरेश्वरे	(ब्रह्मादि) जगदीश्वरोंके भी स्वामी	**सपालाः लोकाः**	लोक पालोंके साथ सब लोक
तस्मिन् तुष्टे	उन भगवानके सन्तुष्ट होनेपर	**आहृताः एतस्मै**	आदर पूर्वक उन्हींको
किं अप्राप्यं	क्या नहीं प्राप्त हो सकता,	**बलिं हरन्ति**	पूजोपहार अर्पित करते हैं ॥२०॥

तं सर्वलोकामरयज्ञसंग्रहं
त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ।
यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते
राजन् स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ॥२१॥

तं सर्वलोक अमर यज्ञ संग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपः मयं यज्ञैः विचित्रैः यजतः भवाय ते राजन् स्वदेशान् अनुरोद्धुं अर्हसि ॥२१॥

राजन्	राजन् !	**ते भवाय**	आपकी उन्नतिके लिए
सर्वलोक अमर	सब लोकों, देवताओं,	**विचित्रैः यज्ञैः**	नाना प्रकारके यज्ञोंसे
यज्ञ संग्रहं	यज्ञोंके नियामक,	**यजतः**	आराधना करनेका
त्रयीमयं	वेद-स्वरूप,	**स्वदेशान्**	अपने देशसे
द्रव्यमयं	सर्व पदार्थ रूप,	**अनुरोद्धुं**	(आपको) अनुरोध
तपः मयं	तपोरूप	**अर्हसि**	करना चाहिए ॥२१॥
तं	उन (भगवान) की		

यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभि-
र्वितायमानेन सुराः कला हरेः ।
स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं
तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुम् ॥२२॥

यज्ञेन युष्मत् विषये द्विजातिभिः विताय मानेन सुराः कला हरेः स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं तत् हेलनं न अर्हसि वीर चेष्टितुम् ॥२२॥

युष्मत् विषये	आपके राज्यमें	**सुतुष्टाः**	अत्यन्त सन्तुष्ट होकर
द्विजातिभिः	ब्राह्मणों द्वारा	**वाञ्छितं**	
यज्ञेन विताय		**प्रदिशन्ति**	अभीष्ट प्रदान करेंगे
मानेन	यज्ञ-विस्तार करनेपर	**वीर**	वीरवर ! (आपको)
हरेः कला सुराः	श्रीहरिके कलांश देवता	**तत् हेलनं**	उन (देवताओं) का अपमान
स्विष्टाः	भली प्रकार पूजित होनेपर	**न अर्हसि**	नहीं करना चाहिए ॥२२॥

वेन उवाच–

बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ।
ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥२३॥

बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्म मानिनः ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिं उपासते ॥२३॥

यूयं बत		**ये वृत्तिदं**	जैसे कोई (स्त्री)
बालिशा	तुम लोग या तो मूर्ख हो		जीविका देनेवाले
वा	अथवा	**पतिं हित्वा**	पतिको छोड़कर
अधर्मे धर्म		**जारं पतिं**	जार-पतिकी
मानिनः	अधर्मको धर्म मानने वाले हो,	**उपासते**	सेवा करती हो ॥२३॥

अवजानन्त्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरम् ।
नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ॥२४॥

अवजानन्ति अमी मूढा नृप रूपिणं ईश्वरं न अनुविन्दन्ति ते भद्रं इह लोके परत्र च ॥२४॥

अमी मूढा	ये मूर्ख	**ते इह लोके**	
नृप रूपिणं		**परत्र च**	वे इस लोक और
ईश्वरं	राजाके रूपमें		परलोकमें भी
	(प्रत्यक्ष) ईश्वरका	**भद्रं न**	
अवजानन्ति	अपमान करते हैं	**अनुविन्दन्ति**	कुशलसे नहीं रह पाते ॥२४॥

को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी ।
भर्तृस्नेहविदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥२५॥

कः यज्ञ पुरुषः नाम यत्र वः भक्तिः ईदृशी भर्तृ स्नेह विदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥२५॥

यत्र वः ईदृशी	जिसमें तुम लोगोंकी ऐसी	**भर्तृ स्नेह**	पतिके स्नेहसे
		विदूराणां	वञ्चिता
भक्तिः	भक्ति है (वह)	**कुयोषितां**	दुष्टा स्त्रियोंकी
यज्ञ पुरुषः नाम	यज्ञ-पुरुष नामक	**यथा जारे**	जैसे जारमें (प्रीति होती है) ॥२५॥
कः	कौन है ?		

विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः ।
पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपाम्पतिः ॥२६॥

विष्णुः विरिञ्चः गिरिशः इन्द्रः वायुः यमः रविः पर्जन्यः (मेघ) धनदः (कुवेर) सोमः (चन्द्र) क्षितिः अग्निः अपां पतिः (वरुण) ॥२६॥

एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः ।
देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥२७॥

एते च अन्ये च विबुधाः प्रभवः वर शापयोः देहे भवन्ति नृपतेः सर्व देवमयः नृपः ॥२७॥

एते च अन्ये च	ये सब और दूसरे भी	**भवन्ति**	होते हैं,
वर शापयोः	वरदान तथा शाप देनेमें	**नृपः सर्व देवमयः**	राजा सर्वदेवमय है ॥२७॥
प्रभवः विबुधाः	समर्थ देवता		
नृपतेः देहे	राजाके शरीरमें		

तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः ।
बलिं च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक् पुमान् ॥२८॥

तस्मात् मां कर्मभिः विप्राः यजध्वं गत मत्सराः बलिं च मह्यं हरत मत्तः अन्यः कः अग्रभुक् पुमान् ॥२८॥

तस्मात् विप्राः	इसलिए ब्राह्मणो !	च मह्यं बलिं	
गत मत्सराः	मत्सरता छोड़कर	हरत	और मुझे भेंट दो,
कर्मभिः मां		मत्तः अन्यः	मुझसे भिन्न
यजध्वं	अपने कर्मों द्वारा मेरी पूजा करो,	कः पुमान्	कौन पुरुष
		अग्रभुक्	प्रथम पूजा योग्य है ॥२८॥

मैत्रेय उवाच–

इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः ।
अनुनीयमानस्तद्याच्ञां न चक्रे भ्रष्टमङ्गलः ॥२९॥

इत्थं विपर्यय मतिः पापीयान् उत्पथं गतः अनुनीयमानः तद् याच्ञां न चक्रे भ्रष्ट मङ्गलः ॥२९॥

इत्थं	इस प्रकार	अनुनीयमानः	विनय पूर्वक की गयी
विपर्यय मतिः	उलटी बुद्धि होनेसे	तद् याच्ञां	उन (मुनयों) की प्रार्थनाको
उत्पथं गतः	कुमार्गपर लगा	न चक्रे	स्वीकार नहीं किया ॥२९॥
पापीयान्	(वह) पापी (वेन)		
भ्रष्ट मङ्गलः	क्षीण पुण्यने		

इति तेऽसत्कृतास्तेन द्विजाः पण्डितमानिना ।
भग्नायां भव्य याच्ञायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥३०॥

इति ते असत् कृताः तेन द्विजाः पण्डित मानिना भग्नायां भव्य याच्ञायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥३०॥

विदुर	विदुर !	**ते द्विजाः**	वे ब्राह्मण
इति	इस प्रकार	**भव्य याच्ञायां**	अपनी भव्य प्रार्थना
पण्डित मानिना	अपनेको विद्वान माननेवाले	**भग्नायां**	टूट जाने (व्यर्थ होने) पर
तेन	उस (वेन) के द्वारा	**तस्मै चुक्रुधुः**	उसपर क्रुद्ध हो गये ॥३०॥
असत् कृताः	अपमानित होकर		

मुनय ऊचुः* –

हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः ।
जीवञ्जगदसावाशु कुरुते भस्मसाद् ध्रुवम् ॥३१॥

हन्यतां हन्यतां एष पापः प्रकृति दारुणः जीवन् जगत् असाः आशु कुरुते भस्मसात् ध्रुवम् ॥३१॥

एष हन्यतां	'इसे मार डालो,	**ध्रुवं आशु**	निश्चय शीघ्र ही
प्रकृति दारुणः	स्वभावसे ही दुष्ट	**जगत् भस्मसात् कुरुते**	पूरे संसारको भस्म कर देगा ॥३१॥
पापः हन्यतां	इस पापीको मार डालो !		
असौ जीवन्	यह जीवित रह गया तो		

नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेववरासनम् ।
योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिन्दत्यनपत्रपः ॥३२॥

न अयं अर्हति असत्वृत्तः नरदेव वर आसनं यः अधियज्ञ पतिं विष्णुं विनिन्दति अनप त्रपः ॥३२॥

अयं असद्वृत्तः नरदेव वर	यह कदाचारी	**यः अनप त्रयः**	जो निर्लज्ज
आसनं	राजाके श्रेष्ठ सिंहासनके	**अधियज्ञ पतिं विष्णुं विनिन्दति**	साक्षात् यज्ञपति विष्णुकी निन्दा करता है ॥३२॥
अर्हति न	योग्य नहीं है,		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

को वैनं परिचक्षीत वेनमेकमृतेऽशुभम् ।
प्राप्त ईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ॥३३॥

कः वा एनं परिचक्षीत वेनं एकं ऋते अशुभं प्राप्त ईदृक् ऐश्वर्यं यत् अनुग्रह भाजनः ॥३३॥

यत् अनुग्रह भाजनः	जिनकी कृपापात्र होकर	एकं अशुभं वेनं ऋते	अकेले दुष्ट वेनको छोड़कर
ईदृक् ऐश्वर्यं प्राप्त	ऐसा ऐश्वर्य पाया	कः वा एनं परिचक्षीत	कौन भला इन (श्रीहरिकी) निन्दा करेगा' ॥३३॥

मैत्रेय उवाच*-

इत्थं व्यवसिता हन्तुमृषयो रूढमन्यवः ।
निजघ्नुर्हुङ्कृतैर्वेनं हतमच्युतनिन्दया ॥३४॥

इति व्यवसिता हन्तुं ऋषयः रूढमन्यवः निजघ्नुः हुङ्कृतैः वेनं हतं अच्युत निन्दया ॥३४॥

रूढमन्यवः	क्रोध चढ़े	अच्युत निन्दया	भगवानकी निन्दासे
ऋषयः	ऋषियोंने	हतं	पहिलेसे) मरेके समान
इति हन्तुं	इस प्रकार मार देनेका	वेनं हुङ्कृतैः	वेनको हुंकारसे
व्यवसिता	निश्चय करके,	निजघ्नुः	मार दिया ॥३४॥

ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् ।
सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥३५॥

ऋषिभिः स्व आश्रमपदं गते पुत्र कलेवरं सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥३५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

ऋषिभिः	ऋषियोंके	विद्यायोगेन	(शवरक्षा) विद्याके द्वारा
स्व आश्रमपदं	अपने आश्रम-स्थानोंको	पुत्र कलेवरं	पुत्रके शरीरको
गते	चले जानेपर	पालयामास	रक्षित कर लिया ॥३५॥
सुनीथा शोचती	सुनीथाने चिन्तित होकर		

एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः ।
हुत्वाग्नीन् सत्कथाश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे ॥३६॥

एकदा मुनयः ते तु सरस्वति सलिल आप्लुताः हुत्वा अग्नीन् सत्कथाः चक्रुः उपविष्टाः सरित् तटे ॥३६॥

एकदा ते तु		अग्नीन् हुत्वा	अग्निहोत्र करके,
मुनयः	एक बार वही मुनिगण	सरित् तटे उपविष्टाः	नदी-किनारे बैठे
सरस्वति सलिल आप्लुताः	सरस्वतीके जलमें स्नान करके,	सत्कथाः चक्रुः	हरिचर्चा कर रहे थे ॥३६॥

वीक्ष्योत्थितांस्ततोत्पातानाहुर्लोकभयङ्करान् ।
वीक्ष्य उत्थितान् तदा उत्पातान् आहुःलोकभयङ्करान्

तदा		उत्पातान्	
लोकभयङ्करान्	उस समय लोगोंके लिए भयंकर	उत्थितान्	उत्पात होते
		वीक्ष्य आहुः	देखकर बोले—

मुनय ऊचुः-*

अप्यभद्रमनाथाया दस्युभ्यो न भवेद्भुवः ॥३७॥

अपि अभद्रं अनाथाया दस्युभ्यः न भवेत् भुवः ॥३७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अनाथाया	स्वामीहीन हुई	अपि अभद्रं	कहीं अमंगल
भुवः	पृथ्वीका	न भवेत्	न हो जाय ॥३७॥
दस्युभ्यः	डाकुओं द्वारा		

मैत्रेय उवाच–

एवं मृशन्त ऋषयो धावतां सर्वतोदिशम् ।
पांसुः समुत्थितो भूरिश्चोराणामभिलुम्पताम् ॥३८॥

एवं मृशन्त ऋषयः धावतां सर्वतः दिशं पांसुः समुत्थितः भूरिः* चोराणां अभिलुम्पताम् ॥३८॥

ऋषयः एवं	ऋषि लोग इस प्रकार	सर्वतः दिशं धावतां	सब ओर दौड़ते
मृशन्त	विचार कर ही रहे थे कि	चोराणां	चोरों (डाकुओं) के कारण
अभिलुम्पतां	सब ओर लूटपाट करने	भूरिः पांसुः समुत्थितः	बहुत धूलि उड़ने लगी ॥३८॥

तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुम्पताम् ।
भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसताम् ॥३९॥

तत् उपद्रवं आज्ञाय लोकस्य वसु लुम्पतां भर्तुः उपरते तस्मिन् अन्योन्यं च जिघांसताम् ॥३९॥

तस्मिन्	उस प्रदेशमें	तत् उपद्रवं आज्ञाय	वह उपद्रव जानकर ॥३९॥
भर्तुः उपरते	स्वामीके न होनेसे		
लोकस्य	लोगोंका		
वसु लुम्पतां	धन लूटते		
च अन्योन्यं जिघांसतां	तथा परस्पर एक दूसरेको मारते (डाकुओंका)		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

चोरप्रायं जनपदं हीनसत्त्वमराजकम् ।
लोकान्नावारयञ्छक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥४०॥

चोर प्रायं जनपदं हीनसत्त्वं अराजकं लोकान् न अवारयन् शक्ताः अपि तत् दोष दर्शिनः ॥४०॥

अराजकं	राजाके न होनेसे	**तत् दोष दर्शिनः**	(रोकनेमें हिंसादि) उसके दोष देखनेके कारण
जनपदं	वस्तियोंके (लोग)		
हीनसत्त्वं	शक्तिहीन		
चोर प्रायं	प्रायः चोर हो गये,	**अवारयन् न**	रोका नहीं ॥४०॥
शक्ताः अपि	समर्थ होनेपर भी (मुनियोंने)		

ब्राह्मणः समदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः ।
स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा ॥४१॥

ब्राह्मणः समदृक् शान्तः दीनानां समुपेक्षकः स्रवते ब्रह्म तस्य अपि भिन्न भाण्डात् पयः यथा ॥४१॥

ब्राह्मणः	ब्राह्मण (भले)	**ब्रह्म स्रवते**	ब्रह्म-तेज क्षीण हो जाता है
समदृक् शान्तः	समदर्शी और शान्त हो, पर	**यथा भिन्न भाण्डात्**	जैसे फूटे बर्तनसे
दीनानं समुपेक्षकः	दीनोंकी उपेक्षा करनेवाला हो तो	**पयः**	दूध (चू जाता है) ॥४१॥
तस्य अपि	उसका भी		

नाङ्गस्य वंशो राजर्षेरेष संस्थातुमर्हति ।
अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन् केशवाश्रयाः ॥४२॥

न अङ्गस्य वंशः राजर्षेः एष संस्थातुं अर्हति अमोघ वीर्या हि नृपाः वंशे अस्मिन् केशव आश्रयाः ॥४२॥

राजर्षेः अङ्गस्य	राजर्षि अंगका	हि अस्मिन्	क्योंकि इस
एष वंशः	यह वंश	केशव आश्रयाः	भगवदाश्रित
संस्थातुं न		वंशे नृपाः	वंशमें राजा लोग
अर्हति	समाप्त नहीं होना चाहिए	अमोघवीर्या	अमोघ वीर्य (होते हैं) ॥४२॥

विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः ।
ममन्थुरूरुं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ॥४३॥

विनिश्चित्य एवं ऋषयः विपन्नस्य महीपतेः ममन्थुः उरुं तरसा तत्र आसीत् ऊर्द्ववाहुकः नरः ॥४३॥

ऋषयः एवं	ऋषियोंने इस प्रकार	उरूं तरसा	जांघका बड़े वेगसे
विनिश्चित्य	निश्चय करके	ममन्थुः	मन्थन किया,
विपन्नस्य		तत्र ऊर्द्ववाहुक	उससे एक बामन
महीपतेः	मरे हुए राजा (वेन) की	नरः आसीत्	पुरुष उत्पन्न हुआ ॥४३॥

काककृष्णोऽतिह्रस्वाङ्गो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः ।
ह्रस्वपान्निम्ननासाग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्धजः ॥४४॥

काक कृष्णः अति ह्रस्व अङ्गः ह्रस्व बाहुः महाहनुः ह्रस्वपात् निम्न नासाग्रः रक्ताक्षः ताम्र मूर्धजः ॥४४॥

काक कृष्णः	वह कौएके समान काला	ह्रस्वपात्	छोटे पैरों वाला,
अति ह्रस्व		निम्न नासाग्रः	दबी नासिकाग्रका,
अङ्गः	बहुत छोटे शरीरका,	रक्ताक्षः	लाल नेत्रों वाला
ह्रस्व बाहुः	छोटी भुजाओंवाला,		तथा
महाहनुः	भारी ठुड्ढीका,	ताम्र मूर्धजः	लाल केशों वाला था ॥४४॥

तं तु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनम् ।
निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ॥४५॥

तं तु ते अवनतं दीनं किं करोमि इति वादिनं निषीद इति ब्रुवं तात स निषादः ततः अभवत् ॥४५॥

तात	तात विदुर !	ते तु निषीद	उन (ऋषियोंने) तो 'बैठ जाओ'
तं अवनतं	उस विनम्र		
दीनं	दीन	इति ब्रुवं	यह कहा
किं करोमि इति	'क्या करूँ' यह	ततः स	इसलिए वह
वादिनं	कहने वालेसे	निषादः अभवत्	निषाद हो गया ॥४५॥

तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः ।
येनाहरज्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ॥४६॥

तस्य वंश्याः तु नैषादा गिरि कानन गोचराः येन अहरत् जायमानः वेन कल्मषं उल्बणम् ॥४६॥

येन जायमानः	जिसने उत्पन्न होकर	गिरि कानन	
वेन उल्बणं		गोचराः	पर्वत तथा वनोंमें
कल्मषं	वेनके उग्र पापको		पाये जाने वाले
अहरत्	हरण कर (अपने ऊपर ले) लिया	नैषादा	निषाद लोग हैं ॥४६॥
तस्य वंश्याः तु	उसके वंशज तो		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः ।
बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥१॥

अथ तस्य पुनः विप्रैः अपुत्रस्य महीपतेः बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥१॥

अथ तस्य	फिर उस	**विप्रैः**	ब्राह्मणों द्वारा
अपुत्रस्य	पुत्रहीन	**मथ्यमानाभ्यां**	मन्थन होनेपर
महीपतेः	राजा (वेन) के	**मिथुनं**	एक जोड़ा
बाहुभ्यां	भुजाओंका	**समपद्यत**	उत्पन्न हुआ ॥१॥

तद् दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः ।
ऊचुः परमसन्तुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ॥२॥

तत् दृष्ट्वा मिथुनं जातं ऋषयः ब्रह्मवादिनः ऊचुः परम सन्तुष्टाः विदित्वा भगवत् कलाम् ॥२॥

तत् मिथुनं जातं	उस जोड़ेको उत्पन्न हुआ	**परम सन्तुष्टाः**	अत्यन्त सन्तुष्ट होकर
दृष्ट्वा	देखकर	**ब्रह्मवादिनः**	
भगवत् कलां		**ऋषयः**	वेदज्ञ-ऋषि लोग
विदित्वा	उसे भगवानकी कला जानकर	**ऊचुः**	बोले ॥२॥

मुनय ऊचुः*–

एष विष्णोर्भगवतः कलाभुवनपालिनी ।
इयं च लक्ष्म्याः सम्भूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥३॥

एष विष्णोः भगवतः कला भुवनपालिनी इयं च लक्ष्म्याः सम्भूतिः पुरुषस्य अनपायिनी ॥३॥

एष	यह (पुरुष)	**पुरुषस्य**	परम पुरुष नारायणसे
भगवतः विष्णोः	भगवान् विष्णुकी		
भुवनपालिनी	त्रिभुवनका पालन करनेवाली	**अनपायिनी**	कभी पृथक न होनेवाली
कला	कला (से उत्पन्न) है,	**लक्ष्म्याः**	
इयं च	और यह (स्त्री)	**सम्भूतिः**	लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न है ॥३॥

अयं तु प्रथमो राज्ञां पुमान् प्रथयिता यशः ।
पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥४॥

अयं तु प्रथमः राज्ञां पुमान् प्रथयिता यशः पृथुः नाम महाराजः भविष्यति पृथुश्रवाः ॥४॥

अयं तु	यह (पुरुष) तो	**पृथुश्रवाः**	
राज्ञां प्रथमः	राजाओंमें पहिला (राजा) होगा,	**महाराजः**	विपुल यशस्वी यह महाराज
यशः प्रथयिता	अपने यशका विस्तार करेगा,	**पृथुः नाम**	पृथु नामवाला
		भविष्यति	होगा ॥४॥

इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा ।
अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती ॥५॥

---

* यहाँ गीता प्रेसकी प्रतिमें 'ऋषय ऊचुः' है, पर पिछले अध्यायोंमें इन्हींको 'मुनयः' माना है ।

इयं च सुदती देवी गुण भूषण भूषणा अर्चिः नाम वरारोहा पृथुं एव अरुन्धती ॥५॥

इयं च		**अर्चिः नाम**	अर्चि नामवाली,
सुदती देवी	और यह सुन्दर दांतोंवाली देवी	**वरारोहा**	सुन्दरी
गुण भूषण भूषणा	गुणों तथा आभूषणोंको भी विभूषित करने वाली,	**पृथुं एव अरुन्धती**	पृथुको ही पति बनावेगी ॥५॥

एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया ।
इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ॥६॥

एष साक्षात् हरेः अंशः जातः लोकरिरक्षया इयं च तत् परा हि श्रीः अनुजज्ञे अनपायिनी ॥६॥

एष साक्षात् हरेः अंशः	ये (पृथु) साक्षात् श्रीहरिके अंश हैं,	**इयं तत् परा च**	ये उनके परायण ही है,
लोकरिरक्षया	लोकोंकी रक्षा करनेके लिए	**श्रीः अनुजज्ञे**	(अतः ये) लक्ष्मीजी उनके पीछे ही उत्पन्न हुई हैं ॥६॥
जातः	उत्पन्न हुए हैं,		
हि अनपायिनी	क्योंकि उनसे कभी पृथक नहीं रहतीं		

मैत्रेय उवाच

प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गन्धर्वप्रवरा जगुः ।
मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यन्ति स्वःस्त्रियः ॥७॥

प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गन्धर्व प्रवरा जगुः मुमुचुः सुमनः धाराः सिद्धाः नृत्यन्ति स्वःस्त्रियः ॥७॥

विप्राः तं	ब्राह्मण उनकी	धाराः मुमुचुः	झड़ीके समान वर्षा करने लगे,
प्रशंसन्ति स्म	प्रशंसा करने लगे,		
गन्धर्व		स्वः स्त्रियः	स्वर्गीयस्त्रियां (अप्सराएँ)
प्रवरा जगुः	श्रेष्ठ गन्धर्व गाने लगे		
सिद्धाः सुमनः	सिद्ध लोग पुष्पोंकी	नृत्यन्ति	नाचने लगीं ॥७॥

शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्या नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ।
तत्र सर्व उपाजग्मुर्देवर्षिपितृणां गणाः ॥८॥

शङ्ख तूर्य मृदङ्ग आद्या नेदुः दुन्दुभयः दिवि तत्र सर्व उपाजग्मुः देवर्षिणां पितृणां गणाः ॥८॥

दिवि	आकाशमें	देवर्षिणां	
शङ्ख तूर्य मृदङ्ग	शंख, तुरही, मृदंग,	पितृणां गणाः	देवर्षियों और पितरोंके समूह
दुन्दुभयः आद्या	नगाड़े आदि		
नेदुः	बजने लगे	तत्र उपाजग्मुः	वहाँ आये ॥८॥

ब्रह्मा जगद्गुरुर्देवैः सहासृत्य सुरेश्वरैः ।
वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥९॥

ब्रह्मा जगद्गुरुः देवैः सह आसृत्य सुरेश्वरैः वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥९॥

जगद्गुरुः ब्रह्मा	जगद्गुरु ब्रह्माजी	वैन्यस्य दक्षिणे	
देवैः सुरेश्वरैः	देवताओं तथा देवेश्वरोंके	हस्ते	पृथुके दाहिने हाथमें
		गदाभृतः	भगवान गदाधरका
सह आसृत्य	साथ आकर	चिह्नं दृष्ट्वा	चिह्न (अखंडित चक्र) देखा ॥९॥

पादयोररविन्दं च तं वै मेने हरेः कलाम् ।
यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥१०॥

पादयोः अरविन्दं च तं वै मेने हरेः कलां यस्य अप्रतिहतं चक्रं अंशः स परमेष्ठिनः ॥१०॥

च पादयोः	
अरविन्दं	और पैरोंमें कमल (चिह्न देखकर)
तं वै	उन (पृथु) को निश्चित
हरेः कलां मेने	श्री हरिकी कला मान लिया
यस्य अप्रतिहतं	जिसके (दाहिने हाथमें अन्य रेखासे) अखण्डित
चक्रं	चक्र चिह्न हो
स परमेष्ठिनः	
अंशः	वह भगवान विष्णु-का अंश होता है ॥१०॥

तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ।
आभिषेचनिकान्यस्मै आजह्रुः सर्वतो जनाः ॥११॥

तस्य अभिषेकः आरब्धः ब्राह्मणैः ब्रह्मवादिभिः आभिषे च निकानि अस्मै आजह्रुः सर्वतः जनाः ॥११॥

ब्रह्मवादिभिः	
ब्राह्मणैः	वेदज्ञ ब्राह्मणोंने
तस्य अभिषेकः	उन (पृथु) का अभिषेक
आरब्धः	प्रारम्भ किया,
सर्वतः जनाः	सब ओरके लोग
अस्मै	इनके लिए
आभिषे च	
निकानि	अभिषेककी सामग्री
आजह्रुः	ले आये ॥११॥

सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ।
द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥१२॥

सरित् समुद्राः गिरयः नागाः गावः खगाः मृगाः द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुः उपायनम् ॥१२॥

सरित् समुद्राः	
गिरयः	नदियां, समुद्र, पर्वत,
नागाः गावः	नाग, गौएँ,
खगाः मृगाः	पक्षी, पशु,
द्यौः क्षितिः	द्युलोक, पृथ्वी,
सर्वभूतानि	सब प्राणी,
उपायनं	
समाजह्रुः	उपहार ले आये ॥१२॥

सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलङ्कृतः ।
पत्न्यार्चिषालङ्कृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥१३॥

सः अभिषिक्तः महाराजः सुवासाः साधु अलङ्कृतः पत्न्या अर्चिषा अलङ्कृतया विरेजे अग्निः इव अपरः ॥१३॥

सः महाराजः	वे महाराज (पृथु)	पत्न्या अर्चिषा	अपनी पत्नी अर्चिके साथ
अभिषिक्तः	अभिषेक होनेपर	अपरः अग्निः	
सुवासाः	उत्तम वस्त्र तथा	इव	दूसरे अग्निके समान
साधु अलङ्कृतः	उत्तम आभूषण धारण करके।	विरेजे	सुशोभित हुए ॥१३॥
अलङ्कृतया	अलंकार धारिणी		

तस्मै जहार धनदो हैमं वीर वरासनम् ।
वरुणः सलिलस्रावमातपत्रं शशिप्रभम् ॥१४॥

तस्मै जहार धनदः हैमं वीर वरासनं वरुणः सलिल स्रावं आतपत्रं शशिप्रभम् ॥१४॥

वीर	वीर विदुर !	शशिप्रभं	
तस्मै धनदः	उनको कुबेरने	आतपत्रं	चन्द्रमा जैसी कान्तिका छत्र
हैमं वरासनं	सोनेका श्रेष्ठ सिंहासन तथा	जहार	प्रदान किया ॥१४॥
वरुणः	वरुणने		
सलिल स्रावं	जलसीकर झरनेवाला		

वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजम् ।
इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥१५॥

वायुः च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजं इन्द्रः किरीटं उत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥१५॥

वायुः		च धर्मः कीर्तिमयीं	
वालव्यजने	वायुने छोटे पंखे,	स्रजं	तथा धर्मने कीर्तिमयी माला

इन्द्रः उत्कृष्टं किरीटं	इन्द्रने श्रेष्ठ मुकुट और	यमः संयमनं दण्डं	यमराजने दमन करनेवाला दण्ड (दिया) ॥१५॥

ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् ।
हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम् ॥१६॥

ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारं उत्तमं हरिः सुदर्शनं चक्रं तत् पत्नि अव्याहतां श्रियम् ॥१६॥

ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म	ब्रह्माने वेदमय कवच,	हरिः सुदर्शनं चक्रं	विष्णु भगवानने सुदर्शन चक्र,
भारती उत्तमं हारं	सरस्वतीने उत्तम हार,	तत् पत्नि	उनकी पत्नी (लक्ष्मी) ने
		अव्याहतां श्रियं	अविचल सम्पति (दी) ॥१६॥

दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रं तथाम्बिका ।
सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥१७॥

दशचन्द्रं असिं रुद्रः शतचन्द्रं तथा अम्बिका सोमः अमृतमयान् अश्वान् त्वष्टा रूप आश्रयं रथम् ॥१७॥

रुद्रः दशचन्द्रं असिं	रुद्रने दस चन्द्र (चिह्नवाले कोशकी) तलवार,	सोमः अमृतमयान् अश्वान्	चन्द्रमाने अमृतमय घोड़े,
तथा अम्बिका शतचन्द्रं	ऐसे ही भवानीने सौ चन्द्र (चिह्नों वाली) ढाल	त्वष्टा रूप आश्रयं रथं	विश्वकर्माने बहुत सुन्दर रथ (दिया) ॥१७॥

अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ।
भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ॥१८॥

अग्निः आजगवं चापं सूर्यः रश्मिमयान् इषून् भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिम् अन्वहं ॥१८॥

अग्निः आजगवं चापं	अग्निने गौके सींगका बना धनुष,	**भूः पादुके योगमय्यौ**	पृथ्वीने योगमयी (पहिननेसे इच्छानुसार स्थानपर ले जानेवाली) पादुका,
सूर्यः रश्मिमयान् इषून्	सूर्यने तेजोमय वाण,	**द्यौः अन्वहं पुष्पावलिः**	आकाश नित्यनूतन पुष्पोंकी माला (दी) ॥१८॥

नाट्यं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ।
ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खमात्मजम् ॥१९॥

नाट्यं सुगीतं वादित्रं अन्तर्धानं च खेचराः ऋषयः च आशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खं आत्मजं ॥१९॥

खेचराः	आकाशचारी (सिद्धादि) ने	**ऋषयः च सत्याः आशिषः**	और ऋषियोंने अमोघ आशीर्वाद,
नाट्यम् सुगीतं	नाट्यकला, उत्तम गान-विद्या,	**समुद्रः आत्मजं शङ्खं**	समुद्रने अपनेमें उत्पन्न शंख दिया ॥१९॥
वादित्रं च अन्तर्धानं	वाद्य कला, तथा अन्तर्धान होनेकी विद्या,		

सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ।
सूतोऽथ मागधो बन्दी तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥२०॥

सिन्धवः पर्वता नद्यः रथ वीथिः महात्मनः सूतः अथ मागधः बन्दी तं स्तोतुं उपतस्थिरे ॥२०॥

सिन्धवः पर्वता नद्यः	समुद्र, पर्वतों, नदियोंने	**महात्मनः**	उन महात्मा (पृथु) के

रथ वीथिः	रथके लिए (बाधा-हीन) मार्ग दिया,	मागधः बन्दी	मागध और बंदीजन
		तं स्तोतुं	उनकी स्तुति करने
अथ सूतः	तदनन्तर सूत,	उपतस्थिरे	उपस्थित हुए ॥२०॥

स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥२१॥

स्तावकान् तान् अभिप्रेत्य पृथुः वैन्यः प्रतापवान् मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन् इदं अब्रवीत् ॥२१॥

तान् स्तावकान्	उन स्तुति-जीवियोंका	मेघनिर्ह्रादया वाचा	मेघ-गम्भीर वाणीसे
अभिप्रेत्य	अभिप्राय जानकर	प्रहसन्	हँसते हुए
प्रतापवान्	प्रतापी	इदं अब्रवीत्	यह बोले ॥२१॥
वैन्यः पृथुः	वेनके पुत्र पृथु		

पृथुरुवाच–

भोः सूत हे मागध सौम्य बन्दिँ-
ल्लोकेऽधुनास्पष्टगुणस्य मे स्यात् ।
किमाश्रयो मे स्तव एष योज्यतां
मा मय्यभूवन् वितथा गिरो वः ॥२२॥

भोः सूत हे मागध सौम्य बन्दिन् लोके अधुना अस्पष्ट गुणस्य मे स्यात् किं आश्रयः मे स्तव एष योज्यतां मा मयि अभूवन् वितथा गिरः वः ॥२२॥

भोः सूत		किं आश्रयः	किस आधारपर
हे मागध	हे सूत ! हे मागध !	एष मे स्तव	
सौम्य बन्दिन्	सौम्य बन्दीजन !	योज्यतां	यह मेरी स्तुति करोगे ?
अधुना लोके मे अस्पष्ट गुणः	अभी संसारमें		
स्यात्	मेरे गुण प्रगट नहीं हुए हैं ।		

मयि वः गिरः	मेरे सम्बन्धमें तुम्हारी वाणी	वितथा मा अभूवन्	व्यर्थ न (व्यय) होवे ॥२२॥

तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं-
करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः ।
सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे
जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥२३॥

तस्मात् परोक्षे अस्मत् उपश्रुतानि अलं करिष्यथ स्तोत्रं अपीच्य वाचः सति उत्तम श्लोक गुणानुवादे जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥२३॥

तस्मात्	इसलिए	उत्तम श्लोक	(लेकिन) उत्तम श्लोक भगवानके
उपश्रुतानि	उत्तम गुणोंके (जो)	गुणानुवादे सति	गुणानुवादके रहते
परोक्षे	अभी अप्रकट हैं	सभ्याः	सभ्य पुरुष
अलं	(उनके प्रकट होने पर जब) उनसे अलंकृत हो जाऊँ (तब)	जुगुप्सितं	तुच्छ निन्दित (मनुष्यों) की
		स्तवयन्ति न	स्तुति नहीं करते ॥२०॥
अपीच्य वाचः	(अपनी) मधुर वाणीसे		
अस्मत् स्तोत्रं करिष्यथ	हमारी स्तुति कर लेना,		

महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशुः
कः स्तावकैः स्तावयतेऽसतोऽपि ।
तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो
जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥२४॥

महत् गुणान् आत्मनि कर्तुं ईशः कः स्तावकैः स्तावयते असतः अपि ते अस्या भविष्यन् इति विप्रलब्धः जन अवहासं कुमतिः न वेद ॥२४॥

महत् गुणान् आत्मनि कर्तुं	महान गुणोंको
ईशः	अपनेमें लानेमें समर्थ
कः असतः अपि	कौन उन (गुणों) के न होनेपर भी
स्तावकैः स्तावयते	स्तुति करने वालोंसे (अपनी) स्तुति करवायेगा,
ते अस्या भविष्यन्	वे (गुण) इसमें होंगे
इति विप्रलब्धः	इस प्रकार (स्तुति करके) वह ठगा गया है—
कुमतिः	वह दुर्बुद्धि
जन अवहासं	लोग हँसी उड़ावेंगे (यह)
न वेद	नहीं समझाता ॥२४

प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः ।
ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ॥२५॥

प्रभवः हि आत्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्ति अपि विश्रुताः ह्रीमन्तः परम उदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ॥२५॥

वा ह्रीमन्तः परम उदाराः	जैसे लज्जाशील अत्यन्त उदार लोग
विगर्हितं पौरुषं	(अपने किसी) निन्दित कर्मकी (चर्चा पसन्द नहीं करते, वैसे ही)
विश्रुताः अपि प्रभवः हि आत्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्ति	प्रसिद्ध होते हुए भी समर्थ लोग क्योंकि अपनी स्तुति निन्दित मानते हैं ॥२५॥

वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः ।
कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥२६॥

वयं तु अविदिता लोके सूत अद्यापि वरीमभिः कर्मभिः कथं आत्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥२६॥

सूत	सूत !
वयं तु अद्यापि वरीमभिः	हम तो अभी तक
कर्मभिः	उत्तम कर्मोंसे
लोके अविदिता	लोकमें जाने नहीं गये हैं,
बालवत्	(अतः) बच्चोंके समान
कथं आत्मानं	कैसे अपनी
गापयिष्याम	प्रशंसा करवाएँ ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः ।
तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ॥१॥

इति ब्रुवाणं नृपतिं गायकाः मुनि चोदिताः तुष्टुवुः तुष्ट मनसः तत् वाक् अमृत सेवया ॥१॥

नृपतिं इति ब्रुवाणं	राजाके ऐसा कहनेपर	सेवया तुष्ट मनसः	सुनकर संतुष्ट चित्त
तत् वाक् अमृत	उनकी अमृत वाणी	मुनि चोदिताः	मुनियों द्वारा प्रेरित
		गायकाः तुष्टुवुः	गायक स्तुति करने लगे ॥१॥

बन्दीजना ऊचुः –

नालं वयं ते महिमानुवर्णने
यो देववर्योऽवततार मायया ।
वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते
वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः ॥२॥

न अलं वयं ते महिमा अनुवर्णने यः देववर्यः अवततार मायया वेन अङ्ग जातस्य च पौरुषाणि ते वाचस्पतीनां अपि बभ्रमुः धियः ॥२॥

यः देववर्यः	जो देवश्रेष्ठ श्रीहरि	ते महिमा अनुवर्णने	उन आपकी महिमाके वर्णनमें
मायया अवततार	अपनी मायासे अवतरित हुए हैं	वयं अलं न	हम समर्थ नहीं हैं,

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

वेन अङ्ग जातस्य च	वेनके शरीरसे प्रकट होनेपर भी	वाचस्पतीनां अपि धियः बभ्रमुः	ब्रह्माकी भी बुद्धि चकरा जाती है ॥२॥
ते पौरुषाणि	आपके पराक्रमके विषयमें		

अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः
कलावतारस्य कथामृताहृताः ।
यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः
श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ॥३॥

अथ अपि उदारश्रवसः पृथोः हरेः कलावतारस्य कथामृत आहृताः यथा उपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ॥३॥

अथ अपि	फिर भी	प्रचोदिताः	(उन्हींकी) प्रेरणासे
उदारश्रवसः	उदारयशा	वयं श्लाघ्यानि	हम (आपके) प्रशंसनीय
हरेः कलावतारस्य	श्रीहरिके कलावतार	कर्माणि	
पृथोः कथामृत	पृथुकी अमृत-कथामें	वितन्महि	कर्मोंका विस्तार (वर्णन) करते हैं ॥३॥
आहृताः	आदर-भाव रखकर		
मुनिभिः यथा उपदेशं	मुनियोंके उपदेशके अनुसार		

एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन् ।
गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपन्थिनाम् ॥४॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठः लोकं धर्मे अनुवर्तयन् गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत् परिपन्थिनाम् ॥४॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठः	ये धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ (पृथु)	लोकं धर्मे अनुवर्तयन्	लोगोंको धर्ममें लगाकर

धर्मसेतूनां	धर्म-मर्यादाके	शास्ता	दण्ड देनेवाले
गोप्ता च	रक्षक तथा		होंगे ॥४॥
तत् परिपन्थिनां	उस (धर्म) से उलटे मार्गपर चलने वालोंको		

एष वै लोकपालानां बिभर्त्येकस्तनौ तनूः ।
काले काले यथाभागं लोकयोरुभयोर्हितम् ॥५॥

एष वै लोकपालानां बिभर्ति एकः तनौ तनूः काले काले यथा भागं लोकयोः उभयोः हितम् ॥५॥

एष वै	ये निश्चय	एकः तनौ	अपने एक ही शरीरमें
काले काले	समय-समयपर	लोकपालानां	सब लोकपालोंका
यथा भागं	कार्य विभागानुसार	तनूः बिभर्ति	शरीर (प्रभाव) धारण करें ॥५॥
उभयोः लोकयोः	दोनों लोकोंके		
हितं	कल्याणके लिए		

वसु काल उपादत्ते काले चायं विमुञ्चति ।
समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन् सूर्यवद्विभुः ॥६॥

वसु काल उपादत्ते काले च अयं विमुञ्चति समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन् सूर्यवत् विभुः ॥६॥

सूर्यवत् प्रतपन्	सूर्यके समान तेजस्वी	काल-वसु उपादत्ते	समयपर (कर आदि द्वारा) धन लेंगे
सर्वेषु भूतेषु समः	सब प्राणियोंके प्रति समान	च काले विमुञ्चति	तथा समयपर बांट देंगे ॥६॥
अयं विभुः	ये समर्थ		

तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्याक्रमतामपि ।
भूतानां करुणः शश्वदार्तानां क्षितिवृत्तिमान् ॥७॥

तितिक्षति अक्रमं वैन्य उपरि आक्रमतां अपि भूतानां करुणः शश्वत् आर्तानां क्षितिवृत्तिमान् ॥७॥

क्षितिवृत्तिमान्	पृथ्वीके समान व्यवहार वाले
वैन्य	महाराज पृथु
आर्तानां भूतानां	दुःखी प्राणियोंका अतिक्रमण
आक्रमतां अपि	आक्रमण (आक्षेपादि) करनेपर भी
उपरि	अपने ऊपर
शश्वत् करुणः	निरन्तर करुणाशील रहकर
तितिक्षति	सहनकर लिया करेंगे ॥७॥

देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरिः ।
कृच्छ्रप्राणाः प्रजा ह्येष रक्षिष्यत्यञ्जसेन्द्रवत् ॥८॥

देवे अवर्षति असौ देवः नरदेववपुः हरिः कृच्छ्र प्राणाः प्रजा हि एष रक्षिष्यति अञ्जसा इन्द्रवत् ॥८॥

देवे अवर्षति	इन्द्रके कभी वर्षा न करने पर
असौ नरदेववपुः	यह राजाके रूपमें
देवः हरिः	भगवान श्रीहरि
प्रजा कृच्छ्र प्राणाः	प्रजाके प्राण संकटमें पड़नेपर
हि एष	निश्चय ये
इन्द्रवत्	इन्द्रके समान
अञ्जसा	
रक्षिष्यति	सरलतासे रक्षा कर लेंगे ॥८॥

आप्याययत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना ।
सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा ॥९॥

आप्याययति असौ लोकं वदन अमृत मूर्तिना सानुराग अवलोकेन विशदस्मित चारुणा ॥९॥

असौ	ये
अमृत मूर्तिना	अमृत स्वरूप
वदन	श्रीमुख (तथा)
सानुराग	प्रेम सहित
चारुणा	
विशदस्मित	सुन्दर स्पष्ट मुस्कान भरा
अवलोकेन	चितवनसे
लोकं आप्याययति	लोकको आनन्द मग्न करेंगे ॥९॥

अव्यक्तवर्त्मैष निगूढकार्यो
गम्भीरवेधा उपगुप्तवित्तः ।
अनन्तमाहात्म्यगुणैकधामा
पृथुः प्रचेता इव संवृतात्मा ॥१०॥

अव्यक्तवर्त्म एष निगूढ कार्यः गम्भीरवेधा उपगुप्त वित्तः अनन्त माहात्म्य गुण एक धामा पृथुः प्रचेता इव संवृत आत्मा ॥१०॥

एष अव्यक्त-वर्त्म	इनकी गति जानी नहीं जा सकेगी	**अनन्त माहात्म्य**	अनन्त महिमाशाली
निगूढ कार्यः	कार्य भी गुप्त रहेंगे	**गुण एक धामा**	गुणोंके एकमात्र आश्रय
गम्भीरवेधा	गम्भीर विधान करेंगे	**पृथुः प्रचेता इव**	पृथु वरुणके समान
वित्तः उपगुप्त	धन छिपा रहेगा	**संवृत आत्मा**	मनस्वी होंगे ॥१०॥

दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् ।
नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः ॥११॥

दुरासदः दुर्विषह आसन्नः अपि विदूरवत् न एव अभिभवितुं शक्यः वेन अरणि उत्थितः अनलः ॥११॥

वेन अरणि	वेन रूपी अरणि (के मन्थनसे)	**विदूरवत्**	बहुत दूरके समान (अज्ञेय होंगे)
उत्थितः अनलः	उत्पन्न अग्नि (के समान पृथु)	**अभिभवितुं**	(इन्हें) पराजित करना
दुरासदः	दुर्धर्ष	**शक्यः न एव**	सम्भव नहीं ही होगा ॥११॥
दुर्विषह	दुःसह		
आसन्नः अपि	समीप रहनेपर भी		

अन्तर्बहिश्च भूतानां पश्यन् कर्माणि चारणैः ।
उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मेव देहिनाम् ॥१२॥

अन्तः बहिः च भूतानां पश्यन् कर्माणि चारणैः उदासीन इव अध्यक्षः वायुः आत्म एव देहिनाम् ॥१२॥

भूतानां	प्राणियों (प्रजा) के (गुप्त)
अन्तः बहिः च	आन्तरिक और बाहरी (प्रकट)
कर्माणि चारणैः	कर्मोंको गुप्तचरों द्वारा
पश्यन् उदासीन इव	जानकर भी उदासीनकी भांति
अध्यक्षः	(ये) अध्यक्ष (नरेश)
देहिनां	शरीर धारियों (प्रजाजनों) के
आत्म वायुः एव	अपनी प्राण वायुसे (होंगे) ॥१२॥

नादण्ड्यं दण्डयत्येष सुतमात्मद्विषामपि ।
दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ॥१३॥

न अदण्ड्यं दण्डयति एष सुतं आत्मद्विषां अपि दण्डयति आत्मजं अपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ॥१३॥

आत्मद्विषां अपि	अपने शत्रुके भी
अदण्ड्यं सुतं	दण्डन देने योग्य पुत्रको
एष न दण्डयति	ये दण्ड नहीं देंगे (और)
धर्मपथे स्थितः	धर्म-मार्गपर दृढ़ रहकर
दण्ड्यं	दण्ड देने योग्य
आत्मजं अपि	अपने पुत्रको भी
दण्डयति	दण्ड देंगे ॥१३॥

अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् ।
वर्तते भगवानर्को यावत्तपति गोगणैः ॥१४॥

अस्य अप्रतिहतं चक्रं पृथोः आमानस अचलात् वर्तते भगवान् अर्कः यावत् तपति गोगणैः ॥१४॥

भगवान् अर्कः	भगवान् सूर्य	अस्य अप्रतिहतं चक्रं	(उस पूरे प्रदेशमें) इनका निर्बाध राज्य रहेगा ॥१४॥
आमानस अचलात्	मानसोत्तर गिरिसे लेकर		
यावत् गोगणैः तपति	जहाँ तक किरणोंसे प्रकाशित करते हैं		

रञ्जयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ।
अथामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ॥१५॥

रञ्जयिष्यति यत् लोकं अयं आत्म विचेष्टितैः अथ अमुं आहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ॥१५॥

यत् लोकं	क्योंकि लोगोंको	अथ	
अयं आत्म		मनोरञ्जनकैः	अतः मनोरंजन करनेवाले होनेसे
विचेष्टितैः	ये अपने प्रयत्नोंसे		
रञ्जयिष्यति	प्रसन्न करेंगे	प्रजाः अमुं राजानं आहू	प्रजा इनको राजा कहेगी ॥१५॥

दृढव्रतः सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः ।
शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥१६॥

दृढव्रतः सत्यसन्धः ब्रह्मण्यः वृद्धसेवकः शरण्यः सर्वभूतानां मानदः दीनवत्सलः ॥१६॥

दृढव्रत सत्य-सन्धः	(ये) दृढव्रती, सत्य-प्रतिज्ञ,	सर्वभूतानां मानदः	सब प्राणियोंका सम्मान करनेवाले (और)
ब्रह्मण्यः	ब्राह्मणोंके भक्त,		
वृद्धसेवकः	बड़ोंकी सेवा करनेवाले,	दीनवत्सलः	दोनोंपर वात्सल्य रखनेवाले (होंगे) ॥१६॥
शरण्यः	शरण देनेवाले,		

मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः ।
प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किङ्करो ब्रह्मवादिनाम् ॥१७॥

मातृ भक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यां अर्धं इव आत्मनः प्रजासु पितृवत् स्निग्धः किङ्करः ब्रह्मवादिनां ॥१७॥

परस्त्रीषु मातृ		**प्रजासु पितृवत्**	
भक्तिः	परस्त्रियोंको माता मानकर भक्ति-भाव रखेंगे,	**स्निग्धः**	प्रजासे पिताके समान स्नेह करेंगे,
पत्न्यां	अपनी पत्नीको	**ब्रह्मवादिनां**	
आत्मनः अर्धं	अपना आधा देह (मानेंगे)	**किङ्करः**	वेदज्ञोंके सेवक रहेंगे ॥१७॥

देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः ।
मुक्तसङ्गप्रसङ्गोऽयं दण्डपाणिरसाधुषु ॥१८॥

देहिनां आत्मवत् प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः मुक्तसङ्गः प्रसङ्गः अयं दण्डपाणिः असाधुषु ॥१८॥

देहिनां		**अयं मुक्तसङ्गः**	ये आसक्तिहीन (महापुरुषोंका)
आत्मवत् प्रेष्ठः	शरीर-धारियोंको अपने शरीरके समान प्रिय होंगे,	**प्रसङ्गः**	सत्संग करेंगे,
		असाधुषु	दुष्टोंके लिए
सुहृदां	सम्बन्धियोंका	**दण्डपाणिः**	यमराजके समान
नन्दिवर्धनः	आनन्द बढ़ावेंगे,		होंगे ॥१८॥

अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः
कूटस्थ आत्मा कलयावतीर्णः ।
यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं
पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥१९॥

अयं तु साक्षात् भगवान् व्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलया अवतीर्णः यस्मिन् अविद्या रचितं निरर्थकं पश्यन्ति नानात्वं अपि प्रतीतम् ॥१९॥

अयं तु साक्षात् भगवान्	ये तो साक्षात्	अविद्या रचितं निरर्थकं	अविद्यासे बनाया व्यर्थ
व्यधीशः	भगवान त्रिलोकीनाथ	नानात्वं	अनेकता (भेद)
कलया अवतीर्णः	अपनी कलासे अवतरित हैं,	प्रतीतं पश्यन्ति	प्रतीत होते (ज्ञानीजन) देखते हैं ॥१९॥
यस्मिन् कूटस्थ आत्मा	जिन कूटस्थ आत्मामें		

अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रे-
र्गोप्तैकवीरो नरदेवनाथः ।
आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः
पर्यस्यते दक्षिणतो यथार्कः ॥२०॥

अयं भुवः मण्डलं उदयाद्रेः गोप्तैक वीरः नरदेवनाथः आस्थाय जैत्रं रथं आत्त चापः पर्यस्यते दक्षिणतः यथा अर्कः ॥२०॥

यथा अर्कः	जैसे सूर्य	जैत्रं रथं आस्थाय	विजयदायी रथपर बैठकर
उदयाद्रेः दक्षिणतः पर्यस्यते	उदयाचलको दाहिने करके परिक्रमा करते हैं	आत्त चापः	धनुष लिए (घूमते हुए)
भुवः मंडलं अयं नर-देवनाथः	भूमण्डलकी ये राजाधिराज	गोप्तैक वीरः	अकेले ही ये वीर रक्षा करेंगे ॥२०॥

अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र
बलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः ।

मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं
चक्रायुधं तद्यश उद्धरन्त्यः ॥२१॥

अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र वलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं चक्रायुधं तत् यश उद्धरन्त्यः ॥२१॥

तत्र तत्र किल	जहां-तहाँ अवश्य	**तत् यश**	
सलोकपालाः	लोकपालोंके साथ	**उद्धरन्त्यः**	इनका यशोगान करती हुई
नृपालाः	राजा लोग		
अस्मै वलिं		**चक्रायुधं**	
हरिष्यन्ति	इनको भेंट देंगे	**मंस्यन्त**	साक्षात् भगवान विष्णु मानेंगी ॥२१॥
एषां स्त्रियः	उन सबकी स्त्रियां		
आदिराजं	आदिराज (पृथु)को		

अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः
प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम् ।
यो लीलयाद्रीन् स्वशरासकोट्या
भिन्दन् समां गामकरोद्यथेन्द्रः ॥२२॥

अयं महीं गां दुदुहे अधिराजः प्रजापतिः वृत्तिकरः प्रजानां यः लीलया अद्रीन् स्वशरास कोट्या भिन्दन् समां गां अकरोत् यथा इन्द्रः ॥२२॥

अयं अधिराजः	ये महाराजाधिराज	**यथा इन्द्रः**	जैसे इन्द्रने (वज्रसे किया था)
गां महीं दुदुहे	गो-रूपधारिणी पृथ्वीका दोहन करेंगे	**यः लीलया**	जो खेल खेलमें
प्रजापतिः	(क्यों कि ये) प्रजानाथ	**स्वशरास कोट्या**	अपने धनुषकी नोकसे
प्रजानां वृत्तिकरः	प्रजाकी आजिका (व्यवस्था) करनेवाले हैं	**अद्रीन् भिन्दन गां समां अकरोत्**	पर्वतोंको तोड़कर पृथ्वीको समतल बना देंगे ॥२२॥

विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं
यदाचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ।
तदा निलिल्युर्दिशि दिशयसन्तो
लाङ्गूलमुद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ॥२३॥

विस्फूर्जयन् आजगवं धनुः स्वयं यदा चरति क्ष्मां अविषह्यां आजौ तदा निलिल्युः दिशि दिशि असन्तः लाङ्गूलं उद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ॥२३॥

यथा लाङ्गूलं उद्यम्य मृगेन्द्रः — जैसे पूंछ उठाकर सिंह (घूमता है)
यदा आजौ अविषह्यां — जब ब्रह्माके लिए भी असह्य
स्वयं आजगवं धनुः — (पृथु) स्वयं (अपना) आजगव धनुष
विस्फूर्जयन् — टंकृत करते
क्ष्मां चरति — पृथ्वीपर घूमेंगे
तदा असन्तः — तब दुष्ट लोग
दिशि दिशि — दिशाओंमें जहां-तहां
निलिल्युः — छिप जायेंगे ॥२३॥

एषोऽश्वमेधान् शतमाजहार
सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ।
जहार्षीद्यस्य हयं पुरन्दरः
शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥२४॥

एष अश्वमेधान् शतं आजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र जहार्षीत् यस्य हयं पुरन्दरः शतक्रतुः चरमे वर्तमाने ॥२४॥

यत्र सरस्वती प्रादुरभावि — जहांसे सरस्वती नदी निकली है (वहां)
एष शतं अश्वमेधान् आजहार — ये सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे
चरमे शतक्रतुः वर्तमाने — अन्तिम सौवां यज्ञ होते समय
यस्य हयं पुरन्दरः जहार्षीत् — जिसके अश्वको इन्द्र हरण करेंगे ॥२४॥

एष स्वसद्योपवने समेत्य
सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ।
आराध्य भक्त्या लभतामलं तज्-
ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥२५॥

एष स्वसद्य उपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तं एकं आराध्य भक्त्या लभता अमलं तत् ज्ञानं यतः ब्रह्म परं विदन्ति ॥२५॥

एष स्वसद्य		भक्त्या एकं	
उपवने	ये अपने भवनके बगीचेमें	आराध्य	भक्तिपूर्वक केवल उन्हींकी पूजा करके
भगवन्तं		तत् अमलं ज्ञानं	उस निर्मल ज्ञानको
सनत्कुमारं	भगवान सनत्कुमारसे	लभता यतः	पावेंगे जिससे
समेत्य	भेंट होनेपर	परं ब्रह्म	
		विदन्ति	परंब्रह्मका बोध होता है ॥२५॥

तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः ।
श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥२६॥

तत्र तत्र गिरः ताः ताः इति विश्रुत विक्रमः श्रोष्यति आत्म आश्रिताः गाथाः पृथुः पृथु पराक्रमः ॥२६॥

पृथु पराक्रमः		आत्म आश्रिताः	
पृथुः	विपुल पराक्रम पृथु	गाथाः	अपने सम्बन्धका वर्णन
विश्रुत विक्रमः			
इति	प्रसिद्ध पराक्रमवाले होंगे इसलिए	ताः ताः गिरः	वहां-वहांके लोगोंकी वाणीसे
तत्र तत्र	जहां-तहां	श्रोष्यति	सुनेंगे ॥२६॥

दिशो विजित्याप्रतिरुद्धचक्रः
स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ।

सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमान-
महानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥२७॥

दिशः विजित्य अप्रतिरुद्ध चक्रः स्वतेजसा उत्पाटित लोकशल्यः सुर असुरेन्द्रैः उपगीयमान महानुभावः भविता पतिः भुवः ॥२७॥

दिशः विजित्य	सब दिशाओंको जीतकर	**सुर असुरेन्द्रैः**	देवता-दैत्य प्रमुखों द्वारा
अप्रतिरुद्ध चक्रः	निर्बाध राज्य (स्थापित) करके	**महानुभावः**	(इनका) महान् प्रभाव
स्वतेजसा		**उपगीयमान**	वर्णित होता रहेगा
लोकशल्यः	अपने तेजसे लोगोंके कष्टरूप (द्रष्टों) को	**भुवः पतिः भविता**	(ऐसे) ये भूपति होंगे ॥२७॥
उत्पाटित	उखाड़ (नष्ट) करके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्ध षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

एवं स भगवान् वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः ।
छन्दयामास तान् कामैः प्रतिपूज्याभिनन्द्य च ॥१॥

एवं स भगवान् वैन्यः ख्यापितः गुण कर्मभिः छन्दयामास तान् कामैः प्रतिपूज्य अभिनन्द्य च ॥१॥

एवं स भगवान्	इस प्रकार वे भगवान्	**तान् कामैः प्रतिपूज्य**	उनकी मन-चाही वस्तुएँ देकर
वैन्यः गुण कर्मभिः	पृथु गुण तथा कर्मोंकी	**अभिनन्द्य च छन्दयामास**	तथा सत्कृत करके सन्तुष्ट किया ॥१॥
ख्यापितः	(अग्रिम) सूचना दिये जानेपर		

ब्राह्मणप्रमुखान् वर्णान् भृत्यामात्यपुरोधसः ।
पौराञ्जानपदान् श्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥२॥

ब्राह्मण प्रमुखान् वर्णान् भृत्य अमात्य पुरोधसः पौरान् जानपदान् श्रेणीः प्रकृतिः समपूजयत् ॥२॥

ब्राह्मण प्रमुखान्	जिनमें ब्राह्मण मुख्य हैं	**पौरान् जानपदान्**	पुरवासी, देशवासी
वर्णान्	उन चारों वर्णोंको,	**श्रेणीः प्रकृतिः**	व्यापारियों, अनुयायियोंका
भृत्य अमात्य पुरोधसः	सेवक, मन्त्री, पुरोहित,	**समपूजयत्**	भली प्रकार सत्कार किया ॥२॥

विदुर उवाच-

कस्माद्धार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी ।
यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम् ॥३॥

कस्मात् धधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी यां दुदोह पृथुः तत्र कः वत्सः दोहनं च किम् ॥३॥

बहुरूपिणी धरित्री	बहुत रूप धारण करनेवाली पृथ्वीने	**यां तत्र पृथुः दुदोह**	जिसे वहाँ पृथुने दुहा,
गोरूपं कस्मात् धधार	गायका रूप क्यों धारण किया ?	**कः वत्सः**	कौन बछड़ा बना ?
		दोहनं च किं	दुहनेका पत्र क्या बना ? ॥३॥

प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् ।
तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥४॥

प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथं तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोः अपाहरत् ॥४॥

देवी प्रकृत्या	देवी (पृथ्वी) स्वभावसे	**तस्य मेध्यं हयं**	उनके पवित्र अश्वमेधीय) घोड़ेको
विषमा तेन	विषम (ऊँची-नीची) हैं, उन्होंने	**देवः कस्य हेतोः**	इन्द्रने किस कारण
कथं समा कृता	कैसे समतल बनाया ?	**अपाहरत्**	अपहरण किया ॥४॥

सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन् ब्रह्मविदुत्तमात् ।
लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥

सनत्कुमारात् भगवतः ब्रह्मन् ब्रह्मविद् उत्तमात् लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	सविज्ञानं ज्ञानं लब्ध्वा	विज्ञानके साथ ज्ञान प्राप्त करके
ब्रह्मविद् उत्तमात्	ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ	राजर्षिः	राजर्षि (पृथु)
भगवतः सनत्कुमारात्	भगवान सनत्कुमारसे	कां गतिं गतः	किस गतिको प्राप्त हुए ? ॥५॥

यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान् भगवतः प्रभोः ।
श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्वदेहकथाश्रयम् ॥६॥

यत् च अन्यत् अपि कृष्णस्य भवान् भगवतः प्रभोः श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्व देह कथा आश्रयम् ॥६॥

अन्यत् अपि यत् च	और भी जो कुछ	पूर्व देह कथा आश्रयं	पूर्वावतारके चरितसे सम्बन्धित
सुश्रवसः	उत्तमश्लोक	पुण्यं श्रवः	पवित्र यशोगाथा है
प्रभोः भगवतः कृष्णस्य	सर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्णके	भवान्	आप (सुनाइये ।) ॥६॥

भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च ।
वक्तुमर्हसि योऽदुह्याद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥७॥

भक्ताय मे अनुरक्ताय तव च अधोक्षजस्य च वक्तुं अर्हसि यः अदुह्यात् वैन्य रूपेण गां इमाम् ॥७॥

मे तव च अधोक्षजस्य च	मुझ आपके और भगवान हृषीकेशके भी	इमां गां अदुह्यात्	इस पृथ्वीका दोहन किया
अनुरक्ताय भक्ताय	अनुरागी भक्तसे	वक्तुं अर्हसि	(उनका चरित आपको) कहना चाहिए ॥७॥
यः वैन्य रूपेण	जिन्होंने पृथु रूपसे		

सूत उवाच-

चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथां प्रति ।
प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ॥८॥

चोदितः विदुरेण एवं वासुदेव कथां प्रति प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ॥८॥

वासुदेव कथां प्रति	भगवान वासुदेवकी कथाके लिए	प्रीतमना	प्रसन्न चित्त
		मैत्रेयः	मैत्रेयजीने
		तं प्रशस्य	उन (विदुर) की प्रशंसा करके
एवं विदुरेण	इस प्रकार विदुर द्वारा	प्रत्यभाषत	उत्तर देते बोले ॥८॥
चोदितः	प्रेरित किये जानेपर		

मैत्रेय उवाच-

यदाभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रै-
रामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ।
प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य
क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥९॥

यदा अभिषिक्तः पृथुः अङ्ग विप्रैः आमन्त्रितः जनतायाः च पालः प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षाम देहाः पतिं अभ्यवोचन् ॥९॥

अङ्ग	प्रिय विदुर !	क्षितिपृष्ठ निरन्ने	पृथ्वीके अन्नहीन हो जानेसे
यदा विप्रैः	जब ब्राह्मणों द्वारा	क्षुत्क्षाम देहाः	भूखसे दुबले शरीरवाली
पृथुः अभिषिक्तः	पृथुका अभिषेक करके	प्रजा एत्य	प्रजाने आकर
जनतायाः पालः	जनताका पालक	पतिं अभ्यवोचन्	अपने स्वामीसे प्रार्थना की ॥९॥
च आमन्त्रितः	घोषित भी कर दिया गया (तब)		

*प्रजा ऊचुः**—

वयं राजञ्जाठरेणाभितप्ता
यथाग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः ।
त्वामद्य याताः शरणं शरण्यं
यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥१०॥

वयं राजन् जाठरेण अभितप्ता यथा अग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः त्वां अद्य याताः शरणं शरण्यं यः साधितः वृत्तिकरः पतिः नः ॥१०॥

यथा कोटरस्थेन	जैसे अपने कोटरमें स्थित	**पतिः साधितः**	स्वामी नियुक्त हुए हैं (उन)
वृक्षाः	वृक्ष (सन्तप्त हो)	**त्वां शरण्यं**	आप शरणदाताकी (हम)
राजन् वयं जाठरेण अभितप्ता	राजन् ! हम लोग जठराग्नि (भूख) से संतप्त हैं,	**अद्य शरणं याताः**	आज शरणमें आये हैं ॥१०॥
यः नः वृत्तिकरः	जो हम लोगोंको जीविका देनेवाले		

तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं
क्षुधार्दितानां नरदेवदेव ।
यावन्न नङ्क्ष्यामह उज्झितोर्जा
वार्तापतिस्त्वं किल लोकपालः ॥११॥

तत् नः भवान् ईहतु रातवे अन्नं क्षुधा अर्दितानां नरदेवदेव यावत् न नङ्क्ष्यामह उज्झित उर्जा वार्तापतिः त्वं किल लोकपालः ॥११॥

त्वं किल लोकपालः	आप निश्चय सब लोकोंके पालक हैं,	**नः वृत्तिकरः पतिः**	हम लोगोंको जीविका देनेवाले स्वामी
नरदेवदेव	राजराजेश्वर !		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तत् नः क्षुधा अर्दितानां	अतः हम भूखसे उत्पीड़ितोंकी	न नङ्क्ष्यामह नः अन्नं रातवे भवान् ईहतु	नहीं नष्ट हो जाते हमको अन्न देनेका आप प्रबन्ध करें ॥११॥
यावत् उज्झित ऊर्जा	जब तक शक्ति नष्ट होनेसे		

मैत्रेय उवाच-

पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवितम् ।
दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सोऽन्वपद्यत ॥१२॥

पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवितं दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सः अन्वपद्यत ॥१२॥

कुरुश्रेष्ठ	कुरुश्रेष्ठ विदुर !		विचार किया
प्रजानां करुणं परिदेवितं	प्रजाका करुण क्रन्दन सुनकर	सः निमित्तं अन्वपद्यत	उन्होंने (अन्नाभावका) कारण जान लिया ॥१२॥
निशम्य पृथुः दीर्घं दध्यौ	पृथुने देर तक		

इति व्यवसितो बुद्ध्या प्रगृहीतशरासनः ।
सन्दधे विशिखं भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा ॥१३॥

इति व्यवसितः बुद्ध्या प्रगृहीत शरासनः सन्दधे विशिखं भूमेः क्रुद्धः त्रिपुरहा यथा ॥१३॥

बुद्ध्या इति व्यवसितः	बुद्धिसे इस प्रकार (अन्नाभावका कारण) निश्चय करके	यथा त्रिपुरहा	जैसे त्रिपुरनाशोद्यत रुद्र हों
		शरासनं प्रगृहीतः	धनुष लेकर
भूमेः क्रुद्धः	पृथ्वीपर क्रोध करके	विशिखं सन्दधे	उसपर वाण चढ़ाया ॥१३॥

प्रवेपमाना धरणी निशाम्योदायुधं च तम् ।
गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता ॥१४॥

प्रवेपमाना धरणी निशाम्य उदायुधं च तं गौः सति अपाद्रवत् भीता मृगी इव मृगयु द्रुता ॥१४॥

तं उदायुधं निशाम्य	उनको अस्त्र उठाये देखकर	**मृगयु मृगी इव**	व्याधके पीछा करनेपर मृगीके समान
धरणी	पृथ्वी		
प्रवेपमाना	कांपती हुई	**भीता द्रुता**	डरकर बड़े वेगसे
गौः सति	गाय बनकर	**अपाद्रवत्**	भागी ॥१४॥

तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः ।
शरं धनुषि सन्धाय यत्र यत्र पलायते ॥१५॥

तां अन्वधावत् तत् वैन्यः कुपितः अति अरुणेक्षणः शरं धनुषि सन्धाय यत्र यत्र पलायते ॥१५॥

अति अरुणेक्षणः	अत्यन्त लाल नेत्र किये	**यत्र यत्र पलायते**	जहां-जहां (वह पृथ्वी) भागती गई
शरं धनुषि सन्धाय	धनुषपर वाण चढ़ाये	**तां अन्वधावत्**	उसके पीछे दौड़ते गये ॥१५॥
तत् वैन्यः	वे पृथु		

सा दिशो विदिशो देवी रोदसी चान्तरं तयोः ।
धावन्ती तत्र तत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ॥१६॥

सा दिशः विदिशः देवी रोदसी च अन्तरं तयोः धावन्ती तत्र तत्र एनं ददर्श अनूद्यत आयुधम् ॥१६॥

सा देवी	वह (पृथ्वी, देवी	**तत्र तत्र धावन्ती**	जहां-तहां दौड़ती हुई
दिशः विदिशः	दिशा-विदिशा		
रोदसी च	आकाश तथा		
तयोः अन्तरं	उसके मध्य		

एनं अनूद्यत आयुधं	इन (पृथु) को अस्त्र उठाये हो	ददर्श	देखती रही ॥१६॥

लोके नाविन्दत त्राणं वैन्यान्मृत्योरिव प्रजाः ।
त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥१७॥

लोके न अविन्दत त्राणं वैन्यात् मृत्योः इव प्रजाः त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥१७॥

मृत्योः प्रजाः इव	मृत्युसे प्रजाके समान	तदा त्रस्ता	तब संत्रस्त होकर
लोके वैन्यात्	किसी लोकमें पृथुसे	विदूयता हृदयेन	अत्यन्त पीड़ित हृदय
त्राणं न अविन्दत	रक्षा नहीं मिल सकी	निववृते	लौट पड़ी ॥१७॥

उवाच च महाभागं धर्मज्ञापन्नवत्सल ।
त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् ॥१८॥

उवाच च महाभागं धर्मज्ञ आपन्न वत्सल त्राहि मां अपि भूतानां पालने अवस्थितः भवान् ॥१८॥

महाभागं च उवाच	महाभाग पृथुसे ही बोली—	भवान् भूतानां पालने अवस्थितः	आप तो प्राणियोंके पालनमें लगे हैं,
धर्मज्ञ आपन्न वत्सल	'धर्मज्ञ ! शरणागत वत्सल !	मां अपि त्राहि	मेरी भी रक्षा कीजिये ॥१८॥

स त्वं जिघांससे कस्माद्दीनामकृतकिल्बिषाम् ।
अहनिष्यत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मतः ॥१९॥

स त्वं जिघांससे कस्मात् दीनां अकृत किल्बिषां अहनिष्यति कथं योषां धर्मज्ञ इति यः मतः ॥१९॥

यः धर्मज्ञ इति मतः जो 'धर्मज्ञ हैं' ऐसा माना जाता है,
स त्वं कस्मात् वह आप किस कारणसे
दीनां अकृत किल्विषां दीना, निरपराधिनीको
जिघांससे मारना चाहते हैं ?
योषां कथं स्त्रीको कैसे
अहनिष्यति मारेंगे ? ॥१९॥

प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागःस्वपि जन्तवः ।
किमुत त्वद्विधा राजन् करुणा दीनवत्सलाः ॥२०॥

प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागः सु अपि जन्तवः किमुत त्वत् विधा राजन् करुणा दीनवत्सलाः ॥२०॥

राजन् राजन् !
कृतागः सु अपि अपराध करनेपर भी
स्त्रीषु वै स्त्रियोंपर तो
जन्तवः न
प्रहरन्ति पशु भी आघात नहीं करते
त्वत् विधा आपके समान
करुणा दीन-
वत्सलाः दयालु दीन-वत्सल
किमुत भला (प्रहार) करेंगे कैसे ॥२०॥

मां विपाट्याजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् ।
आत्मानं च प्रजाश्चेमाः कथमम्भसि धास्यसि ॥२१॥

मां विपाट्य अजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितं आत्मानं च प्रजाः च इमाः कथं अम्भसि धास्यसि ॥२१॥

यत्र विश्वं जिसपर पूरा संसार
प्रतिष्ठितं स्थित है (उस)
मां अजरां नावं मुझ पुरानी न पड़ने वाली नौकाको
विपाट्य तोड़कर
आत्मानं च अपने आपको और
इमाः प्रजाः च इस प्रजाको भी
अम्भसि कथं पानीपर कैसे
धास्यसि ऊपर रखेंगे ?॥२१॥

पृथुरुवाच-

वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोति च नो वसु ॥२२॥

वसुधे त्वां वधिष्यामि मत् शासन पराङ्मुखीं भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोति च नः वसु ॥२२॥

या बर्हिषि	जो यज्ञमें (देवता रूपसे)	**न तनोति**	नहीं देती (उस)
भागं वृङ्क्ते	भाग लेती है (किन्तु)	**मत् शासन**	मेरी आज्ञाका
नः वसु	हम लोगोंको धन (अन्न)	**पराङ्मुखीं वसुधे त्वां**	उल्लंघन करनेवाली
		वधिष्यामि	पृथ्वी ! तुझे मार दूंगा ॥२२॥

यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौधसं पयः ।
तस्यामेवं हि दुष्टायां दण्डो नात्र न शस्यते ॥२३॥

यवसं जग्ध्य अनुदिनं न एव दोग्धि औधसं पयः तस्यां एव हि दुष्टायां दण्डः न अत्र न शस्यते ॥२३॥

अनुदिनं यवसं जग्ध्य	रोज-रोज हरीघास खा जाती है (किन्तु)	**न अत्र दण्डः न शस्यते**	इस विषयमें दण्ड न दिया जाय, ऐसा नहीं है (दण्ड देना) उचित है ॥२४॥
औधसं पयः	अपने स्तनका दूध		
न एव दोग्धि	नहीं ही देती है		
हि तस्यां दुष्टायां	फिरतो उस दुष्टाको		

त्वं खल्वोषधिबीजानि प्राक् सृष्टानि स्वयम्भुवा ।
न मुञ्चस्यात्मरुद्धानि मामवज्ञाय मन्दधीः ॥२४॥

त्वं खलु ओषधि बीजानि प्राक् सृष्टानि स्वयंभुवा न मुञ्चसि आत्म रुद्धानि मां अवज्ञाय मन्दधीः ॥२४॥

स्वयम्भुवा	ब्रह्माजी द्वारा	खलु आत्म रुद्धानि	निश्चय अपने भीतर रोक लिया है
प्राक् सृष्टानि	पहिले उत्पन्न किये गये	मुञ्चसि न	(उन्हें) छोड़ती नहीं है (उगने नहीं देती है) ॥२ ॥
ओषधि बीजानि	अन्नोंके बीजोंको		
त्वं मन्दधीः	तुझ मन्द बुद्धिने		

अमूषां क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् ।
शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तव मेदसा ॥२५॥

अमूषां क्षुत् परीतानां आर्तानां परिदेवितं शमयिष्यामि मद्बाणैः भिन्नायाः तव मेदसा ॥२५॥

मद्बाणैः भिन्नायाः तव मेदसा	मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुई तेरी चर्बीसे	आर्तानां परिदेवितं शमयिष्यामि	दुःखियोंका क्रन्दन शान्त करूँगा ॥२५॥
अमूषां क्षुत् परीतानां	इन भूखसे व्याकुल		

पुमान् योषिदुत क्लीब आत्मसम्भावनोऽधमः ।
भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥२६॥

पुमान् योषित् उत क्लीब आत्म सम्भावनः अधमः भूतेषु निरनुक्रोशः नृपाणां तत् वधः अवधः ॥२६॥

आत्म सम्भावनः	अपना ही पोषण करनेवाले	पुमान् योषित् उत क्लीब	पुरुष, स्त्री अथवा नपुंसक हो,
अधमः भूतानां निरनुक्रोशः	अधम प्राणियोंके प्रति निर्दय	नृपाणां तत् वधः अवधः	राजाके लिए उसका वध न मारते जैसा है ॥२६॥

त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः ।
आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥२७॥

त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः आत्म योग बलेन इमा धारयिष्यामि अहं प्रजाः ॥२७॥

त्वां स्तब्धां	तुझ मूर्खा	नीत्वा	करके
दुर्मदां मायागां	मदोन्मत्ता, मायासे गौ बनीका	आत्म योग बलेन	अपने योग बलसे
शरैः तिलशः	बाणोंसे तिलोंके बराबर टुकड़े	प्रजाः अहं धारयिष्यामि	प्रजाका मैं धारण करूँगा ॥२७

मैत्रेय उवाच*-

एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतान्तमिव बिभ्रतम् ।
प्रणता प्राञ्जलिः प्राह मही सञ्जातवेपथुः ॥२८॥

एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतान्तं इव बिभ्रतं प्रणता प्राञ्जलिः प्राह मही सञ्जातवेपथुः ॥२८॥

एवं कृतान्तं इव	इस प्रकार कालके समान	सञ्जातवेपथुः	काँपती हुई
मन्युमयीं मूर्तिं	क्रोधमय स्वरूप	मही प्रणता	पृथ्वी प्रणाम करके
बिभ्रतं	धारण किये (पृथुसे)	प्राञ्जलिः प्राह	हाथ जोड़कर बोली ॥२८॥

धरोवाच-

नमः परस्मै पुरुषाय मायया
विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ।
नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुत-
द्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥२९॥

नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्त नाना तनवे गुणात्मने नमः स्वरूप अनुभवेन निधुंत द्रव्य क्रिया कारक विभ्रम उर्मये ॥२९॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

मायया नाना तनवे विन्यस्त गुणात्मने	मायासे अनेक शरीर धारण किये
परस्मै पुरुषाय	गुणात्मा परम-पुरुषको
नमः	नमस्कार ।
स्वरूप अनुभवेन	अपने स्वरूपानुभवसे
द्रव्यक्रिया कारक	पदार्थ, क्रिया, कर्त्ता रूप
विभ्रम ऊर्मये	अज्ञानकी लहरोंसे
निर्धुत	सर्वथा रहित
नमः	(आपको) नमस्कार ॥२९॥

येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता
धात्रा यतोऽयं गुणसर्गसङ्ग्रहः ।
स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वरा-
डुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥३०॥

येन अहं आत्म आयतनं विनिर्मिता धात्रा यतः अयं गुण सर्ग संग्रहः स एव मां हन्तुं उदायुधः स्वराट् उपस्थितः अन्यं शरणं कं आश्रये ॥३०॥

येन धात्रा	जिस विधाताने
अहं आत्म आयतनं	मुझे शरीरोंका आश्रय
विनिर्मिता	बनाया
यतः अयं	जिसपर यह
गुण सर्ग संग्रहः	त्रिगुणमयी सृष्टि स्थित है
स एव स्वराट्	वही स्वयं प्रकाश
मां हन्तुं उदायुधः	मुझे मारनेके लिए
उपस्थितः	अस्त्र उठाये आ गये हैं,
कं अन्यं	(फिर मैं) किस दूसरेकी
शरणं आश्रये	शरण ग्रहण करूँ ॥३०॥

य एतदादावसृजच्चराचरं
स्वमायया ऽऽत्माश्रययावितर्क्यया ।
तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः
कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ॥३१॥

य एतत् आदाः असृजत् चर अचरं स्वमायया आत्म आश्रयया अवितर्क्यया तया एव सः अयं किल गोप्तुं उद्यतः कथं नु मां धर्मपरः जिघांसति ॥३१॥

आदौ	(सृष्टिकी) आदिमें
य अवितर्क्यया	जिन्होंने अचिन्त्य
आत्म आश्रयया	अपने आश्रयमें रहनेवाली
स्वमायया	अपनी जो माया है
तया एव	उससे ही
एतत् चर अचरं	इस चर-अचर (जगत) की
असृजत्	सृष्टि की
सः अयं किल गोप्तुं	वही ये (भगवान)
उद्यतः	अब रक्षाके लिए प्रस्तुत हैं
धर्मपरः कथं	(वे) धर्मपरायण कैसे
मां नु जिघांसति	मुझे भला मार देंगे ॥३१॥

नूनं बतेशस्य समीहितं जनै-
स्तन्मायया दुर्जयया कृतात्मभिः ।
न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्-
योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः ॥३२॥

नूनं बत ईशस्य समीहितं जनैः तत् मायया दुर्जयया अकृत आत्मभिः न लक्ष्यते यस्तु अकरोत् अकारयत् यः अनेक एकः परतः च ईश्वरः ॥३२॥

नूनं बत ईशस्य	निश्चय अहो
समीहितं	सर्वेश्वरकी इच्छा
तत् दुर्जयया मायया	उनकी दुर्जय मायासे
अकृत आत्मभिः	अजितेन्द्रिय बने
जनैः न लक्ष्यते	लोगों द्वारा नहीं जानी जाती
यस्तु एकः ईश्वरः	जिन अद्वितीय ईश्वरने
परतः अकरोत्	(अपनेसे) भिन्न (ब्रह्मा) को बनाया
यः अनेकः	(फिर) जिसने (उनसे) अनेकता वाली (सृष्टि)
अकारयत्	बनवायी ॥३२॥

सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिः-
द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ।
तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये
नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥३३॥

सर्गादि यः अस्य अनुरुणत् हि शक्तिभिः द्रव्य क्रिया कारक चेतन आत्मभिः तस्मै समुन्नद्ध निरुद्ध शक्तये नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥३३॥

हि यः	क्योंकि जो		सृष्टि आदि
द्रव्य क्रिया	पञ्चभूत, उनकी क्रिया (इन्द्रियाँ)	अनुरुणत्	करते हैं
		समुन्नद्ध	आविर्भूत तथा
कारक	उनके अधिष्ठाता देवता	निरुद्ध शक्तये	तिरोभूत होनेवाली शक्तिवाले
चेतन आत्मभिः	बुद्धि तथा अहंकार इन	तस्मै परस्मै	
		पुरुषाय	उन परम-पुरुष
शक्तिभिः	अपनी शक्तियोंसे	वेधसे नमः	विधाताको नमस्कार ॥३३॥
अस्य सर्गादि	इस (जगत) की		

स वै भवानात्मविनिर्मितं जगत्
भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं विभो ।
संस्थापयिष्यन्नज मां रसातला-
दभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ॥३४॥

स वै भवान् आत्म विनिर्मितं जगत् भूत इन्द्रिय अन्तः करणात्मकं विभो संस्थपयिष्यत् अज मां रसातलात् अभ्युज्जहार अम्भस आदि-सूकरः ॥३४॥

स अज विभो	वही अजन्मा प्रभु	आदिसूकरः	आदिवाराह रूपसे
भवान् वै	आप ही हैं (जिन्होंने)	भूत इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रिय,

अन्तः-	
करणात्मकं	अन्तःकरणवाले
आत्म	
विनिर्मितं	अपने बनाये
जगत्	
संस्थापयिष्यत्	जगतकी स्थापनाके लिए
मां अम्भस-	
रसातलात्	मुझे जलमें रसातलसे
अभ्युज्जहार	उठाकर ले आये ॥३४॥

अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः
प्रजा भवानद्य रिरक्षिषुः किल ।
स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो
यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥३५॥

अपां उपस्थे मयि नाव्य वस्थिताः प्रजा भवान् अद्य रिरक्षिषुः किल स वीर मूर्तिः समभूत् धराधरः यः मां पयसि उग्रशरः जिघांसति ॥३५॥

यः धराधरः	
समभूत्	(इस प्रकार) जो धराके धारक बने थे
स वीर मूर्तिः	वही आज वीर-मूर्ति धारणकर
अपां उपस्थे	जलके ऊपर
मयि नाव्य	
वस्थिताः	मुझे नौकाके समान स्थित करनेवाले
किल अद्य	अहो आज
प्रजा रिरक्षुषुः	प्रजाकी रक्षाके लिए
भवान् मां	आप मुझे
उग्रशरः	
जिघांसति	तीक्ष्ण वाणोंसे मारेंगे ? ॥३५॥

नूनं जनैरीहितमीश्वराणा-
मस्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ।
न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभि-
स्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ॥३६॥

नूनं जनैः ईहितं ईश्वराणां अस्मत् विधैः तत् गुण सर्ग मायया न ज्ञायते मोहित चित्त वर्त्मभिः तेभ्यः नमः वीर यशः करेभ्यः ॥३ ॥

नूनं अस्मत्		**ईश्वराणां**	
विधैः	निश्चय मेरे जैसे	**ईहितं**	(आप) समर्थोंकी चेष्टा
जनैः	लोगों द्वारा		
तत् गुण सर्ग		**न ज्ञायते**	नहीं जानी जाती (अतः)
मायया	उस (ईश्वर) की त्रिगुणात्मक सृष्टि करनेवाली मायासे	**वीर यशः**	
		करेभ्यः	वीरोंको यश देनेवाले
मोहित चित्त			
वर्त्मभिः	मोहित चित्त मार्ग वालों द्वारा	**तेभ्यः नमः**	उनको (आपको) नमस्कार ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते धरित्रीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् ।
पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥१॥

इत्थं पृथुं अभिष्टूय रुषा प्रस्फुरित अधरं पुनः आह अवनिः भीता संस्तभ्य आत्मानं आत्मना ॥१॥

इत्थं	इस प्रकार	आत्मना	
रुषा प्रस्फुरित		आत्मानं	अपने आप ही
अधरं	क्रोधसे फड़कते ओष्ठ		चित्तको
पृथुं अभिष्टूय	पृथुकी स्तुति करके	संस्तभ्य	स्थिर करके
		भीता अवनिः	डरते-डरते पृथ्वी ने
		इदं आह	यह कहा ॥१॥

धरोवाच*-

संनियच्छाभिभो मन्युं निबोध श्रावितं च मे ।
सर्वतः सारमादत्ते यथा मधुकरो बुधः ॥२॥

संनियच्छ अभिभो मन्युं निबोध श्रावितं च मे सर्वतः सारं आदत्ते यथा मधुकरः बुधः ॥२॥

मन्युं अभिभो	क्रोधके आवेशको	मधुकरः यथा बुधः	भ्रमरके समान बुद्धिमान
संनियच्छ	रोकिये		
च मे श्रावितं	और मेरी बात	सर्वतः सारं	
निबोध	सुनिये,	आदत्ते	सर्वत्र से सार ग्रहण करते हैं ॥२॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

अस्मिँल्लोकेऽथवामुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयः प्रसिद्धये ॥३॥

अस्मिन् लोके अथवा अमुष्मिन् मुनिभिः तत्त्वदर्शिभिः दृष्टा योगाः प्रयुक्ताः च पुंसां श्रेयः प्रसिद्धये ॥३॥

अस्मिन् लोके	इस लोकमें	**तत्त्वदर्शिभिः**	तत्त्वज्ञानी
अथवा		**मुनिभिः**	मुनियों द्वारा
आमुष्मिन्	अथवा परलोकमें	**योगाः दृष्टा**	साधन निकाले
पुंसां श्रेयः		**च प्रयुक्ताः**	तथा उन्हें प्रयोग
प्रसिद्धये	पुरुषोंके कल्याण करनेके लिए		किया है ॥३॥

तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान् पूर्वदर्शितान् ।
अवरः श्रद्धयोपेत उपेयान् विन्दतेऽञ्जसा ॥४॥

तान् आतिष्ठति यः सम्यक् उपायान् पूर्वदर्शितान् अवरः श्रद्धया उपेत उपेयान् विन्दते अञ्जसा ॥४॥

पूर्वदर्शितान्	पूर्वपुरुषों द्वारा बतलाये	**सम्यक् आतिष्ठति**	भली प्रकार अपनाता है,
तान् उपायान्	उन उपायोंको	**अञ्जसा**	(वह) सरलतासे
श्रद्धया उपेत	श्रद्धा सहित	**उपेयान् विन्दते**	अभीष्ट फल पा लेता है ॥४॥
यः अवरः	जो पीछे उत्पन्न		

ताननादृत्य योऽविद्वानर्थानारभते स्वयम् ।
तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः ॥५॥

तान् अनादृत्य यः अविद्वान् अर्थान् आरभते स्वयं तस्य व्यभिचरन्ति अर्था आरब्धाः च पुनः पुनः ॥५॥

यः अविद्वान्	जो अज्ञानी	तस्य पुनः	
तान् अनादृत्य	उन (उपायों) की उपेक्षा करके	पुनः च	उसके बार-बार भी
		आरब्धाः अर्थाः	प्रारम्भ किये गये साधन
स्वयं अर्थान्	स्वयं साधनोंको		
आरभते	प्रारम्भ करता है,	व्यभिचरन्ति	निष्फल होते हैं ॥५॥

पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशाम्पते ।
भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः ॥६॥

पुरा सृष्टा हि ओषधयः ब्रह्मणा या विशाम्पते भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिः अधृतव्रतैः ॥६॥

विशाम्पते	राजन् !	हि मया दृष्टा	क्योंकि मैंने देखा
ब्रह्मणा या	ब्रह्माजीने जो	असद्भिः अधृत-व्रतैः	दुष्ट व्रतहीन लोग
ओषधयः	अन्न		
पुरा सृष्टा	पहिले उत्पन्न किया था	भुज्यमाना	(उनका) उपभोग कर रहे हैं ॥६॥

अपालितानादृता च भवद्भिर्लोकपालकैः ।
चोरीभूतेऽथ लोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधीः ॥७॥

अपालिता अनादृता च भवद्भिः लोकपालकैः चोरीभूते अथ लोके अहं यज्ञ अर्थे अग्रसं ओषधीः ॥७॥

लोकपालकैः	लोकपालक	लोके चोरीभूते	लोकमें चुरायी जा रही थीं
भवद्भिः अपालिता	आप लोगोंके द्वारा		
		अहं यज्ञ अर्थे	मैंने यज्ञके लिए
अनादृता च	पालन न करके उपेक्षिता	अग्रसं	(उन्हें) छिपा लिया ॥७॥
ओषधिः	अन्नादि		

नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा ।
तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हति ॥८॥

नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा तत्र योगेन दृष्टेन भवान् आदातुं अर्हति ॥८॥

नूनं भूयसा कालेन	अवश्य बहुत समय बीतने से
ता वीरुधः	वे पौधे
मयि क्षीणा	मुझमें पच गये हैं
तत्र दृष्टेन	इस सम्बन्धमें निर्दिष्ट
योगेन भवान् आदातुं अर्हति	उपायसे आपको (उन्हें) निकालना चाहिए ॥८॥

वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव ।
धोक्ष्ये क्षीरमयान् कामाननुरूपं च दोहनम् ॥९॥

वत्सं कल्पय मे वीर येन अहं वत्सला तव धोक्ष्ये क्षीरमयान् कामान् अनुरूपं च दोहनम् ॥९॥

वीर मे वत्सं च अनुरूपं	वीर ! मेरे लिए बछड़ा और अनुरूप
दोहनं कल्पय	दोहन पात्रकी व्यवस्था कीजिए,
येन अहं वत्सला	जिससे मैं बछड़ेके स्नेहसे
तव कामान् क्षीरमयान् धोक्ष्ये	आपके अभीष्ट पदार्थ दूधके रूपमें दुहवा दूँ ॥९॥

दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन ।
अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान् वाञ्छते यदि ॥१०॥

दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन अन्नं ईप्सितं ऊर्जस्वत् भगवान् वाञ्छते यदि ॥१०॥

महाबाहो भूतभावन भगवान् यदि भूतानां	महाबाहु प्राणियोंके रक्षक आप भगवान् यदि प्राणियोंके लिए
ऊर्जस्वत् ईप्सितं अन्नं वाञ्छते दोग्धारं च	शक्तिदायी अभीष्ट अन्न चाहते हैं, (तो) दुहनेवालेका भी (प्रबन्ध करें) ॥१०॥

समां च कुरु मां राजन्देववृष्टं यथा पयः ।
अपर्तावपि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो ॥११॥

समां च कुरु मां राजन् देववृष्टं यथा पयः अपर्तावः अपि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो ॥११॥

विभो राजन्	प्रभो ! राजन् !	**अपर्ताः अपि**	वर्षा बीत जानेपर भी
मां समां च कुरु	मुझे समतल भी बनाइये,	**मे उपावर्तेत**	मुझमें (नमीके रूपमें) बना रहे
यथा देववृष्टं पयः	जिससे इन्द्रका बरसाया जल	**ते भद्रं**	वे कल्याणकारी (हों) ॥११॥

*मैत्रेय उवाच**–

इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः ।
वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः ॥१२॥

इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः वत्सं कृत्वा मनुं पाणाः अदुहत् सकलौषधीः ॥१२॥

भुव इति	पृथ्वीके इस प्रकारके	**मनुं वत्सं कृत्वा**	मनुको बछड़ा बनाकर
प्रियं हितं वाक्यं	प्रिय हितकारी वचनोंको	**पाणाः**	
आदाय भूपतिः	स्वीकार करके राजा (पृथु) ने	**सकलौषधिः**	हाथमें ही सब अन्न
		अदुहत्	दुह लिए ॥१२॥

तथा परे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः ।
ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभावितम् ॥१३॥

तथा परे च सर्वत्र सारं आददते बुधाः ततः अन्ये च यथा कामं दुदुहुः पृथु भावितम् ॥१३॥

तथा परे च	ऐसे (पृथुके समान) दूसरे भी	**पृथु भावितां**	पृथु द्वारा वशमें की (पृथ्वीसे)
बुधाः सर्वत्र	बुद्धिमान सब कहींसे	**ततः अन्ये च**	फिर दूसरोंने भी
सारं आददते	सार ग्रहण कर लेते हैं,	**यथा कामं दुदुहुः**	कामनानुसार दुहा ॥१३॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ऋषयो दुदुहुर्देवीमिन्द्रियेष्वथ सत्तम ।
वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं शुचि ॥१४॥

ऋषयः देवीं इन्द्रियेषु अथ सत्तम वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयः छन्दोमयं शुचि ॥१४॥

सत्तम	संत प्रवर विदुर !	अथ इन्द्रियेषु	फिर इन्द्रियों (वाणी)में
देवीं ऋषयः	पृथ्वी देवीसे ऋषियोंने	शुचि छन्दोमयं	पवित्र वेदमन्त्र रूप
बृहस्पतिं वत्सं		पयः दुदुहुः	दूध दुहा ॥१४॥
कृत्वा	बृहस्पतिको बछड़ा बनाकर		

कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोममदूदुहन् ।
हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो बलं पयः ॥१५॥

कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोमं अदूदुहन् हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यं ओजः बलं पयः ॥१५॥

इन्द्रं वत्सं कृत्वा	इन्द्रको बछड़ा बनाकर	वीर्यं ओजः बलं सोमं पयः	वीर्य, ओज, बलदायी
हिरण्मयेन पात्रेण	स्वर्णके बने पात्रमें	अदूदुहन्	सोमरूप दूध दुहा ॥१५॥
सुरगणा	देवताओंने		

दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् ।
विधायादूदुहन् क्षीरमयःपात्रे सुरासवम् ॥१६॥

दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादं असुर ऋषभं विधाय अदूदुहन् क्षीरं अयः पात्रे सुरा आसवम् ॥१६॥

दैतेया दानवाः	दैत्य और दानवोंने	अयः पात्रे	लोहेके बर्तनमें
असुर ऋषभं	असुर श्रेष्ठ	सुरा आसवं	शराब तथा आसव रूप
प्रह्लादं वत्सं			
विधाय	प्रह्लादको बछड़ा बनाकर	क्षीरं अदूदुहन्	दूध दुहा ॥१६॥

गन्धर्वाप्सरसोऽधुक्षन् पात्रे पद्ममये पयः ।
वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधु सौभगम् ॥१७॥

गन्धर्वा अप्सरसः अधुक्षन् पात्रे पद्ममये पयः वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधु सौभगम् ॥१७॥

गन्धर्वा अप्सरसः	गन्धर्वों तथा अप्सराओंने	कृत्वा	विश्वावसुको बछड़ा बनाकर
पद्ममये पात्रे	कमलके पात्रमें	मधु गान्धर्वं	मधुर संगीत तथा
विश्वावसु वत्सं		सौभगं	सौन्दर्य रूप
		पयः अधुक्षन्	दूध दुहा ॥१७॥

वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कव्यं क्षीरमधुक्षत ।
आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥१८॥

वत्सेन पितरः अर्यम्णा कव्यं क्षीर मधु अक्षत आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥१८॥

महाभागाः	महाभाव	आमपात्रे	मिट्टीके कच्चे बर्तनमें
पितरः	पितरोंने	मधु अक्षत कव्यं	मधु अक्षतयुक्त कव्य रूप
श्राद्धदेवताः	श्राद्धके देवता	श्रद्धया क्षीरं	श्रद्धापूर्वक दूध दुहा ॥१८॥
अर्यम्णा वत्सेन	अर्यमाको बछड़ा बनाकर		

प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः सङ्कल्पनामयीम् ।
सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधरादयः ॥१९॥

प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः सङ्कल्प नामयीं सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधर आदयः ॥१९॥

कपिलं वत्सं प्रकल्प्य	कपिलजीको बछड़ा बनाकर	सिद्धाः सङ्कल्प नामयीं	सिद्धोंने संकल्पमयी
		सिद्धिं च ये	सिद्धियां तथा जो

विद्याधर आदयः	विद्याधर आदि थे	**नभसि विद्यां**	आकाशमें गमनकी विद्या (दुहा) ॥१ ॥

अन्ये च मायिनो मायामन्तर्धानाद्भुतात्मनाम् ।
मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीम् ॥२०॥

अन्ये च मायिनः मायां अन्तर्धान अद्भुत आत्मनां मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुः धारणामयीम् ॥२०॥

अन्ये च मायिनः	दूसरे मायावियोंने	**आत्मनां अन्तर्धान**	अपनेको अदृश्य करनेको
मयं वत्सं प्रकल्प्य	मयको बछड़ा बनाकर	**अद्भुत धारणामयीं मायां दुदुहुः**	अद्भुत धारणा रूपा माया दुहा ॥२०॥

यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः ।
भूतेशवत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवम् ॥२१॥

यक्ष रक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशित अशनाः भूतेश वत्सा दुदुहुः कपाले क्षतज आसवम् ॥२१॥

पिशित अशनाः	मांसाहारी	**भूतेश वत्सा**	रुद्रको बछड़ा बनाकर
यक्ष रक्षांसि	यक्ष, राक्षस,	**कपाले**	खोपड़ीमें
भूतानि		**क्षतज आसवं**	घावसे निकला रक्त
पिशाचाः	भूत, पिशाचोंने	**दुदुहुः**	दुहा ॥२१॥

तथाहयो दन्दशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकम् ।
विधाय वत्सं दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः ॥२२॥

तथा अहयः दन्दशूकाः सर्पा नागाः च तक्षकं विधाय वत्सं दुदुहुः बिल पात्रे विषं पयः ॥२२॥

तथा दन्दशूकाः	इसी प्रकार डंसनेवाले
अहयः सर्पाः नागाः	अहि (बिना फणके) सर्प, फणधर सर्प, अनेक सिरवाले नागोंने
तक्षकं वत्सं विधाय	तक्षकको बछड़ा बनाकर
बिल पात्रे	बिल रूपी पात्रमें
विषं पयः	विष रूपी दूध
दुदुहुः	दुहा ॥२२॥

पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् ।
अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेन्द्रेण च दंष्ट्रिणः ॥२३॥

पशवः यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषं अरण्यपात्रे च आधुक्षन् मृगेन्द्रेण च दंष्ट्रिणः ॥२३॥

गोवृषं वत्सं कृत्वा	सांड़को बछड़ा बनाकर
अरण्यपात्रे च	वन रूपी पात्रेमें ही
पशवः च	पशुओंने तो
यवसं क्षीरं	हरी घास रूपी दूध
आधुक्षन्	चारों ओर दुहा
दंष्ट्रिणः च	दाढ़ोंवाले पशुओंने तो
मृगेन्द्रेण	सिंहको बछड़ा बनाकर ॥२३॥

क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे ।
सुपर्णवत्सा विहगाश्चरं चाचरमेव च ॥२४॥
वटवत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः ।
गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातून् स्वसानुषु ॥२५॥

क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे सुपर्णवत्सा विहगाः चरं च अचरं एव च वटवत्सा वनस्पतयः पृथक् रसमयं पयः गिरयः हिमवत् वत्सा नाना धातून् स्वसानुषु ॥२४-२५॥

स्वे कलेवरे	अपने शरीर (मुख) में
क्रव्यादाः प्राणिनः	कच्चा मांस खाने वाले प्राणियोंने

	कच्चा मांस,
सुपर्णवत्सा	गरुड़को बछड़ा बनाकर
विहगाः	पक्षियोंने
चरं च	चलनेवाले (कीट आदि)
च अचरं एव	तथा अचर (फलादि) भी,
वटवत्सा	वट-वृक्षको बछड़ा बनाकर
वनस्पतयः	वृक्षोंने
पृथक् रसमयं पयः	अलग-अलग रस-वाला दूध,
हिमवत् वत्सा	हिमालयको बछड़ा बनाकर
गिरयः	
स्वसानुषु	पर्वतोंने अपने शिखरोंपर
नाना धातून्	
दुदुहुः	अनेक प्रकारकी धातुएँ दुहा ॥२४-२५

सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पयः ।
सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभावितां ॥२६॥

सर्वे स्वमुख्य वत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पयः सर्वकाम दुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथु भावितां ॥२६॥

पृथु भावितां	पृथुके द्वारा वश की गयी
सर्वकाम दुघां	सब अभीष्ट वस्तु देनेवाली
पृथ्वीं	पृथ्वीको
सर्वे स्वमुख्य	सबने अपने प्रमुखको
वत्सेन	बछड़ा बनाकर
स्वे स्वे पात्रे	अपने-अपने पात्रोंमें
पृथक् पयः	अलग-अलग दूध
दुदहुः	दुहा ॥२६॥

एवं पृथ्वादयः पृथ्वीमन्नादाः स्वन्नमात्मनः ।
दोहवत्सादिभेदेन क्षीरभेदं कुरूद्वह ॥२७॥

एवं पृथ्वादयः पृथ्वीं अन्नादाः स्व अन्नं आत्मनः दोहवत्सादि भेदेन क्षीरभेदं कुरुद्वह ॥२७॥

कुरुद्वह	कुरुश्रेष्ठ विदुर !
एवं पृथ्वादयः	इस प्रकार पृथु आदिने
अन्नादाः पृथ्वीं	आहार करने वालोंने पृथ्वीसे

स्व आत्मनः अन्नं	अपना-अपना आहर (दुहा)	दोहवत्सादि भेदेन क्षीरभेदं	दुहनेके पात्रों, बछड़ों आदिके भेदसे दूधमें भेद हो गया ॥२७॥

ततो महीपतिः प्रीतः सर्वकामदुघां पृथुः ।
दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ॥२८॥

ततः महीपतिः प्रीतः सर्वकाम दुघां पृथुः दुहितृत्वे चकार इमां प्रेम्णा दुहितृ वत्सलः ॥२८॥

ततः दुहितृ वत्सलः	तब पुत्रियोंसे स्नेह करनेवाले	सर्वकाम दुघां	सब अभीष्ट देनेवाली (पृथ्वी) को
महीपतिः पृथुः	राजा पृथुने	प्रेम्णा दुहितृत्वे चकार	प्रेमवश पुत्री बना लिया ॥२८॥
प्रीतः इमां	प्रसन्न होकर इस		

चूर्णयन् स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि राजराट् ।
भूमण्डलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः ॥२९॥

चूर्णयन् स्वधनुष् कोट्या गिरिकूटानि राजराट् भूमण्डलं इदं वैन्यः प्रायः चक्रे समं विभुः ॥२९॥

विभुः राजराट् वैन्यः	समर्थ सम्राट् पृथुने	गिरिकूटानि चूर्णयन्	पर्वत शिखरोंको चूर-चूर करके
स्वधनुष् कोट्या	अपने धनुषकी नोकसे	इदं भूमण्डलं प्रायः समं चक्रे	इस धरा-मण्डलको प्रायः समतल बना दिया ॥२९॥

अथास्मिन् भगवान् वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता ।
निवासान् कल्पयाञ्चक्रे तत्र तत्र यथार्हतः ॥३०॥

अथ अस्मिन् भगवान् वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता निवासान् कल्पयान् चक्रे तत्र तत्र यथा अर्हतः ॥३०॥

प्रजानां पिता	प्रजाको पिताके समान	**यथा आर्हतः**	जो जिसके योग्य था उसे वहां
वृत्तिदः	आजीविका देनेवाले	**तत्र तत्र**	उचित स्थानोंमें
भगवान् वैन्यः	भगवान् पृथुने	**निवासान्**	रहनेका स्थान
अथ अस्मिन्	फिर इस (पृथ्वी) पर	**कल्पयान् चक्रे**	बनवा दिया ॥३०॥

ग्रामान् पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च ।
घोषान् व्रजान् सशिबिरानाकरान् खेटखर्वटान् ॥३१॥

ग्रामान् पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च घोषान् व्रजान् सशिविरान् आकरान् खेट खर्वटान् ॥३१॥

ग्रामान् पुरः	गाँव, कस्बे,	**व्रजान् घोषान्**	चलते-फिरते चरवाहोंके निवास,
पत्तनानि	नगर	**आकरान्**	खदानें
च विविधानि		**खेट खर्वटान्**	खेड़े (छोटे गाँव), झोपड़े (बसाये) ॥३१॥
दुर्गाणि	और बहुतसे किले,		
सशिविरान्	अस्थायी निवासोंके साथ		

प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना ।
यथासुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः । ३२॥

प्राक् पृथोः इह न एव एषा पुरग्रामादि कल्पना यथा सुखं वसन्ति स्म तत्र तत्र अकुतः भयाः ॥३२॥

पृथोः प्राक्	पृथुसे पहिले	**अकुतः भयाः**	कहींसे भय न होनेसे लोग
इह एषा	यहां (पृथ्वी) पर यह	**यथा सुखं**	अपनी सुविधानुसार
पुरग्रामादि	नगर-गांव आदिकी	**तत्र तत्र**	जहाँ-तहाँ
कल्पना न एव	कल्पना नहीं ही थी,	**वसन्ति स्म**	बस जाते थे ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पृथुविजयेऽष्टादशोऽध्यायः ।

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः ।
ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥१॥

अथ अदीक्षत राजा तु हयमेध शतेन सः ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥१॥

अथ सः राजा तु	फिर उस राजा (पृथु) ने तो	**मनोः क्षेत्रे ब्रह्मावर्ते**	मनुके क्षेत्र ब्रह्मावर्तमें
यत्र प्राची सरस्वती	जहां प्राची सरस्वती है*	**हयमेध शतेन**	सौ अश्वमेध-यज्ञ करनेकी
		अदीक्षत	दीक्षा ली ॥१॥

तदभिप्रेत्य भगवान् कर्मातिशयमात्मनः ।
शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥२॥

तत् अभिप्रेत्य भगवान् कर्म अतिशयं आत्मनः शतक्रतुः न ममृषे पृथोः यज्ञ महोत्सवम् ॥२॥

भगवान् शतक्रतुः	भगवान् इन्द्र	**पृथोः यज्ञ महोत्सवं**	पृथुके यज्ञ महोत्सवको
तत् आत्मनः अतिशयं कर्म	उस अपने (समान) अत्यन्त श्रेष्ठ कर्मका	**ममृषे न**	सहन नहीं कर सके ॥२॥
अभिप्रेत्य	अभिप्राय जानकर		

---

* कई नदियोंका नाम सरस्वती था। बदरीनाथसे आगे व्यासाश्रम उदीची सरस्वती (माना गांवके पास) सिद्धपुर (गुजरात) के पास प्रतीची सरस्वतीका वर्णन भागवतमें पीछे आ चुका है; किन्तु कानपुरके पास ब्रह्मावर्त (विठूर) के समीपकी यह प्राची सरस्वती शायद लुप्त हो गयी और यही प्रयागमें गुप्ता है।

यत्र यज्ञपतिः साक्षाद्भगवान् हरिरीश्वरः ।
अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोकगुरुः प्रभुः ॥३॥

यत्र यज्ञपतिः साक्षात् भगवान् हरिः ईश्वरः अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोक गुरुः प्रभुः ॥३॥

यत्र सर्वात्मा	जिस यज्ञमें सर्वात्मा,
सर्वलोक गुरुः	सब लोकोंके गुरु और
प्रभुः साक्षात्	स्वामी साक्षात्
यज्ञपतिः	
भगवान्	यज्ञपति भगवान्
ईश्वरः हरिः	सर्वेश्वर श्रीहरिका
अन्वभूयत	अनुभव (दर्शन) हुआ ॥३॥

अन्वितो ब्रह्मशर्वाभ्यां लोकपालैः सहानुगैः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥४॥

अन्वितः ब्रह्म शर्वाभ्यां लोकपालैः सह अनुगैः उपगीयमानः गन्धर्वैः मुनिभिः च अप्सरः गणैः ॥४॥

ब्रह्म शर्वाभ्यां	ब्रह्मा और शंकरजीके
अन्वितः	साथ (भगवान) आये ।
सह अनुगैः लोकपालैः	अनुचरोंके साथ लोकपाल,
गन्धर्वैः मुनिभिः	गन्धर्व, मुनिजन,
च अप्सरः गणैः	तथा अप्सरा समूह
उपगीयमानः	(उनका) यश गा रहा था ॥४॥

सिद्धा विद्याधरा दैत्या दानवा गुह्यकादयः ।
सुनन्दनन्दप्रमुखाः पार्षदप्रवरा हरेः ॥५॥

सिद्धाः, विद्याधराः, दैत्याः, दानवाः, गुह्यक (यक्ष) आदयः सुनन्द-नन्द प्रमुखाः पार्षद प्रवराः हरेः ॥५॥

कपिलो नारदो दत्तो योगेशाः सनकादयः ।
तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ॥६॥

कपिलः, नारदः, दत्तः (दत्तात्रेय), योगेशाः सनकादयः तं अन्वीयुः भागवता ये च तत्सेवन उत्सुकाः ॥६॥

ये च तत्सेवन उत्सुकाः	जो भी उन (भगवान) की सेवा (करनेको) उत्सुक थे	भागवता तं अन्वीयुः	(वे) भगद्भक्त उनके पीछे आये ॥६॥

यत्र धर्मदुघा भूमिः सर्वकामदुघा सती ।
दोग्धि स्माभीप्सितानर्थान् यजमानस्य भारत ॥७॥

यत्र धर्मदुघा भूमिः सर्वकाम दुघा सती दोग्धि स्म अभीप्सितान् अर्थान् यजमानस्य भारत ॥७॥

भारत	विदुर !	भूमिः	
यत्र धर्मदुघा	जिस (यज्ञ) में धर्म पूर्वक दुही	यजमानस्य	पृथ्वी यजमान पृथुको
सर्वकाम दुघा	सब अभीष्ट देनेवाली	अभीप्सितान् अर्थान्	अभीष्ट पदार्थ
		दोग्धि स्म	पूर्ण करती रही ॥७॥

ऊहुः सर्वरसान्नद्यः क्षीरदध्यन्नगोरसान् ।
तरवो भूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्त मधुच्युतः ॥८॥

ऊहुः सर्वरसान् नद्यः क्षीर दधि अन्न गोरसान् तरवः भूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्त मधुच्युतः ॥८॥

नद्यः सर्वरसान् क्षीर, दधि, अन्न, गोरसान्	नदियाँ सब रस दूध, दही, अन्न, गोरस (घृत)	तरवः	वृक्ष
		भूरिवर्ष्माणः	बहुत सामग्रियां देते थे तथा
ऊहुः	बहालाती थीं,	मधुच्युतः प्रासूयन्त	(उनसे) मधुकी धारा प्रकट हो गयी ॥८॥

सिन्धवो रत्ननिकरान् गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् ।
उपायनमुपाजह्रुः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥९॥

सिन्धवः रत्न निकरान् गिरयः अन्नं चतुर्विधं उपायनं उपाजह्रुः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥९॥

रत्न निकरान्	रत्नोंकी राशियां	**सपालकाः**	लोकपालोंके साथ
सिन्धवः	समुद्रोंने दीं,	**सर्वे लोकाः**	सब लोक
गिरयः चतुर्विधं	पर्वतोंने चारों प्रकारके*	**उपायनं उपाजह्रुः**	उपहार भेंट लाये ॥९॥
अन्नं	खाने योग्य फल दिये,		

इति चाधोक्षजेशस्य पृथोस्तु परमोदयम् ।
असूयन् भगवानिन्द्रः प्रतिघातमचीकरत् ॥१०॥

इति च अधोक्षज ईशस्य पृथोः तु परम उदयं असूयन् भगवान् इन्द्रः प्रतिघातं अचीकरत् ॥१०॥

अधोक्षज ईशस्य	श्रीहरि जिनके स्वामी हैं उन	**असूयन्**	डाह करते हुए
पृथोः तु	पृथुके तो	**इन्द्रः भगवान्**	इन्द्र भगवानने
इति च परम उदयं	ऐसे परम अभ्युदयसे	**प्रतिघातं अचीकरत्**	विघ्न डालनेकी चेष्टा की ॥१०॥

चरमेणाश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिम् ।
वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्धन्नपोवाह तिरोहितः ॥११॥

चरमेण अश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिं वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्धन् अपोवाह तिरोहितः ॥११॥

---

* चतुर्विध आहार है—१—चर्व्य (चबाकर खाने योग्य) २—चोष्य (जो चूसा जाय) ३—लेह्य (चाट लेने योग्य) ४—पेय (पीने योग्य)

चरमेण अश्वमेधेन	अन्तिम अश्वमेध यज्ञ द्वारा
यजुष्पतिं यजमाने	भगवान यज्ञपतिकी जब आराधना हो रही थी तब
वैन्ये स्पर्धन्	पृथुसे स्पर्धा करते हुए
तिरोहितः	अदृश्य रहकर (इन्द्रने)
यज्ञ पशुं अपोवाह	यज्ञीय अश्व हरण कर लिया ॥११॥

तमत्रिर्भगवानैक्षत्त्वरमाणं विहायसा ।
आमुक्तमिव पाखण्डं योऽधर्मे धर्मविभ्रमः ॥१२॥

तं अत्रिः भगवान् ऐक्षत् त्वरमाणं विहायसा आमुक्तं इव पाखण्डं यः अधर्मे धर्म विभ्रमः ॥१२॥

यः अधर्मे	जो अधर्ममें
धर्म विभ्रमः	धर्मका भ्रम उत्पन्न करनेवाला है (उस)
पाखण्डं आमुक्तं इव	पाखण्ड करनेवाले समान (वेश धारण किए)
विहायसा त्वरमाणं	आकाशमें शीघ्रतासे जाते
तं भगवान् अत्रिः	उन (इन्द्र को भगवान अत्रिने
ऐक्षत्	देख लिया ॥१२॥

अत्रिणा चोदितो हन्तुं पृथुपुत्रो महारथः ।
अन्वधावत संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥१३॥

अत्रिणा चोदितः हन्तुं पृथुपुत्रः महारथः अन्वधावत संक्रुद्धः तिष्ठ-तिष्ठ इति च अब्रवीत् ॥१३॥

अत्रिणा हन्तुं	अत्रि द्वारा मार देनेकी
चोदितः महारथः	प्रेरणा देनेपर महारथी
पृथुपुत्रः	पृथुके पुत्र
संक्रुद्धः अन्वधावत	क्रोधित होकर (इन्द्रके) पीछे दौड़ पड़े
'तिष्ठ तिष्ठ'	'ठहर ! ठहर !'
इति च अब्रवीत्	यह भी बोले ॥१३॥

तं तादृशाकृतिं वीक्ष्य मेने धर्मं शरीरिणम् ।
जटिलं भस्मनाच्छन्नं तस्मै बाणं न मुञ्चति ॥१४॥

तं तादृश आकृतिं वीक्ष्य मेने धर्मं शरीरिणं जटिलं भस्मना आच्छन्नं तस्मै बाणं न मुञ्चति ॥१४॥

तं जटिलं	उन (इन्द्रको) जटाधारी	वीक्ष्य	देखकर
		शरीरिणं धर्मं	शरीरधारी (साक्षात्) धर्म
भस्मना आच्छन्नं	भस्म पूरे देहमें लगाये	मेने	मान लिया,
		तस्मै	उसपर
तादृश आकृतिं	इस प्रकारका वेश बनाये	बाणं न मुञ्चति	बाण नहीं छोड़ा ॥१४॥

वधान्निवृत्तं तं भूयो हन्तवेऽत्रिरचोदयत् ।
जहि यज्ञहनं तात महेन्द्रं विबुधाधमम् ॥१५॥

बधात् निवृत्तं तं भूयः हन्तवे अत्रिः अचोदयत् जहि यज्ञहनं तात महेन्द्रं विबुध अधमम् ॥१५॥

बधात् निवृत्तं	वध न करके लौटे	विबुधा अधमं	देवाधम
तं अत्रिः भूयः	उसे अत्रिने फिर	महेन्द्रं जहि	महेन्द्रको मार
अचोदयत्	प्रेरित किया—		दो ।' ॥१५॥
'तात यज्ञहनं	'तात ! यज्ञ नाशक		

एवं वैन्यसुतः प्रोक्तस्त्वरमाणं विहायसा ।
अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणं गृध्रराडिव ॥१६॥

एवं वैन्यसुतः प्रोक्तः त्वरमाणं विहायसा अन्वद्रवत् अभिक्रुद्धः रावणं गृध्रराट् इव ॥१६॥

एवं प्रोक्तः	ऐसा कहे जानेपर	अन्वद्रवत्	पीछे दौड़ पड़े
अभिक्रुद्धः	अत्यन्त क्रुद्ध होकर	रावणं गृध्रराट्	
विहायसा		इव	रावणपर गृध्रराज
त्वरमाणं	आकाशमें शीघ्रतासे जाते (इन्द्रके)		(जटायु) के समान ॥१६॥

सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्मा अन्तर्हितः स्वराट् ।
वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेयिवान् ॥१७॥

सः अश्वं रूपं च तत् हित्वा तस्मा अन्तर्हितः स्वराट् वीरः स्वपशुं आदाय पितुः यज्ञं उपेयिवान् ॥१७॥

सः अश्वं च तत् रूपं	वे घोड़ेको	**अन्तर्हितः**	अदृश्य हो गये ।
		वीरः स्वपशुं	
हित्वा	तथा उस रूपको भी छोड़कर	**आदाय**	वह वीर अपना पशु लेकर
स्वराट् तस्मा	इन्द्र उस (पृथु पुत्र) से	**पितुः यज्ञं उपेयिवान्**	पिताके यज्ञमें आ गया ॥१७॥

तत्तस्य चाद्भुतं कर्म विचक्ष्य परमर्षयः ।
नामधेयं ददुस्तस्मै विजिताश्व इति प्रभो ॥१८॥

तत् तस्य च अद्भुतं कर्म विचक्ष्य परमर्षयः नामधेयं ददुः तस्मै विजिताश्व इति प्रभो ॥१८॥

प्रभो	शक्तिशाली विदुर !	**विजिताश्व**	
तस्य तत्	उसके उस	**इति**	'विजिताश्व' यह
अद्भुतं कर्म च	अद्भुत कर्मको	**नामधेयम्**	उपाधि
विचक्ष्य		**तस्मै ददुः**	उसे प्रदान की ॥१८॥
परमर्षयः	देखकर परमर्षियोंने		

उपसृज्य तमस्तीव्रं जहाराश्वं पुनर्हरिः ।
चषालयूपतश्छन्नो हिरण्यरशनं विभुः ॥१९॥

उपसृज्य तमः तीव्रं जहार अश्वं पुनः हरिः चषाल यूपतः छन्नः हिरण्य रशनं विभुः ॥१९॥

चषाल यूपतः	चषाल और यूपसे	**तीव्रं तमः**	
हिरण्य रशनं	सोनेकी जंजीरसे	**उपसृज्य**	घोर अन्धकार फैलाकर
छन्नः अश्वं	बँधे घोड़ेको	**जहार**	हरण कर लिया ॥१९॥
पुनः विभुः हरिः	फिर समर्थ इन्द्रने		

अत्रिः सन्दर्शयामास त्वरमाणं विहायसा ।
कपालखट्वाङ्गधरं वीरो नैनमबाधत ॥२०॥

अत्रिः सन्दर्शयामास त्वरमाणं विहायसा कपाल खट्वाङ्ग धरं वीरः न एनं अबाधत ॥२०॥

विहायसा त्वरमाणं	आकाशमें जल्दी-जल्दी जाते	कपाल खट्वाङ्ग धरं	खोपड़ी और खटियेका पाया लिए
अत्रिः सन्दर्शयामास	(इन्द्रको) अत्रिने दिखला दिया,	एनं वीरः	इसको (देखकर) वीर (पृथु-पुत्र) ने
		न अबाधत	नहीं रोका ॥२०॥

अत्रिणा चोदितस्तस्मै सन्दधे विशिखं रुषा ।
सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्थावन्तर्हितः स्वराट् ॥२१॥

अत्रिणा चोदितः तस्मै सन्दधे विशिखं रुषा सः अश्वं रूपं च तत् हित्वा तस्थौ अन्तर्हितः स्वराट् ॥२१॥

अत्रिणा चोदितः	अत्रिके द्वारा प्रेरित होनेपर	अश्वं च तत् रूपं	अश्व और उस रूपको
रुषा तस्मै	क्रुद्ध होकर उसपर (मारनेको)	हित्वा अन्तर्हितः	छोड़कर अदृश्य रहते
विशिखं सन्दधे	बाण चढ़ाया,	तस्थौ	वहीं बना रहा ॥२१
सः स्वराट्	वह इन्द्र		

वीरश्चाश्वमुपादाय पितृयज्ञमथाव्रजत् ।
तदवद्यं हरे रूपं जगृहुर्ज्ञानदुर्बलाः ॥२२॥

वीरः च अश्वं उपादाय पितृयज्ञं अथ आव्रजत् तत् अवद्यं हरे रूपं जगृहुः ज्ञान दुर्बलाः ॥२२॥

वीरः च	वीर (पृथु-पुत्र) ने तो
अश्वं उपादाय	घोड़ेको लेकर
पितृयज्ञं अथ	पिताके यज्ञमें फिर
आव्रजत्	चले आये।
ज्ञान दुर्बलाः तत् हरे अवद्यं रूपं	मन्द बुद्धि लोगोंने उस इन्द्रके निन्दित रूपोंको
जगृहुः	धारण कर लिया ॥२२॥

यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रो हयजिहीर्षया।
तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डमिहोच्यते ॥२३॥

यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रः हय जिहीर्षया तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डं इह उच्यते ॥२३॥

हय जिहीर्षया इन्द्रः यानि रूपाणि जगृहे	घोड़ा चुरानेके लिए इन्द्रने जिन रूपोंको धारण किया,
तानि पापस्य खण्डानि	उनको पापका खण्ड कहा गया
इह लिङ्गं खण्डं उच्यते	यहाँ चिह्नको खण्ड कहा गया है ॥२३॥

एवमिन्द्रे हरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघांसया।
तद्गृहीतविसृष्टेषु पाखण्डेषु मतिर्नृणाम् ॥२४॥

एवं इन्द्रे हरति अश्वं वैन्य यज्ञ जिघांसया तत् गृहीत विसृष्टेषु पाखण्डेषु मतिः नृणाम् ॥२४॥

वैन्य यज्ञ जिघांसया इन्द्रे एवं अश्वं हरति तत् गृहीत	पृथुके यज्ञको नष्ट करनेके लिए इन्द्र द्वारा इस प्रकार अश्व चुराते समय उनके द्वारा अपनाये और
विसृष्टेषु पाखण्डेषु नृणां मतिः	त्यागे हुए पाखण्डोंमें मनुष्योंकी बुद्धि जाती है ॥२४॥

धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु ।
प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु ॥२५॥

धर्म इति उपधर्मेषु नग्न रक्तपट आदिषु प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु ॥२५॥

नग्न रक्तपट आदिषु	नग्न या लाल वस्त्रादि	भ्रान्त्या धर्म इति	भ्रमवश यह धर्म है, ऐसा मानकर
इति उपधर्मेषु	इस प्रकारके उपधर्मी	प्रायेण सज्जते	प्रायः लोग आसक्त हो जाते हैं ॥२५॥
पेशलेषु च वाग्मिषु	सुन्दर तथा युक्ति बनानेमें चतुर लोगोंमें		

तदभिज्ञाय भगवान् पृथुः पृथुपराक्रमः ।
इन्द्राय कुपितो बाणमादत्तोद्यतकार्मुकः ॥२६॥

तत् अभिज्ञाय भगवान् पृथुः पृथु पराक्रमः इन्द्राय कुपितः बाणं आदत्त उद्यत कार्मुकः ॥२६॥

तत् अभिज्ञाय	इसे जानकर	इन्द्राय कुपितः	इन्द्रपर क्रोध करके
पृथु पराक्रमः	महान् पराक्रमी	उद्यत कार्मुकः	चढ़े धनुषपर
भगवान् पृथुः	भगवान् पृथुने	बाणं आदत्त	बाण चढ़ाया ॥२६॥

तमृत्विजः शक्रवधाभिसन्धितं
विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् ।
निवारयामासुरहो महामते
न युज्यतेऽत्रान्यवधः प्रचोदितात् ॥२७॥

तं ऋत्विजः शक्र वध अभिसंधितं विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यम् असह्यरंहसं निवारयामासुः अहो महामते न युज्यते अत्र अन्यवधः प्रचोदितात् ॥२७॥

तं शक्र वध	उन्हें इन्द्रको मारनेके लिए
अभिसंधितं	कृत निश्चय
विचक्ष्य	देखकर,
दुष्प्रेक्ष्यम्	उनकी ओर देखना कठिन हो रहा था,
असह्यरंहसं	असह्य वेगवाले (पृथुको)
ऋत्विजः	
निवारयामासुः	ऋत्विजोंने रोका
अहो महामते	अहो महामते !
अत्र प्रचोदितात्	यह यज्ञमें जिसको (बलिका) विधान है,
अन्यवधः	उससे भिन्नका वध
युज्यते	उपयुक्त नहीं है ॥२७॥

वयं मरुत्वन्तमिहार्थनाशनं
ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विषम् ।
अयातयामोपहवैरनन्तरं
प्रसह्य राजन् जुहवाम तेऽहितम् ॥२८॥

वयं मरुत्वन्तं इह अर्थं नाशनं ह्वयामहे त्वत् श्रवसा हतत्विषं अयातयामः उपहवैः अनन्तरं प्रसह्य राजन् जुहवाम ते अहितम् ॥२८॥

राजन् ते अहितं	राजन् आपके शत्रु
इह अर्थं नाशनं	यहां प्रयोजन (यज्ञ) के नाशक,
त्वत् श्रवसा	आपके यशसे
हतत्विषं	नष्ट कान्ति
मरुत्वन्तं	इन्द्रको
वयं	
अयातायामः	हम लोग अमोघ
उपहवैः	आकर्षण मन्त्रोंसे
जुहवाम	हवन करते हुए
अनन्तरं प्रसह्य	यहाँपर बल पूर्वक खींचकर
ह्वयामहे	हवन कर देते हैं ॥२८॥

इत्यामन्त्र्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा ।
स्रुग्घस्ताञ्जुह्वतोऽभ्येत्य स्वयम्भूः प्रत्यषेधत ॥२९॥

इति आमन्त्र्य क्रतुपतिं विदुर अस्य ऋत्विजः रुषा स्रुक् हस्तान् जुह्वतः अभ्येत्य स्वयम्भूः प्रत्यषेधत ॥२९॥

क्रतुपतिं	यज्ञकर्ता स्वामीसे	जुह्वतः	(उनको) हवन करते समय
इति आमन्त्र्य	ऐसा कहकर	स्वयम्भूः	ब्रह्माजीने
अस्य ऋत्विजः	इनके ऋत्विजोंने	अभ्येत्य	
रुषा स्रुक्हस्तान्	रोष पूर्वक हाथमें स्रुवा उठाया,	प्रत्यषेधत	आकर रोका ॥२८॥

ब्रह्मोवाच*–

न वध्यो भवतामिन्द्रो यद्यज्ञो भगवत्तनुः ।
यं जिघांसथ यज्ञेन यस्येष्टास्तनवः सुराः ॥३०॥

न वध्यः भवतां इन्द्रः यत् यज्ञः भगवत् तनुः यं जिघांसथ यज्ञेन यस्य इष्टाः तनवः सुराः ॥३०॥

भवतां तनवः	आप लोगों द्वारा	यस्य सुराः	
इन्द्रः न वध्यः	इन्द्र मारणीय नहीं हैं,	इष्टाः	जिनके देवता प्रिय हैं
यत् यज्ञः	क्योंकि यज्ञ	यं यज्ञेन	
भगवत् तनुः	भगवानका शरीर है,	जिघांसथ	जिन्हें (आप) यज्ञ द्वारा मारने जा रहे हैं ॥३०॥

तदिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः ।
इन्द्रेणानुष्ठितं राज्ञः कर्मैतद्विजिघांसता ॥३१॥

तत् इदं पश्यत महत् धर्म व्यतिकरं द्विजाः इन्द्रेण अनुष्ठितं राज्ञः कर्म एतत् विजिघांसता ॥३१॥

द्विजाः	ब्राह्मणो !	इन्द्रेण अनुष्ठितं	इन्द्रके द्वारा किए गए
राज्ञः एतत् कर्म	राजाके इस कर्म (यज्ञ) को	तत् इदं	वह इस
विजिघांसता	नष्ट करनेके प्रयत्नमें	महत् धर्म व्यतिकरं	महान् धर्मनाशको
		पश्यत	देखो ॥३१॥

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

पृथुकीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः ।
अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैर्यद्भवान्मोक्षधर्मवित् ॥३२॥

पृथुकीर्तेः पृथोः भूयात् तर्हि एकोन शतक्रतुः अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैः यत् भवान् मोक्ष धर्मवित् ॥३२॥

पृथुकीर्तेः	परम यशस्वी	ते क्रतुभिः	
पृथोः	पृथुको	स्विष्टैः	(राजन्) आप यज्ञों द्वारा यजन करना
तर्हि एकोन	इसलिए अब एक कम	अलं	बस (बन्द कर दें)
शतक्रतुः	सौ यज्ञ (निन्यानवे) वाला	यत् भवान्	क्योंकि आप
भूयात्	हों (रहने दो)	मोक्ष धर्मवित्	मोक्ष धर्मको जानने-वाले हैं ॥३२॥

नैवात्मने महेन्द्राय रोषमाहर्तुमर्हसि ।
उभावपि हि भद्रं ते उत्तमश्लोकविग्रहौ ॥३३॥

न एव आत्मनः महेन्द्राय रोषं आहर्तुं अर्हसि उभाः अपि हि भद्रं ते उत्तम श्लोक विग्रहौ ॥३३॥

ते भद्रं	आपका कल्याण हो,	हि उभाः अपि	क्योंकि (आप) दोनों ही
महेन्द्राय	इन्द्रपर	उत्तम श्लोक	उत्तम श्लोक भगवानके
आत्मनः रोषं	अपने चित्तमें क्रोध	विग्रहौ	शरीर हैं ॥३३॥
आहर्तुं न	आपको नहीं करना		
अर्हसि	चाहिए,		

मास्मिन्महाराज कृथाः स्म चिन्तां
निशामयास्मद्वच आहृतात्मा ।
यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुं
मनोऽतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ॥३४॥

मा अस्मिन् महाराज कृथाः स्म चिन्तां निशामय अस्मत् वच आहृत आत्मा यत् ध्यायतः दैवहतं नु कर्तुं मनः अतिरुष्टं विशते तमः अन्धम् ॥३४॥

महाराज	महाराज !
अस्मिन्	इस (अपूर्ण यज्ञ) के विषयमें
चिन्तां	
मा स्म कृथाः	चिन्ता मत कीजिए
अस्मत् वचः	मेरी बात
आहृत आत्मा	आदर पूर्वक
निशामय	सुनिये
यत् दैवदतं	जो विधाताके बिगाड़े हुएको
नु कर्तुं	
ध्यायतः	फिर करनेकी सोचता है,
मनः अतिरुष्टं	(उसका) मन अत्यन्त क्रोधसे
अन्धं तमः	
विशते	घोर मोहमें डूब जाता है ॥३४॥

क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः ।
धर्मव्यतिकरो यत्र पाखण्डैरिन्द्रनिर्मितैः ॥३५॥

क्रतुः विरमतां एष देवेषु दुरवग्रहः धर्म व्यतिकरः यत्र पाखण्डैः इन्द्र निर्मितैः ॥३५॥

यत्र इन्द्र	
निर्मितैः	जिसमें इन्द्रके चलाये
पाखण्डैः	पाखण्डोंसे
धर्म व्यतिकरः	धर्मका नाश हो रहा है,
एष देवेषु	
दुरवग्रहः	यह देवताओंके प्रति दुराग्रहसे पूर्ण
क्रतुः विरमतां	यज्ञ रोक दीजिए ॥३५॥

एभिरिन्द्रोपसंसृष्टैः पाखण्डैर्हारिभिर्जनम् ।
ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुगश्वमुट् ॥३६॥

एभिः इन्द्र उपसंसृष्टैः पाखण्डैः हारिभिः जनं ह्रियमाणं विचक्ष्व एनं यः ते यज्ञ ध्रुक् अश्वमुट् ॥३६॥

यः ते यज्ञ ध्रुक्	जो आपके यज्ञसे द्वेष करके
अश्वमुट्	(यज्ञीय) अश्व चुरा रहा था,
इन्द्र उपसंसृष्टैः	(उस) इन्द्रके द्वारा चलाये
एभिः हारिभिः	इन मनोहर
पाखण्डैः	
ह्रियमाणं	पाखण्डोंकी ओर खिचते जानेवाली
एनं जनं	
विचक्ष्व	इस जनताको देखो ॥३६॥

भवान् परित्रातुमिहावतीर्णो
धर्मं जनानां समयानुरूपम् ।
वेनापचारादवलुप्तमद्य
तद्देहतो विष्णुकलासि वैन्य ॥३७॥

भवान् परित्रातुं इह अवतीर्णः धर्मं जनानां समय अनुरूपं वेन अपचारात् अवलुप्तं अद्य तत् देहतः विष्णुकला असि वैन्य ॥३७॥

वैन्य भवान्	महाराज पृथु ! आप	**तत् देहतः**	उस (वेन) के शरीरसे
वेन अपचारात्	वेनके अत्याचारसे	**अद्य इह**	इस समय यहाँ (संसारमें)
अवलुप्तं	लुप्त हो गये	**अवतीर्णः**	अवतार लिए
जनानां समय अनुरूपं	लोगोंका समय (युग) के अनुरूप	**विष्णुकला असि**	भगवान विष्णुकी कला हैं ॥३७॥
धर्मं परित्रातुं	धर्मकी रक्षा करनेके लिए		

स त्वं विमृश्यास्य भवं प्रजापते
सङ्कल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि ।
ऐन्द्रीं च मायामुपधर्ममातरं
प्रचण्डपाखण्डपथं प्रभो जहि ॥३८॥

स त्वं विमृश्य अस्य भवं प्रजापते सङ्कल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि ऐन्द्रीं च मायां उपधर्ममातरं प्रचण्ड पाखण्डपथं प्रभो जहि ॥३८॥

प्रजापते प्रभो	प्रजापालक प्रभो !	**सङ्कल्पनं**	
स त्वं	वह आप	**पिपीपृहि**	संकल्प पूरा कीजिये
अस्य भवं	इस (संसार) का कल्याण	**च उपधर्म-मातरं**	तथा अधर्मकी जन्मदात्री
विमृश्य	विचारकर		
विश्वसृजां	प्रजापतियों (कश्यपादि) का		

ऐन्द्रीं मायां	इन्द्रकी मायाके (द्वारा चले)	पथं जहि	मार्गको नष्ट कीजिए ॥३९॥
प्रचण्ड पाखण्ड	प्रचण्ड पाखण्ड		

मैत्रेय उवाच–

इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशाम्पतिः ।
तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनापि च सन्दधे ॥३९॥

इत्थं स लोक गुरुणा समादिष्टः विशाम्पतिः तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोना अपि च सन्दधे ॥३९॥

स विशाम्पतिः	वे महाराज	तथा च कृत्वा	वैसा ही करके (यज्ञ बन्द करके)
लोक गुरुणा	लोक गुरु (ब्रह्माजी) द्वारा	मघोना अपि च	इन्द्रपर भी
इत्थं समादिष्टः	इस प्रकार आदेश देनेपर	वात्सल्यं सन्दधे	वात्सल्य-स्नेह किया ॥३९॥

कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्मणे ।
वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥४०॥

कृताः अवभृथ स्नानाय पृथवे भूरि कर्मणे वरान् ददुः ते वरदा ये ये तत् बर्हिषि तर्पिताः ॥४०॥

अवभृथ स्नानाय	अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान	ते वरदा	उन वरदान देनेवाले (देवताओंने)
कृताः	कर लेनेपर	वरान् ददुः	वरदान दिये
भूरि कर्मणे पृथवे	महत् कर्मा पृथुको	ये तत बर्हिषि तर्पिताः	जो उनके यज्ञमें तृप्त किये गये थे ॥४०॥

विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धयालब्धदक्षिणाः ।
आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥४१॥

विप्राः सत्य आशिषः तुष्टाः श्रद्धया लब्ध दक्षिणाः आशिषः युयुजुः क्षतः आदिराजाय सत्कृताः ॥४१॥

क्षत्तः	विदुर !	**सत्कृताः तुष्टाः**	सत्कृत होकर; सन्तुष्ट होकर
सत्य आशिषः	जिनके आशीर्वाद सच्चे होते हैं,	**आदिराजाय**	आदिराज (पृथु)को
विप्राः श्रद्धया	उन ब्राह्मणोंने श्रद्धापूर्वक	**आशिषः युयुजुः**	आशीर्वाद दिया ॥४१॥
लब्ध दक्षिणाः	दक्षिणा पाकर		

*विप्राः ऊचुः**–

त्वयाऽऽहूता महाबाहो सर्व एव समागताः ।
पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥४२॥

त्वया आहूता महाबाहो सर्व एव समागताः पूजिताः दानमानाभ्यां पितृ देव ऋषि मानवाः ॥४२॥

महाबाहो	महाबाहु !	**समागताः**	(जो) आये थे
त्वया आहूता	आपके बुलानेसे	**दानमानाभ्यां**	(उनका) दान और सम्मानसे
सर्व एव	सभी	**पूजिताः**	(आपने ठीक-ठीक) पूजा की है ॥४२॥
पितृ देव ऋषि मानवाः	पितर, देवता, ऋषि मनुष्य		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पृथुविजय एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथ विंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः ।
यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत ॥१॥

भगवान् अपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः यज्ञैः यज्ञपतिः तुष्टः यज्ञभुक् तं अभाषत ॥१॥

यज्ञपतिः		यज्ञैः तुष्टः	यज्ञोंसे सन्तुष्ट होकर
यज्ञभुक्	यज्ञेश्वर, यज्ञभोक्ता	विभुः मघवता साकं	वे विभु इन्द्रके साथ (आकर)
वैकुण्ठः भगवान् अपि	वैकुण्ठनाथ भगवान भी	तं अभाषत	उन (पृथु) से बोले ॥१॥

श्रीभगवान् उवाच–

एष तेऽकार्षीच्चरङ्गं हयमेधशतस्य ह ।
क्षमापयत आत्मानममुष्य क्षन्तुमर्हसि ॥२॥

एष ते अकार्षीत् भङ्गं हयमेध शतस्य ह क्षमापयत आत्मानं अमुष्य क्षन्तुं अर्हसि ॥२॥

ते हयमेध शतस्य ह	तुम्हारे सौवें अश्वमेधको ही	आत्मानं क्षमापयत	(अब) अपनेको क्षमा कराना चाहते हैं,
एष भङ्गं अकार्षीत्	इन्होंने भंग किया है,	अमुष्य क्षन्तुं अर्हसि	इनको (तुम्हें) क्षमा कर देना चाहिए ॥२

सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः ।
नाभिद्रुह्यन्ति भूतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ॥३॥

सुधियः साधवः लोके नरदेव नरोत्तमाः न अभिद्रुह्यन्ति भूतेभ्यः यर्हि न आत्मा कलेवरम् ॥३॥

नरदेव	राजन् !	भूतेभ्यः	प्राणियोंसे
लोके सुधियः साधवः	संसारमें बुद्धिमान्,	न अभिद्रुह्यन्ति	कहीं द्रोह नहीं करते
नरोत्तमाः	सत्पुरुष, श्रेष्ठ मनुष्य	यर्हि आत्मा कलेवरं न	क्योंकि आत्मा शरीर नहीं है ॥३॥

पुरुषा यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया ।
श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ॥४॥

पुरुषाः यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया श्रम एव परं जातः दीर्घया वृद्ध सेवया ॥४॥

यदि त्वादृशा पुरुषाः	यदि तुम्हारे समान पुरुष	दीर्घया वृद्ध सेवया	बहुत दिनों तक बड़ोंकी सेवामें
देवमायया मुह्यन्ति	मेरी मायासे मोहित हों तो	परं श्रम एव जातः	फिर (कोई लाभ नहीं हुआ) केवल परिश्रम ही हुआ ॥४॥

अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः ।
आरब्ध इति नैवास्मिन् प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ॥५॥

अतः कायं इमं विद्वान् अविद्या काम कर्मभिः आरब्ध इति न एव अस्मिन् प्रतिबुद्धः अनुषज्जते ॥५॥

अतः इमं कायं अविद्या काम कर्मभिः	अतः इस शरीरको अविद्या, कामना तथा कर्म (संस्कार) से	आरब्ध इति विद्वान्	बना हुआ है, ऐसा जानकर
		प्रतिबुद्धः	जागा हुआ ज्ञान प्राप्त पुरुष
		अस्मिन् न एव अनुषज्जते	इसमें नहीं ही आसक्त होता ॥५॥

असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्नमुनोत्पादिते गृहे ।
अपत्ये द्रविणे वापि कः कुर्यान्ममतां बुधः ॥६॥

असंसक्तः शरीरे अस्मिन् अमुना उत्पादिते गृहे अपत्ये द्रविणे वा अपि कः कुर्यात् ममतां बुधः ॥६॥

अस्मिन् शरीरे असंसक्तः कः बुधः अमुना उत्पादिते	इस शरीरसे अनासक्त रहकर कौन बुद्धिमान इसीके द्वारा उत्पन्न किये	गृहे अपत्ये वा द्रविणे ममतां कुर्यात्	घर, पुत्र अथवा धनमें ममत्व करेगा ॥६॥

एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः ।
सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्माऽऽत्माऽऽत्मनः परः ॥७॥

एकः शुद्धः स्वयंज्योतिः निर्गुणः असौ गुण आश्रयः सर्वगः अनावृतः साक्षी निरात्मा आत्मा आत्मनः पुरः ॥७॥

असौ आत्मा एकः शुद्धः स्वयंज्योतिः निर्गुणः गुण आश्रयः	यह आत्मा एक शुद्ध, स्वयं प्रकाश निर्गुण, गुणोंका आश्रय,	सर्वगः अनावृतः साक्षी निरात्मा आत्मनः परः	सर्वव्यापी, निरावरण, साक्षी, द्वितीय भेद रहित (अद्वितीय) शरीरसे भिन्न है ॥७

य एवं सन्तमात्मानमात्मस्थं वेद पूरुषः ।
नाज्यते प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥८॥

य एवं सन्तं आत्मानं आत्मास्थं वेद पूरुषः न अज्यते प्रकृतिस्थः अपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥८॥

य एवं सन्तं आत्मानं	जो इस स्वरूपके	प्रकृतस्थः अपि	प्रकृतिमें रहते हुए भी
आत्मस्थं	आत्माको अपने (अन्तःकरण)में स्थित	तद्गुणैः न अज्यते	उसके गुणोंसे लिप्त नहीं होता
वेद पूरुषः	जानता है, वह पुरुष	स मयि स्थितः	वह तो मुझमें स्थित है ॥८॥

यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयान्वितः ।
भजते शनकैस्तस्य मनो राजन् प्रसीदति ॥९॥

यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धया अन्वितः भजते शनकैः तस्य मनः राजन् प्रसीदति ॥९॥

राजन्	राजन् !	भजते	पूजन करता है
यः निराशीः	जो निष्काम भावसे	शनकैः	धीरे-धीरे
श्रद्धया अन्वितः	श्रद्धा सहित	तस्य मनः	उसका चित्त
स्वधर्मेण	अपने धर्मपालन द्वारा	प्रसीदति	निर्मल हो जाता है ॥९॥
मां नित्यम्	मेरा प्रतिदिन		

परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनो विशदाशयः ।
शान्ति मे समवस्थानं ब्रह्म कैवल्यमश्नुते ॥१०॥

परित्यक्त गुणः सम्यक् दर्शनः विशद आशयः शान्ति मे समवस्थानं ब्रह्म कैवल्यं अश्नुते ॥१०॥

विशद आशयः	चित्त शुद्ध हो जानेपर	मे समवस्थानं	मेरी समता रूप स्थितिको पाकर
परित्यक्त गुणः	गुणोंसे सम्बन्ध छूट जाता है,	शान्ति ब्रह्म कैवल्यं	परम शान्ति ब्रह्म कैवल्य (मोक्ष)
सम्यक् दर्शनः	ठीक तत्त्व ज्ञान हो जाता है,	अश्नुते	पालेता है ॥१०॥

उदासीनमिवाध्यक्षं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् ।
कूटस्थमिममात्मानं यो वेदाप्नोति शोभनम् ॥११॥

उदासीनं इव अध्यक्षं द्रव्य ज्ञान क्रिया आत्मनां कूटस्थं इमं आत्मानं यः वेद आप्नोति शोभनम् ॥११॥

यः इमं आत्मानं	जो इस आत्माको	अध्यक्षं	उनका अध्यक्ष
द्रव्य ज्ञान क्रिया	पदार्थ, उनके ज्ञान तथा कर्मसे	कूटस्थं वेद	कूटस्थ जानता है,
उदासीनं इव	उदासीनकी भाँति	शोभनं	वह परम शुभ(मोक्ष)
		आप्नोति	पाता है ॥११॥

भिन्नस्य लिङ्गस्य गुणप्रवाहो
द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः ।
दृष्टासु सम्पत्सु विपत्सु सूरयो
न विक्रियन्ते मयि बद्धसौहृदाः ॥१२॥

भिन्नस्य लिङ्गस्य गुण प्रवाहः द्रव्य क्रिया कारक चेतन आत्मनः दृष्टासु सम्पत्सु विपत्सु सूरयः न विक्रियन्ते मयि बद्ध सौहृदाः ॥१२॥

गुण प्रवाहः	गुणोंका प्रवाह रूप (आवागमन)	आत्मनः	
द्रव्य क्रिया कारक	महाभूत, क्रिया (इन्द्रिय) कारक (इन्द्रिय देवता)	भिन्नस्य	आत्मासे पृथक्
		लिङ्गस्य	लिङ्ग (सूक्ष्म) शरीरका
		दृष्टासु	देखा जाता है, (अतः)
चेतन	चिदाभासका		

मयि बद्ध सौहृदाः	मुझसे सौहार्द्र करनेवाले	**विक्रियन्ते न**	(हर्ष-शोक) विकार-ग्रस्त नहीं होते ॥१२॥
सूरयः	बुद्धिमान लोग		
सम्पत्सु विपत्सु	सम्पत्ति या विपत्तिमें		

समः समानोत्तममध्यमाधमः
सुखे च दुःखे च जितेन्द्रियाशयः ।
मयोपकॢप्ताखिललोकसंयुतो
विधत्स्व वीराखिललोकरक्षणम् ॥१३॥

समः समान उत्तम मध्यम अधमः सुखे च दुःखे च जित इन्द्रिय आशयः मया उपकॢप्त अखिल लोक संयुतः विधत्स्व वीर अखिल लोक रक्षणम् ॥१३॥

समान उत्तम मध्यम, अधमः	(अपने) समान श्रेष्ठ मध्यम तथा निकृष्टके प्रति	**वीर**	वीरवर !
		मया उपकॢप्त अखिल लोक	मेरे द्वारा जुटाये
समः	समान रहते,	**संयुतः**	सब (मन्त्री आदि) लोगोंके साथ
सुखे च दुःखे च जित इन्द्रिय आशयः	सुख तथा दुःखमें भी इन्द्रियों तथा मनको वशमें करके	**अखिल लोक रक्षणं विधत्स्व**	सब लोकोंकी रक्षा करते रहो ॥१३॥

श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो
यत्साम्पराये सुकृतात् षष्ठमंशम् ।
हर्तान्यथा हृतपुण्यः प्रजाना-
मरक्षिता करहारोऽघमत्ति ॥१४॥

श्रेयः प्रजापालनं एव राज्ञः यत् साम्पराये सुकृतात् षष्ठं अंशं हर्ता अन्यथा हृतपुण्यः प्रजानां अरक्षिता करहारः अघं अत्ति ॥१४॥

प्रजापालनं एव	प्रजाका पालन ही	अन्यथा अरक्षिता	अन्यथा (प्रजाकी) रक्षा न करके
राज्ञः श्रेयः	राजाके लिए कल्याणकारी है,	करहारः	कर लेनेवाला
यत् साम्पराये	क्योंकि मरनेपर (परलोकमें)	हृतपुण्यः	(प्रजा उसका) पुण्य छीन लेती है,
सुकृतात् षष्ठं अंशं	(प्रजाके) पुण्यमें-से छठवां भाग	अघं अत्ति	(वह प्रजाके) पाप भोगता है ॥१४॥
हर्ता	पाता है,		

एवं द्विजाग्र्यानुमतानुवृत्त-
धर्मप्रधानोऽन्यतमोऽवितास्य ।
ह्रस्वेन कालेन गृहोपयातान्
द्रष्टासि सिद्धाननुरक्तलोकः ॥१५॥

एवं द्विज अग्र्य अनुमता अनुवृत्तधर्म प्रधानः अन्यतमः अविता अस्याः ह्रस्वेन कालेन गृह उपयातान् द्रष्टासि सिद्धान् अनुरक्त लोकः ॥१५॥

एवं	इस प्रकार	अनुरक्तः लोकः	अपनेमें अनुरक्त प्रजाकी
द्विज अग्र्य	ब्राह्मणोंकी	अविता	रक्षा करते हुए
अनुमता	आज्ञानुसार	ह्रस्वेन कालेन	थोड़े ही समयमें
अनुवृत्तधर्म		गृह उपयातान्	अपने घर आये
प्रधानः	परम्परा प्राप्त प्रधान धर्मको	सिद्धान् द्रष्टासि	सिद्धोंका दर्शन करोगे ॥१५॥
अन्यतमः	सर्वप्रधान मानते		

वरं च मत् कञ्चन मानवेन्द्र
वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः ।
नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभि-
र्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥१६॥

वरं च मत् कञ्चन मानवेन्द्र वृणीष्व ते अहं गुणशील यन्त्रितः न
अहं मखैः वै सुलभः तपोभिः योगेन वा यत् समचित्तवर्ती ॥१६॥

मानवेन्द्र	मानवेन्द्र !
मत् कञ्चन	मुझसे कोई
वरं च वृणीष्व	वरदान भी मांग लो,
अहं ते	मैं तुम्हारे
गुणशील	
मन्त्रितः	गुणों तथा शीलसे वशमें हो गया हूं,
वै अहं	अन्यथा मैं
मखैः तपोभिः	यज्ञोंसे, तपस्यासे
वा योगेन	अथवा योगसे
सुलभः न	सुलभ नहीं हूं,
यत्	
समचित्तवर्ती	क्योंकि समतामें स्थित चित्तमें रहता हूँ ॥१६॥

मैत्रेय उवाच–

स इत्थं लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् ।
अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥१७॥

स इत्थं लोक गुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥१७॥

इत्थं	इस प्रकार
लोक गुरुणा	सब लोकोंके गुरु
विष्वक्सेनेन	भगवान विष्णुके
अनुशासित	आज्ञा देनेपर
स विश्वजित्	उन जगद्विजयी (पृथु) ने
हरेः आदेशं	श्रीहरिकी आज्ञाको
शिरसा जगृहे	सिर झुकाकर स्वीकार किया ॥१७॥

स्पृशन्तं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा ।
शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥१८॥

स्पृशन्तं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥१८॥

स्वेन कर्मणा	अपने कर्मसे
व्रीडितं	लज्जित
पादयोः स्पृशन्तं	पैर छूनेको झुके
शतक्रतुं प्रेम्णा	इन्द्रको प्रेमपूर्वक
परिष्वज्य	आलिंगन करके
विद्वेषं विससर्ज ह	परस्परके द्वेषको समाप्त ही कर दिया ॥१८॥

भगवानथ विश्वात्मा पृथुनोपहृतार्हणः ।
समुज्जिहानया भक्त्या गृहीतचरणाम्बुजः ॥१९॥

प्रस्थानाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहविलम्बितः ।
पश्यन् पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्सताम् ॥२०॥

भगवान् अथ विश्वात्मा पृथुना उपहृत अर्हणः समुज्जिहानया भक्त्या गृहीत चरणाम्बुजः ॥१९॥

प्रस्थान अभिमुखः अपि एनं अनुग्रह विलम्बितः पश्यन् पद्मपलाशाक्षः न प्रतस्थे सुहृत् सताम् ॥२०॥

पृथुना उपहृत अर्हणः	पृथुके द्वारा पूजोपहार अर्पित करके
समुज्जिहानया भक्त्या	उमड़ते भाव सहित भक्तिसे
चरणाम्बुजः गृहीतः	चरण-कमल पकड़ लिये गये
अथ विश्वात्मा सतां सुहृत् भगवान्	तब विश्वात्मा सत्पुरुषोंके सुहृद् भगवान
प्रस्थान अभिमुखः अपि	जानेको उद्यत होनेपर भी
एनं पद्मपलाशाक्षः पश्यन्	इन (पृथुको) कमलदल-लोचनोंसे देखते,
न प्रतस्थे	गये नहीं,
अनुग्रह विलम्बितः	कृपापूर्वक रुक गये ॥१९-२०॥

स आदिराजो रचिताञ्जलिर्हरिं
विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ।

न किञ्चनोवाच स बाष्पविक्लवो
हृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥२१॥

स आदिराजः रचित अञ्जलिः हरिं विलोकितुं न अशकत् अश्रुलोचनः न किञ्चन उवाच स बाष्पविक्लवः हृदा उपगुह्य अमुं उपधात् अवस्थितः ॥२१॥

स आदिराजः	वे आदिराज (पृथु)	स किञ्चन न	
रचित		उवाच	वे कुछ बोले भी
अञ्जलिः	हाथ जोड़े		नहीं,
अश्रुलोचनः	नेत्रोंमें आंसू भरनेसे	अमुं हृदा	
हरिं विलोकितुं	श्रीहरिका दर्शन	उपगुह्य	उन्हें हृदयसे
	करनेमें		आलिंगन करके
अशकत् न	समर्थ नहीं हुए,	उपधात्	
बाष्पविक्लवः	कण्ठ भर आनेसे	अवस्थितः	ज्योंके-त्यों खड़े रह
			गये ॥२१॥

अथावमृज्याश्रुकला विलोकयन्-
नतृप्तदृग्गोचरमाह पूरुषम् ।
पदा स्पृशन्तं क्षितिमंस उन्नते
विन्यस्तहस्ताग्रमुरङ्गविद्विषः ॥२२॥

अथ अवमृज्य अश्रुकला विलोकयन् न तृप्त दृक् गोचरं आह पूरुषं पदा स्पृशन्तं क्षितिं अंस उन्नते विन्यस्त हस्त अग्रं उरङ्ग विद्विषः ॥२२॥

अथ अश्रुकला	फिर आंसुओंको	न तृप्त दृक्	नेत्र तृप्त नहीं हो
अवमृज्य	पोंछकर		रहे थे ।
दृक् गोचरं	आंखोंके सामने खड़े	पदा क्षितिं	
	(भगवानका)	स्पृशन्तं	चरणोंसे पृथ्वीको
विलोकयन्	दर्शन करते		छूते*

---

* देवता किसीको दर्शन दें तो आकाशमें ही खड़े रहते हैं । पृथ्वीका पैरसे स्पर्श नहीं करते । पृथ्वीपर चरण भगवान ही रखते हैं ।

उरङ्ग विद्विषः	नागोंके शत्रु (गरुड़) के	हस्त अग्रम् विन्यस्त	हस्ताग्र रखे
उन्नते अंस	ऊँचे कन्धेपर	पूरुषं आह	परम-पुरुषसे बोले ॥२२॥

पृथुरुवाच–

वरान् विभो त्वद्वरदेश्वराद् बुधः
कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ।
ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां
तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥२३॥

वरान् विभो त्वत् बरदेश्वरात् बुधः कथं वृणीते गुण विक्रियात्मनां ये नारकाणां अपि सन्ति देहिनां तान् ईश कैवल्यपते वृणे न च ॥२३॥

कैवल्यपते विभो बरदेश्वरात्	मोक्षपति प्रभो !	बुधः कथं वृणीते	कोई बुद्धिमान कैसे मांग सकता है,
वरान्	वरदान देनेवाले श्रेष्ठ (ब्रह्मादि) के भी स्वामी	ये नारकाणां देहिनां	जो नारकीय प्राणियों
त्वत्	आपसे	अपि सन्ति	को भी प्राप्त हैं
गुण विक्रियात्मनां	गुणोंके विकारसे मिलनेवाले (भोगों) को	ईश तान्	स्वामी ! उन (भोगों) को
		न च वृणे	नहीं ही मागूँगा ॥२३॥

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्-
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो
विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥२४॥

न कामये नाथ तदपि अहं क्वचित् न यत्र युष्मत् चरणाम्बुज आसवः महत्तम अन्तः हृदयात् मुखच्युतः विधत्स्व कर्ण अयुतं एष मे वरः ॥२४॥

युष्मत्		यत्र न	जहां नहीं है
चरणाम्बुज	आपके चरण-कमलोंका	नाथ तदपि	नाथ वह कुछ
आसवः	आसव	क्वचित् अहं	कभी मैं
महत्तम अन्तः		न कामये	नहीं चाहता,
हृदयात्	महापुरुषोंके हृदयके भीतरसे	एष मे वरः	मेरे लिए यही वरदान है कि
मुखच्युतः	मुख द्वारा बाहर निकला	अयुतं कर्ण	(उसे पीनेके लिए) दस हजार कान
		विधत्स्व	(मेरे) बना दीजिए ॥२४॥

स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो
भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां
कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥२५॥

स उत्तम श्लोक महत् मुखच्युतः भवत् पद अम्भोज सुधाकण अनिलः स्मृतिं पुनः विस्मृत तत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नः वितरति अलं वरैः ॥२५॥

उत्तम श्लोक	उत्तम श्लोक !	तत्त्ववर्त्मनां	
स महत्	वह महापुरुषोंके	विस्मृत	तत्त्व ज्ञानके मार्गको भूले
मुखच्युतः	मुखसे निकली	नः कुयोगिनां	हम कुयोगियोंको
भवत् पद		पुनः स्मृतिं	
अम्भोज	आपके चरण-कमलके	वितरति	फिर स्मृति (तत्त्व-ज्ञान) करा देती है,
सुधाकण			
अनिलः	अमृत-कण सहित वायु	अलं वरैः	वरदानका क्या प्रयोजन है ॥२५॥

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे
यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं
श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥२६॥

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया च उपशृणोति ते सकृत् कथं गुणज्ञः विरमेत् विना पशुं श्रीः यत् प्रवव्रे गुण संग्रह इच्छया ॥२६॥

सुश्रव	उत्तम श्लोक !	ते शिवं यशः	आपका मंगलमय-यश
गुण संग्रह	गुणोंको पानेकी	सकृत्	
इच्छया श्रीः	इच्छासे लक्ष्मीजी भी	उपशृणोति	एकबार भी सुनकर
यत् प्रवव्रे	जिसे बहुत चाहती हैं,	पशुं विना	पशुको छोड़कर
आर्यसङ्गमे	(उस) श्रेष्ठ पुरुषोंके सत्संगमें	गुणज्ञः	कोई गुण पहिचानने वाला
यदृच्छया च	अकस्मात् भी	कथं विरमेत्	(उसे सुनना) कैसे छोड़ेगा ॥२६॥

अथाभजे त्वाखिलपूरुषोत्तमं
गुणालयं पद्मकरेव लालसः ।
अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलि-
र्न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥२७॥

अथ आभजे त्वां अखिल पूरुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरेव लालसः अपि आवयोः एक पति स्पृधोः कलिः न स्यात् कृत त्वत् चरण एक एक तानयोः ॥२७॥

अथ पद्मकरेव	अतः लक्ष्मीजीके समान ही	त्वां अखिल पूरुषोत्तमं	आप समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ
लालसः	लालसासे	गुणालयं	गुण गणैक धामकी
		आभजे	सेवा करूँगा ।

आवयोः	हम दोनों (लक्ष्मीजी और मेरे)	एक तानयोः कृत	एकाग्र चित्त किये
एक पति अपि	एक स्वामी होनेपर भी	स्पृधोः कलिः न स्यात्	स्पर्धासे झगड़ा नहीं होगा ॥२७॥
त्वत् चरण	आपके चरणोंमें		

जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं
स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहितम् ।
करोषि फल्वप्युरु दीनवत्सलः
स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया ॥२८॥

जगत् जनन्यां जगदीश वैशसं स्यात् एव यत् कर्मणि नः समीहितं करोषि फलु अपि उरु दीनवत्सलः स्व एव धिष्ण्ये अभिरतस्य किं तया ॥२८॥

जगदीश	जगदीश !	अभिरतस्य	निमग्न (आपको)
जगत् जनन्यां	जगज्जननीसे	तया किं	उनसे क्या (प्रयोजन)
स्यात् वैशसं एव	कदाचित झगड़ा हो ही	दीनवत्सलः	(आप) दीनोंपर वात्सल्य रखनेवाले
यत् नः कर्मणि	क्योंकि हमारे कर्मोंमें	फल्गु अपि	थोड़ी (सेवा) को भी
समीहितं	समान (सेवा की) इच्छा है,	उरु करोषि	बहुत करते (मानते) हैं ॥२८॥
स्व एव धिष्ण्ये	(पर) अपने स्वरूपमें ही		

भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो
व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ।
भवत्पदानुस्मरणादृते सतां
निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥२९॥

भजन्ति अथ त्वां अत एव साधवः व्युदस्त माया गुण विभ्रमोदयं भवत् पद अनुस्मरणात् ऋते सतां निमित्तं अन्यत् भगवन् न विद्महे ॥२९॥

भगवन्	भगवन् !	भवत् पद	
माया गुण	मायाके गुणोंके	अनुस्मरणात्	आपके चरणोंके
विभ्रम उदये	भ्रमोंकी उत्पत्तिसे		बार-बार स्मरणको
व्युदस्त	सर्वथा रहित	ऋते सतां	छोड़कर संतोंका
त्वां अतएव	आपका इसीसे	अन्यत् निमित्तं	दूसरा प्रयोजन
अथ साधवः		न विद्महे	(मैं) नहीं
भजन्ति	तो साधु लोग भजन करते हैं,		जानता ॥२९॥

मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं
वरं वृणीष्वेति भजन्तमात्थ यत् ।
वाचा नु तन्त्या यदि ते जनोऽसितः
कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥३०॥

मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्व इति भजन्तं आत्थ यत् वाचा नु तन्त्या यदि ते जनः असितः कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥३०॥

भजन्तं	(आपने मुझ) भजन करनेवालेसे	मन्ये	मानता हूँ
		ते वाचा नु तन्त्या	आपकी (वेदरूप) वाणीकी रस्सीसे ही
यत् इति आत्थ	जो यह कहा कि		
वरं वृणीष्व	'वरदान माँगो !'	असितः जनः	बँधे हुए लोग
ते गिरं	आपकी (इस) वाणीको	यदि	यदि (न होते तो)
		पुनः कथं	फिर कैसे
जगतां		मोहितः	मोहमें पड़कर
विमोहिनीं	संसारको मोहमें डालनेवाली	कर्म करोति	(सकाम) कर्म करते ॥३०॥

त्वन्माययाद्धा जन ईश खण्डितो
यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुधः ।
यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं
तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम् ॥३१॥

त्वत् मायया अद्धा जनः ईश खण्डितः यत् अन्यत् आशास्त ऋत आत्मनः अबुधः यथा चरेत् बालहितं पिता स्वयं तथा त्वं एव अर्हसि नः समीहितुम् ॥३१॥

ईश	सर्वेश !
त्वत् मायया	आपकी मायासे
अद्धा खण्डितः	
जनः	पूर्णतः (आपसे) पृथक हुए लोग
ऋत आत्मनः	अपने स्वरूपको छोड़कर
यत् अबुधः	क्योंकि अज्ञानी हैं
अन्यत् आशास्त	दूसरे (स्त्री-पुत्रादि) को चाहते हैं
यथा पिता	
स्वयं	जैसे पिता स्वयं
बालहितं चरेत्	बच्चेकी भलाई करता है,
तथा त्वं एव	वैसे ही आपको भी
नः समीहितुं	हमारे (भलेकी) पूरी इच्छा
अर्हसि	करनी चाहिए ॥३१॥

मैत्रेय उवाच–

इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक्
तमाह राजन् मयि भक्तिरस्तु ते ।
दिष्ट्येदृशी धीर्मयि ते कृता यया
मायां मदीयां तरति स्म दुस्त्यजाम् ॥३२॥

इति आदिराजेन नुतः स विश्वदृक् तं आह राजन् मयि भक्तिः अस्तु ते दिष्ट्या दृशी धीः मयि ते कृता यया मायां मदीयां तरति स्म दुस्त्यजाम् ॥३२॥

इति आदिराजेन	इस प्रकार आदिराज (पृथु) के
नुतः	स्तुति करनेपर
स विश्वदृक्	उन सर्वसाक्षीने
तं आह	उनसे कहा—
राजन् ते मयि भक्तिः अस्तु	'राजन् ! तुम्हारी मुझमें भक्ति हो'
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि
ते मयि धीः कृता	तुमने मुझमें बुद्धि लगायी है
यया मदीयां	जिससे मेरी

दुस्त्यजां मायां	दुस्त्यज मायाको (मनुष्य)	तरति स्म	पार कर लेता है ॥३२॥

तत्त्वं कुरु मयाऽऽदिष्टमप्रमत्तः प्रजापते ।
मदादेशकरो लोकः सर्वत्राप्नोति शोभनम् ॥३३॥

तत् त्वं कुरु मया आदिष्टं अप्रमत्तः प्रजापते मत् आदेशकरः लोकः सर्वत्र आप्नोति शोभनम् ॥३३॥

प्रजापते	प्रजाके पालक !	मत् आदेशकरः	मेरे आदेशका पालन करनेवाले
त्वं तत् मया आदिष्टं	तुम उस मेरे	लोकः सर्वत्र	लोग सब कहीं
अप्रमत्तः	आदेशका प्रमाद-हीन होकर	शोभनं आप्नोति	मंगल प्राप्त करते हैं* ॥३३॥
कुरु	(पालन) करो,		

इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनन्द्यार्थवद्वचः ।
पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गन्तुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥३४॥

इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनन्द्य अर्थवत् वचः पूजितः अनुगृहीत्वा एनं गन्तुं चक्रे अच्युतः मतिम् ॥३४॥

इति राजर्षेः	इस प्रकार राजर्षि	एनं अनुगृहीत्वा	उनपर अनुग्रह करके
वैन्यस्य	पृथुकी	अच्युतः गन्तुं	भगवान अच्युतने जानेका
अर्थवत् वचः	सारगर्भित वाणीकी	मतिं चक्रे	विचार किया ॥३४॥
प्रतिनन्द्य	प्रशंसा करके		
पूजितः	पूजित होकर		

देवर्षिपितृगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगाः ।
किन्नराप्सरसो मर्त्याः खगा भूतान्यनेकशः ॥३५॥

---

* यहां उवाच सब प्रतियोंमें है; किन्तु होना नहीं चाहिए; क्योंकि भगवानके वचन मैत्रेयके कथनके अन्तर्गत ही श्लोक ३२ में प्रारम्भ हुए हैं। उससे पहिलेसे 'मैत्रेय उवाच' चल रहा है।

देवर्षि, पितृ, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नगाः, किन्नरः, अप्सरसः मर्त्याः (मनुष्य) खगा भूतानि अनेशः (अनेक प्रकारके प्राणी एवं पार्षद) ॥३५॥

यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाग्वित्ताञ्जलिभक्तितः ।
सभाजिता ययुः सर्वे वैकुण्ठानुगतास्ततः ॥३६॥

यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाक् वित्त अञ्जलि भक्तितः सभाजिता ययुः सर्वे वैकुण्ठ अनुगताः ततः ॥३६॥

राज्ञा	राजा द्वारा	सभाजिता	सत्कृत होकर
यज्ञेश्वरधिया	भगवद्बुद्धिसे	सर्वे वैकुण्ठ अनुगताः	सब भगवानके पीछे
वाक् वित्त	वाणी और धनसे (देकर)	ततः ययुः	वहाँसे चले गये ॥३६॥
भक्तितः अञ्जलि	भक्ति सहित हाथ जोड़कर		

भगवानपि राजर्षेः सोपाध्यायस्य चाच्युतः ।
हरन्निव मनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥३७॥

भगवान् अपि राजर्षेः स उपाध्यायस्य च अच्युतः हरन् इव मनः अमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥३७॥

स उपाध्यायस्य च	पुरोहितोंके सहित ही	भगवान् अच्युतः अपि स्वधाम प्रत्यपद्यत	भगवान अच्युत भी अपने धाम पहुँच गये ॥३७॥
अमुष्य राजर्षेः	इन राजर्षि (पृथु) का		
मनः हरन् इव	मन चुराते हुएसे		

अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः सन्दर्शितात्मने ।
अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥३८॥

अदृष्टाय नमः कृत्य नृपः सन्दर्शित आत्मने अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥३८॥

सन्दर्शित आत्मने	अपना स्वरूप दिखलाकर	**देवाय नमः कृत्य**	भगवानको नमस्कार करके
देवानां च अदृष्टाय अव्यक्ताय	देवताओंके लिए भी दर्शन न देनेवाले अव्यक्त (अदृश्य) हुए	**नृपः स्वपुरं ययौ**	राजा अपने नगर चले गये ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः ।
महासुरभिभिर्दीपैर्मण्डितं तत्र तत्र वै ॥१॥

मौक्तिकैः कुसुमस्रक्भिः दुकूलैः स्वर्ण तोरणैः महासुरभिभिः दीपैः मण्डितं तत्र तत्र वै ॥१॥

तत्र तत्र वै	(वह नगर) स्थान-स्थानपर	स्वर्ण तोरणैः	स्वर्णके तोरण द्वारोंसे
मौक्तिकैः कुसुमस्रक्भिः	मोतियों और पुष्पोंकी मालाओंसे	महासुरभिभिः	बहुत अधिक सुगन्धित (धूप) से
दुकूलैः	वस्त्रोंसे	दीपैः	दीपकोंसे
		मण्डितं	सजा था ॥१॥

चन्दनागुरुतोयार्द्ररथ्याचत्वरमार्गवत् ।
पुष्पाक्षतफलैस्तोक्मैर्लाजैरर्चिभिरर्चितम् ॥२॥

चन्दन अगुरु तोय आर्द्र रथ्या चत्वर मार्ग वत् पुष्प अक्षत फलैः तोक्मैः लाजैः अर्चिभिः अर्चितम् ॥२॥

रथ्या चत्वर मार्ग	गलियां' चबूतरे सड़कें	अक्षत फल तोक्मैः लाजैः	अक्षत, फल भ्रुवांकुर, लाजा तथा
चन्दन अगुरु तोय	चन्दन तथा अगुरु मिले जलसे	अर्चिभिः	दीपकोंसे
आर्द्र वत्	सींची गयी थीं,	अर्चितं	सजायी गयी थीं ॥२॥

सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैः परिष्कृतम् ।
तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥३॥

सवृन्दैः कदली स्तम्भैः पूगपोतैः परिष्कृतं तरु पल्लव मालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥३॥

सवृन्दैः कदली स्तम्भैः	धार सहित केलोंके खम्भोंसे,	तरु पल्लव मालाभिः	वृक्षोंके पत्तों और मालाओंसे
पूगपोतैः	सुपारीके छोटे पौधोंसे,	सर्वतः समलंकृतं	चारों ओर खूब सजायी थीं ॥३॥
परिष्कृतं	सँवारकर		

प्रजास्तं दीपबलिभिः सम्भृताशेषमङ्गलैः ।
अभीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुण्डलमण्डिताः ॥४॥

प्रजाः तं दीपबलिभिः सम्भृत अशेष मङ्गलैः अभीयुः मृष्ट कन्या च मृष्ट कुण्डल मण्डिताः ॥४॥

अशेष मङ्गलैः सम्भृत	सम्पूर्ण मंगल द्रव्य लिए हुए	मृष्ट कन्या	सुन्दरी कन्याओं द्वारा
मृष्ट कुण्डल मण्डिताः	मनोहर कुण्डलोंसे भूषित	दीपबलिभिः	आरती लिए
		प्रजाः तं	प्रजा उनकी
		अभीयुः	अगवानी करने आयी ॥४॥

शङ्खदुन्दुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजाम् ।
विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्मयः ॥५॥

शङ्ख दुन्दुभि घोषेण ब्रह्मघोषेण च ऋत्विजां विवेश भवनं वीरः स्तूयमानः गत स्मयः ॥५॥

शङ्ख दुन्दुभिघोषेण च ऋत्विजां ब्रह्मघोषेण	शंख दुन्दुभिके वाद्य तथा पुरोहितोंके वेदपाठके साथ	वीरः गतस्मयः स्तूयमानः भवनं विवेश	वीर निरभिमान (पृथु) ने (लोगोंकी) स्तुतिसे स्तुत होते भवनमें प्रविष्ट हुए ॥५॥

पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः ।
पौराञ्जानपदांस्तांस्तान् प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥६॥

पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः पौरान् जानपदान् तान्तान् प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥६॥

तत्र तत्र	स्थान-स्थानपर	पौरान् जानपदान्	पुरवासियों तथा देशवासियोंका
प्रियवरप्रदः	प्रिय अभीष्ट पदार्थ देनेवाले,	प्रीतः पूजयामास	प्रसन्न होकर सत्कार किया ॥६॥
महायशाः	महान् यशस्वी (पृथु) ने		
पूजितः	सत्कृत होकर		
तान् तान्	उन उन		

स एवमादीन्यनवद्यचेष्टितः
कर्माणि भूयांसि महान्महत्तमः ।
कुर्वन् शशासावनिमण्डलं यशः
स्फीतं निधायारुरुहे परं पदम् ॥७॥

स एवं आदीनि अनवद्य चेष्टितः कर्माणि भूयांसि महान् महत्तमः कुर्वन् शशास अवनि मण्डलं यशः स्फीतं निधाय आरुरुहे परं पदम् ॥७॥

एवं स महान् महत्तमः	इस प्रकार उन महान् पुरुषोंमें भी सर्वश्रेष्ठने	अनवद्य चेष्टितः भूयांसि कर्माणि	निर्दोष व्यवहार करते बहुत कर्मों

आदीनि	आदिको	स्फीतं यशः	निर्मल यशका
कुर्वन्	करते हुए	निधाय	विस्तार करके,
अवनि मण्डलं	भूमंडलका	परं पदं आरुरुहे	परं पदपर पहुँच गये ॥७॥
शशास	शासन किया,		

सूतरुवाच-

तदादिराजस्य यशो विजृम्भितं
गुणैरशेषैर्गुणवत्सभाजितम् ।
क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते
कौषारविं प्राह गृणन्तमर्चयन् ॥८॥

तत् आदिराजस्य यशः विजृम्भितं गुणैः अशेषैः गुणवत् सभाजितं क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते कौषारविं प्राह गृणन्तं अर्चयन् ॥८॥

सदस्पते	सभापति (शौनक) जी !	विजृम्भितं यशः	सम्पूर्ण गुणोंसे पूर्ण सुयश
तत् आदिराजस्य	उन आदिराज (पृथु) का	कौषारविं गृणन्तं	मैत्रेय द्वारा वर्णित (सुनकर)
गुणवत् सभाजितं	गुणवानों द्वारा प्रशंसित	महाभागवतः क्षत्ता अर्चयन् प्राह	महाभागवत विदुरने (उनका) अभिनन्दन करते कहा ॥७॥
अशेषैः गुणैः			

विदुर उवाच-

सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रैर्लब्धाशेषसुरार्हणः ।
बिभ्रत् स वैष्णवं तेजो बाह्वोर्याभ्यां दुदोह गाम् ॥९॥

सः अभिषिक्तः पृथुः विप्रैः लब्धा अशेष सुर अर्हणः बिभ्रत् स वैष्णवं तेजः बाह्वोः याभ्यां दुदोह गाम् ॥९॥

सः पृथुः विप्रैः	उन पृथुका	स बाह्वोः वैष्णवं तेजः बिभ्रत् याभ्यां गां दुदोह	उन्होंने भुजाओंमें वैष्णव तेज धारण किया, जिनसे पृथ्वीका दोहन किया ॥९॥
अभिषिक्तः अशेष सुर अर्हणः लब्धा	ब्राह्मणों द्वारा अभिषेक हुआ, सभी देवताओंसे उपहार प्राप्त करके,		

को न्वस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिज्ञो
यद्विक्रमोच्छिष्टमशेषभूपाः ।
लोकाः सपाला उपजीवन्ति काम-
मद्यापि तन्मे वद कर्म शुद्धम् ॥१०॥

कः नु अस्य कीर्तिं न शृणोति अभिज्ञः यत् विक्रम उच्छिष्टं अशेष भूपाः लोकाः सपालाः उपजीवन्ति कामं अद्य अपि तत् मे वद कर्म शुद्धम् ॥१०॥

यत् विक्रम उच्छिष्टं अशेष भूपाः सपालाः लोकाः अद्य अपि	जिनके पराक्रमके उच्छिष्ट (भोगों) से सब राजा लोग तथा लोकपालोंके साथ सब लोक आज भी	कामं उपजीवन्ति अस्य कीर्तिं कः नु अभिज्ञः न शृणोति तत् मे शुद्धं कर्म वद	इच्छानुसार जीवन-निर्वाह करते हैं, उनका सुयश कौन समझदार नहीं सुनना चाहेगा, अतः मुझसे (उनके) पवित्र कर्म कहिए ॥१०॥

मैत्रेय उवाच–

गङ्गायमुनयोर्नद्योरन्तराक्षेत्रमावसन् ।
आरब्धानेव बुभुजे भोगान् पुण्यजिहासया ॥११॥

गङ्गा यमुनयोः नद्योः अन्तराक्षेत्रं आवसन् आरब्धान् एव बुभुजे भोगान् पुण्य जिहासया ॥११॥

गङ्गा यमुनयोः नद्योः	गंगा-यमुना नदियोंके	**पुण्य जिहासया**	पुण्य क्षय करनेकी इच्छासे
अन्तराक्षेत्रं आवसन्	मध्य क्षेत्रमें रहते हुए,	**आरब्धान् एव भोगान् बुभुजे**	प्रारब्ध प्राप्त ही भोगोंको भोगते थे ॥११॥

सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् ।
अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ॥१२॥

सर्वत्र अस्खलित आदेशः सप्तद्वीप एक दण्डधृक् अन्यत्र ब्राह्मण-कुलात् अन्यत्र अच्युत गोत्रतः ॥१२॥

ब्राह्मणकुलात् अन्यत्र	ब्राह्मण-कुलोंको छोड़कर	**सप्तद्वीप**	सप्तद्वीप (पूरे ब्रह्माण्ड) के
अच्युत गोत्रतः अन्यत्र	तथा अच्युत-गोत्र (भगवद्भक्तों) को छाड़कर	**एक दण्डधृक्**	एकमात्र शासक (पृथुका)
		सर्वत्र अस्खलित आदेशः	सब कहीं निर्बाध शासन था ॥१२॥

एकदाऽऽसोन्महासत्त्रदीक्षा तत्र दिवौकसाम् ।
समाजो ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम ॥१३॥

एकदा आसीत् महासत्त्र दीक्षा तत्र दिवौकसां समाजः ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम ॥१३॥

सत्तम	सज्जन श्रेष्ठ विदुर !	**महासत्त्र दीक्षा**	महायज्ञकी दीक्षा ली,
एकदा तत्र	एकबार वहाँ (उन्होंने)	**दिवौकसां**	देवताओंका

ब्रह्मर्षीणां च	ब्रह्मर्षियोंका तथा	आसीत्	समाज एकत्र
राजर्षीणां च	राजर्षियोंका भी		था ॥ १३॥
समाजः			

तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथार्हतः ।
उत्थितः सदसो मध्ये तारणामुडुराडिव ॥१४॥

तस्मिन् अर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथा अर्हतः उत्थितः सदसः मध्ये तारणां उडुराड इव ॥१४॥

तस्मिन् सर्वेषु	उस यज्ञमें सब	तारणां	
अर्हत्सु	पूजनीयोंका	उडुराड इव	तारागणोंमें
यथा अर्हतः	जो जिस सत्कार		चन्द्रमाके समान
	योग्य था	सदसः मध्ये	सभाके बीचमें
स्वर्चितेषु	उसका वैसा स्वयं	उत्थितः	उठकर खड़े हो
	सत्कार करके		गये ॥१४॥

प्रांशुः पीनायतभुजो गौरः कञ्जारुणेक्षणः ।
सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांसः सुद्विजस्मितः ॥१५॥

प्रांशुः पीन आयत भुजः गौरः कञ्ज अरुण ईक्षणः सुनासः सुमुखः सौम्यः पीन अंसः सुद्विजः स्मितः ॥१५॥

प्रांशुः	लम्बा शरीर,	सुनासः	सुन्दर नासिका,
पीन आयत		सौम्यः सुमुखः	शान्त सुन्दर मुख,
भुजः	मोटी-लम्बी भुजाएँ,	पीन अंसः	मोटे कन्धे,
गौरः	गौर वर्ण,	स्मितः सुद्विजः	मुस्करानेपर सुन्दर
कञ्ज अरुण			दांतवाले ॥१५॥
ईक्षणः	लाल कमलके समान		
	नेत्र,		

व्यूढवक्षा बृहच्छ्रोणिर्वलिवल्गुदलोदरः ।
आवर्तनाभिरोजस्वी काञ्चनोरुरुदग्रपात् ॥१६॥

व्यूढवक्षा बृहत् श्रोणिः वलिवल्गुदल उदरः आवर्त नाभिः ओजस्वी काञ्चनः उरुः उदग्रपात् ॥१६॥

व्यूढवक्षा	चौड़ी छातीवाले,
बृहत् श्रोणिः	स्थूल नितम्ब,
वलिवल्गु-	त्रिवलीयुक्त पतला
दल उदरः	पत्ते के समान (सुडौल) पेट,
आवर्त नाभिः	भँवरके समान नाभि,
ओजस्वी काञ्चनः उरुः	तेजयुक्त स्वर्णके समान जांघें,
उदग्रपात्	उभरे हुए पैरोंके पंजे ॥१६॥

सूक्ष्मवक्रासितस्निग्धमूर्धजः कम्बुकन्धरः ।
महाधने दुकूलाग्र्ये परिधायोपवीय च ॥१७॥

सूक्ष्म वक्र असित स्निग्ध मूर्धजः कम्बुकन्धरः महाधने दुकूल अग्र्ये परिधाय उपवीय च ॥१७॥

सूक्ष्म वक्र	पतले, घुंघराले,
असित स्निग्ध	काले-चिकने
मूर्धजः	केश,
कम्बुकन्धरः	शंखके समान गला,
महाधने	महामूल्यवान
अग्र्ये परिधाय च दुकूल उपवीय	धोती पहिने तथा दुपट्टा ओढ़े थे ॥१७॥

व्यञ्जिताशेषगात्रश्रीर्नियमे न्यस्तभूषणः ।
कृष्णाजिनधरः श्रीमान् कुशपाणिः कृतोचितः ॥१८॥

व्यञ्जित अशेष गात्र श्रीः नियमे न्यस्त भूषणः कृष्ण अजिनधरः श्रीमान् कुशपाणिः कृत उचितः ॥१८॥

अशेष गात्र श्रीः व्यञ्जित	पूरे शरीरसे शोभा प्रगट हो रही थी,
नियमे न्यस्त भूषणः	यज्ञ दीक्षित होनेसे आभूषण छोड़ रखे थे,

कृष्ण अजिन धरः	कृष्णमृग-चर्म पहिने	कृत उचितः	(नित्य कर्मादि) उचित कर्म कर चुके थे ॥१८॥
कुशपाणिः	हाथमें कुश लिए		

शिशिरस्निग्धताराक्षः समैक्षत समन्ततः ।
ऊचिवानिदमुर्वीशः सदः संहर्षयन्निव ॥१९॥

शिशिर स्निग्धतार अक्षः सम ऐक्षत समन्ततः ऊचिवान् इदं उर्वीशः सदः संहर्षयन् इव ॥१९॥

उर्वीशः	राजा पृथुने	सदः संहर्षयन् इव	सभाको अत्यन्त हर्षित करते हुएसे
समन्ततः	चारों ओर		
शिशिर स्निग्ध-तार अक्षः	शीतल, स्नेह भरे, रतनारे नेत्रोंसे	इदं ऊचिवान्	यह बोले ॥१९॥
सम ऐक्षत	भलीप्रकार देखा (फिर)		

चारु चित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टं गूढमविक्लवम् ।
सर्वेषामुपकारार्थं तदा अनुवदन्निव ॥२०॥

चारु चित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टं गूढं अविक्लवं सर्वेषां उपकार अर्थं तदा अनुवदन् इव ॥२०॥

चारु चित्रपदं	सुन्दर विचित्र पदोंसे युक्त	सर्वेषां उपकार अर्थं	सबके उपकारके लिए
श्लक्ष्णं मृष्टं	स्पष्ट, मधुर,	तदा इव	उस समय (ऐसे लगता था) जैसे
गूढं अविक्लवं	गम्भीर, अकुलाहट रहित,	अनुवदत्	सबकी जानी बात दुहराते हों ॥२०॥

विशेष—

यहाँ महाराज पृथुके भाषणकी विशेषता बतलाकर उत्तम वक्ताके उत्तम भाषणका लक्षण भी बतलाया है। १—सुन्दर और विचित्र (अलंकारयुक्त) वाक्य २—स्पष्ट घुमा फिराकर बात नहीं कही गयी) ३—मधुर (व्यंग या कठोरता नहीं) ४—गम्भीर बात (हल्कापन नहीं) ५—बोलनेमें अकुलाहट नहीं ६—सबके भलेकी बात (केवल अपने मतका प्रतिपादन नहीं) ७—यह सबसे बड़ी और दुर्लभ विशेषता है कि श्रोताओंको उस समय लगे कि यह उनके मनकी 'मुँहकी बात' कही गयी है।

*पृथुरुवाच**—

सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः।
सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीषितम् ॥२१॥

सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवः य इह आगताः सत्सु जिज्ञासुभिः धर्मं आवेद्यं स्वमनीषितम् ॥२१॥

सभ्याः	सज्जनो !	**स्वमनीषितं**	धर्मके सम्बन्धमें अपना निश्चय
वः भद्रं	आपका कल्याण हो	**सत्सु आवेद्यं**	सज्जनोंको बतलाना चाहिए। (जिससे भूल सुधर सके) ॥२१॥
यः साधवः	जो सत्पुरुष		
इह आगताः	यहाँ पधारे हैं,		
शृणुत	सुनें !		
जिज्ञासुभिः	जिज्ञासुओंको		
धर्मं			

अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः।
रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक्। २२॥

अहं दण्डधरः राजा प्रजानां इह योजितः रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक् ॥२२॥

---

* यहाँ अन्य प्रतियोंमें 'राजोवाच' है; किन्तु ग्रन्थमें अनेक राजा बोलेंगे अतः नाम देना ठीक है।

अहं इह	मैं इस (पृथ्वी) पर	सेतुषु स्थापिता	मर्यादाओंमें रखनेवाला
प्रजानां	प्रजाका	दण्डधरः राजा	दण्डधारी राजा
रक्षिता	रक्षक	योजितः	बनाया गया हूँ ॥२२॥
वृत्तिदः	आजिविका देनेवाला		
पृथक् स्वेषु	अलग-अलग अपनी		

तस्य मे तदनुष्ठानाद्यनाहुर्ब्रह्मवादिनः ।
लोका स्युः कामसन्दोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ॥२३॥

तस्य मे तदनुष्ठान् आदि यान् आहुः ब्रह्मवादिनः लोका स्युः काम सन्दोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ॥२३॥

तदनुष्ठान् आदि यान्	इन (कर्तव्यों) के पालन आदिसे	काम सन्दोहा	सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाले
यस्य दिष्टदृक्	जिसपर कर्मोंके साक्षी (भगवान्)	यान लोकान्	जो लोक (मिलते)
तुष्यति	सन्तुष्ट होते हैं (उसे)	आहुः	बतलाते हैं
ब्रह्मवादिनः	वेदवादी लोग	तस्य मे स्युः	वे मुझे प्राप्त होने चाहिए ॥२३॥

य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् ।
प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥२४॥

यः उद्धरेत् करं राजा प्रजा धर्मेषु अशिक्षयन् प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥२४॥

यः राजा	जो राजा	सः प्रजानां	वह प्रजाके
प्रजा धर्मेषु	प्रजाको धर्मकी	शमलं भुङ्क्ते	पाप भोगता है,
अशिक्षयन्	शिक्षा दिये बिना	च स्वम् भगं	तथा अपना ऐश्वर्य
करं उद्धरेत्	कर वसूल करता है,	जहाति	खो देता है ॥२४॥

तत् प्रजा भर्तृपिण्डार्थं स्वार्थमेवानसूयवः ।
कुरुताधोक्षजधियस्तर्हि मेऽनुग्रहः कृतः ॥२५॥

तत् प्रजा भर्तृपिण्ड अर्थं स्वार्थं एव अनसूयवः कुरुत अधोक्षज धियः तर्हि मे अनुग्रहः कृतः ॥२५॥

तत् प्रजा	अतः प्रजाजनो !	अधोक्षज धियः	सर्वत्र भगवद्बुद्धि रखकर
भर्तृपिण्ड अर्थं	अपने इस राजाकी पारलौकिक भलाईके लिए	कुरुत	(अपना कर्तव्य) पालन करें,
स्वार्थं एव	अपने ही भलेके लिए	तर्हि मे	ऐसा करनेपर (आप) मुझपर
अनसूयवः	दोष-दृष्टि त्यागकर	अनुग्रह कृतः	अनुग्रह करेंगे ॥२५॥

यूयं तदनुमोदध्वं पितृदेवर्षयोऽमलाः ।
कर्तुः शास्तुरनुज्ञातुस्तुल्यं यत्प्रेत्य तत्फलम् ॥२६॥

यूयं तत् अनुमोदध्वं पितृदेव ऋषयः अमलाः कर्तुः शास्तुः अनुज्ञातुः तुल्यं यत् प्रेत्य तत् फलम् ॥२६॥

अमलाः	शुद्ध हृदय	कर्तुः यत् फलं	कर्मके कर्ताको जो फल मिलता है—
पितृदेव ऋषयः	पितर, देवता, ऋषियों,	तत् तुल्यं शास्तुः अनुज्ञातुः	वही बराबर (फल) आज्ञा देनेवाले तथा अनुमोदन करने-वालेको भी (मिलता है) ॥२६॥
यूयं तत् अनुमोदध्वं	आप सब इसका अनुमोदन करें		
प्रेत्य	क्योंकि मरनेपर		

अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषाञ्चिदर्हसत्तमाः ।
इहामुत्र च लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद्भुवः ॥२७॥

मनोरुत्तानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपतेः ।
प्रियव्रतस्य राजर्षेरङ्गस्यास्मत्पितुः पितुः ॥२८॥

ईदृशानामथान्येषामजस्य च भवस्य च ।
प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्यमस्ति गदाभृता ॥२९॥

दौहित्रादीनृते मृत्योः शोच्यान् धर्मविमोहितान् ।
वर्गस्वर्गापवर्गाणां प्रायेणैकात्म्यहेतुना ॥३०॥

अस्ति यज्ञपतिः नाम केषाञ्चित् अर्हसत्तमाः इह अमुत्र च लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नावत्यः क्वचित् भुवः ॥२७॥

मनोः उत्तानपादस्य ध्रुवस्य अपि महीपतेः प्रियव्रतस्य राजर्षेः अङ्गस्य अस्मत् पितुः पितुः ॥२८॥

ईदृशानां अथ अन्येषां अजस्य च भवस्य च प्रह्लादस्य बलेः च अपि कृत्यं अस्ति गदा भृता ॥२९॥

दौहित्र आदीन् ऋतेः मृत्योः शोच्यान् धर्म विमोहितान् वर्ग स्वर्ग अपवर्गाणां प्रायेण ऐकात्म्य हेतुना ॥३०॥

मृत्योः दौहित्र आदीन्	मृत्युके दौहित्र (वेन) आदि
धर्म विमोहितान्	धर्मके सम्बन्धमें अत्यन्त मूढ़
ऋतेः	लोगोंको छोड़कर
केषाञ्चित्	कुछ
अर्हसत्तमाः	पूजनीय महापुरुषोंके मतसे
वर्ग स्वर्ग	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) स्वर्ग तथा
अपवर्गाणां	मोक्षोंकी
प्रायेण ऐकात्म्य हेतुना	प्रायः एकात्मता होनेसे
यज्ञपतिः नाम	इनके कारण (दाता) यज्ञपति नामके भगवान
अस्ति	हैं, (दूसरे तेजस्वी कोई नहीं हो सकते, क्योंकि)–
इह अमुत्र च	इस लोक तथा परलोकमें भी,

भुवः	पृथ्वीपर भी
ज्योत्स्नावत्यः	बड़े तेजोमय (शरीर)
लक्ष्यन्ते	देखे जाते हैं (वे अनेक हैं।)
मनोः उत्तानपादस्य महीपतेः	मनु, उत्तानपाद,
ध्रुवस्य अपि	महाराज ध्रुवका भी,
राजर्षेः प्रियव्रतस्य	राजर्षि प्रियव्रतका,
अस्मत् पितुः पितुः	मेरे पिताके पिता (पितामह)
अङ्गस्य अथ	अंगका तथा
ईदृशानां	ऐसे ही
अन्येषां	दूसरोंका भी
अजस्य च	ब्रह्माजीका तथा
भवस्य च	शंकरजीका एवं
प्रह्लादस्य	प्रह्लादका
बलेः च अपि	बलिका भी
गदा भृता	भगवान गदाधर द्वारा
कृत्यं अस्ति	काम (उपकार) हुआ है ॥२७-३०॥

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विना-
मशेषजन्मोपचितं मलं धियः ।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती
यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित् ॥३१॥

यत् पादसेवा अभिरुचिः तपस्विनां अशेष जन्म उपचितं मलं धियः सद्यः क्षिणोति अनु अहं एधती सती यथा पद अङ्गुष्ठ विनिःसृता सरित् ॥३१॥

यत् पादसेवा	जिनके चरणोंकी सेवाकी
अभिरुचिः	अभिलाषा,
अनु अहं एधती	प्रतिदिन बढ़ती हुई
पद अङ्गुष्ठ विनिःसृता	(उन्हींके) चरणांगुष्ठ-से निकली
सरित् यथा	सरिता (गंगाजी) के समान
तपस्विनां	संसार ताप संतप्त प्राणियोंके
अशेष जन्म उपचितं	समस्त जन्मोंके
धियः मलं	एकत्र बुद्धिके मलको
सद्यः क्षिणोति	तत्काल नष्ट कर देती है ॥३१॥

विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमा-
नसङ्गविज्ञानविशेषवीर्यवान् ।
यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुनः
न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥३२॥

विनिर्धुत अशेष मनोमलः पुमान् असङ्ग विज्ञान विशेष वीर्यवान् यत् अङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुनः न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥३२॥

पुमान्	पुरुष	**यत्**	
अशेष मनोमलः	मनके सम्पूर्ण दोषोंके	**अङ्घ्रिमूले**	जिनके चरण-कमलोंमें
विनिर्धुत	नष्ट हो जानेपर	**कृतकेतनः**	निवास बना लेता है,
असङ्ग	असंगता (वैराग्य) और	**पुनः क्लेशवहां संसृतिं**	फिर क्लेशदायी आवागमनमें
विज्ञान विशेष	विशेष विज्ञान (तत्त्वज्ञान) का	**न प्रपद्यते**	नहीं पड़ता ॥३२॥
वीर्यवान्	बल प्राप्त करके		

तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभि-
र्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः ।
अमायिनः कामदुघाङ्घ्रिपङ्कजं
यथाधिकारावसितार्थसिद्धयः ॥३३॥

तं एव यूयं भजत आत्म वृत्तिभिः मनः वचः कायगुणैः स्वकर्मभिः अमायिनः कामदुघ अङ्घ्रि पङ्कजं यथा अधिकार अवसित अर्थ सिद्धयः ॥३३॥

कामदुघ	अभीष्ट फलदाता	**आत्म वृत्तिभिः**	अपनी आजीविकाके उपयुक्त
तं एव	उनके ही	**कायगुणैः**	अपने शारीरिक गुणोंसे
अङ्घ्रि पङ्कजं	चरण-कमलोंका		
यूयं	आप सब		

अमायिनः	निश्छल भावसे	यथा अधिकार	अपने अधिकारके
मनः वचः	मन, वाणी तथा		अनुसार
स्वकर्मभिः	अपने कर्मोंसे	अर्थ सिद्धयः	(इससे) प्रयोजनकी
भजत	भजन करें,		सिद्धि
		अवसित	अवश्य होगी ॥३३॥

असाविहानेकगुणोऽगुणोऽध्वरः
पृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः ।
सम्पद्यतेऽर्थाशयलिङ्गनामभि-
र्विशुद्धविज्ञानघनः स्वरूपतः ॥३४॥

असाः इह अनेक गुणः अगुणः अध्वरः पृथक् विध द्रव्य गुण क्रिया उक्तिभिः सम्पद्यते अर्थ आशय लिङ्ग नामभिः विशुद्ध विज्ञान घनः स्वरूपतः ॥३४॥

इह असा	यहाँ होनेवाला यह	आशय	चित्तके उत्साहसे
अनेक गुणः	अनेकों गुणोंवाला	नामभिः	मन्त्रों द्वारा
अध्वरः	यज्ञ जो	सम्पद्यते	होता है (यह)
पृथक् विध	विभिन्न विधियोंसे,	स्वरूपतः	स्वरूपसे
द्रव्य, गुण	पदार्थों, गुणों (क्रिया	विज्ञान घनः	विज्ञान घन
	नैयुष्म)	अगुणः	निर्गुण भगवान ही
उक्तिभिः	वचनों से,		हैं ॥३४॥
अर्थ	धन,		

प्रधानकालाशयधर्मसंग्रहे
शरीर एष प्रतिपद्य चेतनाम् ।
क्रियाफलत्वेन विभुर्विभाव्यते
यथानलो दारुषु तद्गुणात्मकः ॥३५॥

प्रधान काल आशय धर्म संग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनां क्रिया-फलत्वेन विभुः विभाव्यते यथा अनलः दारुषु तद्गुण आत्मकः ॥३५॥

यथा दारुषु	जैसे (विभिन्न) लकड़ियोंमें
तद्गुण आत्मकः	उनके गुण (लम्बाई-मोटाई आदि) के समान
अनलः	अग्नि (प्रतीत होता है, वैसे ही)
प्रधान काल	प्रकृति, काल
आशय	अन्तःकरणकी वासना,
धर्म संग्रहे	धर्माधर्मके संस्कार संग्रहसे
चेतनां	
प्रतिपद्य	चिदाभासको ग्रहण करके
एष शरीर	इस शरीरमें
क्रियाफलत्वेन	कर्मोंके फलानुसार
विभुः	
विभाव्यते	व्यापक होनेपर भी आत्माकी (जीव रूपसे) प्रतीति होती है ॥३५॥

अहो ममामी वितरन्त्यनुग्रहं
हरिं गुरुं यज्ञभुजामधीश्वरम् ।
स्वधर्मयोगेन यजन्ति मामका
निरन्तरं क्षोणितले दृढव्रताः ॥३६॥

अहो मम अमी वितरन्ति अनुग्रहं हरिं गुरुं यज्ञ भुजां अधीश्वरं स्वधर्म योगेन यजन्ति मामका निरन्तरं क्षोणितले दृढव्रताः ॥३६॥

अहो	अहो !
यज्ञ भुजां	
अधीश्वरं	यज्ञभोक्ता देवताओं-के अधीश्वर
गुरुं हरिं	जगद्गुरु श्रीहरिकी
स्वधर्म योगेन	अपने धर्म-पालन द्वारा
दृढव्रतः	दृढ़निष्ठ होकर
निरन्तरं	निरन्तर
क्षोणितले	पृथ्वीपर
अमी मामका	जो ये मेरे प्रजाजन
यजन्ति	पूजन करते हैं,
मम अनुग्रहं	
वितरन्ति	(वे) मुझपर अनुग्रह करते हैं ॥३६॥

मा जातु तेजः प्रभवेन्महर्द्धिभि-
स्तितिक्षया तपसा विद्यया च ।

देदीप्यमानेऽजितदेवतानां
कुले स्वयं राजकुलाद् द्विजानाम् ॥३७॥

मा जातु तेजः प्रभवेत् महर्द्धिभिः तितिक्षया तपसा विद्यया च देदीप्यमाने अजित देवतानां कुले स्वयं राजकुलात् द्विजानाम् ॥३७॥

तितिक्षया तपसा च	सहनशीलता	**द्विजानाम् कुले**	ब्राह्मणोंके परिवार-पर
विद्यया	तपस्या तथा विद्यासे	**महर्द्धिभिः**	ऐश्वर्य आदि समृद्धियोंसे
देदीप्यमाने	परमोज्वल हुए	**स्वयं तेजः जातु**	स्वयं तेजस्वी होनेके कारण
अजित देवतानां	भगवानको ही आराध्य माननेवाले	**मा प्रभवेत्**	अपना प्रभुत्व न दिखाते ॥३७॥

ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो
नित्यं हरिर्यच्चरणाभिवन्दनात् ।
अवाप लक्ष्मीमनपायिनीं यशो
जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥३८॥

ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनः नित्यं हरिः यत् चरण अभिवन्दनात् अवाप लक्ष्मीं अनपायिनीं यशः जगत् पवित्रं च महत्तम अग्रणीः ॥३८॥

महत्तम अग्रणीः	(ब्रह्मादि) महापुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ		करनेसे
ब्रह्मण्यदेवः	ब्राह्मणोंको पूज्य माननेवाले	**अनपायिनीं**	कभी पृथक न होनेवाली
पुरातनः पुरुषः	पुराण-पुरुष	**लक्ष्मीं च**	लक्ष्मीजीको तथा
हरिः नित्यं	श्रीहरिने नित्य	**जगत् पवित्रं**	संसारको पवित्र करनेवाला
यत् चरण		**यशं अवाप**	सुयश प्राप्त किया ॥३८॥
अभिवन्दनात्	जिनके चरण वन्दन		

यत्सेवयाशेषगुहाशयः स्वराड्
विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ।
तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः
सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥३९॥

यत् सेवया अशेष गुहाशयः स्वराट् विप्रप्रियः तुष्यति कामं ईश्वरः तत् एव तत् धर्मपरैः विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥३९॥

यत् सेवया	जिनकी सेवासे	तत् एव	
विप्रप्रियः	ब्राह्मणोंके प्रिय	विनीतैः	उनके समान ही विनम्र भावसे
गुहाशयः			
स्वराट्	सर्वान्तर्यामी, स्वयं प्रकाश	सर्वात्मना	सम्पूर्ण हृदयसे
		ब्रह्मकुलं	ब्राह्मणोंकी
ईश्वरः	ईश्वर	निषेव्यताम्	पूरी सेवा करें ॥३९॥
कामं तुष्यति	पूर्ण सन्तुष्ट होते हैं,		
तत् धर्मपरैः	उन (भगवान) के धर्म परायण, (आप सब)		

पुमाँल्लभेतानतिवेलमात्मनः
प्रसीदतोऽत्यन्तशमं स्वतः स्वयम् ।
यन्नित्यसम्बन्धनिषेवया ततः
परं किमत्रास्ति मुखं हविर्भुजाम् ॥४०॥

पुमान् लभेत अनति वेलं आत्मनः प्रसीदतिः अत्यन्त शमं स्वतः स्वयं यत् नित्य सम्बन्ध निषेवया ततः परं किं अत्र अस्ति मुखं हविर्भुजाम् ॥४०॥

यत् निषेवया	जिनकी सेवाका	आत्मनः	
नित्य सम्बन्ध	सदा सम्बन्ध होनेसे	प्रसीदतः	चित्त निर्मल हो जानेसे
पुमान्			
अनतिवेलं	पुरुष शीघ्र ही	स्वतः स्वयं	अपने आप

अत्यन्त शमं	आत्मन्तिक शान्ति (मोक्ष)
लभेत	पा लेता है
अत्र	इस लोकमें
ततः परं	उन (ब्राह्मणोंसे) भिन्न
हवि भुंजां	देवताओंका
किं मुखं अस्ति	क्या मुख हो सकता है ॥४०॥

अश्नात्यनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः
श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः ।
न वै तथा चेतनया बहिष्कृते
हुताशने पारमहंस्यपर्यगुः ॥४१॥

अश्नाति अनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुतं यत् मुख इज्यनामभिः न वै तथा चेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्य पर्यगुः ॥४१॥

पारमहंस्य	परमहंसोंके
पर्यगुः	पीछे चलनेवाले
अनन्तः	भगवान अनन्त
तत्त्वकोविदैः	तत्त्व ज्ञानियों द्वारा
इज्यनामभिः	यज्ञीय देवताओं (इन्द्रादि) के नामसे
यत् मुख	जिन (ब्राह्मणों) के मुखमें
श्रद्धाहुतं	श्रद्धापूर्वक हवन करनेपर
खलु अश्नाति	निश्चय खाते हैं
तथा चेतनया	
बहिष्कृते	वैसे चेतनाहीन
हुताशने	अग्निमें (हवन करनेपर)
न वै	नहीं ही (खाते) ॥४१॥

यद्ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं
श्रद्धातपोमङ्गलमौनसंयमैः ।
समाधिना बिभ्रति हार्थदृष्टये
यत्रेदमादर्श इवावभासते ॥४२॥

यत् ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं श्रद्धा तपः मङ्गल मौन संयमैः समाधिना बिभ्रति ह अर्थ दृष्टये यत्र इदं आदर्श इव अवभासते ॥४२॥

यत्र इदं	जिसमें इस (विश्व-प्रपञ्च) का
आदर्श इव	दर्पणमें (मुख)के समान
अवभासते	ज्ञान होता है,
यत् नित्यं	
विरजं	उस नित्य, निर्मल,
सनातनं	शाश्वत
ब्रह्म	वेदको (जो)
ह अर्थ दृष्टये	निश्चित परमार्थ ज्ञान (तत्त्वज्ञान) के लिए
श्रद्धा तपः	श्रद्धा, तप
मङ्गल मौन	सदाचार, मौन,
संयमैः समाधिना	संयम तथा एकाग्रतासे
बिभ्रति	धारण करते हैं ॥४२॥

तेषामहं पादसरोजरेणु-
मार्या वहेयाधिकिरीटमायुः ।
यं नित्यदा बिभ्रत आशु पापं
नश्यत्यमुं सर्वगुणा भजन्ति ॥४३॥

तेषां अहं पाद सरोज रेणुं आर्या वहेय अधिकिरीटं आयुः यं नित्यदा बिभ्रत आशु पापं नश्यति अमुं सर्वगुणा भजन्ति ॥४३॥

अहं तेषां	मैं उन (ब्राह्मणों) की
आर्या पाद सरोज रेणुं	पूज्या चरण-कमलों-की रजको
आयुः	जीवन पर्यन्त
अधिकिरीटं वहेय	(अपने) मुकुटपर धारण करूँ
यं नित्यदा बिभ्रत	जिसे सदा धारण करनेसे
पापं आशु नश्यति	पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।
सर्वगुणा भजन्ति	(और) सब गुण आ जाते हैं ॥४३॥

गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं
वृद्धाश्रयं संवृणते नु सम्पदः ।

प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च
जनार्दनः सानुचरश्च महाम् ॥४४॥

गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणते नु सम्पदः प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनः सानुचरः च महाम् ॥४४॥

गुणायनं	गुणवान्,	ब्रह्मकुलं गवां च	ब्राह्मण-कुल तथा गायें
शीलधनं	शीलवान्,	च सानुचरः	
कृतज्ञं	कृतज्ञ	जनार्दनः	एवं भक्तोंके साथ भगवान जनार्दन
वृद्धाश्रयं	बड़ोंके आश्रयमें रहनेवालेको	महां प्रसीदतां	मुझपर प्रसन्न हों २४॥
नु सम्पदः	अवश्य सारी सम्पत्तियाँ		
वृणुते	वरण करती (स्वयं प्राप्त होती) हैं,		

मैत्रेय उवाच-

इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातयः ।
तुष्टुवुर्हृष्टमनसः साधुवादेन साधवः ॥४५॥

इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेव द्विजातयः तुष्टुवुः हृष्ट मनसः साधुवादेन साधवः ॥४५॥

नृपतिं	राजा (पृथु) के	साधवः	(तथा अन्य) सत्पुरुष
इति ब्रुवाणं	इस प्रकार कहनेपर	साधुवादेन	'साधु साधु' कहकर
हृष्ट मनसः	प्रसन्न-चित्त होकर	तुष्टुवुः	प्रशंसा करने लगे ॥४५॥
पितृदेव	पितर, देवता,		
द्विजातयः	ब्राह्मण,		

साध्वादयः ऊचुः-*

पुत्रेण जयते लोकानिति सत्यवती श्रुतिः ।
ब्रह्मदण्डहतः पापो यद्वेनोऽत्यतरत्तमः ॥४६॥

पुत्रेण जयते लोकान् इति सत्यवती श्रुतिः ब्रह्मदण्ड हतः पापः यत् वेनः अत्यतरत् तमः ॥४६॥

पुत्रेण	'पुत्रके द्वारा
लोकान् जयते	(पिता) पुण्य-लोक पा लेता है'
इति श्रुतिः	यह वेद-वाक्य
सत्यवती	सच है,
यत्	क्योंकि
ब्रह्मदण्ड हतः	ब्राह्मणोंके दण्डसे मारा गया
पापः वेनः	पापी वेन (पुत्र पृथुके कारण)
तमः अत्यतरत्	नरकसे पार हो गया ॥४६॥

हिरण्यकशिपुश्चापि भगवन्निन्दया तमः ।
विविक्षुरत्यगात्सूनोः प्रह्लादस्यानुभावतः ॥४७॥

हिरण्यकशिपुः च अपि भगवत् निन्दया तमः विविक्षुः अत्यगात् सूनोः प्रह्लादस्य अनुभावतः ॥४७॥

च हिरण्य-कशिपुः अपि	और हिरण्यकशिपु भी
भगवत् निन्दया	भगवानकी निन्दा करनेसे
तमः विविक्षुः	नरकमें जाने ही वाला था;
सूनोः प्रह्लादस्य	(किन्तु) पुत्र प्रह्लादके
अनुभावतः	प्रभावसे
अत्यगात्	(नरकको) पारकर गया ॥४७॥

वीरवर्यपितः पृथ्व्याः समाः सञ्जीव शाश्वतीः ।
यस्येदृश्यच्युते भक्तिः सर्वलोकैकभर्तरि ॥४८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

वीरवर्य पितः पृथ्व्याः समाः सञ्जीव शाश्वतीः यस्य इदृशि अच्युते भक्तिः सर्वलोक एक भर्तरि ॥४८॥

वीरवर्य	वीर श्रेष्ठ !	यस्य	जिसकी
पृथ्व्या पितः	(आप तो) पृथ्वीके पिता हैं,	सर्वलोक एक भर्तरि	सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र स्वामी
शाश्वतीः समाः	अनन्त वर्षों तक	अच्युते	भगवान अच्युतमें
सञ्जीव	जीवित रहो,	इदृशि भक्तिः	ऐसी भक्ति है ॥४८॥

अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते
त्वयैव नाथेन मुकुन्दनाथाः ।
य उत्तमश्लोकतमस्य विष्णो-
र्ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ॥४९॥

अहो वयं हि अद्य पवित्र कीर्तेः त्वयि एव नाथेन मुकुन्दनाथाः यः उत्तम श्लोक तमस्य विष्णोः ब्रह्मण्य देवस्य कथां व्यनक्ति ॥४९॥

हि यः	क्योंकि जो	अहो अद्य	अहो ! आज
उत्तय श्लोक तमस्य	पुण्यश्लोक शिरोमणि	पवित्र कीर्तेः	पवित्र कीर्ति
ब्रह्मण्य देवस्य	ब्रह्मण्यदेव	त्वयि एव नाथेन	आपके ही स्वामी होनेसे
विष्णोः	भगवान विष्णुकी	वयं मुकुन्दनाथाः	हमारे स्वामी भगवान मुकुन्द हो गये ॥४९॥
कथां व्यनक्ति	कथाका प्रचार करते हैं		

नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीव्यानुशासनम् ।
प्रजानुरागो महतां प्रकृतिः करुणात्मनाम् ॥५०॥

न अत्यद्भुतं इदं नाथ तव आजीव्य अनुशासनं प्रजा अनुरागः महतां प्रकृतिः करुणात्मनां ॥५०॥

नाथ	स्वामी !
तव इदं	आपका यह
आजीव्य	
अनुशासनं	अपने अनुजीवियोंको आदेश देना
अत्यद्भुतं न	बहुत अद्भुत नहीं है,
करुणात्मनां	(क्योंकि) दयालु-चित्त
महतां	महापुरुषोंका
प्रजा अनुरागः	प्रजासे प्रेम करना
प्रकृतिः	स्वभाव ही होता है ॥५०॥

अद्य नस्तमसः पारस्त्वयोपासादितः प्रभो ।
भ्राम्यतां नष्टदृष्टीनां कर्मभिर्दैवसंज्ञितैः ॥५१॥

अद्य नः तमसः पारः त्वया उपासादितः प्रभो भ्राम्यतां नष्ट दृष्टीनां कर्मभिः दैवसंज्ञितैः ॥५१॥

दैवसंज्ञितैः	प्रारब्ध कहे जानेवाले
कर्मभिः	
भ्राम्यतां	कर्मके द्वारा भटकाये जाते
नष्ट दृष्टीनां	अन्धे (ज्ञानहीन) बने
नः अद्य	हम लोगोंको आज
प्रभो त्वया	प्रभो ! आपने
तमसः पारः	अज्ञानान्धकारसे पार
उपासादितः	पहुँचा दिया ॥५१॥

नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे ।
यो ब्रह्म क्षत्रमाविश्य बिभर्तीदं स्वतेजसा ॥५२॥

नमः विवृद्ध सत्त्वाय पुरुषाय महीयसे यः ब्रह्म क्षत्रं आविश्य बिभर्ति इदं स्वतेजसा ॥५२॥

यः ब्रह्म क्षत्रं	जो ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें
आविश्य	प्रवेश करके
स्वतेजसा	अपने तेजसे
इदं बिभर्ति	इस (विश्व) की रक्षा करते हैं
विवृद्ध सत्त्वाय	(उन) विशुद्ध सत्त्व-गुणमय
महीयसे पुरुषाय	महत्तम (उत्तम) पुरुष (आप) को
नमः	(हम) नमस्कार करते हैं ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्रमम् ।
तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥१॥

जनेषु प्रगृणत्सु एवं पृथुम् पृथुल विक्रमम् तत्र उपजग्मुः मुनयः चत्वारः सूर्य वर्चसः ॥१॥

जनेषु	(जब) प्रजाजन	सूर्य वर्चसः	सूर्यके समान तेजस्वी
पृथुल विक्रमम्	महान् पराक्रमी		
पृथुम्	(राजा) पृथुकी	चत्वारः	चार
एवम्	इस प्रकार	मुनयः	मुनिगण
प्रगृणत्सु	स्तुति कर रहे थे	उपजग्मुः	आये ॥१॥
तत्र	(उसी समय) वहाँ		

तांस्तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा ।
लोकानपापान् कुर्वत्या सानुगोऽचष्ट लक्षितान् ॥२॥

तान् तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नः अवतरतः अर्चिषा लोकान् अपापान् कुर्वत्या सानुगः अचष्ट लक्षितान् ॥२॥

सानुगः	सेवकों सहित	अर्चिषा	कान्तिसे ही
राजा तु	राजाने तो	लक्षितान्	पहिचाने गये
व्योम्नः	आकाशसे	तान्	उन
अवतरतः	उतरते हुए	सिद्धेश्वरान्	सिद्धोंके स्वामी चारों मुनियोंको)
लोकान्	सम्पूर्ण लोकोंको		
अपापान्	पाप रहित	अचष्ट	देखा ॥२॥
कुर्वत्या	करती हुई		

तद्दर्शनोद्गतान् प्राणान् प्रत्यादित्सुरिवोत्थितः ।
ससदस्यानुगो वैन्य इन्द्रियेशो गुणानिव ॥३॥

तद् दर्शन उद्गतान् प्राणान् प्रत्यादित्सुः इव उत्थितः स सदस्य अनुगः वैन्यः इन्द्रियेशः गुणान् इव ॥३॥

वैन्यः	राजा पृथु	गुणान्	विषयोंकी ओर (दौड़ता हो)
तद्	उन सनकादि चारों मुनियोंके	प्रत्यादित्सुः इव	मानो उन्हें रोकनेके लिए
दर्शन उद्गतान्	दर्शनोंसे उनकी ओर चल पड़े	स सदस्य अनुगः	अपने सदस्य और सेवकोंके साथ
प्राणान्	अपने प्राणोंको	उत्थितः	उठकर खड़े हो गये ॥३॥
इन्द्रियेशः	इन्द्रियोंका स्वामी (जीव) जैसे		

गौरवाद्यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रयानतकन्धरः ।
विधिवत्पूजयाञ्चक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ॥४॥

गौरवात् यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रय आनत कन्धरः विधिवत् पूजयाञ्चक्रे गृहीत अध्यर्हण आसनान् ॥४॥

गृहीत	ग्रहण किया है	कन्धरः	विनयसे गर्दन झुकाकर
अध्यर्हण	पूजाका अर्घ्य तथा	सभ्यः	शिष्टाग्रणी (राजाने)
आसनान्	आसन जिन्होंने ऐसे (मुनिजनोंके)	विधिवत्	विधिपूर्वक
गौरवात्	गौरवसे	पूजयाञ्चक्रे	(उनकी) पूजा की ॥४॥
यन्त्रितः	प्रभावित होकर		
प्रश्रय आनत			

तत्पादशौचसलिलैर्मार्जितालकबन्धनः ।
तत्र शीलवतां वृत्तमाचरन्मानयन्निव ॥५॥

तत् पाद, शौच, सलिलैः मार्जित अलकबन्धनः तत्र शीलवतां वृत्तं आचरत् मानयन इव ॥५॥

तत्	उनके	शीलवतां	शिष्टजनोचित
पादशौच-		वृत्तम्	आचारका
सलिलैः	चरणोदकसे	मानयन् इव	आदर तथा पालन
मार्जित अलक			करते हुए
बन्धनः	अपने सिरके	आचरत्	समुचित सत्कार
	बालोंको सींचकर		किया ॥५॥
तत्र	वहां		

हाटकासन आसीनान् स्वधिष्ण्येष्विव पावकान् ।
श्रद्धासंयमसंयुक्तः प्रीतः प्राह भवाग्रजान् ॥६॥

हाटक आसने आसीनान् स्वधिष्ण्येषु इव पावकान् श्रद्धा संयम संयुक्तः प्रीतः प्राह भव अग्रजान् ॥६॥

हाटक आसने	सोनेके सिंहासनपर	श्रद्धा संयम	
आसीनान्	बैठे हुए	संयुक्तः	श्रद्धा और संयमके
स्वधिष्ण्येषु	अपने-अपने		साथ
	स्थानोंपर (बैठे)	प्रीतः	प्रेमपूर्वक
पावकान् इव	अग्नियोंकी तरह	प्राह	(पृथु) बोले ॥६॥
भव अग्रजान्	शंकरजीके बड़े भाई		
	(उन मुनियोंसे)		

पृथुः उवाच-

अहो आचरितं किं मे मङ्गलं मङ्गलायनाः ।
यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः ॥७॥

अहो आचरितं किं मे मङ्गलं मङ्गल अयनाः यस्य वः दर्शनं हि आसीत् दुदर्शानां च योगिभिः ॥७॥

मङ्गल अयनाः	हे मङ्गल मूर्तियो !	दुदर्शानां	दुर्लभ दर्शन
योगिभिः च	योगियोंके लिए भी	वः	आपका

दर्शनं	दर्शन	किम् मङ्गलं	मैंने ऐसा क्या पुण्य-कर्म
यस्य मे	जिससे (स्वयं) मुझे		
अहो हि	आश्चर्य ही है	आचरितं	किया है ॥७॥

किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्र च ।
यस्य विप्राः प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुगः ॥८॥

किं तस्य दुर्लभतरं इह लोके परत्र च यस्य विप्राः प्रसीदन्ति शिवः विष्णुः च स अनुगः ॥८॥

यस्य	जिसपर	प्रसीदन्ति	प्रसन्न होते हैं
विप्राः	ब्राह्मण	तस्य	उसके लिए
च	तथा	इह लोके	इस लोकमें
स अनुगः	अनुचरों सहित	च परत्र	और परलोकमें
शिवः	शंकर और	किं	कौन-सी (वस्तु)
विष्णुः	विष्णु भगवान	दुर्लभतरं	बहुत दुर्लभ है ॥८॥

नैव लक्षयते लोको लोकान् पर्यटतोऽपि यान् ।
यथा सर्वदृशं सर्वं आत्मानं येऽस्य हेतवः ॥९॥

न एव लक्षयते लोकः लोकान् परि अटतः अपि यान् यथा सर्वदृशं सर्वे आत्मानं ये अस्य हेतवः ॥९॥

लोकान्	समस्त लोकोंमें	अस्य	इस दृश्य प्रपंचके
परि अटतः अपि	विचरण करते हुए भी	ये	जो
		सर्वे	सर्व (रूप)
यान्	जिन (आप) लोगोंको	हेतवः	कारण (महत् तत्व अहंकार आदि)
लोकः	(अनधिकारी) जन	सर्वदृशं	सर्वसाक्षी
न एव	नहीं	आत्मानं	आत्माको (नहीं देख पाते) ॥९॥
लक्षयते	देख पाते हैं		
यथा	जैसे		

अधना अपि ते धन्याः साधवो गृहमेधिनः ।
यद्गृहा ह्यर्हवर्याम्बुतृणभूमीश्वरावराः १०॥

अधना अपि ते धन्याः साधवः गृहमेधिनः यद् गृहा हि अर्हवर्य अम्बु तृण भूमि ईश्वर अवराः ॥१०॥

यद् गृहाः	जिनके घरोंमें	**ते**	वे
हि अर्हवर्य	(आप जैसे) पूज्य पुरुषोंमें श्रेष्ठके लिए	**अधना अपि**	निर्धन भी
		साधवः	सज्जन
अम्बु तृण भूमि	जल, आसन, पृथ्वी	**गृहमेधिनः**	गृहस्थ
ईश्वर अवराः	गृह स्वामी अथवा सेवक आदि किसी पदार्थको (स्वीकार करते) हैं	**धन्याः**	धन्य हैं ॥१०॥

व्यालालयद्रुमा वै तेऽप्यरिक्ताखिलसम्पदः ।
यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ॥११॥

व्याल आलय द्रुमा वै ते अपि अरिक्त अखिल सम्पदः यद् गृहाः तीर्थ पादीय पाद तीर्थ विवर्जिताः ॥११॥

यद् गृहाः	जिन घरोंमें कभी	**अरिक्त अखिल**	
तीर्थ पादीय	भगवद् भक्तोंके	**सम्पदः**	सब प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियोंसे भरपूर भी
पाद तीर्थ	परम पवित्र चरणोदकके	**वैः**	निश्चय ही
विवर्जिताः	छींटे नहीं पड़े	**द्रुमाः**	ऐसे वृक्षोंके समान (हैं) जिनमें—
ते	वे घर	**व्याल आलय**	सर्प रहते हैं ॥११॥

स्वागतं वो द्विजश्रेष्ठा यद्व्रतानि मुमुक्षवः ।
चरन्ति श्रद्धया धीरा बाला एव बृहन्ति च ॥१२॥

स्वागतं वः द्विज श्रेष्ठा यद् व्रतानि मुमुक्षवः चरन्ति श्रद्धया धीरा बालाः एव बृहन्ति च ॥१२॥

द्विज श्रेष्ठा	हे मुनीश्वरो	मुमुक्षवः	मुमुक्षु (मोक्ष चाहने वाले)
वः स्वागतं	आपका स्वागत है	यद् व्रतानि	जिनके (ब्रह्मचार्यादि) व्रतोंका
बालाः एव बृहन्ति च	बालक लगनेपर भी सबसे बड़े भी हैं (और)	श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक
धीरा	धैर्यशाली	चरन्ति	आचरण करते हैं ॥१२॥

कच्चिन्नः कुशलं नाथा इन्द्रियार्थार्थवेदिनाम् ।
व्यसनावाप एतस्मिन् पतितानां स्वकर्मभिः ॥१३॥

कच्चित् नः कुशलं नाथाः इन्द्रिया अर्थ अर्थ वेदिनां व्यसना आवापे एतस्मिन् पतितानाम् स्वकर्मभिः ॥१३॥

नाथाः	हे स्वामियो !	इन्द्रिया अर्थ	
स्वकर्मभिः	हम लोग अपने कर्मोंके वश होकर	अर्थ वेदिनां	केवल इन्द्रिय सम्बन्धी भोगोंको ही परम पुरुषार्थ मान रहे हैं
व्यसना आवापे	विपत्तियोंके मिलनेके स्थान	कच्चित्	(सो) क्या कोई
एतस्मिन्	इस (संसार) में	नः	हमारे
पतितानां	पड़े हुए	कुशलं	कल्याणका (उपाय है ?) ॥१३॥

भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते ।
कुशलाकुशला यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ॥१४॥

भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु न इष्यते कुशलाकुशलाः यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ॥१४॥

भवत्सु	आप लोगोंसे	कुशलप्रश्न	कुशल पूछना
आत्मारामेषु	निरन्तरमें आत्मामें ही रमण करनेवालोंसे	न इष्यते	उचित नहीं हैं ।
		यत्र	आपमें

कुशलाकुशला	यह कुशल है यह अकुशल है	**न सन्ति**	होती ही नहीं है ॥१४॥
मतिवृत्तयः	इस प्रकारकी बुद्धि वृत्तियां		

तदहं कृतविश्रम्भः सुहृदो वस्तपस्विनाम् ।
संपृच्छे भव एतस्मिन् क्षेमः केनाञ्जसा भवेत् ॥१५॥

तत् अहं कृत विश्रम्भः सुहृदः वः तपस्विनां सम्पृच्छे भवे एतस्मिन् क्षेमः केन अञ्जसा भवेत् ॥१५॥

वः	आप	**सम्पृच्छे**	पूछना चाहता हूँ कि
तपस्विनां	संसार ताप संतप्त लोगोंके	**एतस्मिन् भवे**	इस संसारमें
सुहृदः	परम हितैषी है ।	**केन**	किस प्रकार
तत्	इसलिए	**अञ्जसा**	सरलतासे (मनुष्यका)
कृत विश्रम्भः	आपसे विश्वास करके	**क्षेमः**	कल्याण
		भवेत्	हो सकता है ॥१५॥

व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः ।
स्वानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः ॥१६॥

व्यक्तम् आत्मवतां आत्मा भगवान् आत्म भावनः स्वानां अनुग्रहाय इमां सिद्धरूपी चरति अजः ॥१६॥

व्यक्तं	निश्चय है कि	**अजः भगवान्**	वे अजन्मा भगवान् ही
आत्मवतां आत्मा	जो आत्मवान् (धीर) पुरुषोंमें आत्मारूपसे प्रकाशित होते हैं	**स्वानाम् अनुग्रहाय**	अपने जनोंपर कृपा करनेके लिए
		सिद्धरूपी	(आप जैसे) सिद्ध पुरुषोंके रूपमें
आत्म भावनः	और उपासकोंके हृदयमें अपने स्वरूपको प्रकट करते हैं ।	**इमां चरति**	इस पृथ्वीपर विचरण करते हैं ॥१६॥

मैत्रेय उवाच–

पृथोस्तत्सूक्तमाकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु ।
स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाच ह ॥१७॥

पृथोः तत् सूक्तं आकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रति उवाच ॥१७॥

पृथोः	पृथुके	**आकर्ण्य**	वचन सुनकर
तत्	ये	**कुमारः**	श्रीसनत्कुमारजी
सूक्तं	युक्ति युक्त	**प्रीत्या ह**	प्रेमसे ही
सारं	गम्भीर	**स्मयमान इव**	मुस्कराते-से
सुष्ठु मधु मितं	सुन्दर और मधुर परमित	**प्रति उवाच**	(उनसे) बोले ॥१७॥

सनत्कुमार उवाच–

साधु पृष्टं महाराज सर्वभूतहितात्मना ।
भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी ॥१८॥

साधु पृष्टं महाराज सर्वभूत हित आत्मना भवता विदुषा च अपि साधूनां मतिः ईदृशी ॥१८॥

महाराज	हे महाराज	**साधु पृष्टं**	बड़ी अच्छी बात पूछी है ।
भवता च	आपने तो		
विदुषा अपि	सब जानते हुए भी	**साधूनां**	साधु पुरुषोंकी
सर्वभूत हित आत्मना	सब प्राणियोंके और अपने भी कल्याणके लिए	**ईदृशी मतिः**	ऐसी ही बुद्धि होती है ॥१८॥

सङ्गमः खलु साधूनामुभयेषां च सम्मतः ।
यत्सम्भाषणसम्प्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम् ॥१९॥

संङ्गमः खलु साधूनां उभयेषां च सम्मतः यत् सम्भाषण सम्प्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम् ॥१९॥

साधूनां	सत्पुरुषोंका	**यत्**	क्योंकि (उसमें)
संङ्गमः	समागम	**सम्भाषण**	
खलु	निश्चय ही	**सम्प्रश्नः**	(उनके) प्रश्न उत्तर
उभयेषां च	श्रोता और वक्ता दोनोंका	**सर्वेषां**	सभीका
		शम् वितनोति	कल्याण करते हैं ॥१९॥
सम्मतः	अभिमत होता है।		

अस्त्येव राजन् भवतो मधुद्विषः
पादारविन्दस्य गुणानुवादने ।
रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी
कामं कषायं मलमन्तरात्मनः ॥२०॥

अस्ति एव राजन् भवतः मधुद्विषः पादारविन्दस्य गुण अनुवादने रतिः दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलं अन्तरात्मनः ॥२०॥

राजन्	हे राजा !	**रतिः अस्तिः**	प्रीति है (जो)
मधुद्विषः	श्रीमधुसूदन भगवान्के	**अन्तरात्मनः**	हृदयके भीतर रहनेवाले
पादारविन्दस्य	चरण-कमलोंके	**कषायं**	वासना-रूप
गुण अनुवादने	गुणानुवादमें	**मलं**	मलको
एव	ही	**कामं**	सर्वथा
भवतः	आपकी	**विधुनोति**	नष्ट कर देती है ॥२०॥
दुरापा	दुष्प्राप्य		
नैष्ठिकी	दृढ़ (निष्ठायुत)		

शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां
क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतुः ।
असङ्ग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि
दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥२१॥

शास्त्रेषु इयान् एव सुनिश्चितः नृणां क्षेमस्य सध्रचक् विमृशेषु हेतुः असङ्गः आत्म व्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिः ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥२१॥

शास्त्रेषु	शास्त्रोंमें	आत्म	
नृणां	जीवोंके	व्यतिरिक्त	आत्मासे अतिरिक्त (देहादिमें)
क्षेमस्य	कल्याणके लिए	असङ्गः	वैराग्य होना
सध्रचक्	भली भाँति	च या	और
विमृशेषु	विचार कर	निर्गुणे ब्रह्मणि	
इयान् एव	इतना ही	आत्मनि	निगुण ब्रह्म परमात्मामें
हेतुः	साधन	दृढा रतिः	दृढ़ प्रीति होना ॥२१
सुनिश्चितः	सुनिश्चित किया है कि		

सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया
जिज्ञासयाऽऽध्यात्मिकयोगनिष्ठया ।
योगेश्वरोपासनया च नित्यं
पुण्यश्रवःकथया पुण्यया च ॥२२॥

सा श्रद्धया भगवद् धर्म चर्यया जिज्ञासया आध्यात्मिक योग निष्ठया योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रवः कथया पुण्यया च ॥२२॥

सा	वह प्रीति	पासनया	योगेश्वर (श्रीहरि) की उपासनासे
श्रद्धया	श्रद्धासे	नित्यं च	नित्य ही
भगवद् धर्म चर्यया	भागवत धर्मोंका आचरण करनेसे	पुण्यया	परम पवित्र
जिज्ञासया	तत्व जिज्ञासासे	पुण्यश्रवः कथया	पुण्य कीर्ति श्रीभगवान्‌की कथा सुननेसे (होती है) ॥२२॥
आध्यात्मिक योग निष्ठया	ज्ञान योगकी निष्ठासे		
योगेश्वरो-			

अर्थेन्द्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णया
तत्सम्मतानामपरिग्रहेण च ।
विविक्तरुच्या परितोष आत्मन्
विना हरेर्गुणपीयूषपानात् ॥२३॥

अर्थ इन्द्रिय आराम सगोष्ठि अतृष्णया तत् सम्मतानां अपरिग्रहेण च विविक्त रुच्या परितोष आत्मन् विना हरेः गुण पीयूष पानात् ॥२३॥

अर्थ इन्द्रिय आराम	धन और इन्द्रियोंके भोगोंमें रत जनोंकी	**हरेः गुण पीयूष पानात्**	भगवान्के गुणामृतका पान करनेके
सगोष्ठि	गोष्ठिमें	**विना**	अतिरिक्त समयमें
अतृष्णया	प्रेम न रखनेसे	**आत्मन्**	आत्मामें ही
तत् सम्मतानाम्	उन्हें प्रिय लगनेवाले पदार्थोंका	**परितोष**	संतुष्ट रहते हुए
अपरिग्रहेण च	संग्रह न करनेसे	**विविक्त रुच्या**	एकान्त सेवनमें प्रेम रखनेसे ॥२३॥

अहिंसया पारमहंस्यचर्यया
स्मृत्या मुकुन्दाचरिताग्र्यसीधुना ।
यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिन्दया
निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥२४॥

अहिंसया पारमहंस्यचर्यया स्मृत्या मुकुन्द आचरिता अग्र्य सीधुना यमैः अकामैः नियमैः च अपि अनिन्दया निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥२४॥

अहिंसया	किसी भी जीवको कष्ट न देनेसे	**स्मृत्या**	आत्महितका अनुसन्धान करते रहनेसे
पारमहंस्यचर्यया	निवृत्ति निष्ठासे		

मुकुन्द आचरिता	
अग्रघ सीधुना	श्रीहरिके पवित्र चरित्र रूप श्रेष्ठ अमृतका पान करनेसे ।
अकामैः	निष्काम भावसे
यमैः च नियमैः	यम और नियमोंका पालन करनेसे ।
अनिन्दया	कभी किसीकी निन्दा न करनेसे
निरीहया	(योगक्षेमके लिए) चेष्टा न करनेसे
च द्वन्द्वतितिक्षया	और शीत उष्ण आदि द्वन्द्वोंको सहन करनेसे ॥२४॥

हरेर्मुहुस्तत्परकर्णपूर-
गुणाभिधानेन विजृम्भमाणया ।
भक्त्या ह्यसङ्गः सदसत्यनात्मनि
स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चाञ्जसा रतिः ॥२५॥

हरेः मुहुः तत्पर कर्णपूर गुण अभिधानेन विजृम्भमाणया भक्त्या हि असङ्गः सत् असति अनात्मनि स्यात् निर्गुणे ब्रह्मणि च अञ्जसा रतिः ॥२५॥

तत्पर कर्णपूर	उन (भगवान) के परायण (भक्तों) के कानोंको सुख देनेवाले
हरेः	श्रीहरिके
मुहुः गुण अभिधानेन	गुणोंका बार-बार वर्णन करनेसे
विजृम्भमाणया	बढ़ती हुई
भक्त्या	भक्तिसे
च	और
सत् असति अनात्मनि	कार्यकारण रूप जड़ प्रपञ्चसे
असङ्गः	निःसंगता होनेसे
निगुणे ब्रह्मणि	आत्मरूप निर्गुण परब्रह्ममें
अञ्जसा	अनायास ही
रतिः स्यात्	प्रीति प्राप्त होती है ॥२५॥

यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमा-
नाचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा ।

दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं
पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥२६॥

यदा रतिः ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमान् आचार्यवान् ज्ञान विराग रंहसा दहति अवीर्यं हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिं इव उत्थितः अग्निः ॥२६॥

यदा	जब	हृदयं	(संस्कारात्मक) चित्तको
ब्रह्मणि	परमात्मामें	जीवकोशं	(जो) लिंग शरीर है
नैष्ठिकी	सुदृढ़	दहति	(वह) पुरुष जला देता है,
रतिः	प्रीति हो जाती है	इव	जैसे
पुमान्	(तब पुरुष	उत्थितः	लकड़ीसे उत्पन्न अग्नि
आचार्यवान्	आचार्यकी शरण लेता है।	योनिं	(फिर) उसी लकड़ीको (जला देता है) ॥२६॥
ज्ञान विराग	(फिर) ज्ञान और वैराग्यके (प्रबल)		
रंहसा	वेगसे		
अवीर्यं	वासनाशून्य		
पञ्चात्मक	अविद्यादि पाँच क्लेशोंसे युक्त		

दग्धाशयो मुक्तसमस्ततद्गुणो
नैवात्मनो बहिरन्तर्विचष्टे ।
परात्मनोर्यद् व्यवधानं पुरस्तात्
स्वप्ने यथा पुरुषस्तद्विनाशे ॥२७॥

दग्ध आशयः मुक्त समस्त तद् गुणः न एव आत्मनः बहिः अन्तः विचष्टे परा आत्मनोः यद् व्यवधानं पुरस्तात् स्वप्ने यथा पुरुषः तद् विनाशे ॥२७॥

दग्ध आशयः	लिङ्ग देहके नाश हो जानेपर	मुक्त समस्त तद् गुणः	(वह) उसके कर्तृत्व आदि सभी गुणोंसे मुक्त हो जाता है

आत्मनः	शरीरके
बहिः	बाहर दिखाई देने वाले(घट-पट आदि)
अन्तः	(और) भीतर (अनुभव होनेवाले सुख-दुख आदि) को भी
न एव विचष्टे	नहीं ही देखता
यथा	जैसे
स्वप्ने	स्वप्नावस्थामें (तरह-तरहके दीखनेवाले पदार्थ)
तद् विनाशे	स्वप्नके नष्ट होनेपर (नहीं दीखते)
पुरस्तात्	इस स्थितिके प्राप्त होनेसे पहले
परा आत्मनोः	
यद् व्यवधानं	जीवात्मा और परमात्माके बीच जो भेदकर रहे थे– (वे अब नहीं रहते) ॥२७॥

आत्मानमिन्द्रियार्थं च परं यदुभयोरपि ।
सत्याशय उपाधौ वै पुमान् पश्यति नान्यदा ॥२८॥

आत्मानं इन्द्रियार्थं च परं यत् उभयोः अपि सति आशये उपाधौ वै पुमान् पश्यति न अन्यदा ॥२८॥

वै	निश्चय ही
आशये	अन्तःकरण रूप
उपाधौ सति	उपाधि रहनेपर ही
पुमान्	पुरुष
आत्मनं	जीवात्मा
इन्द्रियार्थं	इन्द्रियोंके विषय
च यत् उभयोः	और इन दोनोंका सम्बन्ध करानेवाले
परम्	अहंकारका (अनुभव करता है)
अन्यदा न	(उपाधिके नष्ट होनेपर) अन्य कालमें ऐसा (अनुभव) नहीं करता ॥२८॥

निमित्ते सति सर्वत्र जलादावपि पूरुषः ।
आत्मनश्च परस्यापि भिदां पश्यति नान्यदा ॥२९॥

निमित्ते सति सर्वत्र जलादौ अपि पूरुषः आत्मनः च परस्य अपि भिदां पश्यति न अन्यदा ॥२९॥

पूरुषः	पुरुष	आत्मनः	
सर्वत्र अपि	सब कहीं (बाह्य जगत्में भी)	परस्य च	अपने विम्ब और प्रतिविम्ब ही का
जलादौ	जल (दर्पण) आदि	भिदां	भेद
निमित्ते सति	निमित्त होनेपर	पश्यति	देखता है
		अन्यदा	अन्य समयमें नहीं ॥२९॥

इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ।
चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात् ॥३०॥

इन्द्रियैः विषय आकृष्टैः आक्षिप्तं ध्यायतां मनः चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बः तोयं इव ह्रदात् ॥३०॥

ध्यायतां	जो (विषयोंके) चिन्तनमें लगे रहते हैं ।	ह्रदात्	जलाशयसे (अपनी जड़ोंसे)
विषय आकृष्टैः	विषयों द्वारा आकृष्ट	तोयं इव	जैसे जलको खींचते हैं
इन्द्रियैः	(उनकी) इन्द्रियोंको (तथा)	बुद्धेः चेतनां हरते	(उसी प्रकार इन्द्रिया सक्त) मन बुद्धिकी विचार-शक्तिको हर लेता है ॥३०॥
मनः आक्षिप्तं	मनको भी (विषयों-की ओर) खींच ले जाती है		
स्तम्बः	(जलाशयके तीरपर उगे हुए) कुश आदि		

भ्रश्यत्यनु स्मृतिश्चित्तं ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये ।
तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥३१॥

भ्रश्यति अनु स्मृतिः चित्तं ज्ञान भ्रंशः स्मृतिक्षये तद्रोधं कवयः प्राहुः आत्म अपह्नवं आत्मनः ॥३१॥

चित्तं	चित्तकी	तद्बोधं	इस (ज्ञान) के
अनु स्मृतिः			नाशको ही
भ्रश्यति	पूर्वापरकी स्मृति जाती रहती है	कवयः	पण्डित-जन
		आत्मनः	
स्मृतिक्षये	स्मृतिके नाश हो जानेपर	आत्मअह्नवं	अपने आप अपना नाश
ज्ञान भ्रंशः	ज्ञान नहीं रहता	प्राहुः	(करना) कहते हैं ॥३१॥

नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः ।
यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥३२॥

न अतः परतरः लोके पुंसः स्वार्थं व्यति क्रमः यत् अधि अन्यस्य प्रेयस्त्वं आत्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥३२॥

यत् अधि	जिसके उद्देश्य (आधार) से	पुंसः स्वार्थं व्यति	पुरुषकी
अन्यस्य	अन्य सब पदार्थोंमें	क्रमः	जो स्वार्थ विरोध (हानि) होती है
प्रेमस्त्वं	प्रियताका बोध होता है ।	अतः	इससे
आत्मनः	उस आत्माका	लोके	लोकमें
स्वव्यतिक्रमात्	अपने द्वारा ही नाश होनेसे	परतरः न	बढ़कर कोइ हानि नहीं है ॥३२॥

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ।
भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥३३॥

अर्थ इन्द्रिय अर्थ अभिध्यानं सर्व अर्थ अपह्नवः नृणां भ्रंशितः ज्ञान विज्ञानात् येन आविशति मुख्यताम् ॥३३॥

अर्थ इन्द्रिय अर्थ	धन, इन्द्रियके विषयका	अभिध्यानं	चिन्तन
		नृणां	मनुष्योंके

सर्व अर्थ अपह्नवः	सब ही पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है।
येन	क्योंकि इनकी चिन्तासे (मनुष्य)
ज्ञान विज्ञानात्	ज्ञान और विज्ञानसे
भ्रंशितः	भ्रष्ट होकर
मुख्यतां	(वृक्षादि) स्थावर योनियोंमें
आविशति	प्रवेश करता है ॥३३॥

न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम् ॥३४॥

न कुर्यात् कर्हिचित् सङ्गं तमः तीव्रं तितीरिषुः धर्म अर्थ काम मोक्षाणां यत् अत्यन्त विघातकम् ॥३४॥

तीव्रं तमः	घोर (अज्ञान) अन्धकारसे
तितीरिषुः	पार होनेकी इच्छा रखनेवाला
सङ्गम्	(विषयोंमें) आसक्ति
कर्हिचित्	कभी भी
न कुर्यात्	न करे
धर्म अर्थ काम मोक्षाणाम्	क्योंकि (यह विषयासक्ति) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष
अत्यन्त विघातकम्	अत्यन्त नाशक है ॥३४॥

तत्रापि मोक्ष एवार्थ आत्यन्तिकतयेष्यते ।
त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतान्तभयसंयुतः ॥३५॥

तत्र अपि मोक्ष एव अर्थः आत्यन्तिकतया इष्यते त्रैवर्ग्यः अर्थः यतः नित्यं कृतान्त भय संयुतः ॥३५॥

तत्र अपि	इन चार पुरुषार्थोंमें भी
आत्यन्तिकतया	सबसे श्रेष्ठ
मोक्ष एव	मोक्ष ही
अर्थः	पुरुषार्थ
इष्यते	माना जाता है।
यतः	क्योंकि
त्रैवर्ग्यः अर्थः	अन्य तीन पुरुषार्थों
नित्यं	सर्वदा
कृतान्त	कालके
भय	भयसे
संयुतः	युक्त (ग्रस्त) हैं ॥३५

परेऽवरे च ये भावा गुणव्यतिकरादनु ।
न तेषां विद्यते क्षेममीशविध्वंसिताशिषाम् ॥३६॥

परे अवरे च ये भावाः गुण व्यतिकरात् अनु न तेषां विद्यते क्षेमं ईशविध्वंसित आशिषाम् ॥३६॥

गुण व्यति-		**क्षेमं**	कुशल
करात् अनु	प्रकृतिमें गुणक्षोभ होनेके बाद	**न विद्यते**	(किसीकी) नहीं हैं
		ईशविध्वंसित	
ये	जितने भी	**आशिषां**	क्योंकि काल-
परे च अवरे			भगवान (उनकी)
भावाः	उत्तम और अधम पदार्थ प्रकट हुए हैं।		आशा नष्ट कर देते हैं ॥३६॥
तेषां	उनमें		

तत्त्वं नरेन्द्र जगतामथ तस्थुषां च
देहेन्द्रियासुधिषणात्मभिरावृतानाम् ।
यः क्षेत्रवित्तपतया हृदि विश्वगावि:
प्रत्यक् चकास्ति भगवांस्तमवेहि सोऽस्मि ॥३७॥

तत् त्वं नरेन्द्र जगतां अथ तस्थुषां च देह इन्द्रिय असु धिषणात्मभिः आवृतानां यः क्षेत्र वित्तपतया हृदि विश्वक आविः प्रत्यक् चकास्ति भगवान् तं अवेहि सः अस्मि ॥३७॥

तत्	अतः	**आवृतानां**	घिरे हुए
नरेन्द्र	हे राजन् !	**जगतां**	जंगम
त्वं	तुम	**अथ**	और
यः	जो श्रीभगवान्	**तस्थुषां**	स्थावर (प्राणियों)
देह इन्द्रिय असु	देह, इन्द्रिय, प्राण,		के
धिषणात्मभिः	बुद्धि और अहंकारसे	**हृदि**	हृदयोंमें

क्षेत्र वित्तपतया	जीवके नियामक अन्तर्यामी आत्म-रूपसे	प्रत्यक्	अन्तर्यामी रूपसे
		चकास्ति	प्रकाशित हो रहे हैं
		तं	उन्हीं (भगवान्‌को)
विश्वक	सर्वत्र	सः अस्मि	वह मैं ही हूँ
आविः	साक्षात	अवेहि	ऐसा जानो ॥३७॥

यस्मिन्निदं सदसदात्मतया विभाति
माया विवेकविधुति स्रजि वाहिबुद्धिः ।
तं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्धतत्त्वं
प्रत्यूढकर्मकलिलप्रकृतिं प्रपद्ये ॥३८॥

यस्मिन् इदं सद् असत् आत्मतया विभाति माया विवेक विधुति स्रजि इव अहिबुद्धिः तं नित्य मुक्त परिशुद्ध विबुद्ध तत्त्वं प्रत्यूढ कर्मकलिल प्रकृतिं प्रपद्ये ॥३८॥

स्रजि	मालामें	विभाति	प्रतीत हो रही है
अहिबुद्धिः	सर्प-बुद्धि (सर्पके भ्रम) के		(उस)
		कर्मकलिल	कर्म (फल) रूपी कीचड़से (युक्त)
इव	समान		
विवेक	विवेचन-विचार (से)	प्रकृतिं	प्रकृतिसे
विधुति	नष्ट हो जानेवाली	प्रत्यूढ	परे स्थित (परमात्माकी)
इदं	यह		
सत् असत्	कारण कार्य रूपा	तं	उन
माया	माया	नित्य मुक्त	नित्य मुक्त
यस्मिन्	जिस (परमात्मामें)	परिशुद्ध	सब ओरसे शुद्ध
आत्मतया	अपने स्वरूपकी भांति	विबुद्ध तत्त्वं	तत्त्व ज्ञान स्वरूपकी
		प्रपद्ये	(मैं) शरण हूँ ॥३८॥

यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या
कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ।
तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध-
स्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥३९॥

यत् पाद पङ्कज पलाश विलास भक्त्या कर्माशयं ग्रथितं उद्ग्रथयन्ति सन्तः तद्वत् न रिक्त मतयः यतयः अपि रुद्ध स्रोतोगणाः तं अरणं भज वासुदेवं ॥३९॥

यत्	जिनके	**रिक्त मतयः**	रिक्त (मल-विक्षेप हीन शुद्ध) बुद्धि
पाद पङ्कज	चरण-कमल (की)	**यतयः अपि**	यतिगण भी
पलाश	(अंगुलिरूप) दलकी	**तद्वत्**	उस प्रकार
विलास	चेष्टा	**स्रोतोगणाः**	(इन्द्रियों रूप) स्रोतोंको
भक्त्या	भक्ति (स्मरण) से	**रुद्ध न**	निरुद्ध नहीं कर पाते
सन्तः	संतजन	**तं अरणं**	उन रक्षक
ग्रथितं	(दृढ़) बँधे	**वासुदेवं भज**	वासुदेवका भजन करो ॥३९॥
कर्माशयं	कर्म संस्कार युक्त (अन्तःकरण) को		
उद्ग्रथयन्ति	ग्रन्थिहीन कर देते हैं,		

कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीर्षन्ति ।
तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं
कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ॥४०॥

कृच्छ्रः महान् इह भवार्णवं अप्लवेशां षड्वर्ग नक्रं असुखेन तितीर्षन्ति तत् त्वम् हरेः भगवतः भजनीयं अङ्घ्रिं कृत्वा उडुपं व्यसनं उत्तर दुस्तरार्णम् ॥४०॥

इह	इस	**अप्लेवेशां**	(श्रीहरिके चरण रूप) जहाजसे रहित
षडवर्ग नक्रं	(मन और इन्द्रिय रूप) छः वर्ग के मगरोंसे भरे हुए	**तितीर्षन्ति**	(जो) पार करना चाहते हैं
भवार्णवं	संसार-सागरको	**महान् कृच्छ्रः**	उनका उस पार पहुँचना अति कठिन है
असुखेन	(योग आदि) दुष्कर साधनोंसे		

तत् त्वम्	अतः तुम तो	**व्यसनं**	(अनायास ही)
भगवतः हरेः	भगवान् हरिके		इस संकट
भजनीयं	आराधनीय	**दुस्तराणं**	(संसार रूपी)
अङ्घ्रि	चरण-कमलोंको		दुस्तर समुद्रको
उडुपं कृत्वा	नौका बनाकर	**उत्तर**	पार कर लो ॥४०॥

मैत्रेय उवाच–

स एवं ब्रह्मपुत्रेण कुमारेणात्ममेधसा ।
दर्शितात्मगतिः सम्यक्प्रशस्योवाच तं नृपः ॥४१॥

स एवं ब्रह्मपुत्रेण कुमारेण आत्ममेधसा दर्शितात्मगतिः सम्यक् प्रशस्य उवाच तं नृपः ॥४१॥

स नृपः	राजा पृथु	**तं**	उन (सनत्कुमार-
ब्रह्मपुत्रेण	ब्रह्माजीके पुत्र		जीकी
आत्ममेधसा	आत्मज्ञानी	**प्रशस्य**	बहुत प्रशंसा करते
कुमारेण	सनत्कुमारजी द्वारा		हुए
एवं	इस प्रकार	**उवाच**	कहने लगे ॥४१॥
दर्शितात्मगतिः	आत्मतत्वका		
	उपदेश पाकर		

पृथुरुवाच–*

कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणाऽऽर्तानुकम्पिना ।
तमापादयितुं ब्रह्मन् भगवन् यूयमागताः ॥४२॥

कृतः मे अनुग्रहः पूर्वं हरिणा आर्त अनुकम्पिना तं आपादयितुं ब्रह्मन् भगवन् यूयं आगताः ॥४२॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाचा' है।

भगवन्	हे भगवन् !	अनुग्रहः	कृपा
आर्त		कृतः	की थी
अनुकम्पिना	दीनोंपर दया करने-वाले	तं	उसीको
		आपादयितुं	पूरा करनेके लिए
हरिणा	श्रीहरिने	ब्रह्मन्	हे ब्रह्मन्
मे	मुझपर	यूयं	आप लोग
पूर्वं	पहिले	आगताः	आये हैं ॥४२॥

निष्पादितश्च कात्स्न्र्येन भगवद्भिर्घृणालुभिः ।
साधूच्छिष्टं हि मे सर्वमात्मना सह किं ददे ॥४३॥

निष्पादितः च कात्स्न्र्येन भगवद्भिः घृणालुभिः साधूच्छिष्टं हि मे सर्वं आत्मना सह किं ददे ॥४३॥

घृणालुभिः	(परम) दयालु	आत्मना सह	शरीर और इसके साथ
भगवद्भिः	आप लोगोंने		
कात्स्न्र्येन च	(जिस कार्यके लिए आप लोग आये, इसे आपने) अच्छी तरहसे	मे सर्वं	मेरा सब कुछ
		हि	क्योंकि
		साधूच्छिष्टं	महापुरुषोंका ही प्रसाद है
निष्पादितः	सम्पन्न कर दिया	किं ददे	मैं आपको क्या दूँ ॥४३॥

प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः ।
राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम् ॥४४॥

प्राणाः दाराः सुताः ब्रह्मन् गृहाः च सपरिच्छदाः राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितं ॥४४॥

प्राणाः	प्राण,	च सपरिच्छदाः	
दाराः	स्त्री,	गृहाः	और सब सामग्री सहित घर,
सुताः	पुत्र,		

राज्यं	राज्य,	ब्रह्मन्	हे ब्रह्मन
बलं	सेना,	निवेदितं	आपके श्रीचरण-
मही	पृथिवी		कमलोंमें अर्पित
कोश	और खजाना		है ॥४४॥
इति सर्वं	यह सब कुछ		

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥४५॥

सैनापत्यं च राज्यं च दण्ड नेतृत्वम् एव च सर्व लोक अधिपत्यं च वेदशास्त्रवित् अर्हति ॥४५॥

सैनापत्यं च	(वास्तवमें तो) सेनापतित्व	सर्वं लोक अधिपत्य	सब लोकोंका आधिपत्य
च राज्यम्	और राज्य	वेदशास्त्रवित्	
च दण्ड नेतृत्वं	दण्डाभिधान	च	वेद-शास्त्रके ज्ञाता-
एव च	तथा	अर्हति	को ही है ॥४५॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ।
तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः ॥४६॥

स्वं एव ब्राह्मणः भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च तस्य एव अनुग्रहेण अन्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः ॥४६॥

ब्राह्मणः	ब्राह्मण	क्षत्रियादयः	दूसरे क्षत्रिय आदि
स्वं एव	अपना ही		तो
भुङ्क्ते	खाता है	तस्य एव	उसीकी
स्वं वस्ते	अपना ही पहनता है	अनुग्रहेण	कृपासे
स्वं च ददाति	अपनी ही वस्तु देता है	अन्नं भुञ्जते	अन्न खाते हैं ॥४६॥

यैरीदृशी भगवतो गतिरात्मवादे
एकान्ततो निगमिभिः प्रतिपादिता नः ।
तुष्यन्त्वदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं
को नाम तत्प्रतिकरोति विनोदपात्रम् ॥४७॥

यैः ईदृशी भगवतः गतिः आत्मवादे एकान्ततः निगमिभिः प्रतिपादिता नः तुष्यन्तु अदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं कः नाम तत्प्रतिकरोति विना उदपात्रं ॥४७॥

यैः	जिन	**स्वकृतेन**	अपने इस उपकार-में ही
निगमिभिः	(आप) वेदके पारंगतोंकी	**नित्यं**	सदा
आत्मवादे	अध्यात्म-तत्वका विचार करनेमें (एवं)	**तुष्यन्तु**	सन्तुष्ट रहे
एकान्ततः	निश्चितरूपसे	**विना उदपात्रं**	(अर्घ्यके लिए) जलपात्र उठानेके अतिरिक्त
भगवतः	भगवानके प्रति	**कः नाम**	भला ऐसा कौन है (जो)
ईदृशी गतिः	इस प्रकारकी भक्ति	**तत्प्रतिकरोति**	उस (आपके उपकार का) बदला चुका सके ॥४७॥
प्रतिपादिता	समझा दी है		
अदभ्रकरुणाः	परम कृपालु (वे आप)		

मैत्रेय उवाच–

त आत्मयोगपतय आदिराजेन पूजिताः ।
शीलं तदीयं शंसन्तः खेऽभूवन्मिषतां नृणाम् ॥४८॥

ते आत्मयोगपतयः आदिराजेन पूजिताः शीलं तदीयं शंसन्तः खे अभूवन मिषतां नृणाम् ॥४८॥

आदिराजेन	आदिराज पृथु द्वारा	**तदीयं शीलं**	उनके शील स्वभावकी
आत्मयोग-पतयः	आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ (सनकादिकों-की)	**शंसन्तः**	प्रशंसा करते हुए
		नृणां मिषतां	सब लोगोंके देखते-देखते
पूजिताः ते	पूजा होनेके बाद वे सब	**खे अभूवन**	आकाश-मार्गसे चले गये ॥५८॥

वैन्यस्तु धुर्यो महतां संस्थित्याध्यात्मशिक्षया ।
आप्तकाममिवात्मानं मेन आत्मन्यवस्थितः ॥४९॥

वैन्यः तु धुर्यः महतां संस्थित्या अध्यात्म शिक्षया आप्तकामं इव आत्मानं मेने आत्मनि अवस्थितः ॥४९॥

महतां धुर्यः	महात्माओंमें अग्रणी	**आत्मनि**	आत्मामें ही
		अवस्थितः	स्थित रहनेके कारण
वैन्यः तु	महाराज पृथु तो		
अध्यात्म		**आत्मानं**	अपनेको
शिक्षया	आत्मोपदेश पाकर	**आप्तकामं इव**	पूर्णमनोरथ
संस्थित्या	चित्तकी एकाग्रतासे	**मेने**	मानने लगे ॥४९॥

कर्माणि च यथाकालं यथादेशं यथाबलम् ।
यथोचितं यथावित्तमकरोद्ब्रह्मसात्कृतम् ॥५०॥

कर्माणि च यथाकालं यथादेशं यथाबलं यथोचितं यथावित्तं अकरोत् ब्रह्म सात्कृतं ॥५०॥

च	और	**यथावित्तं**	और धनके अनुसार
यथाकालं	समयके अनुसार	**ब्रह्म सात्कृतं**	ब्रह्मार्पण बुद्धिसे
यथा देशं	स्थानके अनुसार	**कर्माणि**	सभी कर्म
यथाबलं	शक्तिके अनुसार	**अकरोत्**	करते थे ॥५०॥
यथोचित्तं	न्यायके अनुसार		

फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विषङ्गः समाहितः ।
कर्माध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः परम् ॥५१॥

फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विषङ्गः समाहितः कर्मआध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः परं ॥५१॥

समाहितः	एकाग्र चित्तसे	कर्माध्यक्षं	कर्मोंका साक्षी
फलं	(समस्त कर्मोंका) फल	च	और
ब्रह्मणि विन्यस्य	परमात्माको अर्पण करके	प्रकृतेः परं	प्रकृतिसे अतीत
आत्मानं	आत्माको	मन्वान	समझते हुए
		निर्विषङ्गः	निर्लिप्त रहे ॥५१॥

गृहेषु वर्तमानोऽपि स साम्राज्यश्रियान्वितः ।
नासज्जतेन्द्रियार्थेषु निरहंमतिरर्कवत् ॥५२॥

गृहेषु वर्तमानः अपि स साम्राज्यश्रिया अन्वितः न असज्जता इन्द्रियार्थषु निरहं मतिः अर्कवत् ॥५२॥

अर्कवत्	सूर्यकी तरह	वर्तमानः अपि	रहते हुए भी
निरहं मतिः	निर्लिप्त बुद्धि	स	वे (राजा पृथु)
साम्राज्यश्रिया अन्वितः	साम्राज्य लक्ष्मीसे सम्पन्न	इन्द्रियआर्थेषु	इन्द्रियोंके विषयोंमें
		न असज्जता	आसक्त नहीं हुए ॥५२॥
गृहेषु	गृहस्थाश्रममें		

एवमध्यात्मयोगेन कर्माण्यनुसमाचरन् ।
पुत्रानुत्पादयामास पञ्चार्चिष्यात्मसम्मतान् ॥५३॥

एवं अध्यात्म योगेन कर्माणि अनु समाचरन् पुत्रान् उत्पादयामास पंच अर्चिसि आत्मसम्मतान् ॥५३॥

एवं	इस प्रकार
अध्यात्मयोगेन	आत्मनिष्ठा द्वारा
कर्माणि	सभी कर्तव्य कर्मोंका
अनुसमाचरन्	अनुष्ठान करते हुए (उन्होंने)
अर्चिषि	(अपनी पत्नी) अर्चीके गर्भ) से
आत्म-सम्मतान्	अपने समान
पञ्च	पाँच
पुत्रान्	पुत्र
उत्पादयामास	उत्पन्न किए ॥५३॥

विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकम् ।
सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ॥५४॥

विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकं सर्वेषां लोकपालानां दधार एकः पृथुः गुणान् ॥५४॥

विजिताश्वं	विजिताश्व
धूम्रकेशं	धूम्रकेश
हर्यक्षं	हर्यक्ष
द्रविणं	द्रविण
वृकं	और वृक (ये पुत्रोंके नाम थे)
एकः पृथुः	अकेले पृथुने
सर्वेषां	सब ही
लोकपालानां	लोकपालोंके
गुणान्	सभी गुणोंको धारण दधार करते थे ॥५४॥

गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वेऽच्युतात्मकः ।
मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैर्गुणैः संरञ्जयन् प्रजाः ॥५५॥

गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वे अच्युतात्मकः मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैः गुणैः संरञ्जयन् प्रजाः ॥५५॥

जगत्सृष्टेः	जगत्के प्राणियोंकी
गोपीथाय	रक्षाके लिए
स्वे स्वे काले	अपने-अपने समयपर
अच्युतात्मकः	विष्णु रूप (राजा पृथु)
मनोवाग्-वृत्तिभिः	मन वाणी तथा व्यवहारसे
सौम्यैः गुणैः	(और) सौम्य गुणोंसे
प्रजाः	
संरञ्जयन्	प्रजाका रंजन करते रहे ॥५५॥

राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापरः ।
सूर्यवद्विसृजन् गृह्णन् प्रतपंश्च भुवो वसु ॥५६॥

राजा इति अधात् नामधेयं सोमराज इव अपरः सूर्यवत् विसृजन् गृह्णन् प्रतपन् च भुवः वसु ॥५६॥

अपरः सोमराज इव	दूसरे चन्द्रमाके समान	गृह्णन् विसृजन्	लेते (करादि रूपमें) (वर्षाके समान) छोड़ते (पान करते)
राजा इति नामधेयं अधात्	राजा इस नामको धारण किया ।	च प्रतपन्	(तेज) प्रताप करते (प्रभावित करते थे) ॥५८॥
सूर्यवत्	सूर्यके समान		
भुवः वसु	पृथ्वीके धन (रूप जल) को		

दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेन्द्र इव दुर्जयः ।
तितिक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्टदो नृणाम् ॥५७॥

दुर्धर्षः तेजसा इव अग्निः महेन्द्र इव दुर्जयः तितिक्षया धरित्री इव द्यौः इव अभीष्टदः नृणाम् ॥५७॥

तेजसा	तेजसे	धरित्री इव	पृथ्वीके समान थे ।
अग्निः इव	अग्निकी तरह	द्यौः इव	स्वर्गके समान
दुर्धर्षः	असह्य थे ।	नृणां	मनुष्योंको
महेन्द्र इव	इन्द्रकी तरह	अभीष्टदः	अभीष्ट (पदार्थ) देते थे ॥५७॥
दुर्जयः	अजेय थे ।		
तितिक्षया	सहनशीलतासे		

वर्षति स्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन् ।
समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेनाचलराडिव ॥५८॥

वर्षति स्म यथा कामं पर्जन्य इव तर्पयन् समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेन अचलराड् इव ॥५८॥

तर्पयन्	(प्रजाको) तृप्त करते हुए
पर्जन्य इव	मेघके समान
यथा कामं	इच्छानुसार
वर्षति स्म	वर्षा करते (दान देते) थे।
समुद्र इव दुर्बोधः	समुद्रके समान दुर्बोध थे।
सत्वेन	धैर्यमें
अचलराड् इव	हिमालयके समान थे॥५८॥

धर्मराडिव शिक्षायामाश्चर्ये हिमवानिव।
कुबेर इव कोशाढ्यो गुप्तार्थो वरुणो यथा॥५९॥

धर्मराट् इव शिक्षायां आश्चर्ये हिमवान् इव कुबेर इव कोशाढ्यः गुप्तार्थः वरुणः यथा॥५९॥

शिक्षायां	(दुष्टोंको) अनुशासित रखनेमें
धर्मराट् इव	यमराजके समान,
आश्चर्ये	आश्चर्योंमें
हिमवान् इव	हिमालयके समान थे।
कोशाढ्यः	कोशकी समृद्धिमें
कुबेर इव	कुबेरके समान थे।
गुप्तार्थः	धनका गुप्त रखनेमें
वरुणः यथा	वरुणके समान थे॥५९॥

मातरिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा।
अविषह्यतया देवो भगवान् भूतराडिव॥६०॥

मातरिश्वा इव सर्वात्मा बलेन सहसा ओजसा अविषह्यतया देवः भगवान् भूतराट् इव॥६०॥

मातरिश्वा इव	वायुके समान
बलेन्	शारीरिक बल
सहसा	इन्द्रियोंकी पटुता
ओजसा	तथा तेजस्विता
सर्वात्मा	सर्वत्र गतिशीलतामें थे।
अविषह्यतया	असह्य तेजमें
भगवान् भूतराट् इव	भगवान् शंकरके समान थे॥६०॥

कन्दर्प इव सौन्दर्ये मनस्वी मृगराडिव ।
वात्सल्ये मनुवन्नृणां प्रभुत्वे भगवानजः ॥६१॥

कन्दर्प इव सौन्दर्ये मनस्वी मृगराड् इव वात्सल्ये मनुवत् नृणां प्रभुत्वे भगवान् अजः ॥६१॥

सौन्दर्ये	सुन्दरतामें	**मनुवत्**	मनुके समान,
कन्दर्प इव	कामदेवके समान,	**नृणां**	मनुष्योंके
मनस्वी	उत्साहमें	**प्रभुत्वे**	प्रभुत्वमें
मृगराड् इव	सिंहके समान,	**भगवान् अजः**	भगवान् ब्रह्माके समान थे ॥६१॥
वात्सल्ये	वात्सल्य (स्नेह) में		

बृहस्पतिर्ब्रह्मवादे आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः ।
भक्त्या गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ।
ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमे ॥६२॥

बृहस्पतिः ब्रह्मवादे आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः भक्त्या गो गुरु विप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यां आत्मतुल्यः परोद्यमे ॥६२॥

ब्रह्मवादे	ब्रह्म-विचारमें		सेवामें,
बृहस्पतिः	बृहस्पतिके समान	**भक्त्या**	भक्तिमें
आत्मवत्त्वे	आत्मस्थितिमें	**ह्रिया**	लज्जामें
स्वयं हरिः	स्वयं भगवान् (अवतार) थे ही	**प्रश्रय-शीलाभ्याम्**	विनय और शीलमें तथा
गो गुरु विप्रेषु	गौ, गुरुजन, ब्राह्मण एवं	**परोद्यमे**	परोपकार करनेमें
विष्वक्सेन अनुवर्तिषु	भगवत् भक्तोंकी	**आत्मतुल्यः**	अपने ही समान (अनुपम) थे ॥६२॥

कीर्त्योर्ध्वगीतया पुम्भिस्त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह ।
प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥६३॥

कीर्त्या अर्ध्व गीतया पुम्भिः त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेषु स्त्रीणां रामः सतां इव ॥६३॥

त्रैलोक्ये	त्रिलोकीमें	**स्त्रीणां**	स्त्रियों तकके
तत्र तत्र ह	जहां-तहां निश्चित रूपसे	**कर्णरन्ध्रेषु**	कानोंमें
		प्रविष्टः	वैसे ही प्रविष्ट थे
पुंभिः	मनुष्यों द्वारा	**सतां इव**	जैसे सज्जन पुरुषोंके हृदयोंमें
ऊर्ध्व गीतया	उच्च स्वरसे गायी जानेवाली	**रामः**	श्रीराम प्रविष्ट रहते हैं ॥६३॥
कीर्त्या	कीर्तिसे		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

दृष्ट्वाऽऽत्मानं प्रवयसमेकदा वैन्य आत्मवान् ।
आत्मना वर्धिताशेषस्वानुसर्गः प्रजापतिः ॥१॥

दृष्ट्वा आत्मानं प्रवयसं एकदा वैन्य आत्मवान् आत्मना वर्धित अशेष स्व अनुसर्गः प्रजापतिः ॥१॥

आत्मवान्	महा मनस्वी	वर्धित	अभिवृद्धि करके
प्रजापतिः	प्रजाओंके स्वामी	एकदा	एक समय
वैन्यः	राजा पृथुने	आत्मानं	अपनेको
आत्मना	स्वयमेव	प्रवयसं	वृद्ध हुआ
स्वं अनुसर्गः	अपनी प्रजाकी	दृष्ट्वा	देखकर ॥१॥
अशेष	पूर्णतः		

जगतस्तस्थुषश्चापि वृत्तिदो धर्मभृत्सताम् ।
निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह जज्ञिवान् ॥२॥

जगतः तस्थुषा च अपि वृत्तिदः धर्मभृत् सताम् निष्पादित ईश्वर आदेशः यदर्थम् इह जज्ञिवान् ॥२॥

सतां धर्मभृत्	सज्जनोंके धर्मको जाननेवाले	इह	इस लोक
		यदर्थम्	जिस उद्देश्यसे
जगतः	जङ्गम	जज्ञिवान्	जन्म लिया था (उस)
च तस्थुषा	और स्थावरोंकी		
अपि	भी	ईश्वर आदेशः	ईश्वरके आदेशको
वृत्तिदः	आजीविका देनेवाले	निष्पादित	परिपूर्ण करके ॥२॥

आत्मजेष्वात्मजां न्यस्य विरहाद्रुदतीमिव ।
प्रजासु विमनःस्वेकः सदारोऽगात्तपोवनम् ॥३॥

आत्मजेषु आत्मजां न्यस्य विरहात् रुदतीं इव प्रजासु विमनः सु एकः सदारः अगात् तपोवनम् ॥३॥

विरहात्	उनके वियोगसे	विमनः सु	बिलखती हुई (छोड़कर)
रुदतीं इव	रोती हुई सी	सदारः	अपनी पत्नी सहित
आत्मजां	पुत्री (रूपा पृथ्वी) को	एकः	अकेले ही
आत्मजेषु	पुत्रोंके ऊपर	तपोवनं	तप योग्य वनको
न्यस्य	सौंपकर	अगात्	चले गये ॥३॥
प्रजासु	प्रजाको		

तत्राप्यदाम्यनियमो वैखानससुसम्मते ।
आरब्ध उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥४॥

तत्र अपि अदाम्यनियमः वैखानस सुसंमते आरब्धः उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥४॥

तत्र अपि	वहाँ भी	उग्रतपसि	प्रारम्भ कर दी
अदाम्यनियमः	अखण्ड व्रत पूर्वक	यथा	जैसे
वैखानस सुसंमते	वानप्रस्थ आश्रमके अनुसार	पुरा	पहले (गृस्थाश्रममें)
आरब्धः	कठोर तपस्या	स्वविजये	(अखण्ड व्रत पूर्वक) विजय करनेमें लगे थे ॥४॥

कन्दमूलफलाहारः शुष्कपर्णाशनः क्वचित् ।
अब्भक्षः कतिचित्पक्षान् वायुभक्षस्ततः परम् ॥५॥

कन्दमूल फलाहरः शुष्क पर्णाशिनः क्वचित् अब्भक्षः कतिचित्पक्षान् वायु भक्षः ततः परं ॥५॥

क्वचित् कन्दमूल	कुछ दिनों तक	अब्भक्षः	केवल जलका पान किया
फलाहारः	कन्द-मूल-फलका आहार किया	ततः परं	इसके बाद
शुष्क पर्णाशनः	(कुछ दिनों) तक सूखे पत्ते खाये	वायुः भक्षः	केवल वायु पीकर (श्वास लेकर) रहने लगे ॥५॥
कतिचित्पक्षान्	कुछ पखवाड़ों तक		

ग्रीष्मे पञ्चतपा वीरो वर्षास्वासारषाण्मुनिः ।
आकण्ठमग्नः शिशिरे उदके स्थण्डिलेशयः ॥६॥

ग्रीष्मे पञ्चतपा वीरः वर्षासु आसारषाट् मुनिः आकण्ठ मग्नः शिशिरे उदके स्थण्डिलेशयः ॥६॥

वीरः	वीरवर (पृथु) ने	उदके	जलमें
मुनिः	मननशील (होकर)	आकण्ठ मग्नः	गले तक खड़े रहते थे
ग्रीष्मे	गर्मीमें		
पञ्चतपा	पञ्चाग्नि तापी	स्थण्डिलेशयः	मिट्टीकी वेदीपर ही शयन करते थे ॥६॥
वर्षासु	वर्षा ऋतुमें		
आसारषाट्	खुले मैदानमें रहे		
शिशिरे	शीतकालमें		

तितिक्षुर्यतवाग्दान्त ऊर्ध्वरेता जितानिलः ।
आरिराधयिषुः कृष्णमचरत्तप उत्तमम् ॥७॥

तितिक्षुः यतवाक् दान्तः ऊर्ध्वरेता जित अनिलः आरिराधयिषुः कृष्णं अचरत् तप उत्तमम् ॥७॥

तितिक्षुः	(उन्होंने) शीत, उष्ण अदि द्वन्द्वोंको सहन किया	ऊर्ध्वरेता	ब्रह्मचर्यका पालन किया
यतवाक् दान्तः	वाणी और मनका संयम किया	जित अनिलः	प्राणोंको अपने अधीन किया
		कृष्णं	(इस प्रकार) श्रीकृष्णकी

आरिराधयिषुः	आराधना करनेकी इच्छासे	उत्तमं तप अचरत्	उत्तम तप किया ॥७॥

तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्मामलाशयः ।
प्राणायामैः संनिरुद्धषड्वर्गश्छिन्नबन्धनः ॥८॥

तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्त कर्माम् अमल आशयः प्राणायामैः संनिरुद्ध षड्वर्गः छिन्नबन्धनः ॥८॥

क्रमानुसिद्धेन	क्रमसे सिद्ध हुए	संनिरुद्ध षड्वर्गः	मन और इन्द्रियों- का निरोध हो गया
तेन	उस तपसे		
ध्वस्त कर्माम्	उनके कर्म नष्ट हो गये	छिन्नबन्धनः	(वासना जन्य) बन्धन कट गया ॥८॥
अमल आशयः	और चित्त सर्वथा निर्मल हो गया		
प्राणायामैः	प्राणायामोंसे		

सनत्कुमारो भगवान् यदाहाध्यात्मिकं परम् ।
योगं तेनैव पुरुषमभजत्पुरुषर्षभः ॥९॥

सनत्कुमारः भगवान् यत् आह आध्यात्मिकं परं योगं तेन एव पुरुषं अभजत् पुरुष ऋषभः ॥९॥

भगवान् सनत्कुमारः	भगवान् सनत्कुमार- ने	आह	उपदेश किया था
		तेन एव	उसीके अनुसार
		पुरुष ऋषभः	पुरुषश्रेष्ठ (पृथु) ने
यत् परं आध्यत्मिक योगं	जिस परमोत्कृष्ट अध्यात्म-योगका	पुरुषं	पुरुषोत्तम (श्रीहरि) की
		अभजत्	आराधना की ॥९॥

भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा ।
भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाभवत् ॥१०॥

भगवत् धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा भक्तिः भगवति ब्रह्मणि अनन्य विषया अभवत् ॥१०॥

भगवद् धर्मिणः	(इस प्रकार) भगवद् धर्म (भक्ति) का	सदा यततः	निरन्तर साधन करनेसे
श्रद्धया	श्रद्धा पूर्वक (पालन करते)	भगवति ब्रह्मणि	भगवान् परब्रह्ममें
साधोः	सत्पुरुष (पृथु) के	अनन्य विषया भक्तिः	अनन्या (उनकी) भक्ति
		अभवत्	हो गयी ॥१०॥

तस्यानया भगवतः परिकर्मशुद्ध-
सत्त्वात्मनस्तदनु संस्मरणानुपूर्त्या ।
ज्ञानं विरक्तिमदभून्निशितेन येन
चिच्छेद संशयपदं निजजीव कोशम् ॥११॥

तस्य अनया भगवतः परिकर्म शुद्ध सत्वात्मनः तत् अनु संस्मरण अनुपूर्त्या ज्ञानं विरक्तिमत् अभूत निशितेन येन चिच्छेद संशयपदं निज जीव कोशं ॥११॥

तस्य	उन (पृथु) की	विरक्तिमत्	वैराग्ययुक्त
अनया	इस	ज्ञानं अभूत्	ज्ञान हो गया
भगवतः	भगवानकी	येन	जिस
परिकर्म	परिचर्या (अर्चना) से	निशितेन	तीक्ष्ण (ज्ञान) से
शुद्ध	शुद्ध हुए	संशयपदं	संशयके स्थान
सत्त्वात्मनः	सात्विक अन्तः-करणमें	निज जीव कोशं	अपने जीवकोश (लिंगदेह-अविद्या) को
तत्	उन (भगवान) के	चिच्छेद	काट दिया (नष्ट कर दिया) ॥११॥
अनु संस्मरण	बार-बार स्मरणसे		
अनुपूर्त्या	निरन्तर पूर्ण होते (चित्तमें)		

छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरीह-
स्तत्तत्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन ।

तावन्न योगगतिभिर्यतिरप्रमत्तो
यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

छिन्न अन्यधीः अधिगतः आत्मगतिः निरीहः तत्यजे अच्छिनत् इदं वयुनेन येन तावत् न योग गतिभिः यतिः अप्रमत्तः यावत् गदाग्रज कथासु रतिः न कुर्यात् ॥१२॥

अन्यधीः	अन्य (पारक्य) बुद्धि	तत्यजे	उसे भी त्याग दिया
छिन्न	नष्ट हो गयी	योग गतिभिः	योगकी गति (साधन) से
आत्मगतिः	अपना स्वरूप	तावत्	तब तक
अधिगतः	प्राप्त हो गया (स्वरूपमें स्थिति हो गयी	यतिः	यत्नकर्ता (साधक)
		अप्रमत्तः	प्रमादहीन (सदा सावधान)
निरीहः	इच्छाहीन हो गये (तब)	न	नहीं हो पाता
येन	जिस	यावत्	जब तक
वयुनेन	ज्ञानसे	गदाग्रज	गदके बड़े भाई (श्रीकृष्ण) की
इदं	इस (भेद-बुद्धि) को	कथासु	कथामें
अच्छिनत्	काटा (नष्ट किया) था	रतिः	प्रीति
		न कुर्यात्	नहीं करता ॥१२॥

एवं स वीरप्रवरः संयोज्यात्मा नमात्मनि ।
ब्रह्मभूतो दृढं काले तत्याज स्वं कलेवरम् ॥१३॥

एवं स वीर प्रवरः संयोज्य आत्मा नं आत्मनि ब्रह्मभूतः दृढं काले तत्याज स्वं कलेवरम् ॥१३॥

एवं	इस प्रकार	दृढं	दृढता पूर्वक
काले	अन्तकाल आनेपर	आत्मनि	
वीर प्रवरः	बीरवर	संयोज्य	परमात्मामें स्थित करके
स	उस (पृथुने)		
आत्मा नं	अपने चित्तको		

ब्रह्मभूतः	ब्रह्मभावमें अवस्थित होकर	स्वं कलेवरं तत्याज	अपने शरीरको त्याग दिया ॥१३॥

सम्पीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुमुत्सारयञ्छनैः ।
नाभ्यां कोष्ठेष्ववस्थाप्य हृदुरःकण्ठशीर्षणि ॥१४॥

सम्पीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुं उत्सारयन् शनैः नाभ्यां कोष्ठेषु अवस्थाप्य हृत् उरः कण्ठ शीर्षणि ॥१४॥

पार्ष्णिभ्यां	एड़ियोंसे	हृत्	हृदयमें,
पायुं	गुदाके द्वारको	उरः	वक्षस्थलमें,
सम्पीड्य	रोककर	कण्ठ	कण्ठमें
वायुं	प्राण वायुको	शीर्षणि	मस्तकमें,
शनैः	धीरे-धीरे	कोष्ठेषु	चक्रोंमें
उत्सारयन्	(मूलाधारसे) ऊपर-की ओर उठाते हुए	अवस्थाप्य	स्थापित करते (रोकते) गये ॥१४॥
नाभ्यां	(क्रमशः) नाभिमें,		

उत्सर्पयंस्तु तं मूर्ध्नि क्रमेणावेश्य निःस्पृहः ।
वायुं वायौ क्षितौ कायं तेजस्तेजस्ययूयुजत् ॥१५॥

उत्सर्पयन् तु तं मूर्ध्नि क्रमेण आवेश्य निःस्पृहः वायुं वायौ क्षितौ कायं तेजः तेजसि अयूयुजत् ॥१५॥

उत्सर्पयन्	ऊपरको ले जाते हुए	वायुं	(प्राण) वायुको
तु तम्	फिर उस वायुको	वायौ	(समष्टि) वायुमें
क्रमेण	क्रमशः	कायं	(पार्थिव) शरीरको
मूर्ध्नि	ब्रह्मरन्ध्रमें	क्षितौ	पृथ्वीमें
आवेश्य	स्थित करके	तेजः	(शरीरके) तेजको
निस्पृहः	स्पृहा (सब अभिलाषा) करके त्यागकर	तेजसि	(समष्टि) तेजमें
		अयूयुजत्	लीन कर दिया ॥१५

खान्याकाशे द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः ।
क्षितिमम्भसि तत्तेजस्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥१६॥

खानि आकाशे द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः क्षितिं अम्भसि तत् तेजसि अदः वायौ नभसि अमुं ॥१६॥

खानि	(देहस्थ) आकाश-को	अम्भसि	जलमें
आकाशे	आकाशमें	तत्	उस (जलको)
द्रवं	(शरीर गत) जलको	तेजसि	तेजमें
तोये	(समष्टि) जलमें	अदः	तेजको
यथास्थानं	यथा स्थान	वायौ	वायुमें
विभागशः	विभागसे (लयकर दिया फिर)	अमुं	इस (वायु) को
		नभसि	आकाशमें (लय किया) ॥१६॥
क्षितिं	पृथ्वीको		

इन्द्रियेषु मनस्तानि तन्मात्रेषु यथोद्भवम् ।
भूतादिनामून्युत्कृष्य महत्यात्मनि सन्दधे ॥१७॥

इन्द्रियेषु मनः तानि तन्मात्रेषु यथा उद्भवम् भूतादिना अमूनि उत्कृष्य महति आत्मनि संदधे ॥१७॥

मनः	मनको	अमूनि	इन (आकाश, इन्द्रिय और तन्मात्राओंको)
इन्द्रियेषु	इन्द्रियोंमें		
तानि	इन्द्रियोंको		
तन्मात्रेषु	तन्मात्राओंमें	उत्कृष्य	खींचकर
यथा उद्भवम्	जो जिससे उत्पन्न हुई थी (उसमें)	महति	यह तत्वमें
		आत्मनि	(उस) महत्तत्वको) आत्मामें (लय किया) ॥१७॥
भूतादिना	(तंमात्राओंके कारण) अहंकार द्वारा		

तं सर्वगुणविन्यासं जीवे मायामये न्यधात् ।
तं चानुशयमात्मस्थमसावनुशयी पुमान् ।
ज्ञानवैराग्यवीर्येण स्वरूपस्थोऽजहात्प्रभुः ॥१८॥

तं सर्वगुण विन्यासं जीवे मायामये न्यधात् तं च अनुशयम् आत्मस्थम् असौ अनुशयी पुमान् ज्ञान वैराग्य वीर्येण स्वरूपस्थः अजहात् प्रभुः ॥१८॥

तं	उस
सर्वगुण विन्यासं	सब गुणोंकी अभिव्यक्ति करनेवाले (महत् तत्व) को
मायामये जीवे	मायोपाधिक जीवमें
न्यधात्	स्थित किया
असौ	यही
अनुशयी	मायोपाधिक
पुमान्	पुरुष (जीव) है ।
आत्मस्थं	अपने रूपमें स्थित
तं	उस
अनुशयम् च	मायोपाधिक (जीव) को भी
ज्ञान वैराग्य वीर्येण	ज्ञान और वैराग्यके प्रभावसे
स्वरूपस्थः प्रभुः	अपने शुद्ध ब्रह्म स्वरूपमें अवस्थित होकर समर्थ (पृथु) ने
अजहात्	त्याग दिया ॥१८॥

अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनम् ।
सुकुमार्यतदर्हा च यत्पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥१९॥

अर्चिः नाम महाराज्ञी तत् पत्नी अनुगता वनं सुकुमारी अतदर्हा च यत् पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥१९॥

तत्	उनकी
पत्नी	पत्नी
महाराज्ञी	महारानी
अर्चिः नाम	अर्चि नामकी
वनं	वनको
अनुगता	(उनके) पीछे गईं
सुकुमारी	(वह) बड़ी सुकुमारी थी
अतदर्हा	वे इसके योग्य नहीं थी
यत्	क्योंकि
पद्भ्यां	पैरोंसे
भुवः	पृथ्वीका
स्पर्शनं च	स्पर्श भी (नहीं किया था) ॥१९॥

अतीव भर्तुर्व्रतधर्मनिष्ठया
शुश्रूषया चार्षदेहयात्रया ।
नाविन्दतार्तिं परिकर्शितापि सा
प्रेयस्करस्पर्शनमाननिर्वृतिः ॥२०॥

अतीव भर्तुः व्रतधर्म निष्ठया शुश्रूषया च आर्ष देहयात्रया न अविन्दत आर्तिं परिकर्शिता अपि सा प्रेयस्कर स्पर्शन मान निर्वृतिः ॥२०॥

भर्तुः	(फिर भी) अपने स्वामीके
व्रतधर्म निष्ठया	व्रत और नियमोंका पालन करते हुए (उन्होंने)
अतीव शुश्रूषया च आर्ष देहयात्रया	खूब सेवासे और मुनि-वृत्तिके अनुसार देहयात्रासे
परिकर्शिता अपि	अति दुर्बल होकर भी
सा	उन्होंने
आर्तिं न अविन्दत	खेदका अनुभव नहीं किया
प्रेयस्कर	(क्योंकि) अपने प्रियतमके
स्पर्शन मान	(कर) स्पर्शसे सम्मानित होकर
निर्वृतिः	अति सुखका अनुभव करती थीं ॥२०

देहं विपन्नाखिलचेतनादिकं
पत्युः पृथिव्या दयितस्य चात्मनः ।
आलक्ष्य किञ्चिच्च विलप्य सा सती
चितामथारोपयदद्रिसानुनि ॥२१॥

देहं विपन्नं अखिल चेतनादिकं पत्युः पृथिव्याः दयितस्य च आत्मनः आलक्ष्य किंचित् च विलप्य सा सती चितां अथ आरोपयत् अद्रिसानुनि ॥२१॥

पृथिव्याः पत्युः च आत्मनः	पृथ्वीके स्वामी और अपने
दयितस्य	प्रियतम (पृथु) की

देहं	देहको	किञ्चित् च	और कुछ
अखिल		विलप्य	विलाप करके
चेतनादिकं	समस्त चेतनादिसे	अथ	फिर
विपन्नं	रहित	अद्रिसानुनि	पर्वतके शिखरपर
आलक्ष्य	देखकर	चितां	चिता (पर)
सा सती	उस सतीने	आरोपयत्	रख दिया ॥२१॥

विधाय कृत्यं ह्रदिनीजलाप्लुता
दत्त्वोदकं भर्तुरुदारकर्मणः ।
नत्वा दिविस्थांस्त्रिदशांस्त्रिः परीत्य
विवेश वह्निं ध्यायती भर्तृपादौ ॥२२॥

विधाय कृत्यं ह्रदिनी जल आप्लुता दत्त्वा उदकं भर्तुः उदारकर्मणः नत्वा दिविस्थान् त्रिदशान् त्रिःपरीत्य विवेश वह्निम् ध्यायती भतृपादौ ॥२२॥

कृत्यं विधाय	उस समय सम्पूर्ण कृत्य करके	त्रिदशान्	देवताओंको
ह्रदिनी जल आप्लुता	नदीके जलमें स्नान करके	नत्वा	नमस्कार करके
उदारकर्मणः	उदारकर्मा	त्रिः परीत्य	तीन बार (चिता-की) परिक्रमा करके
भर्तुः	पतीको	भतृपादौ-ध्यायती	पतिके चरणोंका ध्यान करती हुई
उदकं दत्वा	जलाञ्जलि देकर	वह्निं विवेश	अग्निमें प्रवेश कर गयीं ॥२२॥
दिविस्थान्	आकाशमें स्थित		

विलोक्यानुगतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् ।
तुष्टुवुर्वरदा देवैर्देवपत्न्यः सहस्रशः ॥२३॥

विलोक्य अनुगतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् तुष्टुवुः वरदा देवैः देव पत्न्यः सहस्रशः ॥२३॥

साध्वीं	पतिव्रता (अर्चि) को	वरदा	वर देनेवाली
पतिं	अपने पति	देव पत्न्यः	देवियोंने
वीरवरं पृथुं	वीर श्रेष्ठ पृथुका	देवैः	देवताओंके साथ
अनुगतां	अनुगमन करते	तुष्टुवुः	(उनकी) स्तुति
विलोक्य	देखकर		की ॥२३॥
सहस्रशः	हजारों		

कुर्वत्यः कुसुमासारं तस्मिन्मन्दरसानुनि ।
नदत्स्वमरतूर्येषु गृणन्ति स्म परस्परम् ॥२४॥

कुर्वत्यः कुसुम आसारं तस्मिन् मन्दर सानुनि नदत्सु अमर तूर्येषु गृणन्ति स्म परस्परं ॥२४॥

अमर तूर्येषु	देवताओंके वाजे	कुसुम आसारं	
नदत्सु	बजने हुए	कुर्वत्यः	पुष्पोंकी वर्षा करतीं
तस्मिन्	उस		हुई
मन्दर सानुनि	मन्दराचलके	परस्परं	आपसमें
	शिखरपर	गृणन्ति स्म	कहने लगीं ॥२४॥

देव्य ऊचुः-

अहो इयं वधूर्धन्या या चैवं भूभुजां पतिम् ।
सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीर्वधूरिव ॥२५॥

अहो इयं वधूः धन्या या च एवं भूभुजां पतिं सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीः वधूः इव ॥२५॥

अहो	आश्चर्य है	सर्वात्मना	सम्पूर्ण मनसे
इयं	यह	भेजे	(ठीक उसी प्रकार)
वधूः धन्या	राजवधू धन्य है		सेवा की है
या च	जिसने कि	श्रीः वधूः इव	जैसे लक्ष्मीजी
भूभुजां पतिम्	राजराजेश्वर	यज्ञेशं	भगवानकी (सेवा
पतिं	अपने पतिकी		करती हैं) ॥२५॥

सैषा नूनं व्रजत्यूर्ध्वं मनु वैन्यं पतिं सती ।
पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥२६॥

सा एषा नूनं व्रजति ऊर्ध्वं अनु वैन्यं पतिं सती पश्यत अस्मान् अतीत्य अर्चिः दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥२६॥

सा एषा	वह यह	पश्यत अस्मान्	हमारे देखते-देखते
सती	पतिव्रता	अतीत्य	(हमको) पार करके
अर्चिः	अर्चि	अनु वैन्यं	(अपने पति) पृथुके पीछे
नूनं	निश्चय		
दुर्विभाव्येन	(अपने) अतर्क्य	ऊर्ध्वं	(हमसे) ऊपर
कर्मणा	कर्मसे	व्रजति	जा रही है ॥२६॥

तेषां दुरापं किं त्वन्यन्मर्त्यानां भगवत्पदम् ।
भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत ॥२७॥

तेषां दुरापं किं तु अन्यत् मर्त्यानां भगवत्पदम् भुवि लोलायुषः ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्ति उत ॥२७॥

भुवि	पृथ्वीपर	साधयन्ति	प्राप्त करते हैं
लोलायुषः	कुछ दिनोंका जीवन होनेपर भी	तेषां मर्त्यानाम्	उन मनुष्योंके लिए
		उत किं तु	
ये वै	जो लोग निश्चय ही	अन्यत्	और दूसरी क्या वस्तु
भगवत्पदं	भगवान्‌के परमपद प्राप्ति करानेवाले	दुरापं	दुर्लभ है ॥२७॥
नैष्कर्म्यं	आत्मज्ञानको		

स वञ्चितो बतात्मघ्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि ।
लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥२८॥

स वञ्चितः वत आत्मघ्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि लब्ध्वा आपवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥२८॥

महता	बड़ी	विषयेषु	विषयोंमें
कृच्छ्रेण	कठिनतासे	विपज्जते	आसक्त रहता है
भुवि	भूलोकमें	स	वह निश्चय ही
आपवर्ग्यं	मोक्षके साधन स्वरूप	आत्मध्रुक्	आत्मघाती है
		वत	खेद है
मानुष्यं	मनुष्यदेहको	वञ्चितः	वह खुद ही ठगा
लब्ध्वा	पाकर भी		गया है ॥२८॥

मैत्रेय उवाच–

स्तुवतीष्वमरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः ।
यं वा आत्मविदां धुर्यो वैन्यः प्रापाच्युताशयः ॥२९॥

स्तुवतीषु अमर स्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः यं वा आत्मविदां धुर्यः वैन्यः प्राप अच्युताशयः ॥२९॥

स्तुवतीषु	स्तुति करती हुई	वैन्यः	महाराज पृथुने
अमर स्त्रीषु	देवांगनाओंके (समय)	यं वा	जिस (धाम) को
		प्राप	प्राप्त किया ।
आत्मविदां धुर्यः	आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ	वधू	(उनकी) पत्नी भी
		पतिलोकं	(उसी) पति-लोकको
अच्युताशयः	भगवत् प्राण	गता	गयी ॥२९॥

इत्थंभूतानुभावोऽसौ पृथुः स भगवत्तमः ।
कीर्तितं तस्य चरितमुद्दामचरितस्य ते ॥३०॥

इत्थं भूत अनुभावः असौ पृथुः स भगवत्तमः कीर्तितं तस्य चरितं उद्दाम चरितस्य ते ॥३०॥

भगवत्तमः	परम भागवत	इत्थं भूत	
असौ स पृथुः	वह प्रसिद्ध राजा पृथु	अनुभावः	ऐसे ही प्रभावशाली थे

उद्दाम		चरितं	चरित्रका
चरितस्य	उदार चरितवाले	ते कीर्तितं	तुम्हारे सामने वर्णन
तस्य	उनके		किया ॥३०॥

य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयावहितः पठेत् ।
श्रावयेच्छृणुयाद्वापि स पृथोः पदवीमियात् ॥३१॥

यः इदं सुमहत् पुण्यं श्रद्धया अवहितः पठेत् श्रावयेत् शृणुयात् वा अपि सः पृथोः पदवीं इयात् ॥३१॥

यः	जो पुरुष	शृणुयात्	सुनता है
इदं	इस	अपि वा	अथवा
सुमहत् पुण्यं	परम पवित्र (चरित्र) को	श्रावयेत्	सुनाता है
		सः	वह
श्रद्धया	श्रद्धासे	पृथोः पदवीं	पृथुके पद (भगवद्-
अवहितः	एकाग्र चित्त होकर		धाम)
पठेत्	पढ़ता है,	इयात्	पहुँचता है ॥३१॥

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः ।
वैश्यः पठन् विट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामियात् ॥३२॥

ब्राह्मणः ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यः जगती पतिः वैश्यः पठन् विट्पतिः स्यात् शूद्रः सत्तमतां इयात् ॥३२॥

ब्राह्मणः पठन्	ब्राह्मण इसका पाठ करनेसे	वैश्य विट्पतिः	व्यापारियोंमें प्रधान होता है
ब्रह्मवर्चस्वी स्यात्	ब्रह्म तेज प्राप्त करता है।	शूद्रः सत्तमतां इयात्	(और) शूद्र साधुता- को प्राप्त होता है ॥३२॥
राजन्यः जगती पतिः	क्षत्रिय पृथ्वी पति (हो जाता है)		

त्रिकृत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यथवाऽऽदृता ।
अप्रजः सुप्रजतमो निर्धनो धनवत्तमः ॥३३॥

त्रिकृत्वः इदं आकर्ण्य नरः नारी अथवा आदृता अप्रजः सुप्रजतमः निर्धनः धनवत्तमः ॥३३॥

नरः	पुरुष	**अप्रजः**	सन्तानहीन
अथवा नारी	अथवा स्त्री	**सुप्रजतमः**	श्रेष्ठ सन्तान वाला
आदृता	आदर पूर्वक	**निर्धनः**	धनहीन
त्रिकृत्वः	तीन बार	**धनवत्तमः**	महाधनी (हो जाता
इदं	इस (पृथु चरित्र) को		है) ॥३३॥
आकर्ण्य	सुनकर		

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ।
इदं स्वस्त्ययनं पुंसाममङ्गल्यनिवारणम् ॥३४॥

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खः भवति पण्डितः इदं स्वस्त्ययनं पुंसां अमङ्गल्यनिवारणं ॥३४॥

अस्पष्ट कीर्तिः	कीर्तिहीन	**स्वस्त्ययनं**	कल्याणकारी है
सुयशा	उत्तम यशस्वी	**पुंसां**	सभी मनुष्योंके
मूर्खः	मूर्ख	**अमङ्गल्य-**	अमङ्गलको
पण्डितः भवति	पण्डित हो जाता है	**निवारणं**	दूर करनेवाला
इदं	यह (पृथु चरित)		है ॥३४॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक्सिद्धिमभीप्सुभिः ।
श्रद्धयैतदनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परम् ॥३५॥

धन्यं शयस्यं आयुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहं धर्म अर्थ काम मोक्षाणां सम्यक् सिद्धि अभीप्सुभिः श्रद्धया एतत् अनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परं ॥३५॥

धन्यं	धन देनेवाला है	सम्यक्	भली भाँति
यशस्यं	यश देने वाला है	सिद्धि	
आयुष्यं	आयुकी वृद्धि करने-वाला है	अभीप्सुभिः	सिद्धि चाहने वालों-को
स्वर्ग्यं	स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला	एतत् श्रद्धया अनुश्राव्यं	यह इसका श्रद्धामें श्रवण करना चाहिए
कलिमलापहं	कलिके दोषोंका नाश करनेवाला है	चतुर्णां परम् कारणं	चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्तिमें यह परम हेतु है ॥३५॥
धर्म अर्थ काम मोक्षाणां	धर्म अर्थ काम और मोक्षको		

विजयाभिमुखो राजा श्रुत्वैतदभियाति यान् ।
बलिं तस्मै हरन्त्यग्रे राजानः पृथवे यथा ॥३६॥

विजय अभिमुखः राजा श्रुत्वा एतत् अभियाति यान् बलिं तस्मै हरन्ति अग्रे राजानः पृथवे यथा ॥३६॥

विजय अभिमुखः	विजयके लिए प्रस्थान करनेवाला	राजानः अग्रे	(वे) राजा लोग (उसके) आगे आकर
राजा	राजा	तस्मै	उसके लिए
एतत् श्रुत्वा	इस (चरित्र) को सुनकर	बलिं हरन्ति	(उसी प्रकार) भेंट देते हैं
यान् अभियाति	जिनपर चढ़ाई करता है	यथा पृथवे	जैसे महाराज पृथुको देते थे ॥३६॥

मुक्तान्यसङ्गो भगवत्यमलां भक्तिमुद्वहन् ।
वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्पठेत् ॥३७॥

मुक्त अन्यसङ्गः भगवति अमलां भक्तिं उद्वहन् वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयात् श्रावयेत् पठेत् ॥३७॥

मुक्त अन्यसङ्गः	अन्य सब प्रकारकी आसक्ति छोड़कर	वैन्यस्य	महाराज पृथुके
		पुण्यं चरितं	पवित्र चरित्रको
भगवति	भगवान्‌में	शृणुयात्	सुने,
अमलां भक्तिं	विशुद्ध (निष्काम) भक्ति-भावको	श्रावयेत्	सुनावे
		पठेत्	(और) पढ़े ॥३७॥
उद्वहन्	रखते हुए		

वैचित्रवीर्याभिहितं महन्माहात्म्यसूचकम् ।
अस्मिन् कृतमतिर्मर्त्यः पार्थवीं गतिमाप्नुयात् ॥३८॥

वैचित्र वीर्य अभिहितं महत् माहात्म्य सूचकं अस्मिन् कृतमतिः मर्त्यः पार्थवीं गतिम् आप्नुयात् ॥३८॥

वैचित्र वीर्य	विचित्र वीर्यके पुत्र (विदुर)	अस्मिन्	इस (चरित्र) में
		कृतमतिः	प्रेम करनेवाला
महत् माहात्म्य सूचकं	भगवान्‌की महिमाको प्रकट करनेवाला	मर्त्यः	मनुष्य
		पार्थवीं गतिं	महाराज पृथुकी-सी गतिको
अभिहितं	(यह) तुम्हें सुना दिया	आप्नुयात्	प्राप्त होता है ॥३८

अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन्
पृथुचरितं प्रथयन् विमुक्तसङ्गः ।
भगवति भवसिन्धुपोतपादे
स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः ॥३९॥

अनुदिनं इदं आदरेण शृण्वन् पृथुचरितं प्रथयन् विमुक्तसङ्गः भगवति भवसिन्धु पोतपादे स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः ॥३९॥

अनुदिनं	प्रति दिन	**पोतपादे**	जिनके चरण संसार सागरपार करनेके लिए नौकाके समान है
इदं पृथुचरितं	इस पृथु चरितका		
आदरेण	आदर पूर्वक		
विमुक्तसङ्गः	निष्काम भावसे (जो)	**भगवति**	(उन) श्रीहरिमें
शृण्वन्	श्रवण करता है	**स च मनुष्यः**	यह मनुष्य
प्रथयन्	(और) कीर्तन करता है	**निपुणां**	सुदृढ
		रतिं	अनुराग
भवसिन्धु		**लभते**	प्राप्त करता है ॥३९

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

विजिताश्वोऽधिराजाऽऽसीत्पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः ।
यवीयोभ्योऽददात्काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः ॥१॥

विजिताश्वः अधिराजा आसीत् पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः यवीयेभ्यः अददात् काष्ठा भ्रातृभ्यः भ्रातृवत्सलः ॥१॥

पृथुश्रवाः	परम यशस्वी	भ्रातृवत्सलः	भाइयोंपर प्रेम करने वाले (उन्होंने)
पृथुपुत्रः	पृथुके पुत्र	यवीयेभ्यः	छोटे
विजिताश्वः	विजिताश्व नामवाले	भ्रातृभ्यः	भाइयोंको
अधिराजा		काष्ठा	चारों दिशाओंका अधिकार
आसीत्	राजा हुए	अददात्	दे दिया ॥१॥

हर्यक्षायादिशत्प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम् ।
प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यां द्रविणसे विभुः ॥२॥

हर्यक्षाय अदिशत् प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम् प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्या द्रविणसे विभुः ॥२॥

विभुः	समर्थ (विजिताश्व) ने	दक्षिणां	दक्षिणका
हर्यक्षाय	हर्यक्षको	वृकसंज्ञाय	वृक नामवाले (भाई) को
प्राचीं	पूर्व दिशाका	प्रतीचीं	पश्चिम
धूम्रकेशाय	धूम्रकेशको	द्रविणसे	(और) द्रविणसको

तुर्या	चौथी (उत्तर दिशा) को	अदिशत्	(राज्य करनेका) आदेश किया ॥२॥

अन्तर्धानगतिं शक्राल्लब्ध्वान्तर्धानसंज्ञितः ।
अपत्यत्रयमाधत्त शिखण्डिन्यां सुसम्मतम् ॥३॥

अन्तर्धानगतिं शक्रात् लब्ध्वा अन्तर्धान संज्ञितः अपत्यत्रयं आधत्त शिखण्डिन्यां सुसम्मतम् ॥३॥

शक्रात्	इन्द्रसे	शिखण्डिन्यां	शिखण्डिनी (नामकी अपनी पत्नी) में
अन्तर्धानगतिं	अन्तर्धान होनेकी शक्ति	सुसम्मतं	श्रेष्ठतम
लब्ध्वा	प्राप्त करके	अपत्यत्रयं	तीन पुत्रोंका
अन्तर्धान संज्ञितः	अन्तर्धान नामवाले (विजिताश्व)	आधत्त	आधान किया (जन्म दिया) ॥३॥

पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा ।
वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः ॥४॥

पावकः पवमानः च शुचिः इति अग्नयः पुरा वसिष्ठशापात् उत्पन्नाः पुनः योग गतिं गताः ॥४॥

पावकः	पावक	वसिष्ठशापात्	वसिष्ठके शापसे
पवमानः च	पवमान और	उत्पन्नाः	जन्म लिया था
शुचिः	शुचि (ये)	पुनः	फिर
इति	इस प्रकार	योग गतिं	योग-मार्गसे
अग्नयः	अग्नियोंने ही	गताः	(अपने अग्निरूपको) प्राप्त हो गये ॥४॥
पुरा	पूर्वकालमें		

अन्तर्धानो नभस्वत्यां हविर्धानमविन्दत ।
य इन्द्रमश्वहर्तारं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥५॥

अन्तर्धानः नभस्वत्यां हविर्धानं अविन्दत यः इन्द्रं अश्व हर्तारं विद्वान् अपि न जघ्निवान् ॥५॥

अन्तर्धानः	अन्तर्धानने	**अश्व हर्तारं**	(अपने पिताके यज्ञके) अश्वको हरण करनेवाले
नभस्वत्यां	नभस्वति (नामकी पत्नी) में	**इन्द्रं**	इन्द्रको
हविर्धानं	हविर्धान (नामक पुत्रको)	**विद्वान् अपि**	जानते हुए भी
अविन्दत	प्राप्त किया	**न जघ्निवान्**	मारा नहीं ॥५॥
यः	जिसने		

राज्ञां वृत्तिं करादानदण्डशुल्कादिदारुणाम् ।
मन्यमानो दीर्घसत्रव्याजेन विससर्ज ह ॥६॥

राज्ञां वृत्तिं करादान दण्ड शुल्कादि दारुणां मन्यमानः दीर्घसत्र व्याजेन विससर्ज ह ॥६॥

करादान	कर लेना	**दीर्घसत्र**	
दण्ड शुल्कादि	जुर्माना, मूल्य लेना आदि	**व्याजेन**	दीर्घ कालीन यज्ञके बहानेसे
राज्ञां वृत्तिं	राजाओंकी वृत्तिको	**ह विससर्ज**	सर्वथा छोड़ दिया ॥६॥
दारुणां	कठोर		
मन्यमानः	मानते हुए		

तत्रापि हंसं पुरुषं परमात्मानमात्मदृक् ।
यजंस्तल्लोकतामाप कुशलेन समाधिना ॥७॥

तत्र अपि हंसं पुरुषं परमात्मानं आत्मदृक् यजन् तत् लोकतां आप कुशलेन समाधिना ॥७॥

तत्र अपि	उस (यज्ञ कार्य) में (लगे रहनेपर) भी	**कुशलेन समाधिना**	निपुण समाधिके द्वारा
आत्मदृक्	आत्मदर्शीने	**तत् लोकतां**	उनके लोकको
हंसं पुरुषं	हंस स्वरूप पुरुष	**आप**	प्राप्त किया ॥७॥
परमात्मानं	परमात्माकी		
यजन्	आराधना करते हुए		

हविर्धानाद्धविर्धानी विदुरासूत षट् सुतान् ।
बर्हिषदं गयं शुक्लं कृष्णं सत्यं जितव्रतम् ॥८॥

हविर्धानात् हविर्धानी विदुर असूत षट् सुतान् बर्हिषदं गयं शुक्ल कृष्णं सत्यं जितव्रतं ॥८॥

विदुर	हे विदुरजी !	कृष्णं	कृष्ण
हविर्धानी	हविर्धानीने	सत्यं	सत्य
हविर्धानात्	हविर्धानिसे	जितव्रतं	(और) जितव्रत (ये)
बर्हिषदं	बर्हिषद	षट् सुतान्	छै पुत्रोंको
गयं	गय	असूत	जन्म दिया ॥८॥
शुक्लं	शुक्ल		

बर्हिषत् सुमहाभागो हाविर्धानिः प्रजापतिः ।
क्रियाकाण्डेषु निष्णातो योगेषु च कुरूद्वह ॥९॥

बर्हिषत् सुमहाभागः हाविर्धानिः प्रजापतिः क्रियाकाण्डेषु निष्णातः योगेषु च कुरूद्वह ॥९॥

कुरूद्वह	कुरु श्रेष्ठ (विदुर)	क्रियाकाण्डेषु	(यज्ञ आदि) कर्म-काण्डमें
हाविर्धानिः	हविर्धानीके पुत्र	च योगेषु	और योगाभ्यासमें
सुमहाभागः	महाभाग्यवान्	निष्णातः	कुशल थे ॥९॥
प्रजापतिः	प्रजापति		
बर्हिषत्	बर्हिषत्		

यस्येदं देवयजनमनु यज्ञं वितन्वतः ।
प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुधातलम् ॥१०॥

यस्य इदं देवयजनं अनु यज्ञं वितन्वतः प्राचीनाग्रैः कुशैः आसीत् आस्तृतं वसुधातलम् ॥१०॥

यस्य	जिनके	अनु यज्ञं	एकके बाद दूसरा यज्ञ
देवयजनं	देवाराधनके लिए		

वितन्वतः	विस्तार करते हुए	कुशैः	कुशोंसे
इदं वसुधातलं	यह सम्पूर्ण पृथ्वी	आस्तृतं आसीत्	ढँक गयी ॥१०॥
प्राचीनाग्रैः	पूर्वकी ओर अग्र भाग करके फैलाये गये		

सामुद्रीं देवदेवोक्तामुपयेमे शतद्रुतिम् ।
यां वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गीं किशोरीं सुष्ठ्वलङ्कृताम् ।
परिक्रमन्तीमुद्वाहे चकमेऽग्निः शुकीमिव ॥११॥

सामुद्रीं देव देवोक्तां उपयेमे शतद्रुतिं यां वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गीं किशोरीं सुष्ठु अलंकृतां परिक्रमन्तीं उद्वाहे चकमे अग्निः शुकीं इव ॥११॥

देव देवोक्तां	ब्रह्माजीके कहनेपर	उद्वाहे	विवाहके समय
सामुद्रीं	समुद्रकी कन्या	परिक्रमन्तीं	(अग्निकी) परिक्रमा करती हुई
शतद्रुतिं	शतद्रुतिसे	वीक्ष्य	देखकर
उपयेमे	विवाह किया	अग्निः	अग्निदेव
यां	जिस	चकमे	(ऐसे) चाहने लगे
चारुसर्वाङ्गीं	सर्वाङ्ग सुन्दरी	शुकीं इव	जैसे शुकीको देखकर (मोहित हो गये थे) ॥११॥
किशोरीं	किशोरी		
सुष्ठु अलंकृताम्	भली प्रकार अलंकृताको		

विबुधासुरगन्धर्वमुनिसिद्धनरोरगाः ।
विजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयन्त्यैव नूपुरैः ॥१२॥

विबुध असुर गन्धर्व मुनि सिद्ध नर उरगाः विजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयन्त्या एव नूपुरैः ॥१२॥

नूपुरैः	नूपुरोंकी	दिक्षु	दिशाओंके
क्वणयन्त्या एव	झंकारसे ही	विबुध	देवता,
सूर्यया	(उस) नवविवाहिताने	असुर	असुर,
		गन्धर्व	गन्धर्व,

मुनि	मुनि,	उरगाः	नागोंको
सिद्ध	सिद्ध,	विजिताः	जीत लिया ॥१२॥
नर	मनुष्य (और)		

प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दशाभवन् ।
तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥१३॥

प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दश अभवन् तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥१३॥

शतद्रुत्यां	शतद्रुतिकेसे	धर्मस्नाताः	धर्मज्ञ
प्राचीनबर्हिषः	प्राचीन बर्हिके	तुल्यनाम-	(वे) एकसे नाम
दश पुत्राः	दशपुत्र	व्रताः	(और) आचरणवाले
अभवन्	हुए	प्रचेतसः	प्रचेता
सर्वे	वे सब		(कहलाये, ॥१३॥

पित्राऽऽदिष्टाः प्रजासर्गे तपसेऽर्णवमाविशन् ।
दशवर्षसहस्राणि तपसाऽऽर्चंस्तपस्पतिम् ॥१४॥

पित्रा आदिष्टाः प्रजासर्गे तपसे अर्णवम् आविशन् दशवर्षसहस्राणि तपसा आर्चन् तपस्पतिम् ॥१४॥

प्रजासर्गे	सन्तान उत्पन्न करनेके लिए	दशवर्ष-सहस्राणि	दश हजार वर्ष तक
पित्रा	पिताका	तपसा	तप करते हुए
आदिष्टाः	आदेश पाकर	तपस्पतिम्	तपके स्वामी (श्री हरि) की
तपसे	तपस्या करनेके लिए	आर्चन्	आराधना की ॥१४
अर्णवं	समुद्रमें		
आविशन्	(उन सबने) प्रवेश किया (और)		

यदुक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता ।
तद्ध्यायन्तो जपन्तश्च पूजयन्तश्च संयताः ॥१५॥

यत् उक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता तत् ध्यायन्तः जपन्तः च पूजयन्तः च संयताः ॥१५॥

प्रसीदता	प्रसन्न होकर	**संयताः**	एकाग्र होकर
पार्थ दृष्टेन	मार्गमें दर्शन देनेवाले	**ध्यायन्तः**	ध्यान करते
गिरिशेन	श्रीमहादेवजीने	**च पयन्तः**	और जप करते
यत् उक्तं	जो बतलाया	**च पूजयन्तः**	तथा पूजन करते
तत्	उसीका		रहे ॥१५॥

विदुर उवाच-

प्रचेतसां गिरित्रेण यथाऽऽसीत्पथि सङ्गमः ।
यदुताह हरः प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन् वदार्थवत् ॥१६॥

प्रचेतसां गिरित्रेण यथा आसीत् पथि सङ्गमः यत् उत आह हरः प्रीतः तत् नः ब्रह्मन् वद अर्थवत् ॥१६॥

पथि	मार्गमें	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
प्रचेतसां	प्रचेताओंका	**यत्**	जो
गिरित्रेण	श्रीमहादेवजीके साथ	**आह**	(उन्हें) कहा था
		ब्रह्मन्	हे ब्रह्म ऋषि !
यथा	जिस प्रकार	**अर्थवत्**	सारयुक्त
सङ्गमः	मिलन	**तत्**	वह
आसीत्	हुआ था	**नः**	मुझको
उत	और	**वद**	बतलाइये ॥१६॥
हरः	श्रीमहादेवजीने		

सङ्गमः खलु विप्रर्षे शिवेनेह शरीरिणाम् ।
दुर्लभो मुनयो दध्युरसङ्गाद्यमभीप्सितम् ॥१७॥

सङ्गमः खलु विप्रर्षे शिवेन इह शरीरिणां दुर्लभः मुनयः दध्युः असङ्गात् यं अभीप्सितम् ॥१७॥

विप्रर्षे	विप्रश्रेष्ठ !	दुर्लभः	दुर्लभ है ।
इह	इस लोकमें	मुनयः	मुनिजन
शरीरिणां	देह धारियोंके लिए	असङ्गात्	असंगतासे भी
शिवेन	श्रीमहादेवजीसे	यं	जिसे
सङ्गमः	मिलने	अभीप्सितं	परम प्राप्य
खलु	निश्चय ही	दध्युः	मानते हैं ॥१७॥

आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे ।
शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान् भवः ॥१८॥

आत्मारामः अपि यः तु अस्य लोककल्पस्य राधसे शक्त्या युक्तः विचरति घोरया भगवान् भवः ॥१८॥

यः आत्मारामः	जो आत्माराम	राधसे	रक्षाके लिए
अपि	होकर भी	घोरया	घोर रूप वाली
भगवान् भवः	भगवान् शंकर तो	शक्त्या युक्तः	शक्ति (शिवा) के साथ
अस्य	इस		
लोककल्पस्य	लोक-सृष्टिकी	विचरति	घूमते रहते हैं ॥१८॥

मैत्रेय उवाच–

प्रचेतसः पितुर्वाक्यं शिरसाऽऽदाय साधवः ।
दिशं प्रतीचीं प्रययुस्तपस्याहृतचेतसः ॥१९॥

प्रचेतसः पितुः वाक्यं शिरसा आदाय साधवः दिशं प्रतीचीं प्रययुः तपसि आहृत चेतसः ॥१९॥

साधवः	साधु स्वभाववाले	आहृत चेतसः	चित्तका आदर होनेसे
प्रचेतसः	प्रचेतागण	प्रतीचीं दिशं	पश्चिम दिशाकी ओर
पितुः वाक्यं	पिताकी आज्ञाको		
शिरसा आदाय	शिरोधार्यकर	प्रययुः	चले गये ॥१९॥
तपसि	तपस्यामें		

समुद्रमुप विस्तीर्णमपश्यन् सुमहत्सरः ।
महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाशयम् ॥२०॥

समुद्रं उप विस्तीर्णं अपश्यन् सुमहत् सरः महत् मन इव स्वच्छं प्रसन्न सलिलाशयं ॥२०॥

समुद्रं उप	समुद्रके समीप	महत् मन इव	(वह) सज्जनोंके मनके समान
विस्तीर्णं	विशाल	प्रसन्न	निर्मल-
सुमहत्	अत्यन्त महान्	सलिलाशयं	जलसे भरा था ॥२०
सरः	सरोवर		
अपश्यन्	(उन्होंने) देखा		

नीलरक्तोत्पलाम्भोजकह्लारेन्दीवराकरम् ।
हंससारसचक्राह्वकारण्डवनिकूजितम् ॥२१॥

नील रक्त उत्पल अम्भोज कह्लार इन्दीवर आकरम् हंस सारस चक्राह्व कारण्डव निकूजितम् ॥२१॥

नील रक्त		हंस	हंस,
उत्पल	नीले, लाल, श्वेत,	सारस	सारस,
अम्भोज		चक्राह्व	चक्रवाक् (चकवा),
कह्लार	गुलाबी कमल,	कारण्डव	टिटिहरी (आदि
इन्दीवर	नील कमलिनी		पक्षियों) के
आकरम्	से भरा था	निकूजितं	कूजनसे पूर्ण था ॥२१

मत्तभ्रमरसौस्वर्यहृष्टरोमलताङ्घ्रिपम् ।
पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपत्पवनोत्सवम् ॥२२॥

मत्त भ्रमर सौस्वर्य हृष्ट रोम लताङ्घ्रिपं पद्मकोश रजः दिक्षु विक्षिपत् पवनोत्सवं ॥२२॥

मत्त भ्रमर सौस्वर्य	मतवाले भ्रमरोंके सुन्दर स्वरोंसे
लताङ्घ्रिपं	वृक्ष और लताओंके
हृष्ट रोम	मानो रोमाञ्च हो रहे थे,
पद्मकोश रजः	कमलकोषके परागको
दिक्षुः विक्षिपत्	दिशाओंमें फैलाते हुए
पवनोत्सवं	वायुका उत्सव हो रहा था ॥२२॥

तत्र गान्धर्वमाकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरम् ।
विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते मृदङ्गपणवाद्यनु ॥२३॥

तत्र गान्धर्वं आकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरं विसिस्म्यू राजपुत्राः ते मृदङ्ग पणवादि अनु ॥२३॥

तत्र	वहां
मृदङ्ग पणवादि अनु	मृदङ्ग, नगाड़े आदि बाजोंके साथ
दिव्यमार्ग-मनोहरं	दिव्य राग-राग-नियोंसे मनोहर
गान्धर्वं आकर्ण्य	गायनको सुनकर
ते राजपुत्राः	वे राजकुमार
विसिस्म्यू	चकित हो गये ॥२३

तर्ह्येव सरसस्तस्मान्निष्क्रामन्तं सहानुगम् ।
उपगीयमानममरप्रवरं विबुधानुगैः ॥२४॥

तर्हि एव सरसः तस्मात् निष्क्रामन्तं सहानुगं उपगीयमानं अमर प्रवरं विबुधानुगैः ॥२४॥

तर्हि एव	उसी समय
तस्मात् सरसः	उस सरोवरसे
सहानुगं	सेवकोंके साथ
निष्क्रामन्तं	निकलते हुए
विबुधानुगैः	देवताओंके सेवकों द्वारा
उपगीयमानं	यशगान किये जाते
अमर प्रवरं	देवताओंमें श्रेष्ठ ॥२४॥

तप्तहेमनिकायाभं शितिकण्ठं त्रिलोचनम् ।
प्रसादसुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥२५॥

तप्त हेम निकायभं शितिकण्ठं त्रिलोचनं प्रसाद सुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुः जातकौतुकाः ॥२५॥

तप्त हेम निकायभं	तपायी हुई स्वर्ण-राशिके समान कान्तिवाले	प्रसाद सुमुखं	कृपासे प्रसन्न मुख
		वीक्ष्य	(भगवान् शङ्करको) देखकर
		जातकौतुकाः	कुतूहलसे भरे हुए
शितिकण्ठं	नीलकण्ठ	प्रणेमुः	(राजकुमारोंने) प्रणाम किया ॥२५॥
त्रिलोचनं	त्रिलोचन		

स तान् प्रपन्नार्तिहरो भगवान्धर्मवत्सलः ।
धर्मज्ञान् शीलसम्पन्नान् प्रीतः प्रीतानुवाच ह ॥२६॥

स तान् प्रपन्नार्ति हरः भगवान् धर्मवत्सलः धर्मज्ञान् शीलसम्पन्नान् प्रीतः प्रीतान् उवाच ह ॥२६॥

प्रपन्नार्ति हरः	शरणागत भयहारी	धर्मज्ञान्	धर्मज्ञ
धर्मवत्सलः	धर्म सेवात्सल्य रखनेवाले	शीलसम्पन्नान्	शील सम्पन्न (उन राजकुमार) से
प्रीतः	प्रसन्न होकर	ह	निश्चय पूर्वक
सः भगवान्	वे भगवान् (शङ्कर)	उवाच	बोले ॥२६॥
प्रीतान्	(अपने दर्शनोंसे) प्रसन्न हुए		

श्रीरुद्र उवाच—

यूयं वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षितम् ।
अनुग्रहाय भद्रं व एवं मे दर्शनं कृतम् ॥२७॥

यूयं वेदिषदः पुत्राः विदितं वः चिकीर्षितं अनुग्रहाय भद्रं वः एवं मे दर्शनं कृतं ॥२७॥

यूयं	तुम सब	वः भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो
वेदिषदः पुत्राः	प्राचीन वर्हिके पुत्र हो	एवं	इस प्रकार
		अनुग्रहाय	तुमपर कृपा करनेके लिए
वः चिकीर्षितं	तुम सब जो करना चाहते हो	मे दर्शनं कृतं	मैंने दर्शन दिया है ॥२७॥
विदितं	वह जानता हूँ		

यः परं रंहसः साक्षात्त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात् ।
भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे ॥२८॥

यः परं रंहसः साक्षात् त्रिगुणात् जीव संज्ञितात् भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियः हि मे ॥२८॥

यः	जो	भगवन्तं	
त्रिगुणात् रंहसः	तीन गुणों वेगवाली (प्रकृति) से	वासुदेवं	भगवान् वासुदेवकी
		साक्षात् प्रपन्नः	साक्षात् शरण लेता है ।
जीव संज्ञितात्	जीव संज्ञकसे		
परं	परे	स हि मे	वह निश्चिय मुझे
		प्रियः	प्रिय है ॥२८॥

स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्
विरिञ्चतामेति ततः परं हि माम् ।
अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं
पदं यथाहं विबुधाः कलात्यये ॥२९॥

स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान् विरिञ्चतामेति ततः परं हि मां अव्याकृतं भागवतः अथ वैष्णवं पदं यथा अहं विबुधाः कला अत्यये ॥२९॥

स्वधर्मनिष्ठः	अपने (वर्णाश्रम) धर्मका भली-भाँति निष्ठावान	**मां**	मुझे प्राप्त करता है
		अथ भागवतः	किन्तु जो भगवद् भक्त है
पुमान्	पुरुष	**अव्याकृतं**	(वह) अविनाशी
शतजन्मभिः	सौ जन्मोंके बाद	**वैष्णवं पदं**	विष्णु-पद (वैकुण्ठ) जाता है
विरिञ्चता			
मेति	ब्रह्माके पदको प्राप्त करता है।	**यथा अहं**	जैसे मैं (तथा)
		विबुधाः	देवता
हि ततः परं	और इससे भी अधिक पुण्य होनेपर	**कला अत्यये**	कल्पान्तसे (प्रलयके समय पावेंगे ॥२९॥

अथ भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान् यथा।
न मद्भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥३०॥

अथ भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान् यथा न मत् भागवतानां च प्रेयान् अन्यः अस्ति कर्हिचित् ॥३०॥

अथ	क्योंकि	**च भागवतानां**	और भगवद् भक्तों-को
यूयं भागवता	तुम सब भगवान्के भक्त हो	**मत् अन्यः**	मुझसे अतिरिक्त
यथा भगवान्		**कर्हिचित्**	कोई भी
प्रियाः स्थ	जैसे (मुझे) भगवान प्यारे हैं	**प्रेयान् न अस्ति**	अतिप्रिय नहीं होता ॥३०॥

इदं विविक्तं जप्तव्यं पवित्रं मङ्गलं परम्।
निःश्रेयसकरं चापि श्रूयतां तद्वदामि वः ॥३१॥

इदं विविक्तं जप्तव्यं पवित्रं मङ्गलं परं निःश्रेयसकरं च अपि श्रूयतां तत् वदामि वः ॥३१॥

इदं पवित्रं	यह बड़ा ही पवित्र	**जप्तव्यं**	जयनीय (स्तोत्र) है
परं मङ्गलं	परम मङ्गलमय	**अपि श्रूयतां**	इसे सुनो
च निःश्रेयसकरं	और कल्याणकारी		

तत् वः वदामि	वह तुमको बतलाता हूँ	**विविक्तं**	इसे एकाग्र चित्तसे (जप करना)॥३१॥

मैत्रेय उवाच–

इत्यनुक्रोशहृदयो भगवानाह ताञ्शिवः ।
बद्धाञ्जलीन् राजपुत्रान्नारायणपरो वचः ॥३२॥

इति अनुक्रोश हृदयः भगवान् आह तान् शिवः बद्ध अञ्जलिनान् राजपुत्रान् नारायणपरः वचः ॥३२॥

इति	इस प्रकार	**राजपुत्रान्**	राज पुत्रोंको
अनुक्रोश हृदयः	करुणापूर्ण हृदयवाले	**नारायणपरः**	नारायण-परायण
भगवान् शिवः	भगवान् शंकरने	**वचः आह**	वाणी (स्तोत्र) सुनाया ॥३२॥
बद्ध अञ्जलिनान्	हाथ जोड़कर खड़े हुए		

श्रीरुद्र उवाच–

जितं त आत्मविद्धुर्यस्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे ।
भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥३३॥

जितं ते आत्मविद्धुर्य स्वस्तये स्वस्तिः अस्तु मे भवता राधसा राद्धं सर्वस्मै आत्मने नमः ॥३३॥

ते जितं	(भगवान) आपकी जय हो	**स्वस्तये**	कल्याणके लिए
		मे	मेरा
आत्मविद्-	आत्मज्ञानियोंमें	**स्वस्तिः**	कल्याण
धुर्य	श्रेष्ठोंके	**अस्तु**	हो*

---

* आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सनकादि मेरा ही आश्रय लेते हैं, अतः उनके कल्याणके लिए मेरा कल्याण हो ।

भवता	आप	आत्मने नमः	आत्मस्वरूप (आपको) नमस्कार ॥३३॥
राधसा	आराधनीयोंके (भी)		
राद्धं	आराधनीय है		
सर्वस्मै	सबके		

नमः पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने ।
वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥३४॥

नमः पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्म इन्द्रिय आत्मने वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥३४॥

पङ्कजनाभाय	पद्मनाभ (कारण) है ।	कूटस्थाय	कूटस्थ (संसारमें व्यापक होकर स्थित)
भूतसूक्ष्म	तन्मात्राएँ	स्वरोचिषे	स्वयं प्रकाश
इन्द्रिय आत्मने	इन्द्रियोंके नियामक (आप)	वासुदेवाय	हृषीकेश
शान्ताय	शान्त स्वरूप	नमः	(आपको) नमस्कार ॥३४॥

सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च ।
नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥३५॥

सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्ताय अन्तकाय च नमः विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नाय अन्तरात्मने ॥३५॥

सूक्ष्माय	आप ही सूक्ष्म (अव्यक्त)	विश्वप्रबोधाय	संसारके ज्ञानके दाता
दुरन्ताय	दुरन्त	अन्तरात्मने	बुद्धिके अधिष्ठाता
च अन्तकाय	और काल-स्वरूप संहार करनेवाले	प्रद्युम्नाय	प्रद्युम्न स्वरूप
सङ्कर्षणाय	संकर्षण स्वरूप तथा	नमः	आपको नमस्कार ॥३५॥

नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने ।
नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥३६॥

नमो नमः अनिरुद्धाय हृषीकेश इन्द्रिय आत्मने नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृत आत्मने ॥३६॥

इन्द्रिय आत्मने	इन्द्रियोंकी आत्मा (शक्ति)	**परमहंसाय**	परम हंस (सूर्यरूप)
हृषीकेश	हृषीकेश	**पूर्णाय**	परिपूर्ण
अनिरुद्धाय	अनिरुद्ध स्वरूप	**निभृत आत्मने**	अक्षय आत्मस्वरूप
नमो नमः	आपको बार-बार नमस्कार	**नमः**	आपको नमस्कार ॥३६॥

स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः ।
नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥३७॥

स्वर्ग अपवर्ग द्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः नमः हिरण्य वीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥३७॥

स्वर्ग	स्वर्ग	**चातुर्होत्राय**	चातुर्होत्र (यज्ञ) कर्मकी साधन
अपवर्ग	मोक्षके	**तन्तवे**	परम्पराके आधार (नग्नि है)
द्वाराय	द्वार	**नमः**	आपको नमस्कार ॥३७॥
नित्यं शुचिषदे	निरन्तर पवित्र हृदयमें रहने		
नमः	आपको नमस्कार		
हिरण्य वीर्याय	सुवर्ण युक्त वीर्यसे मुक्त (आप)		

नम ऊर्जे इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे ।
तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥३८॥

नमः ऊर्जे इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरस आत्मने ॥३८॥

ऊर्जे	पितरों (तथा)	**त्रय्याः पतये**	तीनों वेदोंके स्वामी
इषे	देवताओंके पोषक (सोमरूप)	**नमः**	आपको नमस्कार
		च	तथा

जीवानां तृप्तिदाय	प्राणियोंको तृप्ति-देनेवाले	**सर्वरस आत्मने नमः**	सर्वरस (जल) रूप आपको नमस्कार ॥३८॥

सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे ।
नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलाय च ॥३९॥

सर्वसत्व आत्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे नमः त्रैलोक्यपालाय सह ओजः बलाय च ॥३९॥

सर्वसत्व आत्मदेहाय	समस्त प्राणियोंके आत्मा और शरीर (रूप)	**सह ओजः च बलाय**	मानसिक बल ऐन्द्रिक बल और शारीरिक शक्ति (वायु) स्वरूप
विशेषाय	पृथ्वी रूप		
स्थवीयसे	विराट् स्वरूप	**नमः**	आपको नमस्कार ॥३९॥
त्रैलोक्यपालाय	त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले		

अर्थलिङ्गाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने ।
नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥४०॥

अर्थ लिङ्गाय नभसे नमः अन्तः बहिः आत्मने नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥४०॥

अर्थ लिङ्गाय	अर्थके चिह्न (शब्द) के	**पुण्याय लोकाय**	पवित्र (स्वर्गादि) लोक स्वरूप (तथा)
नभसे	(आधार) आकाश-रूप	**अमुष्मै भूरिवर्चसे**	उन (लोकों) की अत्यन्त तेस्वितारूप
अन्तः बहिः आत्मने	बाहर-भीतर (के) आधार	**नमः**	आपको नमस्कार ॥४०॥

प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे ।
नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥४१॥

प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृ देवाय कर्मणे नमः अधर्म विपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥४१॥

पितृ	पितरोंके लिए (संतान परंपरा बनाये रखनेको)	**अधर्म विपाकाय**	अधर्मके परिणाम रूप
प्रवृत्ताय	प्रवृत्तिरूप (तथा)	**दुःखदाय**	दुःख देनेवाले
देवाय	देवताओंके लिए	**च**	तथा
निवृताय	निवृत्ति रूप	**मृत्यवे**	मृत्यु रूप
कर्मणे	कर्म स्वरूप	**नमः**	आपको नमस्कार ॥४१॥

नमस्त आशिषामीश मनवे कारणात्मने ।
नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥४२॥

नमः ते आशिषां ईश मनवे कारण आत्मने नमः धर्माय बृहते कृष्णाय अकुण्ठ मेधसे पुरुषाय पुराणाय सांख्य-योग ईश्वराय च ॥४२॥

आशिषां ईश ते कारण	ईप्सितोंके स्वामी	**पुराणाय**	सनातन
आत्मने	आप कारण स्वरूप	**पुरुषाय**	पुरुष
मनवे	आदि मनुको	**च**	तथा
नमः	नमस्कार	**सांख्य-योग**	सांख्य (तत्त्व-ज्ञान) तथा योग (साधन) के
बृहते	महान्		
धर्माय	धर्म स्वरूप	**ईश्वराय**	स्वामी
अकुण्ठ मेधसे	अकुंठित प्रज्ञावाले	**नमः**	आपको नमस्कार ॥४२॥
कृष्णाय	श्रीकृष्ण		

शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने ।
चेतआकूतिरूपाय नमो वाचोविभूतये ॥४३॥

शक्तित्रय समेताय मीढुषे अहंकृत आत्मने चेत आकूति रुपाय नमः वाचः विभूतये ॥४३॥

शक्तित्रय	तीनों (उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय) शक्तियोंसे
समेताय	भली प्रकार मुक्त
अहंकृत आत्मने	अहंकारके अधिष्ठाता
मीढुषे	रुद्ररूप
चेत आकूति	ज्ञान और क्रिया स्वरूप हैं
वाचः	वाणीके
विभूतये	वैभव (विद्या) है
नमः	आपको नमस्कार ॥४३॥

दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् ।
रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् ॥४४॥

दर्शनं नः दिदृक्षूणां देहि भागवत अर्चितम् रूपं प्रियतमं स्वानां सर्व इन्द्रिय गुणाञ्जनम् ॥४४॥

भागवत	भक्तों द्वारा
अर्चितं	पूजित
स्वानां	अपने जनोंको
प्रियतमं	अत्यन्त प्रिय
सर्व इन्द्रिय	सभी इन्द्रियोंके
गुणाञ्जनं	गुणोंसे तृप्त करनेवाले
रूपं	(अपने) रूपका
नः	हम
दिदृक्षूणां दर्शनं देहि	दर्शनोत्सुकोंको दर्शन दीजिए ॥४४॥

स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसंग्रहम् ।
चार्वायतचतुर्बाहुं सुजातरुचिराननम् ॥४५॥

स्निग्धं प्रावृड् घनश्यामं सर्वसौन्दर्य संग्रहं चारु आयत चतुर्बाहुं सुजात रुचिर आननं ॥४५॥

प्रावृड्	वर्षाकालीन
स्निग्ध	सुचिक्कन
घनश्यामं	मेघके समान श्याम
सर्वसौन्दर्य	सम्पूर्ण सौन्दर्योंका
संग्रहं	सार सर्वस्व
चारु	सुन्दर
आयत	विशाल
चतुर्बाहुं	चतुर्भुज
सुजात	उत्तम भंगीवाला
रुचिर	सुन्दर
आननं	मुख ॥४५॥

पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रु सुनासिकम् ।
सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ॥४६॥

पद्मकोश पलाश अक्षं सुन्दरभ्रू सुनासिकं सुद्विजं सुकपोल आस्यं समकर्ण विभूषणं ॥४६॥

पद्मकोश	कमलके भीतरी भाग	सुद्विजं	सुन्दर दांत
पलाश	(के समान) लाल	विभूषणं	भूषण (कुंडल) युक्त
अक्षं	नेत्रों	समकर्ण	बराबर कानोंवाला
सुन्दरभ्रू	सुन्दर भौंहों	सुकपोल	सुन्दर कपोलोंवाला
सुनासिकं	सुन्दर नासिकवाला	आस्यं	मुख (दिखलापमे) ॥४६॥

प्रीतिप्रहसितापाङ्गमलकैरुपशोभितम् ।
लसत्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ॥४७॥

प्रीति प्रहसित अपाङ्गं अलकैः उपशोभितं लसत् पङ्कज किञ्जल्क दुकूलं मृष्ट कुण्डलं ॥४७॥

प्रीति	प्रसन्नतासे	किञ्जल्क	परागके समान
प्रहसित	उन्मुक्त हास्य युक्त	दुकूलं	वस्त्र
अपाङ्गम्	कटाक्ष पूर्वक देखते	लसत्	सुशोभित है
अलकैः	अलकोंसे	मृष्ट	चमकते
उपशोभितं	घिरे सुशोभित	कुण्डलं	कुण्डल है ॥४७॥
पङ्कज	कमलके		

स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् ।
शङ्खचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ॥४८॥

स्फुरत् किरीट वलय हार नुपूर मेखलं शंख चक्र गदा पद्म माला मणि उत्तम ऋद्धिमत् ॥४८॥

किरीट	मुकुट,	शंख चक्र गदा	
वलय	कङ्कण,	पद्म	शंख, चक्र, गदा, पद्म
हार	हार,	उत्तम	श्रेष्ठ
नूपुर	नूपुर,	ऋद्धिमत्	बहुमूल्य
मेखलं	करधनी (पहिने)	मणि माला	मणियोंकी माला है ॥४८॥

सिंहस्कन्धत्विषो बिभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभम् ।
श्रियानपायिन्या क्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ॥४९॥

सिंहस्कन्धत्विषः बिभ्रत् सौभग ग्रीव कौस्तुभं श्रिया अनपायिन्या क्षिप्त निकष अश्मे उरसा उल्लसत् ॥४९॥

सिंह-		श्रिया	लक्ष्मीसे
स्कन्धत्विषः	सिंहके समान कान्तिमान कंधे	क्षिप्त	युक्त
सौभग बिभ्रत्	(जो) सौभाग्य धारण करते हैं	निकष अश्मे	कसौटीके पत्थरके समान
ग्रीव	कण्ठमें	उरसा	वक्ष स्थल
कौस्तुभं	कौस्तुभ-मणि है	उल्लसत्	अत्यन्त शोभित है ॥४९॥
अनपायिन्या	अनन्या		

पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरम् ।
प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्याऽऽवर्तगभीरया ॥५०॥

पूर रेचक संविग्न वलि वल्गु दल उदरं प्रति संक्रामयत् विश्वं नाभ्या आवर्त्त गभीरया ॥५०॥

पूर रेचक		वल्गु	पतला
संविग्न	श्वांसके आने-जानेसे हिलता हुआ	दल उदरम्	(पीतलके) पत्तेके समान उदर
वलि	त्रिवली वाला		

आवर्त्त		विश्वं	(अपनेसे उत्पन्न)
गभीरया	जलावर्तके समान		विश्वको
	गंभीर	प्रति संक्रामयत्	(मानो अपने ही में)
नाभ्या	नाभिसे		लीन करता है ॥५०

श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णु दुकूलस्वर्णमेखलम् ।
समाचार्वङ्घ्रिजङ्घोरुनिम्नजानुसुदर्शनम् ॥५१॥

श्यामश्रोणि अधिरोचिष्णु दुकूल स्वर्णमेखलं सम चारु अङ्घ्रि जङ्घा उरु निम्नजानु सुदर्शनं ॥५१॥

श्यामश्रोणि	श्याम वर्ण नितम्ब	सम चारु अङ्घ्रि	समान और सुन्दर
	भागमें		चरण,
अधिरोचिष्णु	अतिशयसे चमकते	जङ्घा	पिण्डली,
	हुए	उरु	जांघे,
दुकूल	पीताम्बर	निम्नजानु	घुटने
स्वर्णमेखलं	(और) स्वर्ण-मेखला	सुदर्शनं	देखनेमें सुन्दर
	है		हैं ॥५१॥

पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा
नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ।
प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं
पदं गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥५२॥

पदा शरत्पद्म पलाश रोचिषा नखद्युभिः नः अन्तः अघं विधुन्वता प्रदर्शय स्वीयं अपास्त साध्वसं पदं गुरो मार्ग गुरुः तमोजुषां ॥५२॥

रोचिषा	कान्तिवाले	साध्वसं	संकट
पदा	चरणोंके	अपास्त	मिटानेवाले
नखद्युभिः	नखोंकी कान्तिसे	स्वीयं पदं	अपने स्वरूपका
अन्तः अघं	हृदयके अन्धकारको	प्रदर्शय	दर्शन कराइये
विधुन्वता	दूर करते	गुरो	हे जगद्गुरु

तमोजुषां	अज्ञानावृत (हम) लोगोंको	मार्ग गुरुः	(अपनी) प्राप्तिका मार्ग बतानेवाले गुरु आप हैं ॥५२॥

एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सताम् ।
यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥५३॥

एतद् रूपं अनुध्येयं आत्मशुद्धिं अभीप्सतां यद् भक्तियोगः अभयदः स्वधर्मं अनुतिष्ठतां ॥५३॥

आत्मशुद्धिं	चित्तकी शुद्धिकी	स्वधर्मं	अपने धर्मपर
अभीप्सतां	अभिलाषा रखने वालोंको	अनुतिष्ठतां	बराबर स्थित रहने वालेको
एतद् रूपं	यह रूप	भक्तियोगः	भक्तियोग
अनुध्येयं	निरन्तर ध्यानके योग्य है	अभयदः	अभय देनेवाला है ॥५३॥
यद्	क्योंकि		

भवान् भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ।
स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः ॥५४॥

भवान् भक्तिमता लभ्यः दुर्लभः सर्वदेहिनां स्वाराज्यस्य अपि अभिमतः एकान्तेन आत्मविद् गतिः ॥५४॥

भवान्	आप	अभिमतः	(परम) अभीष्ट हैं
सर्वदेहिनां	सभी देहधारियोंको	आत्मविद्	आत्मज्ञानियोंकी
दुर्लभः	दुर्लभ हैं।	एकान्तेन	ऐकान्तिक (एकमात्र)
स्वाराज्यस्य	त्रिलोकेशत्व प्राप्त (इन्द्र)	गतिः	गति हैं
		भक्तिमता	भक्तिमानोंको आप
अपि	को भी	लभ्यः	प्राप्त होते हैं ॥५४॥

तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया ।
एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥५५॥

तं दुराराध्यं आराध्य सतां अपि दुरापया एकान्त भक्त्या कः वाञ्छेत् पादमूलं विना बहिः ॥५५॥

सतां अपि	सत्पुरुषोंके लिए भी	आराध्य	प्रसन्न करके
दुराराध्यं	कठिनतासे प्रसन्न होनेवाले	कः	ऐसा कौन होगा
तं	इन (भगवान्) को	पादमूलं विना	(जो) उनके चरण-तलके अतिरिक्त
दुरापया	कठिनतासे प्राप्त होनेवाली	बहिः	हाहरकी (सांसारिक वस्तु)
एकान्त भक्त्या	अनन्य भक्तिसे	वाञ्छेत्	चाहेगा ॥५५॥

यत्र निविष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते ।
विश्वं विध्वंसयन् वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥५६॥

यत्र निविष्टं अरणं कृतान्तः न अभिमन्यते विश्वं विध्वंसयन् वीर्य शौर्य विस्फुरद् भ्रुवा ॥५६॥

वीर्य	पराक्रम (तथा)	यत्र	जहां (जिन चरणों-में)
शौर्य	शूरतासे	अरणं	रक्षक (मानकर)
विस्फुरद्	फड़कती	निविष्टं	प्रविष्ट हुए (शरण लिये) को
भ्रुवा	भौंह वाला	न अभिमन्यते	(अपने अधिकारमें) नहीं मानता ॥५६॥
कृतान्तः	काल		
विश्वं			
विध्वंसमन्	संसारका विनाश करता हुआ		

क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥५७॥

क्षणार्धं न अपि तुलये न स्वर्गं न अपु नर्भवं भगवत् सङ्गि सङ्गस्य मर्त्यानां किं उत आशिषः ॥५७॥

भगवत् सङ्गि	भगवान्‌के भक्तोंका	तुलये	तुलना करता हूँ
सङ्गस्य	सत्सङ्गके	मर्त्यानां	(फिर) मृत्युलोक-
क्षणार्धे अपि	आधे क्षणसे भी		की
न स्वर्गम्	न स्वर्गसे	आशिषः उत	आशाओंका तो
न अपुनर्भवं	न मोक्षसे	किं	कहना क्या ॥५७॥

अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयो-
रन्तर्बहिःस्नानविधूतपाप्मनाम् ।
भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां
स्यात्सङ्गमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥५८॥

अथ अनघ अङ्घ्रेः तव कीर्ति तीर्थयोः अन्तः बहिः स्नान विधूत पाप्मनां भूतेषु अनुक्रोश सुसत्त्व शीलिनां स्यात् सङ्गमः अनुग्रहः एष नः तव ॥५८॥

अथ	अतः	भूतेषु	प्राणियोंके प्रति
अनघ अङ्घ्रेः	पापहारी-चरण कमलवाले (प्रभु) !	अनुक्रोश	अनुकम्पा करते हैं
		सुसत्व	उत्तम सात्विक
तव कीर्ति	तुम्हारी कीर्त्ति रूप	शीलिनां	स्वभाववाले हैं
तीर्थयोः	तीर्थमें	नः	हमारा
अन्तः बहिः	आन्तरिक और बाहरी	सङ्गमः	(उनसे) सम्पर्क
		स्यात्	हो
स्नान	स्नान करके	एष	यही
विधूत पाप्मनां	(जिन्होंने सब) पापोंको धो डाला है	तव	आपकी
		अनुग्रहः	कृपा होगी ॥५८॥

न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं
तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ।
यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा
मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥५९॥

न यस्य चित्तं बहिः अर्थ विभ्रमं तमः गुहायां च विशुद्धं आविशत् यत् भक्तियोग अनुगृहीतं अञ्जसा मुनिः विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥५९॥

यस्य	जिसका	अनुगृहीतं	अनुग्रहसे
चित्तं	चित्त	अञ्जसा	सरलतासे
तमः गुहायां	अन्धकार पूर्ण गुफा रूपी	विशुद्धं	अत्यन्त शुद्ध हो गया है
बहिः च	बाहरी (शारीरिक)	ननु	निश्चय
अर्थ विभ्रमं	पदार्थोंके विभ्रम (मनोमल)	तत्र	उस (चित्त) में
च	में	ते	आपकी
न आविशत्	नहीं प्रवेश करता	गतिं	स्वरूपको
यत्	क्योंकि	मुनिः	मननशीलजन
भक्तियोग	भक्ति-योगके	विचष्टे	साक्षात् करते हैं ॥५९॥

यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् ।
तत् त्वं ब्रह्म परं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥६०॥

यत्र इदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन् अवभाति यत् तत् त्वं ब्रह्म परं ज्योतिः आकाशं इव विस्तृतम् ॥६०॥

यत्र	जिसमें	आकाशं इव	आकाशकी तरह
इदं विश्वम्	यह सम्पूर्ण जगत्	विस्तृतम्	व्यापक
व्यज्यते	दिखाई देता है	परं ज्योतिः	परम प्रकाशक
यत्	जो	तत् ब्रह्म	वह ब्रह्म-तत्त्व
विश्वस्मिन्	सम्पूर्ण जगत्में	त्वं	आप ही हैं ॥६०॥
अवभाति	भास रहा है		

यो मायया इदं पुरुरूपयासृजद्
बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ।
यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुःस्थया
तमात्मतन्त्रं भगवन् प्रतीमहि ॥६१॥

यः मायया इदं पुरुरूपया असृजत् बिर्भत्ति भूयः क्षपयति अविक्रियः यद् भेदबुद्धिः सद् इव आत्मदुःस्थया तं आत्मतन्त्रं भगवन् प्रतीमहि ॥६१॥

यः अविक्रियः	जो निर्विकार रहते हुए	**यद् भेदबुद्धिः**	जिस (माया) से भेद बुद्धि होती है
पुरुरूपया	अनेक रूपवाली	**आत्मदुःस्थया**	(पर) आत्मामें वह (माया) कठिनाईसे (अविद्या) से स्थित है
मायया	मायासे		
इदं असृजत्	इस विश्वकी रचना करते हैं,		
बिर्भत्ति	पालन करते हैं,		
भूयः क्षपयति	फिर संहार करते हैं	**तं**	उस
सद् इव	जैसे यह कोई सद्-वस्तु	**भगवन्**	भगवान ! (आपको)
		आत्मतन्त्रम्	(हम) स्वतन्त्र
		प्रतीमहि	समझते हैं ॥६१॥

क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः
श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये ।
भूतेन्द्रियान्तःकरणोपलक्षितं
वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥६२॥

क्रिया कलापैः इदं एव योगिनः श्रद्धा अन्विताः साधु यजन्ति सिद्धये भूत इन्द्रिय अन्तःकरण उपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च ते एव कोविदाः ॥६२॥

भूत इन्द्रिय अन्तःकरण	पञ्चभूत इन्द्रिय (और) अन्तः-करणके	**इदं एव**	(आपके) इसी (सगुण रूपका)
उपलक्षितं	उपलक्षित होता है	**श्रद्धा अन्विताः**	श्रद्धा पूर्वक
योगिनः	(जो) कर्मयोगी है	**साधु यजन्ति**	भली-भाँति पूजन करते हैं
सिद्धये	सिद्धिकी प्राप्तिके लिए	**ते एव**	वे ही
		वेदे च	वेदोंमें,
क्रिया कलापैः	तरह-तरहके कर्मोंके द्वारा	**तन्त्रे च**	तन्त्रोंमें भी
		कोविदाः	निपुण हैं ॥६२॥

त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्ति-
स्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते ।
महानहं खं मरुदग्निवार्धराः
सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ॥६३॥

त्वं एक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिः तया रजः सत्त्व तमः विभिद्यते महान् अहं खं मरुत् अग्नि वारि धराः सुर ऋषयः भूतगणाः इदं यतः ॥६३॥

त्वं एक	आप ही एक मात्र	खं	आकाश,
आद्यः पुरुषः	आदिपुरुष हैं	मरुत्	वायु,
सुप्तशक्ति	(सृष्टिसे पूर्व आपकी, शक्ति सोई रहती है	अग्नि	अग्नि,
		वारि	जल,
तया	उसी (शक्ति) से	धराः	पृथ्वी,
रजः सत्त्व तमः	रजो गुण सत्वगुण, तमोगुण	सुर	देवता,
		ऋषयः	ऋषिगण
विभिद्यते	(का) भेद होता है	भूतगणाः	प्राणि वर्ग (उत्पन्न होते हैं)
तमः	जिनसे		
महान्	महत्तत्त्व	यतः	जिनसे
अहं	अहंकार,	इदं	यह जगत है ॥६३॥

सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्ट-
श्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन ।
अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्त-
र्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः ॥६४॥

सृष्टं स्वशक्ति इदं अनुप्रविष्टः चतुर्विधं पुरं आत्म अंशकेन अथो विदुः तं पुरुषं सन्तं अन्तः भुङ्क्ते हृषीकैः मधु सारघं यः ॥६४॥

स्वशक्ति सृष्टम्	(फिर) अपनी शक्तिसे रचे गये	चतुर्विधं	चार प्रकारके (जरायुज, अण्डज, स्वेदज उद्भिज्ज)
इदं	इन		

पुरं	नगर (शरीरमें)
आत्म अंशकेन	अपने अंशसे (आपने)
अनुप्रविष्टः	प्रवेश किया है
अथो	अतः
तं	उस (अंश) को
पुरुषं	जीव
विदुः	जाना गया है
यः	जो
अन्तः सन्तं	अन्तःकरणमें रहकर
हृषीकैः	इन्द्रियों द्वारा
सारघं	मधु मक्खियों द्वारा
मधु	(स्वयं एकत्र) मधु (के समान)
भुङ्क्ते	भोग करता है ॥६४

स एष लोकानतिचण्डवेगो
विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ।
भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो
घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः ॥६५॥

स एष लोकान् अतिचण्ड वेगः विकर्षसि त्वं खलु कालयानः भूतानि भूतैः अनुमेय तत्त्वः घन अवलीः वायुः इव अविषह्यः ॥६५॥

स एष	वही यह
खलु	निश्चय
त्वं	आप ही
कालयानः	काल स्वरूप होकर
अविषह्यः	असह्य
अतिचण्ड वेगः	(अपने) प्रचण्ड वेगसे
भूतानि भूतैः	पृथ्वी आदि भूतोंको अन्य भूतोंसे
लोकान्	लोकोंको
विकर्षसि	खींचते (प्रलय करते) हैं ।
वायुः	
घन अवलीः इव	जैसे वायु मेघ समूहको
अनुमेय तत्त्वः	(आपका) स्वरूप अनुमानसे जाना जाता है (प्रत्यक्ष नहीं है ।) ॥६५॥

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया
प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे
क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥६६॥

प्रमत्तं उच्चैः इति कृत्य चिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसं त्वं अप्रमतः सहसा अभिपद्यसे क्षुत् लोलिहानः अहिः इव आखुं अन्तकः ॥६६॥

उच्चैः	अत्यन्त	**त्वं**	आप
प्रमत्तं	प्रमादग्रस्त (पुरुष)	**अप्रमत्तः**	सदा सजग रहनेवाले
इति कृत्य	यह करना है	**अन्तकः**	काल भगवान्
चिन्तया	(इस) चिन्तासे	**सहसा**	अचानक
प्रवृद्धलोभं	इसका लोभ बढ़ गया है	**अभिपद्यसे**	आ ढूँढ़ते हैं
विषयेषु लालसम्	विषयोंकी ही लालसा लगी रहती है।	**आखुम्**	चूहेपर
		क्षुत् लेलिहानः	भूखसे जीभ लपलपाते
		अहिः इव	सर्पके समान ॥६६॥

कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पण्डितो
यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ।
विशङ्क्यास्मद्गुरुरर्चति स्म यद्
विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥६७॥

कः त्वत् पदाब्जं विजहाति पण्डितः यः ते अवमान व्ययमान केतनः विशङ्क्या अस्मद् गुरुः अर्चति स्म यत् विना उपपत्तिं मनवः चतुर्दश ॥६७॥

यः ते	जो आपकी	**अस्मद् गुरुः**	हमारे पिता (ब्रह्माजी)
अवमान	अवहेलना (के कारण)	**चतुर्दश मनवः**	(और) चौदह (स्वायुम्भव आदि) मनुओंने
केतनः	अपनी आयु		
व्ययमान	(व्यर्थ) व्यय होती माननेवाला	**उपपत्तिं विना**	बिना किसी विचारके (केवल युद्धासे) ही
कः	ऐसा कौन है (जो)	**यत्**	जिनकी
त्वत् पदाब्जं	तुम्हारे चरण-कमलको	**अर्चति स्म**	अर्चना करते हैं ॥६७॥
विजहाति	त्यागेगा		
विशङ्क्या	(कालकी) अशंकासे		

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन् परमात्मन् विपश्चिताम् ।
विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भया गतिः ॥६८॥

अथ त्वं असि नः ब्रह्मन् परमात्मन् विपश्चितां विश्वं रुद्र भय ध्वस्तं अकुतः चिद्भया गतिः ॥६८॥

अथ	अतः	**नः**	हम लोगोंको तो
ब्रह्मन्	हे ब्रह्मन्	**परमात्मन्**	हे परमात्मन्
विश्वं	सम्पूर्ण जगत्	**अकुतः**	
रुद्र भय ध्वस्तं	रुद्र रूप कालके भयसे व्याकुल है	**चिद्भया**	सर्वथा भयशून्य
		गतिः	आप ही आश्रय हैं ॥६८॥
विपश्चितां	इस तत्त्वके जानने-वाले		

इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः ।
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः ॥६९॥

इदं जपत भद्रं वः विशुद्धं नृपनन्दनाः स्वधर्मम् अनुतिष्ठन्तः भगवति अर्पित आशयाः ॥६९॥

नृपनन्दनाः	हे राजकुमारो !	**अर्पित आशयाः**	चित्त समर्पण करके
वः भद्रं	तुम्हरा कल्याण हो	**इदं**	इस
स्वधर्मम्	अपने धर्मपर	**विशुद्धं**	अत्यन्त शुद्ध (स्तोत्रका)
अनुतिष्ठन्तः	बराबर स्थिर रहते		
भगवति	भगवानमें	**जपत**	जप करो ॥६९॥

तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ।
पूजयध्वं गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम् ॥७०॥

तं एव आत्मानं आत्मस्थं सर्वभूतेषु अवस्थितं पूजयध्वं गृणन्तः च ध्यायन्तः च असकृत् हरिं ॥७०॥

आत्मस्थं	अपने अन्तःकरणमें स्थित	**हरिम्**	श्रीहरिका
तं एव	उन्हीं	**असकृत्**	निरन्तर
आत्मानं	आत्म स्वरूप	**गृणन्तः च**	जप करते हुए तथा
सर्वभूतेषु	सब प्राणियोंमें	**ध्यायन्तः च**	ध्यान करते हुए भी
अवस्थितं	स्थित	**पूजयध्वं**	पूजन करो ॥७०॥

योगादेशमुपासाद्य धारयन्तो मुनिव्रताः ।
समाहितधियः सर्वं एतदभ्यसताद्दताः ॥७१॥

योग आदेशं उप आसाद्य धारयन्तः मुनिव्रताः समाहितधियः सर्वे एतत् अभ्यसत आद्दताः ॥७१॥

योग आदेशम्	(भगवान्‌से) योग करानेवाले इस आदेशको	**मुनिव्रताः**	मुनियोंके व्रतका पालन करते हुए
उप आसाद्य	प्राप्त करके	**समाहितधियः**	एकाग्र बुद्धिसे
धारयन्तः	(मनसे) धारण करते हुए	**आद्दताः**	आदर पूर्वक
		सर्वे	सब लोग
		एतत्	इसका
		अभ्यसत	अभ्यास करो ॥७१॥

इदमाह पुरास्माकं भगवान् विश्वसृक्पतिः ।
भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम् ॥७२॥

इदं आह पुरा अस्माकं भगवान् विश्वसृक्पतिः भृगु आदीनां आत्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षतां ॥७२॥

इदं	यह स्तोत्र	**संसिसृक्षतां**	सृष्टि करनेमें लगनेवाले
पुरा	पूर्व कालमें	**अस्माकं**	हम
विश्वसृक्पतिः	प्रजापतियोंके पति	**भृगु आदीनां**	भृगु आदिकों
सिसृक्षुः	सृष्टि करनेकी इच्छासे	**आत्मजानां**	अपने पुत्रोंको
भगवान्	भगवान् ब्रह्माजीने	**आह**	सुनाया था ॥७२॥

ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः ।
अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः ॥७३॥

ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मः विविधाः प्रजाः ॥७३॥

ते वयं सर्वे	वे हम सब	**ध्वस्ततमसः**	अपने अज्ञानको नष्ट करके
प्रजेश्वराः	प्रजापति गण		
प्रजासर्गे	प्रजाकी सृष्टिके लिए	**विविधाः प्रजाः**	अनेक प्रकारकी प्रजाकी
नोदिताः	आज्ञा पाकर		
अनेन	इस (स्तोत्र) द्वारा	**सिसृक्ष्मः**	सृष्टि करते हैं ॥७३॥

अथेदं नित्यदा युक्तो जपन्नवहितः पुमान् ।
अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ॥७४॥

अथ इदं नित्यदा युक्तः जपन् अवहितः पुमान् अचिरात् श्रेय आप्नोति वासुदेव परायणः ॥७४॥

अथ इदं	अतः इस स्तोत्रका	**नित्यदा जपन्**	प्रतिदिन जप करते हुए
वासुदेव परायणः	भगवत्परायण		
पुमान्	पुरुष	**अचिरात्**	शीघ्र ही
अवहितः	एकाग्र चित्तसे	**श्रेय**	कल्याण
युक्तः	चित्त लगाकर	**आप्नोति**	प्राप्त करता है ॥७४

श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम् ।
सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ॥७५॥

श्रेयसां इह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परं सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौः व्यसन अर्णवं ॥७५॥

इह	इस लोकमें	**परं**	श्रेष्ठ
सर्वेषां	सभी	**ज्ञानं**	ज्ञान है
श्रेयसां	कल्याणके साधनोंमें		

निःश्रेयसं	(वह) मोक्ष दायक है	अर्णवं	समुद्र (संसार) को
		ज्ञाननौः	ज्ञानकी नौकासे
दुष्पारं	कठिनाईसे पार होनेवाले	सुखं तरति	सुख पूर्वक पार हो जाता है ॥७५॥
व्यसन	दुःखोंके		

य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् ।
अधीयानो दुरााध्यं हरिमाराधयत्यसौ ॥७६॥

यः इमं श्रद्धया युक्तः मद्गीतं भगवत्स्तवं अधीयानः दुराराध्यं हरिम् आराधयति असौ ॥७६॥

मद्गीतं	मेरे द्वारा गाये	असौ	वह
इमं	इस	दुराराध्यं	कठिनतासे प्रसन्न होने योग्य
भगवत्स्तवं	भगवान्‌के स्तोत्रका		
यः	जो	हरिं	भगवान् श्रीहरिको
श्रद्धया युक्तः	श्रद्धा सहित	आराधयति	प्रसन्न कर लेगा ॥७६
अधीयानः	अध्ययन करेगा		

विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरम् ।
मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ॥७७॥

विन्दते पुरुषः अमुष्मात् यद्यद् इच्छति असत्वरम् मद्गीतगीतात् सुप्रीतात् श्रेयसां एकवल्लभात् ॥७७॥

श्रेयसां	सब प्रकारके कल्याणोंके साधनोंके	सुप्रीतात्	अत्यन्त प्रसन्न होकर
		असत्वरं	शीघ्र ही
एकवल्लभात्	एक मात्र प्यारे (भगवान्)	यद्यद् इच्छति	जो जो चाहता है
		अमुष्मात्	उन्हीं (भगवान) से
मद्गीतगीतात्	मेरे द्वारा गाये गये (इस स्तोत्रसे)	विन्दते	प्राप्त कर लेता है ॥७७॥

इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयान्वितः ।
शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबन्धनैः ॥७८॥

इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धया अन्वितः शृणुयात् श्रावयेत् मर्त्यः मुच्यते कर्म बन्धनैः ॥७८॥

यः मर्त्यः	जो पुरुष	इदं शृणुयात्	यह स्तोत्र सुनता है (या)
कल्य	उषा कालमें (प्रातः)	श्रावयेत्	सुनाता है
उत्थाय	उठकर	कर्म बन्धनैः	वह कर्म बन्धनोंसे
श्रद्धया अन्वितः	श्रद्धा युक्त	मुच्यते	विमुक्त हो जाता है ॥७८॥
प्राञ्जलिः	हाथ जोड़कर		

गीत मयेदं नरदेवनन्दनाः
परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवम् ।
जपन्त एकाग्रधियस्तपो महत्-
चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम् ॥७९॥

गीतं मया इदं नरदेवनन्दनाः परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवं जपन्तः एकाग्रधियः तपः महत् चरध्वं अन्ते ततः आप्स्यथ ईप्सितं ॥७९॥

नरदेवनन्दनाः	राजकुमारो	जपन्तः	जप करते हुए
मया गीतं	मेरे द्वारा सुनाये गये	महत् तपः	महान् तप
		चरध्वं	करो
परस्य पुंसः	परम पुरुष	ततः	फिर
परमात्मनः	परमात्माके	अन्ते	अन्तमें
इदं स्तवं	इस स्तोत्रको	ईप्सितं	अभीष्टको
एकाग्रधियः	एकाग्र चित्तसे	आप्स्यथ	प्राप्त कर लेगा ॥७९

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

इति सन्दिश्य भगवान् बार्हिषदैरभिपूजितः ।
पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥१॥

इति सन्दिश्य भगवान् बार्हिषदैः अभिपूजितः पश्यतां राजपुत्राणां तत्र एव अन्तर्दधे हरः ॥१॥

इति सन्दिश्य	इस प्रकार आदेश देकर	राज पुत्राणां	राजकुमारोंके
भगवान् हरः	भगवान् शंकर	पश्यतां	सामने ही
बार्हिषदैः	प्रचेताओं के द्वारा	तत्र एव	वहीं
अभिपूजितः	भक्ति-भावसे पूजित होकर	अन्तर्दधे	अन्तर्धान हो गये ॥१॥

रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः ।
जपन्तस्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुतं जले ॥२॥

रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः जपन्तः ते तपः तेपुः वर्षाणां अयुतं जले ॥२॥

ते सर्वे	वे सब	जले	जलमें खड़े होकर
प्रचेतसः	प्रचेता लोग	जपन्तः	जप करते हुए
रुद्रगीतं	भगवान् शंकरके बताये	वर्षाणां अयुतं	दस हजार वर्ष तक
भगवतः स्तोत्रं	भगवान्के स्तोत्रका	तपः तेपुः	तप करते रहे ॥२॥

प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् ।
नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥३॥

प्राचीन बर्हिषं क्षत्तः कर्मसु आसक्त मानसं नारदः अध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥३॥

क्षत्तः	विदुरजी !	**अध्यात्मतत्त्वज्ञः**	अध्यात्म तत्त्वके ज्ञाता
कर्मसु	कर्मोंमें	**कृपालुः**	दयावान
आसक्त मानसं	आसक्त मनवाले	**नारदः**	श्रीनारदजीने
प्राचीनबर्हिषं	राजा प्राचीन बर्हिको	**प्रत्यबोधयत्**	उपदेश किया ॥३॥

श्रेयस्त्वं कतमद्राजन् कर्मणाऽऽत्मन ईहसे ।
दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ॥४॥

श्रेयः त्वं कतमद् राजन् कर्मणा आत्मन ईहसे दुःखहानिः सुख अवाप्तिः श्रेयः तत् न इह च इष्यते ॥४॥

राजन्	राजन् !	**दुःखहानिः**	दुःखोंका निवारण (तथा)
कर्मणा	कर्मोंके द्वारा	**सुख अवाप्तिः**	परमानन्दकी प्राप्ति
त्वं आत्मन	तुम अपना	**श्रेयः**	(वास्तविक) कल्याण है
कतमद्	कौनसा	**तत् च इह न इष्यते**	वह तो इन कर्मोंसे नहीं मिलता ॥४॥
श्रेयः	कल्याण		
ईहसे	चाहते हो		

*प्राचीनबर्हिरुवाच**–

न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः ।
ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ॥५॥

---

*अन्य प्रतियोंमें 'राजोवाच' है ।

न जानामि महाभाग परं कर्म अपविद्धधीः ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ॥५॥

महाभाग	महाभाग !	**मे विमलं ज्ञानं**	मुझे विशुद्ध ज्ञान
कर्म	कर्मोंमें	**ब्रूहि**	बतलाइये
अपविद्धधीः	फंसी हुई बुद्धि होनेसे	**येन**	जिससे
परं	इससे परे कुछ	**कर्मभिः**	कर्म-बन्धनसे
न जानामि	नहीं जानता हूँ	**मुच्येय**	छूट जाऊँ ॥५॥

गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदारधनार्थधीः ।
न परं विन्दते मूढो भ्राम्यन् संसारवर्त्मसु ॥६॥

गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदार धन अर्थधीः न परं विन्दते मूढः भ्राम्यन् संसार वर्त्मसु ॥६॥

कूटधर्मेषु	कपट धर्ममय	**मूढः**	अज्ञानी पुरुष
गृहेषु	गृहस्थाश्रममें (रहता)	**संसार वर्त्मसु**	संसारके मार्गमें
		भ्राम्यन्	भटकता हुआ
पुत्रदार	पुत्र-स्त्री	**परं**	परम कल्याणको
धन अर्थधीः	(तथा) धनके लिए लगी बुद्धि	**न विन्दते**	प्राप्त न हो पाता ॥६॥

नारद उवाच–

भो भोः प्रजापते राजन् पशून् पश्य त्वयाध्वरे ।
संज्ञापिताञ्जीवसङ्घान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥७॥

भो भोः प्रजापते राजन् पशून् पश्य त्वया अध्वरे संज्ञापितान् जीव-सङ्घान् निर्घृणेन सहस्रशः ॥७॥

भो भोः प्रजापते	देखो देखो प्रजापति	**निर्घृणेन**	निर्दयता पूर्वक
राजन्	राजन् !	**अध्वरे**	यज्ञमें
त्वया	तुमने	**सहस्रशः**	हजारों

जीवसङ्घान्	जीवोंके समूह	**पश्य**	(उन्हें आकाशमें)
पशून्	पशुओंकी		देखो ॥७॥
संज्ञापितान्	बलि दी है		

एते त्वां सम्प्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव ।
सम्परेतमयः कूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ॥८॥

एते त्वां संप्रतीक्षन्ते स्मरन्तः वैशसं तव सम्परेतं अयः कूटैः छिन्दति उत्थित मन्यवः ॥८॥

एते	यह सब	**सम्परेतं**	(तुम्हारे) मरनेपर
तव वैशसं	तुम्हारे अपराधको	**उत्थित मन्यवः**	क्रोधमें भरे
स्मरन्तः	याद करते हुए	**अयः कूटैः**	(अपने) लोहेके-से
त्वां संप्रतीक्षन्ते	तुम्हारी प्रतीक्षा कर		सींगोंसे
	रहे हैं	**छिन्दन्ति**	तुम्हे छेदेंगे ॥८॥

अत्र ते कथयिष्येऽनुमितिहासं पुरातनम् ।
पुरञ्जनस्य चरितं निबोध गदतो मम ॥९॥

अत्र ते कथयिष्ये अमुं इतिहासं पुरातनं पुरञ्जनस्य चरितं निबोध गदतः मम ॥९॥

अत्र	इस विषयमें	**पुरञ्जनस्य**	
ते	तुमसे	**चरितं**	यह राजा पुरञ्जन-
अमुं	यह		का चरित्र है
पुरातनं	प्राचीन	**गदतः मम**	मेरे कहे हुएको
इतिहासं	इतिहास	**निबोध**	सुनो ॥९॥
कथयिष्ये	कहता हूँ		

आसीत्पुरञ्जनो नाम राजा राजन् बृहच्छ्रवाः ।
तस्याविज्ञातनामाऽऽसीत्सखाविज्ञातचेष्टितः ॥१०॥

आसीत् पुरञ्जनः नाम राजा राजन् बृहत् श्रवाः तस्य अविज्ञात नामा आसीत् सखा अविज्ञात चेष्टितः ॥१०॥

राजन्	हे राजा !	अविज्ञात नामा अविज्ञात	अविज्ञात नामका
पुरञ्जनः नाम	पुरञ्जन नामका	चेष्टितः	अज्ञात चेष्टावाला
बृहत् श्रवाः	बड़ा यशस्वी	सखा	एक मित्र
राजा आसीत्	एक राजा था	आसीत्	था ॥१०॥
तस्य	उसका		

सोऽन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः ।
नानुरूपं यदाविन्ददभूत्स विमना इव ॥११॥

सः अन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः न अनुरूपं यदा अविन्दत् अभूत् स विमना इव ॥११॥

स प्रभुः	वह समर्थ राजा	यदा अनुरूपं	जब उसने अपने अनुरूप
शरणं	अपने रहने योग्य स्थानकी	न अविन्दत्	कोई स्थान नहीं पाया
अन्वेषमाणः	खोज करता हुआ	स विमना इव	वह कुछ उदास
पृथिवीं बभ्राम	सारी पृथ्वीपर घूमा	अभूत्	हो गया ॥११॥

न साधु मेने ताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः ।
कामान् कामयमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये ॥१२॥

न साधु मेने ताः सर्वाः भूतले यावतीः पुरः कामान् कामयमानः असौ तस्य तस्य उपपत्तये ॥१२॥

असौ	यह (राजा)	भूतले	पृथ्वीपर
कामान्	भोगोंको	यावतीः पुरः	जितने नगर हैं
कामयमानाः	चाहता हुआ	ताः सर्वाः	उन सबको
तस्य तस्य उपपत्तये	उन-उन (भोगोंकी) प्राप्तिके लिए	साधु न मेने	अच्छा नहीं माना ॥१२॥

स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु ।
ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरं लक्षितलक्षणाम् ॥१३॥

स एकदा हिमवतः दक्षिणेषु अथ सानुषु ददर्श नवभिः द्वार्भिः पुरं लक्षित लक्षणां ॥१३॥

अथ	अन्ततः	नवभिः द्वारभिः	नौ दरवाजा वाले
एकदा	एक दिन	लक्षित	
स	उसने	लक्षणाम्	सुलक्षणोंसे युक्त
हिमवतः	हिमालयके	पुरं ददर्श	एक नगरको
दक्षिणेषु	दक्षिणके		देखा ॥१३॥
सानुषु	शिखरपर		

प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः ।
स्वर्णरौप्यायसैः शृङ्गैः संकुलां सर्वतो गृहैः ॥१४॥

प्राकार उपवन अट्टाल परिखैः अक्षः तोरणैः स्वर्ण रौप्य आयसैः शृङ्गैः संकुलां सर्वतः गृहैः ॥१४॥

सर्वतः	सब ओरसे	स्वर्ण	
प्राकार	परकोटों,	रौप्य आयसैः	सोने-चांदी-लोहेके
उपवन	बगीचों,	शृङ्गैः	शिखरवाले
अट्टाल	अटारियों,	गृहैः	घरोंसे
परिखैः	खाइयों,	सर्वतः	चारों ओरसे
अक्षः	झरोखों,	संकुलां	भरा था ॥१४॥
तोरणैः	राजद्वारों (से युक्त था)		

नीलस्फटिकवैदूर्यमुक्तामरकतारुणैः ।
कल्पितहर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीमिव ॥१५॥

नील स्फटिक वैदूर्य मुक्ता मरकत अरुणैः कल्पित हर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीं इव ॥१५॥

नील	नीलम-
स्फटिक	स्फटिक,
वैदूर्य	लहसनियां,
मुक्ता	मोती,
मरकत	पन्ना,
अरुणैः	लाल (मणियों) से
हर्म्यस्थलीं	भवनोंके फर्श
क्लृप्त	जड़े थे
दीप्तां	(वह) ज्योतिर्मयी (पुरी)
श्रिया	शोभामें
भोगवतीं इव	(नागपुरी) भोगवतीके समान थी ॥१५॥

सभाचत्वररथ्याभिराक्रीडायतनापणैः ।
चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥१६॥

सभा चत्वर रथ्याभिः आक्रीड आयतन आपणैः चैत्य ध्वज पताकाभिः युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥१६॥

सभा	सभागृह,
चत्वर	चबूतरों,
रथ्याभिः	सड़कों,
आक्रीड	खेलनेके स्थान,
आयतन	खुले मैदान,
आपणैः	बाजारों,
चैत्य	मन्दिरों,
ध्वज	ध्वजाओं (झंडों),
पताकाभिः	झंड़ियोंसे
विद्रुमवेदिभिः	मूंगेकी बेदियोंसे
युक्तां	युक्त थी ॥१६॥

पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुमलताकुले ।
नदद्विहङ्गालिकुलकोलाहलजलाशये ॥१७॥

पुर्याः तु बाह्य उपवने दिव्य द्रुमलता आकुले नदत् विहङ्ग अलिकुल कोलाहल जलाशये ॥१७॥

पुर्याः	नगरका
बाह्य उपवने तु	बाहरी बगीचा तो
दिव्य द्रुम-	दिव्य वृक्षों (तथा)
लता आकुले	लताओंसे भरा था
नदत्	बोलते हुए
विहंग	पक्षियों तथा
अलिकुल	भ्रमर-समूहोंके
कोलाहल	कोलाहलसे (भरा)
जलाशये	जलाशयोंसे युक्त था ॥१७॥

हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना ।
चलत्प्रवालविटपनलिनीतटसम्पदि ॥१८॥

हिमनिर्झर विप्रुष्मत् कुसुमाकर वायुना चलत् प्रवाल विटप नलिनी तट सम्पदि ॥१८॥

हिमनिर्झर	बरफसे शीतल झरनोंको	तट सम्पदि	(सरोवरोंके) तटोंकी शोभा
विप्रुष्मत्	छूकर	विटप	वृक्षोंके
कुसुमाकर	पुष्प राशिमें-से	प्रवाल	पत्ते
वायुना	वायुके द्वारा	चलत्	हिल रहे थे ॥१८॥
नलिनी	कमलों तथा		

नानारण्यमृगव्रातैरनाबाधे मुनिव्रतैः ।
आहूतं मन्यते पान्थो यत्र कोकिलकूजितैः ॥१९॥

नाना अरण्य मृग व्रातैः अनाबाधे मुनिव्रतैः आहूतं मन्यते पान्थः यत्र कोकिल कूजितैः ॥१९॥

मुनिव्रतैः	मुनियोंके समान व्रत करनेवाले	यत्र	जहाँ
		पान्थः	पथिक
नाना अरण्य	अनेक वन्य-	कोकिल	
मृग व्रातैः	पशु समूह	कूजितैः	कोयलके शब्दोंसे
अनाबाधे	बिना बाधाके (घूमते थे)	आहूतं	आमन्त्रितके समान
		मन्यते	मानता था ॥१९॥

यदृच्छयाऽऽगतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमाम् ।
भृत्यैर्दशभिरायान्तीमेकैकशतनायकैः ॥२०॥

यदृच्छया आगतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमां भृत्यैः दशभिः आयान्तीं एकैक शत नायकैः ॥२०॥

यदृच्छया		दशभिः भृत्यैः	जो देश-सेवकोंके
आगतां	अकस्मात् आई हुई		साथ
तत्र	उस वनमें	आयान्तीम्	आ रही थी
प्रमदोत्तमां	एक श्रेष्ठ सुन्दरीको	एकैक	जिनमें-से प्रत्येक
ददर्श	देखा	शत नायकैः	सौ-सौ सेवकोंका नायक था ॥२०॥

पञ्चशीर्षाहिना गुप्तां प्रतीहारेण सर्वतः ।
अन्वेषमाणामृषभमप्रौढां कामरूपिणीम् ॥२१॥

पञ्चशीर्षं अहिना गुप्तां प्रतीहारेण सवतः अन्वेषमाणां ऋषभं अप्रौढां कामरूपिणीं ॥२१॥

पञ्चशीर्ष		अप्रौढां	(वह सुन्दरी)
अहिना	पाँच सिरवाले सर्प		किशोरी थी
प्रतीहारेण सर्वतः	द्वारपाल द्वारा सब ओरसे	कामरूपिणीं	इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी
गुप्तां	(वह नगर) रक्षित था	ऋषभं	श्रेष्ठ पुरुषको
		अन्वेषमाणाम्	ढूँढ़ रही थी ॥२१॥

सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननाम् ।
समविन्यस्तकर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियम् ॥२२॥

सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननां समविन्यस्त कर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियं ॥२२॥

सुनासां	सुन्दर नाकवाली	समविन्यस्त	समान आकारवाले
सुदतीं	सुन्दर दांतवाली	कर्णाभ्यां	कानोंमें
बालां	किशोरी	कुण्डलश्रियं	कुण्डलोंकी शोभा
सुकपोलां	सुन्दर कपोलवाली	बिभ्रतीं	धारण किये थी ॥२२॥
वराननां	श्रेष्ठ मुखवाली		

पिशङ्गनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलाम् ।
पद्भ्यां क्वणद्भ्यां चलन्तीं नूपुरैर्देवतामिव ॥२३॥

पिशङ्गनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनक मेखलां पद्भ्यां क्वणद्भ्यां चलन्तीं नूपुरैः देवतां इव ॥२३॥

श्यामां	साँवले रंगकी
सुश्रोणीं	उत्तम नितम्बवाली
पिशङ्गनीवीं	पीले रङ्गकी साड़ी और
कनक मेखलां	सोनेकी करधनी (पहिने) थी
नूपुरैः क्वणद्भ्यां	नूपुरोंसे शब्द करते हुये
पद्भ्यां चलन्तीं	पैरोंसे चलती
देवताम् इव	साक्षात् देवता-सी लगती थी ॥२३॥

स्तनौ व्यञ्जितकैशोरौ समवृत्तौ निरन्तरौ ।
वस्त्रान्तेन निगूहन्तीं व्रीडया गजगामिनीम् ॥२४॥

स्तनौ व्यञ्जित कैशोरौ समवृत्तौ निरन्तरौ वस्त्रान्तेन निगूहन्तीं व्रीडया गजगामिनीं ॥२४॥

गजगामिनीं	(वह) गजगामिनी
व्यञ्जित कैशोरौ	किशोरा वस्थाकी सूचना देनेवाले
समवृत्तौ	समान गोल
निरन्तरौ	परस्पर सटे हुए
स्तनौ	स्तनोंको
व्रीडया	लज्जा वश
वस्त्रान्तेन	आँचलसे
निगूहन्तीं	छिपाती जाती थी ॥२४॥

तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् ।
स्निग्धेनापाङ्गपुङ्खेन स्पृष्टः प्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा ॥२५॥

तां आह ललितं वीरः सव्रीडस्मित शोभनां स्निग्धेन अपाङ्ग पुङ्खेन स्पृष्टः प्रेम उद्भ्रमद्भ्रुवा ॥२५॥

प्रेमउद्-	
भ्रमद्भ्रुवा	प्रेमसे भटकती भौहोंसे
स्निग्धेन	प्रेम पूर्ण
अपाङ्ग पुंखेन	तिरछी चितवनसे
स्पृष्टः	घायल
वीरः	वीर (पुरञ्जन)
सव्रीडस्मित	लज्जा पूर्ण मुसकानसे
शोभनां	सुन्दर लगनेवाली
तां	उससे
ललितं आह	मधुर वाणीसे बोला ॥२५॥

पुरञ्जन उवाच-*

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति ।
इमामुप पुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥२६॥

का त्वं कञ्जपलाश अक्षि कस्य असि इह कुतः सति इमां उप पुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥२६॥

कञ्जपलाश	कमलदल
अक्षि	लोचने !
का त्वं	तुम कौन हो ?
कस्य असि	किसकी हो ?
सति इह कुतः	सती ! यहां कहांसे आयी हो ?
भीरु	भीरु !
इमां	इस
उप पुरीं	उप नगरमें
किं चिकीर्षसि	क्या करना चाहती हो ?
मे शंस	मुझे बतलाओ ॥२६

क एतेऽनुपथा ये त एकादश महाभटाः ।
एता वा ललनाः सुभ्रु कोऽयं तेऽहिः पुरःसरः ॥२७॥

क एते अनुपथा ये त एकादश महाभटाः एताः वा ललनाः सुभ्रु कः अयं ते अहिः पुरः सरः ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एते क	यह कौन हैं ?	ते पुरः सरः	तुम्हारे आगे चलने-वाला
सुभ्रु	सुन्दर भौंहोंवाली		
एताः ललनाः वा	अथवा ये सहेलियाँ कौन हैं,	अयं अहिः कः	यह सर्प कौन है ॥२७॥

त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथ वाग्रमा पतिं
विचिन्वती किं मुनिवद्रहो वने ।
त्वदङ्घ्रिकामाप्तसमस्तकामं
क्व पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥२८॥

त्वं ह्रीः भवानि असि अथ वा वाक् रमा पतिं विचिन्वती किं मुनिवत् रहः वने त्वत् अङ्घ्रि काम आप्त समस्त कामं क्व पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥२८॥

त्वं	तुम	विचिन्वती	ढूँढ़ रही हो ?
ह्रीः	लज्जा देवी हो !	त्वत् अङ्घ्रि	तुम्हारे चरणोंकी
भवानि असि	भवानी हो ?	काम	कामना (तो)
अथ वा वाक्	अथवा सरस्वती हो ?	समस्त कामं	सब कामनाओंको
		आप्त	प्राप्त हो जाना है,
रमा	लक्ष्मी हो ?	कराग्रात्	(तुम्हारे) हाथसे
मुनिवत्	मुनियोंके समान	पद्मकोशः	कमल-पुष्प
रहः वने	एकान्त वनमें	पतितः	कहाँ गिर गया ? ॥२८॥
किं पतिं	क्या अपने पतिको		

नासां वरोर्वन्यतमा भुविस्पृक्
पुरीमिमां वीरवरेण साकम् ।
अर्हस्यलङ्कर्तुमदभ्रकर्मणा
लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥२९॥

न आसां वरोरु अन्य तमा भुविस्पृक् पुरीं इमां वीरवरेण साकं अर्हसि अलङ्कर्तुम् अदभ्रकर्मणा लोकं परं श्रीः इव यज्ञपुंसा ॥२९॥

वरोरु आसां अन्य तमा	हे सुभगे इन सबमें
भुविस्पृक् न	कोई भी पृथ्वीका स्पर्श नहीं करता
इमां पुरीं	और तुम पृथ्वीपर हो, अतः इस पुरीको
वीरवरेण साकं	मुझ वीर श्रेष्ठके साथ
अलङ्कर्तुम् अर्हसि	शोभित करो
परं लोकं यज्ञ-पुंसा श्रीः इव	वैकुण्ठ लोकको लक्ष्मी जिस प्रकार भगवान् विष्णुको शोभित करती है ॥२९॥

यदेष मापाङ्गविखण्डितेन्द्रियं
सव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भ्रुवा ।
त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः
प्रबाधतेऽथानुगृहाण शोभने ॥३०॥

यत् एष मा अपाङ्ग विखण्डित इन्द्रियं सव्रीड भावस्मित विभ्रमद् भ्रुवा त्वया उपसृष्टः भगवान् मनोभवः प्रबाधते अथ अनुगृहाण शोभने ॥३०॥

अपाङ्ग विखण्डित इन्द्रियं	(तुम्हारे) कटाक्षोंसे इन्द्रियाँ घायल हो गयी हैं।
सव्रीड भावस्मित	लजीली भावपूर्ण मुसकानके साथ
विभ्रमद्भ्रुवा	फड़कती भौंहोंसे
त्वया उपसृष्टः	तुम्हारे द्वारा प्रेरित
एष भगवान् मनोभवः	यह भगवान कामदेव
यत् प्रबाधते	क्योंकि पीड़ित कर रहे हैं
अथ	इसलिए
शोभने	सुन्दरी
मा	मुझपर
अनुगृहाण	अनुग्रह करो ॥३०॥

त्वदाननं सुभ्रु सुतारलोचनं
व्यालम्बिनीलालकवृन्दसंवृतम् ।

उन्नीय मे दर्शय वल्गुवाचकं
यद्व्रीडया नाभिमुखं शुचिस्मते ॥३१॥

त्वत् आननं सुभ्रु सुतार लोचनं व्यालम्बि नील अलक वृन्द संवृतं उन्नीय मे दर्शय वल्गु वाचकं यद् व्रीडया न अभिमुखं शुचिस्मिते ॥३१॥

शुचिस्मिते	पवित्र मुसकानवाली	**वृन्द संवृतं**	समूहसे घिरा हुआ है
सुभ्रु सुतार लोचनं	सुन्दर भौंह और सुघड़ नेत्रोंसे शोभित	**वल्गु वाचकं**	मधुर वाणी वाली हो
		व्रीडया	किन्तु लज्जासे
		यद्	जो
त्वत् आननं	तुम्हारा मुख	**अभिमुखं न**	मेरी ओर मुख नहीं करती हो उसे
व्यालम्बि	लटकती		
नील अलक	काली अलकोंके	**उन्नीय**	ऊँचा करके
		मे दर्शय	मुझें दिखलाओ ॥३१

नारद उवाच–

इत्थं पुरञ्जनं नारी याचमानमधीरवत् ।
अभ्यनन्दत तं वीरं हसन्ती वीर मोहिता ॥३२॥

इत्थं पुरञ्जनं नारी याचमानं अधीरवत् अभि अनन्दत तं वीरं हसन्ती वीर मोहिता ॥३२॥

इत्थं	इस प्रकार	**वीर मोहिता**	उस वीरपर मोहित होकर
अधीरवत्	अधीर-से होकर		
याचमानं	प्रार्थना करते हुए	**हसन्ती**	हँसती हुई
पुरञ्जनं	पुरञ्जनको	**तं**	उसका
		अभि अनन्दत	अनुमोदन किया ॥३२

न विदाम वयं सम्यक्कर्तारं पुरुषर्षभ ।
आत्मनश्च परस्यापि गोत्रं नाम च यत्कृतम् ॥३३॥

न विदाम वयं सम्यक् कर्त्तारं पुरुषर्षभ आत्मनः च परस्य अपि गोत्रं नाम च यत् कृतम् ॥३३॥

पुरुषर्षभ	हे पुरुषश्रेष्ठ !	कृतम्	बताया हो
वयं कर्तारं	मैं अपने पैदा करने वालेको	आत्मनः च परस्य अपि	अपने या किसी दूसरेके
सम्यक् न विदाम	ठीक-ठीक नहीं जानतीं	नाम गोत्रं च	नाम या गोत्रको ॥३३॥
यत्	जिसने		

इहाद्य सन्तमात्मानं विदाम न ततः परम् ।
येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः ॥३४॥

इह अद्य सन्तं आत्मानं विदाम न ततः परं येन इयं निर्मिता वीर पुरी शरणं आत्मनः ॥३४॥

वीर	वीर !	येन	जिसने
इह	इस पुरीमें	आत्मानं	मेरे
अद्य सन्तं	आज तक	शरणं	निवास स्थान
आत्मानं	अपने आपको	इयं पुरी	इस पुरीको
ततः परं	(तथा) उससे भिन्नको भी	निर्मिता	बनाया (उसे)
		न विदाम	नहीं जानती ॥३४॥

एते सखायः सख्यो मे नरा नार्यश्च मानद ।
सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन् पुरीम् ॥३५॥

एते सखायः सख्यः मे नरा नार्यः च मानद सुप्तायां मयि जागर्ति नागः अयं पालयन् पुरीं ॥३५॥

मानद	सम्मान देनेवाले (वीर)	एते नरा मे सखायः	यह पुरुष, मेरे मित्र हैं

नार्यः च सख्यः	और स्त्रियां मेरी सहेलियां है	**अयं नागः**	यह सर्प
		पुरीं पालयन्	पुरीकी रक्षा करता हुआ
मयि	मेरे		
सुप्तायां	सो जानेपर	**जागर्ति**	जगता है ॥३५॥

दिष्ट्याऽऽगतोऽसि भद्रं ते ग्राम्यान् कामानभीप्ससे।
उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहं स्वबन्धुभिररिन्दम ॥३६॥

दिष्ट्या आगतः असि भद्रं ते ग्राम्यान् कामान् अभीप्ससे उद्वहिष्यामि तान् ते अहं स्व बन्धुभिः अरिन्दम ॥३६॥

अरिन्दम	शत्रु दमन !	**अहं**	मैं
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है	**तान् ते**	उन (विषय भोगों) को तुम्हारे लिए
आगतः असि	तुम यहाँ आये हो		
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो	**स्व बन्धुभिः**	अपने साथियोंके साथ
ग्राम्यान्			
कामान्	तुम विषय-भोगोंकी	**उद्वहिष्यामि**	प्रस्तुत करूँगी ॥३६॥
अभीप्ससे	इच्छा करते हो		

इमां त्वमधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो।
मयोपनीतान् गृह्णानः कामभोगान् शतं समाः ॥३७॥

इमां त्वं अधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो मया उपनीतान् गृह्णानः कामभोगान् शतं समाः ॥३७॥

विभो	प्रभो !	**कामभोगान्**	इच्छित भोगोंको
इमां	इस	**गृह्णानः**	ग्रहण करते हुए
नवमुखीं पुरीं	नौ द्वारवाली पुरीमें	**शतं समाः**	सौ वर्षोंतक
		अधितिष्ठस्व	रहिये ॥३७॥
मया उपनीतान्	मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये		

कं नु त्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञमकोविदम्।
असम्परायाभिमुखमभ्वस्तनविदं पशुम् ॥३८॥

कं नु त्वदन्यं रमये हि अरतिज्ञं अकोविदं असम्पराय अभिमुखं अश्वस्तन विदं पशुं ॥३८॥

त्वदन्यं	आपको छोड़कर	**अभिमुखं**	अभिमुख हुए
कं नु	किसके साथ तो	**अश्वस्तनविदं**	कल क्या होगा इसे नहीं जानते
रमये	रमण करूँगी	**पशुं**	ऐसे लोक तो पशुओंके समान हैं ॥३८॥
अकोविदं	अभिप्राय		
अरतिज्ञं	रति सुख न जानने-वाला		
असम्परायां	मृत्युके पश्चात् (परलोक)		

धर्मो ह्यत्रार्थकामौ च प्रजानन्दोऽमृतं यशः ।
लोका विशोका विरजा यान् न केवलिनो विदुः ॥३९॥

धर्मः हि अत्र अर्थ कामौ च प्रजा आनन्दः अमृतं यशः लोका विशोका विरजा यान् न केवलिनः विदुः ॥३९॥

हि	क्योंकि	**विशोका**	शोक रहित
अत्र	इस (गृहस्थाश्रम)में	**विरजा लोका**	निर्मल लोकोंकी प्राप्ति है
धर्मः च अर्थ कामौ	धर्म और अर्थ, काम,	**यान्**	जिनको
प्रजा आनन्दः	सन्तान सुख	**केवलिनः**	संसार-त्यागी
अमृतं यशः	अमर यश	**न विदुः**	नहीं जानते ॥३९॥

पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह ।
क्षेम्यं वदन्ति शरणं भवेऽस्मिन् यद् गृहाश्रमः ॥४०॥

पितृ देव ऋषि मर्त्यानां भूतानां आत्मनः च ह क्षेम्यं वदन्ति शरणं भवे अस्मिन् यत् गृहाश्रमः ॥४०॥

पितृ	पितर,	ह	निश्चय
देव	देवता,	अस्मिन् भवे	इस संसारमें
ऋषि	ऋषिगण,	क्षेम्यं शरणं	कल्याणकारी आश्रय
मर्त्यानां	मनुष्योंका	यत्	क्योंकि
भूतानां	अन्य प्राणियोंका	गृहाश्रमः	गृहस्थाश्रम ही
आत्मनः च	अपना भी	वदन्ति	कहा गया है ॥४०॥

का नाम वीर विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् ।
न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिम् ॥४१॥

का नाम वीर विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनं न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिं ॥४१॥

का नाम	भला कौन-सी	प्रियं	प्रिय
मादृशी	मुझ जैसी (स्त्री)	त्वादृशं	आपके समान
विख्यातं	प्रसिद्ध	पतिं प्राप्तं	पति मिलनेपर
वीर	वीर	न वृणीत	वरण नहीं
वदान्यं	उदार		करेगी ॥४१॥
प्रियदर्शनं	सुन्दर		

कस्या मनस्ते भुवि भोगिभोगयोः
स्त्रिया न सज्जेद्भुजयोर्महाभुज ।
योऽनाथवर्गाधिमलं घृणोद्धत-
स्मितावलोकेन चरत्यपोहितुम् ॥४२॥

कस्या मनः ते भुवि भोगि भोगयोः स्त्रिया न सज्जेत् भुजयोः महाभुज यः अनाथ वर्ग अधिमलं घृणा उद्धत स्मित अवलोकेन चरति अपोहितुं ॥४२॥

महाभुज	महाबाहो !	भुजयोः	भुजाओंमें
भुवि	इस पृथ्वीपर	कस्या स्त्रिया	किस स्त्रीका
भोगि भोगयोः	सर्प जैसी लम्बी गोल	मनः	मन
		सज्जेत्	आसक्त नहीं होगा

यः	जो	स्मित	
अनाथ वर्ग	अनाथ श्रेणीकी (मेरे)	अवलोकेन	मुस्कान भरी चितवनसे
अधिमलं	आन्तरिक कष्टको	अपोहितुं	दूर करनेके लिए
घृणाद्रत	कृपा पूर्ण	चरति	विचरण करते हैं ॥४२॥

नारद उवाच–

इति तौ दम्पती तत्र समुद्य समयं मिथः ।
तां प्रविश्य पुरीं राजन्मुमुदाते शतं समाः ॥४३॥

इति तौ दम्पती तत्र समुद्य समयं मिथः तां प्रविश्य पुरीं राजन् मुमुदाते शतं समाः ॥४३॥

राजन्	राजन् !	तां पुरीं	उस पुरीमें
तौ दम्पती	वे दोनों स्त्री पुरुष	प्रविश्य	प्रवेश करके
इति मिथः	इस प्रकार परस्पर	शतं समाः	सौ वर्षों तक
समयं समुद्य	प्रतिज्ञाका परस्पर समर्थन करके	मुमुदाते	आनन्द भोगते रहे ॥४३॥

उपगीयमानो ललितं तत्र तत्र च गायकैः ।
क्रीडन् परिवृतः स्त्रीभिर्ह्रदिनीमाविशच्छुचौ ॥४४॥

उपगीयमानः ललितं तत्र तत्र च गायकैः क्रीडन् परिवृतः स्त्रीभिः ह्रदिनीं आविशत् शुचौ ॥४४॥

गायकैः	गायक लोग	स्त्रीभिः	
तत्र तत्र च	जहां-तहां	परिवृतः	अनेकों स्त्रियोंसे घिर
ललितं	ललित स्वरसे	क्रीडन्	(जल) क्रीड़ाके लिए
उपगीयमानः	कीर्तिका गान करते थे	ह्रदिनीं	नदीमें
		आविशत्	प्रवेश किया ॥४४॥
शुचौ	ग्रीष्म ऋतुमें		

सप्तोपरि कृता द्वारः पुरस्तस्यास्तु द्वे अधः ।
पृथग्विषयगत्यर्थं तस्यां यः कश्चनेश्वरः ॥४५॥

सप्त उपरि कृता द्वारः पुरः तस्याः तु द्वे अधः पृथक् विषय गति अर्थम् तस्यां यः कश्चन ईश्वरः ॥४५॥

तस्यां यः	उसका जो	तस्याः पुरः	उस नगरीमें
कश्चन ईश्वरः	कोई राजा होता (उसके)	सप्त द्वारः	सात द्वार
		उपरि कृता	ऊपर बनाये थे
पृथक्	पृथक	तु द्वे अधः	और दो द्वार नीचे थे ॥४५॥
विषय गति अर्थम्	विषयोंमें जानेके लिए		

पञ्च द्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा ।
पश्चिमे द्वे अमूषां ते नामानि नृप वर्णये ॥४६॥

पञ्चद्वारः तु पौरस्त्याः दक्षिणा एका तथा उत्तरा पश्चिमे द्वे अमूषां ते नामानि नृप वर्णये ॥४६॥

पञ्चद्वारः	(इनमें) पांच द्वार	नृप	राजन् !
पौरस्त्याः	पूर्वकी ओर	अमूषां	इनके
एका दक्षिणा		नामानि	नामोंका
तथा	और एक दक्षिणमें	ते	तुमसे
एका उत्तरा	एक उत्तर	वर्णये	वर्णन करता हूँ ॥४६॥
द्वे पश्चिमे	दो द्वार पश्चिममें थे		

खद्योताऽऽविर्मुखी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ।
विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत्सखः ॥४७॥

खद्योता आविर्मुखी च प्राग्द्वारौ एकत्र निर्मिते विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत् सखः ॥४७॥

खद्योता च अविर्मुखी	खद्योता और आविर्मुखी
प्राग्द्वारौ	पूर्वकी ओर यह दो द्वार
एकत्र निर्मिते	एक ही जगह बनाये गये थे
ताभ्यां	उनमें होकर
द्युमत् सखः	अपने मित्रद्युमान्के साथ
विभ्राजितं जनपदं	विभ्राजित नामक जनपदको
याति	जाया करता था ॥४७॥

नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ।
अवधूतसखस्ताभ्यां विषयं याति सौरभम् ॥४८॥

नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारौ एकत्र निर्मिते अवधूत सखः ताभ्यां विषयं याति सौरभं ॥४८॥

नलिनी नालिनी च	नलि ननीऔर नालि नामके
प्राग्द्वारौ	पूर्वकी ओर दो द्वार
एकत्र निर्मिते	एक जगह बनाये गये थे
ताभ्यां	उनसे होकर
अवधूत सखः	अवधूतके साथ
सौरभं विषयं	सौरभ नामके देशको
याति	जाया करता था ॥४८॥

मुख्या नाम पुरस्ताद् द्वास्तयाऽऽपणबहूदनौ ।
विषयौ याति पुरराड्रसज्ञविपणान्वितः ॥४९॥

मुख्या नाम पुरस्तात् द्वाः तया आपण बहूदनौ विषयौ याति पुरराट् रसज्ञ विपण अन्वितः ॥४९॥

पुरस्तात् मुख्या नाम द्वाः	पूर्वकी ओर मुख्या नामका द्वार था
तया	उससे
रसज्ञ विपण अन्वितः	रसज्ञ और विपणके साथ
आपण बहूदनौ	आपण और बहूदन नामक
विषयौ	देशोंको
पुरराट् याति	उस नगरका राजा जाता था ॥४९॥

पितृहूर्नृप पुर्या द्वार्दक्षिणेन पुरञ्जनः ।
राष्ट्रं दक्षिणपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥५०॥

पितृहूः नृप पुर्या द्वाः दक्षिणेन पुरञ्जनः राष्ट्रं दक्षिण पञ्चालं याति श्रुतधर अन्वितः ॥५०॥

नृप	राजन् !	श्रुतधर	
पुर्या दक्षिणेन	नगरीके दक्षिणकी ओर	अन्वितः	श्रुतधरके साथ
पितृहूः द्वाः	पितृहू नामके द्वारसे	दक्षिण पञ्चालं	दक्षिण पञ्चाल
पुरञ्जनः	पुरञ्जन	राष्ट्रं	राष्ट्रको
		याति	जाता था ॥५०॥

देवहूर्नाम पुर्या द्वा उत्तरेण पुरञ्जनः ।
राष्ट्रमुत्तरपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥५१॥

देवहूः नाम पुर्याः द्वाः उत्तरेण पुरञ्जनः राष्ट्रं उत्तरपञ्चालं याति श्रुतधर अन्वितः ॥५१॥

पुर्याः उत्तरेण	पुरीके उत्तरमें	उत्तर पञ्चालं	उत्तर पञ्चाल नामक
देवहूः नाम द्वाः	देवहू नामका द्वार था	राष्ट्रं पुरञ्जनः	राष्ट्रको पुरंजन
श्रुतधर		याति	जाता था ॥५१॥
अन्वितः	उससे श्रुतधरके साथ		

आसुरी नाम पश्चाद् द्वास्तया याति पुरञ्जनः ।
ग्रामकं नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः ॥५२॥

आसुरी नाम पश्चात् द्वाः तया याति पुरञ्जनः ग्रामकं नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः ॥५२॥

पश्चात्	पश्चिम दिशामें	दुर्मदेन समन्वितः	दुर्मदके साथ
आसुरी नाम द्वाः	आसुरी नामक द्वार था	ग्रामकं नाम विषयं	ग्रामक नामके देशको
तया पुरञ्जनः	उस द्वारसे पुरञ्जन	याति	जाता था ॥५२॥

निर्ऋतिर्नाम पश्चाद् द्वास्तया याति पुरञ्जनः ।
वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः ॥५३॥

निर्ऋतिः नाम पश्चात् द्वाः तया याति पुरञ्जनः वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः ॥५३॥

पश्चात्	पश्चिम दिशामें	लुब्धकेन समन्वितः	लुब्धकके साथ
निर्ऋतिः नाम द्वाः	निर्ऋति नामका द्वार था	वैशसं नाम विषयं याति	वैशस नामके राष्ट्रको जाता था ॥५३॥
तया पुरञ्जनः	उससे पुरञ्जन		

अन्धावमीषां पौराणां निर्वाक्पेशस्कृतावुभौ ।
अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च ॥५४॥

अन्धौ अमीषां पौराणां निर्वाक् पेशस्कृतौ उभौ अक्षण्वतां अधिपतिः ताभ्यां याति करोति च ॥५४॥

अमीषां पौराणां	इस नगरके निवासियोंमें	अक्षण्वतां	(पुरञ्जन) आँखवालों
निर्वाक् पेशस्कृतौ	निर्वाक् और पेशस्कृत नामके	अधिपतिः ताभ्यां याति	का स्वामी होकर इन्हींकी सहायतासे जाता
उभौ अन्धौ	दो अन्धे थे	च करोति	और सब कार्य करता था ॥५४॥

स यर्ह्यन्तःपुरगतो विषूचीनसमन्वितः ।
मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जायात्मजोद्भवम् ॥५५॥

स यर्हि अन्तः पुरगतः विषूचीन समन्वितः मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जाया आत्मजोद्भवं ॥५५॥

स यर्हि	वह जब	आत्मजोद्भवं	पुत्रोंसे उत्पन्न
विषूचीन		मोहं	मोह या
समन्वितः	विषूचीनके साथ	प्रसादं	प्रसन्नता
अन्तः पुरगनः	अन्तःपुरमें जाता	हर्षं वा	अथवा हर्षको
जाया	तब स्त्री और	याति	प्राप्त करता ॥५५॥

एवं कर्मसु संसक्तः कामात्मा वञ्चितोऽबुधः ।
महिषी यद्यदीहेत तत्तदेवान्ववर्तत ॥५६॥

एवं कर्मसु संसक्तः काम आत्मा वञ्चितः अबुधः महिषी यद् यद् ईहेत तत् तत् एव अनु अवर्त्तत ॥५६॥

एवं	इस प्रकार	महिषी	पत्नी
कर्मसु संसक्तः	कर्मोंमें आसक्त हुआ	यद्यद् ईहेत	जो जो चाहती थी
काम आत्मा	कामना पूर्ण चित्त	तत् तद् एव	वही वही ही
अबुधः	मूढ़ हो गया	अनु अवर्त्तत	करता था ॥५६॥
वञ्चितः	ठगा गया		

क्वचित्पिबन्त्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः ।
अश्नन्त्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षिति ॥५७॥

क्वचित् पिबन्त्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः अश्नन्त्यां क्वचित् अश्नाति जक्षत्यां सह जक्षिति ॥५७॥

क्वचित्	कभी
मदिरां	
पिबन्त्यां	(स्त्री) मदिरा पीने लगती तो
पिबति	(वह भी) पीता था
मदविह्वलः	और मदसे उन्मत्त हो जाता

क्वचित्	
अश्नन्त्यां	कभी वह भोजन करती
अश्नाति	वह भी भोजन करता
जक्षत्यां	वह कुछ चबाती
सह जक्षिति	तब साथ ही चबानें लगता ॥५७॥

क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदत्यां रुदति क्वचित् ।

क्वचिद्धसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनु जल्पति ॥५८॥

क्वचिद् गायति गायन्त्यां रुदत्यां रुदति क्वचित् क्वचिद् हसन्त्यां हसति जल्पन्त्यां अनु जल्पति ॥५८॥

क्वचिद्	
गायन्त्यां	कभी जब वह गाने लगती तो
गायति	गाने लगता
क्वचिद् रुदत्यां	कभी वह रोती तो
रुदति	रोने लगता

क्वचिद्	
हसन्त्यां	कभी वह हँसती
हसति	तो हँसता
जल्पन्त्यां	वह बोलती तो
अनु जल्पति	पीछे बोलने लगता ॥५८॥

क्वचिद्धावति धावन्त्यां तिष्ठन्त्यामनु तिष्ठति ।

अनु शेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ॥५९॥

क्वचिद् धावति धावन्त्यां तिष्ठन्त्यां अनु तिष्ठति अनु शेते शयानायां अनु आस्ते क्वचिद् आसतीं ॥५९॥

क्वचिद्	
धावन्त्यां	कभी वह दौड़ती तो
धावति	दौड़ने लगता
तिष्ठन्त्यां	वह खड़ी होती तो
अनु तिष्ठति	पीछे खड़ा हो जाता

शयानायां	वह सोती
अनु शेते	तब साथ सो जाता
क्वचिद् आसतीं	कभी वह बैठती तो
अनु आस्ते	साथ ही बैठ जाता ॥५९॥

क्वचिच्छृणोति शृण्वन्त्यां पश्यन्त्यामनु पश्यति ।

क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति क्वचित् ॥६०॥

क्वचित् शृणोति शृण्वन्त्यां पश्यन्त्यां अनु पश्यति क्वचिद् जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति क्वचित् ॥६०॥

क्वचित्	
शृण्वन्त्यां	कभी वह सुनाती तो
शृणोति	सुनने लगता
पश्यन्त्यां	वह देखती तो
अनु पश्यति	साथ हो देखता
क्वचिद्	
जिघ्रन्त्यां	कभी सूंघती तो
जिघ्रति	सूंघने लगता
क्वचित्	
स्पृशन्त्यां	कभी स्पर्श करती तो
अनु स्पृशति	साथ ही स्पर्श करता ॥६०॥

क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत् ।

अनु हृष्यति हृष्यन्त्यां मुदितामनु मोदते ॥६१॥

क्वचित् च शोचतीं जायां अनु शोचति दीनवत् अनु हृष्यति हृष्यन्त्यां मुदितां अनु मोदते ॥६१॥

क्वचित् जायां	कभी पत्नीके
शोचतीं	शोक करनेपर
दीनवत्	दीन की तरह
अनु शोचति	साथ शोक करता
हृष्यन्त्यां	वह हर्षित होती तब
अनु हृष्यति	साथ हर्षित हो जाता
मुदितां	मुदित होती तो
अनु मोदते	साथ प्रसन्न हो जाता ॥६१॥

विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः ।

नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥६२॥

विप्रलब्धः महिष्या एवं सर्व प्रकृति वञ्चितः न इच्छन् अनु करोति अज्ञः क्लैब्यात् क्रीडामृगः यथा ॥६२॥

एवं	इस प्रकार	न इच्छन्	न चाहनेपर भी
महिष्या		क्लैब्यात्	का-पुरुषतावश
विप्रलब्धः	स्त्रीके द्वारा ठगा गया	यथा क्रीडामृगः	जैसे खिलौनेका पशु हो
सर्वं प्रकृति	परिवारजनों द्वारा	अनु करोति	अनुकरण करता
वञ्चितः	ठगे जाकर		था ॥६२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच–

स एकदा महेष्वासो रथं पञ्चाश्वमाशुगम् ।
द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरम् ॥१॥

स एकदा महा इष्वासः रथं पञ्चाश्वं आशुगं द्वीषं द्विचक्रं एकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरं ॥१॥

एकदा	एक दिन	द्विचक्रं	दो पहियेके
स	वह	एकाक्षं	एकधुरीवाले
महा इष्वासः	विशाल धनुष लेकर	त्रिवेणुं	तीन ध्वज दण्डवाले
पञ्चाश्वं	पाँच घोड़ोंवाले	पञ्च बन्धुरं	पांच डोरियों-
आशुगं	शीघ्रगामी		वाले ॥१॥
द्वीषं	दो ईषा दण्डवाले		

एकरश्म्येकदमनमेकनीडं द्विकूबरम् ।
पञ्चप्रहरणं सप्तवरूथं पञ्चविक्रमम् ॥२॥

एक रश्मि एक दमनं एक नीडं द्वि कूबरं पञ्च प्रहरणं सप्त वरूथं पञ्च विक्रमं ॥२॥

एक रश्मि	एक लगामवाले	पञ्च प्रहरणं	पांच शस्त्रवाले
एक दमनं	एक सारथिवाले	सप्त वरूथं	सात आवरणवाले
एक नीडं	एक बैठनेके स्थान-	पञ्च विक्रमं	पांच प्रकारसे
	वाले		चलनेवाले ॥२॥
द्वि कूबरं	दो जुए वाले		

हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माक्षयेषुभिः ।
एकादशचमूनाथः पञ्चप्रस्थमगाद्वनम् ॥३॥

हैम उपस्करं आरुह्य स्वर्णवर्म अक्षय इषुभिः एकादश चमूनाथः पञ्चप्रस्थं अगात् वनं ॥३॥

हैम उपस्करं	सोनेके साजवाले (रथपर)	आरुह्य	बैठकर
स्वर्णवर्म	सोनेके कवचको पहनकर	एकादश चमूनाथः	ग्यारहो सेनापतिके साथ
अक्षय इषुधिः	अक्षय तरकस धारणकर	पञ्चप्रस्थं वनं अगात्	पञ्चप्रस्थ नामक वनको गया ॥३॥

चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुकः ।
विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥४॥

चचार मृगयां तत्र दृप्तः आत्त इषु कार्मुकः विहाय जायां अतदर्हां मृगव्यसन लालसः ॥४॥

तत्र	उस वनमें	आत्त	लेकर
मृगव्यसन	शिकारके व्यसन और	अतदर्हां	त्यागके अयोग्य
लालसः	लालसासे	जायां	पत्नीको
दृप्तः इषु	गर्वसे बाण	विहाय	छोड़कर
कार्मुकः	धनुष	मृगयां चचार	शिकार खेलने लगा ॥४॥

आसुरीं वृत्तिमाश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः ।
न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥५॥

आसुरीं वृत्तिं आश्रित्य घोर आत्मा निर् अनुग्रहः नि अहनत् निशितैः बाणैः वनेषु वन गोचरान् ॥५॥

घोर आत्मा	कठोर स्वभाववाला	निशितैः बाणैः	तीक्ष्ण बाणोंसे
निरनुग्रहः	दया रहित	वनेषु	वनमें
आसुरीं वृत्तिम्	आसुरी वृत्तिको	वनगोचरान्	जंगली पशुओंको
अश्रित्य	ग्रहण कर	निअहनत्	मारा ॥५॥

तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान् पशून् वने ।
यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति नियम्यते ॥६॥

तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान् पशून् वने यावद् अर्थं अलं लुब्धः हन्यात् इति नियम्यते ॥६॥

अलं लुब्धः	अत्यन्त लोभ (व्यसन) रोककर	मेध्यान् पशून्	आखेटके लिए विहित पशुओंका*
राजा वने	राजा वनमें जाकर	हन्यात्	वध करे
प्रतिदृष्टेषु	केवल शास्त्रोक्त कर्मोंके लिए	इति नियम्यते	ऐसा शास्त्र ने नियम किया है ॥६॥
तीर्थेषु	विहित स्थानसे		
यावद् अर्थं	आवश्यकताके अनुसार		

य एवं कर्म नियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः ।
कर्मणा तेन राजेन्द्र ज्ञानेन न स लिप्यते ॥७॥

य एवं कर्म नियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः कर्मणा तेन राजेन्द्र ज्ञानेन न स लिप्यते ॥७॥

यः	जो	राजेन्द्र	हे राजेन्द्र !
विद्वान् मानवः	विद्वान् मनुष्य	स ज्ञानेन	वह ज्ञानके द्वारा
एवं	इस प्रकार	तेन कर्मणा	उस कर्मसे
नियतं कर्म	शास्त्रोक्त कर्म	न लिप्यते	लिप्त नहीं होता ॥७॥
कुर्वीत	करता है		

* वृद्ध, दलवहिष्कृत पशु जो अपना आहार भी स्वयं सरलतासे नहीं ले पाते आखेट शास्त्रमें मारने योग्य माने गये हैं ।

अन्यथा कर्म कुर्वाणो मानारूढो निबध्यते ।
गुणप्रवाहपतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः ॥८॥

अन्यथा कर्म कुर्वाणः मानारूढः निबध्यते गुणप्रवाह पतितः नष्टप्रज्ञः व्रजति अधः ॥८॥

अन्यथा कर्म	अन्यथा मनमाना कर्म	**गुणप्रवाह पतितः**	गुण प्रवाह रूप संसार चक्रमें पड़कर
कुर्वाणः	करनेसे	**नष्टप्रज्ञः**	विवेक भ्रष्ट होकर
मानारूढः	अभिमानवश	**अधः व्रजति**	अधम योनिमें जाता है ॥८॥
निबध्यते	कर्म बन्धनमें पड़ता है ।		

तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः ।
विप्लवोऽभूद्दुःखितानां दुःसहः करुणात्मनाम् ॥९॥

तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः विप्लवः अभूत् दुखितानां दुःसहः करुणात्मनाम् ॥९॥

चित्रवाजैः	तरह-तरहके पङ्खवाले	**करुणात्मनां**	दयालु स्वभाव लोगोंको
शिलीमुखैः	बाणोंसे	**दुःसहः**	असह्य
निर्भिन्नगात्राणां	छिन्न-भिन्न शरीरवाले	**विप्लवः**	विप्लव (उथल-पुथल)
तत्र	उस वनमें	**अभूत**	हुआ ॥९॥
दुःखितानां	दुःखी हो गये		

शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान् ।
मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन् श्रममध्यगात् ॥१०॥

शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरु शल्यकान् मेध्यान् अन्यान् च विविधान् विनिघ्नन् श्रमं अध्यगात् ॥१०॥

शशान	खरगोश,	विविधान्	अनेक प्रकारके
वराहान	सुअर,	मेध्यान्	(आखेट) पवित्र (पशु)
महिषान्	भैंसे,	विनिघ्नन्	मारते हुए
गवयान्	नील गाय,	श्रमं	परिश्रम
रुरु	चित्तल मृग,	अध्यगात्	प्राप्त (शान्त) हो गया ॥१०॥
शल्यकान्	सेही		
च अन्यान्	तथा दूसरे		

ततः क्षुत्तृट्परिश्रान्तो निवृत्तो गृहमेयिवान् ।
कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥११॥

ततः क्षुत् तृट् परिश्रान्तः निवृत्तः गृहं एयिवान् कृतस्नान उचित आहारः संविवेश गतक्लमः ॥११॥

ततः	तब	कृतस्नान	स्नान किया
क्षुत्	भूख	उचित आहारः	उचित भोजन किया
तृट्	प्याससे	गतक्लमः	श्रम दूर हुआ
परिश्रान्तः	थककर	संविवेश	आराम करने लगा ॥११॥
निवृत्तः	लौटा		
गृहं एयिवान्	राजमहलमें आया		

आत्मानमर्हयाञ्चक्रे धूपालेपस्रगादिभिः ।
साध्वलङ्कृतसर्वाङ्गो महिष्यामादधे मनः ॥१२॥

आत्मानं अर्हयाञ्चक्रे धूप आलेप स्रक् आदिभिः साधु अलंकृत् सर्वाङ्गः महिष्यां आदधे मनः ॥१२॥

धूप	(सुगंधित) धूप	सर्वाङ्गः अलंकृत	सब अंगोंका शृङ्गार करके
आलेप	अंगराग	महिष्यां	पत्नीको (पानेका)
स्रक् आदिभिः	माला आदिसे	मनः आदधे	मन (विचार) किया ॥१२॥
आत्मानं	अपना		
अर्हयांचक्रे	शृङ्गार किया		
साधु	भली प्रकार		

तृप्तो हृष्टः सुहृप्तश्च कन्दर्पाकृष्टमानसः ।
न व्यचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीम् ॥१३॥

तृप्तः हृष्टः सुहृप्तः च कन्दर्प आकृष्ट मानसः न व्यचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीं ॥१३॥

तृप्तः	(भोजनसे) तृप्त होकर	कन्दर्प आकृष्ट मानसः	कामसे चित्त खींचे जानेपर
हृष्टः	हर्षित होकर	गृहमेधिनीं	गृहस्वामिनी
च सुहृप्तः	तथा मदमे उन्मत्त होकर	वरारोहां	अति सुन्दरी
		गृहिणीं	भार्य्याको
		न व्यचष्ट	कहीं देखा नहीं ॥१३

अन्तःपुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत् ।
अपि वः कुशलं रामाः सेश्वरीणां यथा पुरा ॥१४॥

अन्तः पुरः स्त्रियः अपृच्छत् विमना इव वेदिषत् अपि वः कुशलं रामाः स ईश्वरीणां यथा पुरा ॥१४॥

वेदिषत्	हे प्राचीन बर्हि !	स ईश्वरीणां	अपनी स्वामिनी सहित
विमना इव	उदास-सा होकर	वः	तुम सब
अन्तःपुरःस्त्रियः	अन्तःपुराकी स्त्रियोंसे	यथा पुरा	पहलेकी भाँति
अपृच्छत्	पूछा—	अपि कुशलं	कुशलसे तो हो' ॥१४
रामाः	'सुन्दरियों		

न तथैतर्हि रोचन्ते गृहेषु गृहसम्पदः ।
यदि न स्याद् गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता ।
व्यङ्गे रथ इव प्राज्ञः को नामासीत दीनवत् ॥१५॥

न तथा एतः हि रोचन्ते गृहेषु गृहसम्पदः यदि न स्यात् गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता व्यङ्गे रथे इव प्राज्ञः को नाम आसीत् दीनवत् ॥१५॥

हि	क्योंकि
एतः	इस
गृहेषु	घरमें
गृहसम्पदः	घरकी सम्पति
तथा	वैसी
रोचन्ते न	शोभित नहीं होती
यदि	यदि
गृहे	घरमें
माता	माता
वा	अथवा
पतिदेवता	पतिव्रता
पत्नी न स्यात्	पत्नी न हो,
को नाम	भला कौन
प्राज्ञः	बुद्धिमान
दीनवत्	दीनकी भाँति
व्यङ्गे रथे	अंग हीन रथ-
इव	की भाँति (ऐसे
	घरमें)
आसीत्	रहेगा ॥१५॥

क्व वर्तते सा ललना मज्जन्तं व्यसनार्णवे ।
या मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पदे पदे ॥१६॥

क्व वर्तते सा ललना मज्जन्तं व्यसन अर्णवे या मां उद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पदे पदे ॥१६॥

सा ललना	वह सुन्दरी
क्व वर्तते	कहाँ है
व्यसन अर्णवे	दुःखके समुद्रमें
मज्जन्तं	डूबते
मां	मुझे
पदे पदे	पद-पदपर
या	जो
प्रज्ञां दीपयन्ती	प्रज्ञा प्रदीप्त करके
उद्धरते	उद्धार करती
	है ॥१६॥

रामा ऊचुः-

नरनाथ न जानीमस्त्वत्प्रिया यद्व्यवस्यति ।
भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥१७॥

नरनाथ न जानीमः त्वत् प्रिया यद् व्यवस्यति भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥१७॥

नरनाथ	राजन् !	**शत्रुहन्**	हे शत्रुदमन !
त्वत् प्रिया	तुम्हारी प्रियाने	**निरवस्तारे**	बिनाविछौना
यद् व्यवस्यति	जो करना चाहा है (वह)	**भूतले**	पृथिवीपर
		शयानां	सोती हुई (उन्हें)
न जानीमः	हमें नहीं जानतीं	**पश्य**	देखो ॥१७॥

नारद उवाच–

पुरञ्जनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि ।
तत्सङ्गोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥१८॥

पुरञ्जनः स्वमहिषीं निरीक्ष्य अवधुतां भुवि तत् संग उन्मथित ज्ञानः वैक्लव्यं परमं ययौ ॥१८॥

पुरञ्जनः	पुरञ्जन !	**ज्ञानः**	ज्ञानके
स्वमहिषीं	अपनी रानीको	**उन्मथितं**	अस्तव्यस्त हो जानेसे
भुवि	पृथ्वीपर	**परमं वैक्लव्यं**	अत्यन्त व्याकुलता-को
अवधुतां	मलिन दशामें		
निरीक्ष्य	देखकर	**ययौ**	प्राप्त हो गया ॥१८॥
तत् संग	उसकी आसक्तिसे		

सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता ।
प्रेयस्याः स्नेहसंरम्भलिङ्गमात्मनि नाभ्यगात् ॥१९॥

सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता प्रेयस्याः स्नेह संरम्भ लिङ्गं आत्मनि न अभ्यगात् ॥१९॥

विदूयता हृदयेन	दुःखित हृदयसे	**प्रेयस्याः**	प्रियाका
		आत्मनि	अपने प्रति
श्लक्ष्णया वाचा	मधुर वाणी द्वारा	**स्नेह संरम्भ**	प्रणय-कोपका
सान्त्वयन्	सान्त्वना देता रहापर	**लिङ्गं**	हेतु
		न अभ्यगात्	नहीं जान सका ॥१९

अनुनिन्येऽथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोविदः ।
पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्सङ्गलालिताम् ॥२०॥

अनुनिन्ये अथ शनकैः वीरः अनुनय कोविदः पस्पर्श पादयुगलं आह च उत्सङ्ग लालितां ॥२०॥

अथ	फिर	पादयुगलं	
अनुनय		पस्पर्श	दोनों पैर छुए
कोविदः	मनानेमें कुशल	च	और
वीरः	वीरने	उत्सङ्ग	गोदमें बिठाकर
शनकैः	धीरे-धीरे	लालितां	लाड़ करते
अनुनिन्ये	मनाना शुरू किया	आह	कहने लगा ॥२०॥

पुरञ्जन उवाच–

नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे ।
कृतागस्स्वात्मसात्कृत्वा शिक्षादण्डं न युञ्जते ॥२१॥

नूनं तु अकृत पुण्याः ते भृत्या येषु ईश्वराः शुभे कृत आगस्सु आत्मसात् कृत्वा शिक्षा दण्डं न युञ्जते ॥२१॥

शुभे	हे सुन्दरी !	आत्मसात्	
ते भृत्या	वे सेवक	कृत्वा	अपना समझकर
नूनं	निश्चय	ईश्वराः	स्वामीजन
अकृत पुण्याः	पुण्य हीन हैं	शिक्षा दण्डं	शिक्षाके लिए
कृत अगस्सु	अपराध करनेपर		उचित दण्ड
येषु	जिनको	न युञ्जते	नहीं देते ॥२१॥

परमोऽनुग्रहो दण्डो भृत्येषु प्रभुणार्पितः ।
बालो न वेद तत्तन्वि बन्धुकृत्यममर्षणः ॥२२॥

परमः अनुग्रहः दण्डः भृत्येषु प्रभुणा अर्पितः बालः न वेद तत् तन्वि बन्धुकृत्यं अमर्षणः ॥२२॥

भृत्येषु	सेवकको	बन्धुकृत्यं	अपने सम्बन्धीके कर्मको
प्रभुणा	स्वामी द्वारा	अमर्षणः	असहनशील
अर्पितः	दिया गया	बालः	अज्ञानी
दण्डः	दण्ड	न वेद	नहीं जान पाता ॥२२॥
परमः अनुग्रहः	परम अनुग्रह है।		
तन्वि	सुन्दरी		
तत्	उस		

सा त्वं मुखं सुदति सुभ्रूवनुरागभार-
व्रीडाविलम्बविलसद्धसितावलोकम् ।
नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसं नः
स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥२३॥

सा त्वं मुखं सुदति सुभ्रूः अनुरागभार व्रीडाविलम्ब विलसत् हसित अवलोकम् नील अलक अलिभिः उपस्कृतं उन्नसं नः स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥२३॥

सा त्वं	वह तुम	अलिभिः	भ्रमरोंसे
सुदति	सुन्दर दांतोंवाली,	उपस्कृतं	घिरे हुए,
सुभ्रूः	सुन्दर भौंहोंवाली,	उन्नसं	ऊँची नासिकावाला,
अनुरागभार	प्रेमके आधिक्यसे	वल्गुवाक्यं	मधुर वाक्य युक्त
व्रीडा विलम्ब	लज्जासे युक्त	मुखं	मुख
हसित अवलोकं	मुस्कराहट भरी चितवनसे	मनस्विनि	मनस्विनी,
		नः	मुझ
विलसत्	खिले,	स्वानां	अपने (जन) को
नील अलक	काली अलकों रूपी	प्रदर्शय	दिखलाओ ॥२३॥

तस्मिन्दधे दममहं तव वीरपत्नि
योऽन्यत्र भूसुरकुलात्कृतकिल्बिषस्तम् ।
पश्ये न वीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्या-
मन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात् ॥२४॥

तस्मिन् दधे दमं अहं तव वीरपत्नि यः अन्यत्र भूसुर कुलात् कृत किल्बिषः तं पश्ये न वीतभयं उन्मुदितं त्रिलोक्यां अन्यत्र वै मुररिपोः इतरत्र दासात् ॥२४॥

वीरपत्नि	हे वीर पत्नि !	**मुररिपोः**	
यः	जिसने	**दासात्**	भगवान् मुरारिके भक्तोंको
तव कृत किल्बिषः	तुम्हारा अपराध किया है	**इतरत्र**	छोड़कर
तं	उसे	**वै**	निश्चय
भूसुर कुलात्	ब्राह्मण कुलसे	**त्रिलोक्यां**	त्रिलोकीमें
अन्यत्र	भिन्न को तो	**अन्यत्र**	या उससे बाहर (कोई)
तस्मिन्	उसे	**वीतभयं**	भय रहित
अहं	मैं	**उन्मुदितं**	आनन्दपूर्वक रह सके
दमं दधे	दण्ड देता हूँ ।	**न पश्ये**	(ऐसा कोई) नहीं देखता हूँ ॥२४॥

वक्त्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं
संरम्भभीममविमृष्टमपेतरागम् ।
पश्ये स्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ
बिम्बाधरं विगतकुङ्कुमपङ्करागम् ॥२५॥

वक्त्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं संरम्भभीमं अविमृष्टं अपेतरागं पश्ये स्तनौ अपि शुचा उपहतौ सुजातौ बिम्बाधरं विगत कुङ्कुमपङ्क रागं ॥२५॥

ते वक्त्रं	तुम्हारा मुख कभी	**संरम्भभीमं**	क्रोधके कारण डरावना,
वितिलकं	तिलकहीन,	**अविमृष्टं**	असज्जित,
मलिनं	मलिन,	**सुजातौ स्तनौ**	सुन्दर स्तनोंको
विहर्षं	उदास		

अपि	भी	कुङ्कुमपंक	केशर-चन्दन
शुचा उपहतौ	शोकाश्रुओंसे भीगा,	रागं	रञ्जनसे,
बिम्बाधरं	विम्बाफलके समान लाल ओष्ठोंको	अपेतरागं	रहित स्नेह शून्य
		न पश्ये	नहीं देखा है ॥२५॥

तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य
स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ।
का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेग-
विस्रस्तपौंस्नमुशती न भजेत कृत्ये ॥२६॥

तत् मे प्रसीद सुहृदः कृत किल्बिषस्य स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसन आतुरस्य का देवरं वशगतं कुसुम अस्त्रवेग विस्रस्तपौंस्नं उशती न भजेत कृत्ये ॥२६॥

व्यसन आतुरस्य	व्यसनवश हुए		वेगसे
स्वैरं	स्वच्छन्द	विस्रस्तपौंस्नं	जिसका पुरुषत्व
मृगयां गतस्य	आखेट करने गये,		नष्ट हो गया है
कृत किल्बिषस्य	अपराध करनेवाले	वशगतं	उस वशमें आये
तत्	उस	देवरं	वरदायी (पतिको)
सुहृदः	सुहृद	कृत्ये	उचित कार्यके लिये
मे प्रसीद	मुझपर प्रसन्न हो जाओ ।	का	कौन
		न भजेत	सेवन नहीं करेगी ॥२६॥
कुसुम अस्त्रवेग	कामके विषम वाणोंके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने षट्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

नारद उवाच–

इत्थं पुरञ्जनं सध्र्यग्वशमानीय विभ्रमैः ।
पुरञ्जनी महाराज रेमे रमयती पतिम् ॥१॥

इत्थं पुरञ्जनं सध्र्यक् वशं आनीय विभ्रमैः पुरञ्जनी महाराज रेमे रमयती पतिं ॥१॥

महाराज	हे महाराज	वशं आनीय	वशमें करके
इत्थं	इस प्रकार	पतिं रमयती	पतिको आनन्दित करती
पुरञ्जनी	पुरंजनी		
विभ्रमैः	हाव-भावसे	रेमे	विहार करने लगी ॥१॥
पुरञ्जनं	पुरञ्जनको		
सध्र्यक्	भली प्रकार		

स राजा महिषीं राजन् सुस्नातां रुचिराननाम् ।
कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनन्ददुपागताम् ॥२॥

स राज महिषीं राजन् सुस्नातां रुचिराननां कृतस्वस्त्ययनां तृप्तां अभ्यनन्दत् उपागतां ॥२॥

स राजन्	वह राजा	तृप्तां	तृप्त हुई
सुस्नातां	अच्छी प्रकार स्नान किये	उपागतां	पास आयी
		महिषीं	राजमहिषीका
कृतस्वस्त्ययनां	मंगल शृङ्गार किये	अभ्यनन्दत्	अभिनन्दन किया ॥२॥
रुचिराननां	सुन्दर मुखवाली		

तयोपगूढः परिरब्धकन्धरो
रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्टचेतनः ।
न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं
दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥३॥

तया उपगूढः परिरब्धकन्धरः रहः अनु मन्त्रैः अपकृष्ट चेतनः न काल रंहः बुबुधे दुरत्ययं दिवा निशा इति प्रमदा परिग्रहः ॥३॥

तया	उसके द्वारा	दिवा निशा	दिन-रात
उपगूढः	आलिंगित होकर	इति	इस प्रकार
परिरब्धकन्धर	उसको गले लगाकर		(बिताते)
रहः	एकान्तमें	दुरत्ययं	दुस्तर
अनुमन्त्रैः	रहस्यकी बातें करते	कालरंहः	कालके वेगको
चेतनः	चेतना (सावधानी)	न बुबुधे	नहीं जान
अपकृष्ट	विनष्ट हो गयी,		सका ॥३॥

शयान उन्नद्धमदो महामना
महार्हतल्पे महिषीभुजोपधिः ।
तामेव वीरो मनुते परं यत-
स्तमोऽभिभूतो न निजं परं च यत् ॥४॥

शयानः उन्नद्धमदः महामना महार्हतल्पे महिषी भुजा उपधिः तां एव वीरः मनुते परं यतः तमः अभिभूतः न निजं परं च यत् ॥४॥

उन्नद्धमदः	मदसे छका हुआ	वीरः	वह वीर
महामना	मनस्वी	तां एव	उसको ही
महिषी	पत्नीकी	परं मनुते	सर्वश्रेष्ठ मानता था
भुजा उपधिः	भुजाका तकिया बनाये	यत्	जिससे भिन्न
		निजं	अपना
महार्हतल्पे	महामूल्य शय्यापर	च	और
शयानः	सोता हुआ		

परं	पराया	तमः अभिभूतः	अज्ञानसे आच्छन्न
न	नहीं था।		हो गया ॥४॥

तस्यैवं रममाणस्य कामकश्मलचेतसः ।
क्षणार्धमिव राजेन्द्र व्यतिक्रान्तं नवं वयः ॥५॥

तस्य एवं रममाणस्य कामकश्मल चेतसः क्षणार्धं इव राजेन्द्र व्यतिक्रान्तं नवं वयः ॥५॥

राजेन्द्र	राजेन्द्र !	रममाणस्य	रमण करते हुए
कामकश्मल	कामके द्वारा मलिन	क्षणार्धं इव	आधे क्षणके समान
चेतसः	चित्तवाले	नवं वयः	नयी उमर
तस्य	उसके	व्यतिक्रान्तं	बीत गयी ॥५॥
एवं	इस प्रकार		

तस्यामजनयत्पुत्रान् पुरञ्जन्यां पुरञ्जनः ।
शतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥६॥

तस्यां अजनयत् पुत्रान् पुरञ्जन्यां पुरञ्जनः शतानि एकादश विराट् आयुषः अर्धं अथ अति अगात् ॥६॥

पुरञ्जनः	पुरंजनने	अथ	इस प्रकार
तस्यां	उस	विराट् आयुषः	बड़ी आयुका
पुरञ्जन्यां	पुरञ्जनीसे	अर्धं	आधा भाग
एकादश शतानि	ग्यारहसौ	अति अगात्	बीत गया ॥६॥
पुत्रान् अजनयत्	पुत्रोंको पैदा किया		

दुहितृर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः ।
शीलौदार्यगुणोपेताः पौरञ्जन्यः प्रजापते ॥७॥

दुहितृः दशोत्तरशतं पितृ मातृ यशः करीः शील औदार्य गुण उपेताः पौरञ्जन्यः प्रजापते ॥७॥

प्रजापते	हे प्रजापते
दशोत्तर शतं	एकसौ दस
शील औदार्य	शील एवं उदारताके
गुण उपेताः	गुणोंसे युक्त
पितृ मातृ यशः करीः	पिता माताके यशको बढ़ानेवाली
दुहितृः	कन्याएँ
पौरञ्जन्यः	पुरञ्जनसे पैदा हुईं ॥७॥

स पञ्चालपतिः पुत्रान् पितृवंशविवर्धनान् ।
दारैः संयोजयामास दुहितृः सदृशैर्वरैः ॥८॥

स, पञ्चालपतिः पुत्रान् पितृवंश विवर्धनान् दारैः संयोजयामास दुहितृः सदृशैः वरैः ॥८॥

स पञ्चालपतिः	उस पञ्चालराजने
पितृवंश विवर्धनान्	पिताके वंशको बढ़ानेवाले
पुत्रान्	पुत्रोंको
दारैः संयोजयामास	पत्नियोंसे युक्त कर दिया
दुहितृः	लड़कियोंको
सदृशैः वरैः	उनके योग्य वरोंसे (युक्त कर दिया) ॥८॥

पुत्राणां चाभवन् पुत्रा एकैकस्य शतं शतम् ।
यैर्वै पौरञ्जनो वंशः पञ्चालेषु समेधितः ॥९॥

पुत्राणां च अभवन् पुत्राः एक एकस्य शतं शतं यैः वै पौरञ्जनः वंशः पञ्चालेषु समेधितः ॥९॥

पुत्राणां एक एकस्य शतं शतं अभवन्	पुत्रोंके प्रत्येकके सौ-सौ (पुत्र) हुये
यैः वै	जिनसे निश्चय ही
पौरञ्जनः वंशः	पुरञ्जनका वंश
पञ्चालेषु	पाञ्चालमें
समेधितः	भली प्रकार बढ़ गया ॥९॥

तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु ।
निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वन्वबध्यत ॥१०॥

तेषु तद् रिक्थहारेषु गृह कोश अनुजीविषु निरूढेन ममत्वेन विषयेषु अनु अबध्यत ॥१०॥

तेषु	उनके उन	ममत्वेन	ममताके
रिक्थहारेषु	उत्तराधिकारियों तथा	निरूढेन	अत्यन्त दृढ़ होनेसे
गृह	घर,	विषयेषु	(संसारिक) विषयोंके
कोश	खजाने	अनु अबध्यत	पीछे बँध गया ॥१०॥
अनुजीविषु	अनुजीवियोंमें		

ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः ।
देवान् पितॄन् भूतपतीन्नानाकामो यथा भवान् ॥११॥

ईजे च क्रतुभिः घोरैः दीक्षितः पशु मारकैः देवान् पितॄन् भूतपतीन् नाना कामः यथा भवान् ॥११॥

यथा भवान्	जैसा तुमने किया (वैसे ही)	घोरैः क्रतुभिः	घोर यज्ञोंसे
नाना कामः	अनेक कामनाओंसे	देवान् पितॄन्	देव-पितर (तथा)
दीक्षितः	यज्ञकी दीक्षा ली	भूतपतीन्	भूतपतियोंका
च पशु मारकैः	और पशु बलिवाले	ईजे	यजन किया ॥११॥

युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः ।
आससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिताम् ॥१२॥

युक्तेषु एवं प्रमत्तस्य कुटुम्ब आसक्त चेतसः आससाद स वै कालः यः अप्रियः प्रिय योषिताम् ॥१२॥

एवं युक्तेषु	इस प्रकार लगे हुए	कुटुम्ब आसक्त चेतसः	कुटम्बमें आसक्त चित्त
प्रमत्तस्य	असावधान		

स कालः	(के लिए) वह समय	योषितां प्रिय	स्त्रियोंके प्रेमियोंको
आससाद	आ गया	अप्रियः	अप्रिय है ॥१२॥
यः	जो		

चण्डवेग इति ख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप ।
गन्धर्वास्तस्य बलिनः षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥१३॥

चण्डवेग इति ख्यातः गन्धर्व अधिपतिः नृप गन्धर्वाः तस्य बलिनः षष्टि उत्तर शतत्रयं ॥१३॥

नृप	राजन् !	बलिनः	बलवान
चण्डवेग इति	चण्डवेग इस नामसे	षष्टि उत्तर	
ख्यातः	विख्यात	शतत्रयम्	तीनसौ साठ
गन्धर्व-		गन्धर्वाः	गन्धर्व (सैनिक)
अधिपतिः	गन्धर्वोंका अधिपति		हैं ॥१३॥
तस्य	उसके		

गन्धर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सितासिताः ।
परिवृत्त्या विलुम्पन्ति सर्वकामविनिर्मिताम् ॥१४॥

गन्धर्व्यः तादृशीः अस्य मैथुन्यः च सिता असिताः परिवृत्त्या विलुम्पन्ति सर्वकाम विनिर्मिताम् ॥१४॥

मैथुन्यः	मिली-जुली रहनेवाली	परिवृत्त्या	जो बारी-बारीसे
		सर्वकाम	सभी भोग सामग्रीसे
सिता असिताः	शुक्ल और कृष्ण वर्णकी	विनिर्मितां	पूर्ण बनी (नगरीको)
तादृशीः	उतनी ही	विलुम्पन्ति	लूटती रहती हैं ॥१४॥
अस्य	उसकी		
गन्धर्व्यः	गन्धर्वी भी हैं		

ते चण्डवेगानुचराः पुरञ्जनपुरं यदा ।
हर्तुमारेभिरे तत्र प्रत्यषेधत्प्रजागरः ॥१५॥

ते	उन	आरेभिरे	प्रारम्भ किया
चण्डवेग		तत्र	तब
अनुचराः	चण्डवेगके सेवकोंने	प्रजागरः	जागनेवाले (चौकीदार सर्पने)
यदा	जब		
पुरञ्जनपुरं	पुरञ्जनके नगरको	प्रत्यषेधत्	उन्हें रोका ॥१५॥
हर्तुम्	लूटना		

स सप्तभिः शतैरेको विंशत्या च शतं समाः ।
पुरञ्जनपुराध्यक्षो गन्धर्वैर्युयुधे बली ॥१६॥

स सप्तभिः शतैः एकः विंशत्या च शतं समाः पुरञ्जनपुर अध्यक्षः गन्धर्वैः युयुधे बली ॥१६॥

स	उस	शतं समाः	सौ वर्षों तक
बली	बलवान	सप्तभिः शतैः	सात सौ
पुरञ्जनपुर		विंशत्या च	और बीस (सात सौ बीस)
अध्यक्षः	पुरञ्जनपुर पालकने	गन्धर्वैः	गन्धर्वोंसे
एकः	अकेले	युयुधे	लड़ता रहा ॥१६॥

क्षीयमाणे स्वसम्बन्धे एकस्मिन् बहुभिर्युधा ।
चिन्तां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबान्धवः ॥१७॥

क्षीयमाणे स्वसम्बन्धे एकस्मिन् बहुभिः युधा चिन्तां परां जगाम आर्तः सराष्ट्र पुर बान्धवः ॥१७॥

बहुभिः	बहुतों द्वारा	सराष्ट्र	अपने राष्ट्र
एकस्मिन्	एकसे	पुर-बान्धवः	नगरवालों तथा सम्बन्धियों सहित
युधा	युद्ध होनेके कारण		
स्वसम्बन्धे	अपने सम्बन्धीके	आर्तः	दुःखी होकर
क्षीयमाणे	क्षीण (दुर्बल) होनेपर	परां चिन्तां	बड़ी चिन्ताको
		जगाम	प्राप्त हुआ ॥१७॥

स एव पुर्यां मधुभुक्पञ्चालेषु स्वपार्षदैः ।
उपनीतं बलिं गृह्णन् स्त्रीजितो नाविदद्भयम् ॥१८॥

स एव पुर्यां मधुभुक् पञ्चालेषु स्वपार्षदैः उपनीतं बलिं गृह्णन् स्त्रीजितः न अविदत् भयम् ॥१८॥

स एव	वही (इतने दिनों तक)	**मधुभुक्**	मधुर (भोग) भोगता रहा,
पञ्चालेषु	पञ्चाल देशके	**स्त्रीजितः**	स्त्रीके वशीभूत होनेसे
पुर्यां	उस नगरमें	**भयं**	भयको
स्वपार्षदैः	अपने सेवकों द्वारा	**न अविदत्**	नहीं जान सका ॥१८॥
उपनीतं	लाये गये		
बलिं	उपहार (कर)		
गृह्णन्	लेते रहकर		

कालस्य दुहिता काचित्त्रिलोकीं वरमिच्छती ।
पर्यटन्ती न बर्हिष्मन् प्रत्यनन्दत कञ्चन ॥१९॥

कालस्य दुहिता काचित् त्रिलोकीं वरं इच्छती परि अटन्ती न बर्हिष्मन् प्रति अनन्दत कञ्चन ॥१९॥

बर्हिष्मन्	हे प्राचीन बर्हि,	**परि अटन्ती**	चारो ओर घूम रही थी (पर)
काचित्	कोई	**कञ्चन**	उसे किसीने
कालस्य		**न प्रति अनन्दत**	स्वीकार नहीं किया ॥१९॥
दुहिता	कालकी कन्या		
वरं इच्छती	वरकी इच्छा करती		
त्रिलोकीं	तीनों लोकोंमें		

दौर्भाग्येनात्मनो लोके विश्रुता दुर्भगेति सा ।
या तुष्टा राजर्षये तु वृतादात्पूरवे वरम् ॥२०॥

दौर्भाग्येन आत्मनः लोके विश्रुता दुर्भगा इति सा या, तुष्टा राजर्षये तु वृता अदात् पूरवे वरं ॥२०॥

आत्मनः	अपने	राजर्षयेतु	राजर्षि (ययाति) को ही
दौर्भाग्येन	दुर्भाग्यसे		
लोके सा	लोकमें वह	वृता	वरण किया (उन्होंने)
दुर्भगा इति	दुर्भगा है इस प्रकार		
विश्रुता	प्रसिद्ध हो गयी	पूरवे	पुरुको (उसे)
या	जिसने	वरं	वर रूपमें
तुष्टा	सन्तुष्ट होकर	अदात्	दिया ॥२०॥

कदाचिदटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम् ।
वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काममोहिता ॥२१॥

कदाचित् अटमाना सा ब्रह्मलोकात् महीं गतं वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काम मोहिता ॥२१॥

सा	वह	बृहद्व्रतं	ब्रह्मचर्यव्रती
कदाचित्	किसी समय	जानती तु	जानती हुई भी
अटमाना	घूमती हुई	काम मोहिता	काम मोहित होकर
ब्रह्मलोकात्	ब्रह्म लोकसे	वव्रे	मुझे वरण करना चाहा ॥२१॥
महीं गतं	पृथिवीपर आये		
मां	मुझको		

मयि संरभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुःसहम् ।
स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याच्ञाविमुखो मुने ॥२२॥

मयि संरभ्य विपुलं अदात् शापं सुदुःसहं स्थातुं अर्हसि न एकत्र मद् याच्ञा विमुखः मुने ॥२२॥

मयि	मेरे	मुने	मुनि
संरभ्य	मना करनेपर	मद् याञ्चा	मेरी याचनासे
सुदुःसहं	अत्यन्त दुःसह	विमुखः	विमुख होकर
विपुलं	भारी	एकत्र	एक जगह
शापं	शाप	स्थातुं	ठहरने
अदात्	दिया कि	न अर्हसि	योग्य नहीं हो ॥२२॥

ततो विहतसङ्कल्पा कन्यका यवनेश्वरम् ।
मयोपदिष्टमासाद्य वव्रे नाम्ना भयं पतिम् ॥२३॥

ततः विहतसङ्कल्पा कन्यका यवन ईश्वरं मया उपदिष्टं आसाद्य वव्रे नाम्नः भयं पतिं ॥२३॥

ततः	तब	भयं	भय
विहतसंकल्पा	नष्ट हुए संकल्प वाली	नाम्नः	नामकके
		आसाद्य	पास जाकर
कन्यका	उस कन्याने	पतिं वव्रे	पति रूपसे वरण किया ॥२३॥
मया उपदिष्टं	मेरे बतलानेसे		
यवन ईश्वरं	यवन देशके राजा		

ऋषभं यवनानां त्वां वृणे वीरेप्सितं पतिम् ।
सङ्कल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति ॥२४॥

ऋषभं यवनानां त्वां वृणे वीर ईप्सितं पतिं सङ्कल्पः त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति ॥२४॥

वीर	हे वीर	त्वयि कृतः	तुम्हारे प्रति किया गया
यवनानां	यवनोंमें		
ऋषभं	श्रेष्ठ	भूतानां संकल्पः	प्राणियोंका संकल्प
त्वां	तुम्हें	किल	
ईप्सितं	अभीष्ट	न रिष्यति	कभी विफल नहीं होता ॥२४॥
पतिं वृणे	पति रूपसे वरण करती हूं		

द्वाविमावनुशोचन्ति बालावसदवग्रहौ ।
यल्लोकशास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति ॥२५॥

द्वौ इमौ अनुशोचन्ति बालौ असत् अवग्रहौ यत् लोक शास्त्र उपनतं न राति न तत् इच्छति ॥२५॥

यत्	जो
लोक शास्त्र	लोक या शास्त्र दृष्टिसे
उपनतं	प्राप्त वस्तुका
न राति	दान नहीं करता
न तत् इच्छति	(और अधिकारी होकर भी) उसकी इच्छा नहीं करता
इमौ द्वौ	ये दोनों
बालौ	मूर्ख हैं
असत् अवग्रहौ	दुराग्रही हैं
अनुशोचन्ति	पीछे पछताते हैं ॥२५॥

अथो भजस्व मां भद्र भजन्तीं मे दयां कुरु ।
एतावान् पौरुषो धर्मो यदार्ताननुकम्पते ॥२६॥

अथो भजस्व मां भद्र भजन्तीं मे दयां कुरु एतावान् पौरुषः धर्मः यत् आर्तान् अनुकम्पते ॥२६॥

मां	मुझ
भजन्तीं	सेवाको उत्सुकाको
भद्र	भद्र
भजस्व	स्वीकारं करो ।
मे	मुझपर
दयां कुरु	दया करो
एतावान्	इतना ही
पौरुषः धर्मः	पुरुषका धर्म है
यत्	कि
आर्तान्	दुःखियोंपर
अनुकम्पते	कृपा करता है ॥२६

कालकन्योदितवचो निशम्य यवनेश्वरः ।
चिकीर्षुर्देवगुह्यं स सस्मितं तामभाषत ॥२७॥

कालकन्या उदित वचः निशम्य यवन ईश्वरः चिकीर्षुः देव गुह्यं स सस्मितं तां अभाषत ॥२७॥

कालकन्या	कालकन्याके
उदित वचः	कहे वचनको
निशम्य	सुनकर
स यवन ईश्वरः	उस यवनराजने
देव गुह्यं	विधाताका गुप्त मन्तव्य जानकर
तां	उससे
सस्मितं	मुसकराते हुए
अभाषत	कहा ॥२७॥

मया निरूपितस्तुभ्यं पतिरात्मसमाधिना ।
नाभिनन्दति लोकोऽयं त्वामभद्रामसम्मताम् ॥२८॥

मया निरूपितः तुभ्यं पतिः आत्मसमाधिना न अभिनन्दति लोकः अयं त्वां अभद्रां असम्मताम् ॥२८॥

आत्मसमाधिना	अपने चित्तकी एकाग्रतासे	त्वां	तुम
मया	मैंने	अभद्रां	अमंगल रूपा
तुभ्यं	तुम्हारे लिए	असम्मताम्	अस्वीकार्याकी
पतिः	पति	अयं लोकः	यह लोक
निरूपितः	निश्चित कर दिया है ।	न अभिनन्दति	अभिनंदन (स्वागत) नहीं करता ॥२८॥

त्वमव्यक्तगतिर्भुङ्क्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम् ।
याहि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥२९॥

त्वं अव्यक्तगतिः भुंक्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितं याहि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥२९॥

कर्मविनिर्मितं	कर्मसे बनै इस लोकको	भुंक्ष्व	भोगो
त्वं	तुम	मे पृतनायुक्ता	मेरीसेनाके साथ
अव्यक्तगतिः	अलक्षित होकर	याहि	जाओ
		प्रजानाशं	(तुम) प्रजाका नाश
		प्रणेष्यसि	कर सकोगी ॥२९॥

प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ।
चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः ॥३०॥

प्रज्वारः अयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव चरामि उभाभ्यां लोके अस्मिन अव्यक्तः भीमसैनिकः ॥३०॥

अयं प्रज्वारः	यह प्रज्वार	उभाभ्यां	तुम दोनोंके साथ
मम भ्राता	मेरा भाई है	अव्यक्तः	अलक्षित गतिसे
त्वं मे	तुम मेरी	भीमसैनिकः	भयङ्कर सेना लेकर
भगिनी भव	बहिन बन जाओ	चरामि	घूमूंगा ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथ अष्टविंशोऽध्यायः

नारद उवाच–

सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः ।
प्रज्वारकालकन्याभ्यां विचेरुरवनीमिमाम् ॥१॥

सैनिका भयनाम्नः ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः प्रज्वार कालकन्याभ्यां विचेरुः अवनीं इमां ॥१॥

बर्हिष्मन्	हे बर्हिष्मन् !	प्रज्वार काल	
भयनाम्नः	भय नामक (यवनेश्वरके)	कन्याभ्यां	(वे) प्रज्वार और कालकन्याके साथ
ये	जो	इमां अवनीं	इस पृथिवीपर
दिष्टकारिणः	आज्ञाकारी	विचेरुः	विचरण करने लगे ॥१॥
सैनिका	सैनिक थे		

त एकदा तु रभसा पुरञ्जनपुरीं नृप ।
रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम् ॥२॥

ते एकदा तु रभसा पुरञ्जनपुरीं नृप रुरुधुः भौमभोगाढ्यां जरत् पन्नग पालिताम् ॥२॥

नृप	राजन्	भौमभोगढ्यां	पृथिवीके भोगोंसे पूर्ण
ते तु एकदा	उन्होंने तो एक समय	पुरञ्जनपुरीं	पुरञ्जनकी नगरीको
रभसा	बड़े वेगसे	रुरुधुः	घेर लिया ॥२॥
जरत् पन्नग	बूढ़े सर्पसे		
पालितां	सुरक्षित		

कालकन्यापि बुभुजे पुरञ्जनपुरं बलात् ।
ययाभिभूतः पुरुषः सद्यो निःसारतामियात् ॥३॥

कालकन्या अपि बुभुजे पुरञ्जनपुरं बलात् यया अभिभूतः पुरुषः सद्यः निःसारतां इयात् ॥३॥

कालकन्या		अभिभूतः पुरुष	घेरा गया पुरुष
अपि	कालकन्या भी	सद्यः	शीघ्र ही
पुरञ्जनपुरं	पुरञ्जनके नगरको	निःसारतां	
बलात्	बल पूर्वक	इयात्	निःसार हो जाता
बुभुजे	भोगने लगी		है ॥३॥
यया	जिससे		

तयोपभुज्यमानां वै यवनाः सर्वतोदिशम् ।
द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन् सकलां पुरीम् ॥४॥

तया उप भुज्यमानां वै यवनाः सर्वतः दिशं द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन् सकलां पुरीं ॥४॥

तया वै	उसके द्वारा निश्चित रूपसे	सर्वतः दिशं	चारों ओरसे
		द्वार्भिः प्रविश्य	द्वारों से प्रवेश करके
उप भुज्यमानां	भोगी जाती हुई	सकलां पुरीं	सम्पूर्ण नगरीको
पुरीं	नगरीमें	सुभृशं	अत्यधिक
यवनाः	यवन भी	प्रार्दयन्	रौंदने लगे ॥४॥

तस्यां प्रपीड्यमानायामभिमानी पुरञ्जनः ।
अवापोरुविधांस्तापान् कुटुम्बी ममताकुलः ॥५॥

तस्यां प्रपीड्यमानायां अभिमानी पुरञ्जनः अवाप उरु विधान् तापान् कुटुम्बी ममता आकुलः ॥५॥

तस्यां	उस (पुरी) के
प्रपीड्य-मानायां	पीडित किये जानेपर
अभिमानी	(उसमें) अभिमान करनेवाला
ममता आकुलः	ममता ग्रस्त
कुटुम्बी	कुटुम्बवाला
पुरञ्जनः	राजा पुरञ्जन
उरु विधान्	अनेक प्रकारके
तापान्	कष्टोंको
अवाप	पाने लगा ॥५॥

कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः ।
नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यो गन्धर्वैर्यवनैर्बलात् ॥६॥

कन्या उपगूढः नष्टश्रीः कृपणः विषय आत्मकः नष्टप्रज्ञः हृत एैश्वर्यः गन्धर्वयवनैः बलात् ॥६॥

कन्या उपगूढः	कालकन्यासे आलिङ्गित
नष्टश्रीः	नष्टकान्ति
विषय	विषयासक्तिसे
कृपणः	दीन
गन्धर्वयवनैः	गन्धर्वों और यवनोंके द्वारा
बलात्	बल पूर्वक
हृत ऐश्वर्यः	ऐश्वर्य छीने जानेपर
नष्टप्रज्ञः	उसकी विवेक शक्ति नष्ट हो गई ॥६॥

विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान् ।
पुत्रान् पौत्रानुगामात्याञ्जायां च गतसौहृदाम् ॥७॥

विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलान् अनादृतान् पुत्रान् पौत्र अनुग अमात्यान् जायां च गतसौहृदां ॥७॥

स्वपुरीं	अपनी नगरीको
विशीर्णां	अत्यन्त जर्जर (तथा)
अनादृतान्	अनादर करनेवाले
प्रतिकूलान्	विपरीत आचरण करनेवाले
पुत्रान् पौत्र अनुग	पुत्र, पौत्र,
अमात्यान्	सेवकों, मन्त्रियोंको,
गतसौहृदां	सौहार्द्र रहित
जायां च वीक्ष्य	पत्नीको भी देखकर ॥७॥

आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पञ्चालानरिदूषितान् ।
दुरन्तचिन्तामापन्नो न लेभे तत्प्रतिक्रियाम् ॥८॥

आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पञ्चालान् अरिदूषितान् दुरन्त चिन्तां आपन्नः न लेभे तत् प्रतिक्रियां ॥८॥

आत्मानं	तथा अपनेको	दुरन्त चिन्तां	अपार चिन्तामें
कन्यया ग्रस्तं	कालकन्यासे ग्रस्त	आपन्नः	पड़ गया
पञ्चालान्	पञ्चाल देशोंको	तत् प्रतिक्रियां	उसका प्रतिकार
अरिदूषितान्	शत्रुओंसे दूषित (देखकर)	न लेभे	नहीं पासका ॥८॥

कामानभिलषन्दीनो यातयामांश्च कन्यया ।
विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्च लालयन् ॥९॥

कामान् अभिलषन् दीनः यातयामान् च कन्यया विगत आत्म गति स्नेहः पुत्रदारान् च लालयन् ॥९॥

कन्यया	कालकन्याके द्वारा	आत्म गति	अपनी पारलौकिकी गति
यातयामान्	पूरा समय नष्ट किये जाते	स्नेहः	(तथा स्वजनों के) स्नेह
कामान्			
अभिलषन्	भोगोंकी अभिलाषा करता हुआ	विगत	चले जानेपर
		पुत्रदारान् च	पुत्र और स्त्रीके
दीनः	दीन हुआ	लालयन्	लालन पालनमें लग गया ॥९॥

गन्धर्वयवनाक्रान्तां कालकन्योपमर्दिताम् ।
हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः ॥१०॥

गन्धर्व यवन आक्रान्तां कालकन्या उपमर्दितां हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीं अनिकामतः ॥१०॥

गन्धर्व यवन आक्रान्तां	गन्धर्व और यवनोंसे घेरी गई
कालकन्या उपमर्दितां	कालकन्यासे कुचली गई
तां पुरीं	उस नगरीको
अनिकामतः	न चाहते हुए भी
राजा	राजा पुरञ्जन
हातुं प्रचक्रमे	छोड़नेको उद्यत हो गया ॥१०॥

भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः ।
ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥११॥

भय नाम्नः अग्रजः भ्राता प्रज्वारः प्रति उपस्थितः ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥११॥

भय नाम्नः	भय नामक (यवनेश्वरके)
अग्रजः भ्राता	बड़े भाई
प्रज्वारः	प्रज्वारने
प्रति उपस्थितः	वहाँ पहुँचकर
भ्रातुः	भाईका
प्रियचिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छासे
तां कृत्स्नां	उस पूरी
पुरीं	नगरीको
ददाह	जला दिया ॥११॥

तस्यां सन्दह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः ।
कौटुम्बिकः कौटुम्बिन्या उपातप्यत सान्वयः ॥१२॥

तस्यां सन्दह्य मानायां सपौरः सपरिच्छदः कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या उप अतप्यत स अन्वयः ॥१२॥

तस्यां सन्दह्य मानायां	उस नगरीके जलनेपर
सपौरः	पुरवासियों सहित
सपरिच्छदः	सेवकों सहित
स अन्वयः	पुत्रों सहित
कुटुम्बिन्या	कुटुम्बकी स्वामिनी सहित
कौटुम्बिकः	कुटुम्ब वत्सल (वह)
उप अतप्यत	बहुत सन्ताप करने लगा ॥१२॥

यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया ।
पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥१३॥

यवन उपरुद्ध आयतनः ग्रस्तायां कालकन्यया पुर्यां प्रज्वार संसृष्टः पुरपालः अनु अतप्यत ॥१३॥

कालकन्यया	कालकन्यासे	प्रज्वार संसृष्टः	प्रज्वारके भी आक्रमण करनेपर
ग्रस्तायां	पकड़ी गयी		
पुर्यां	वह नगरी	पुरपालः	नगरीका रक्षक (सर्प)
आयतनः	पूरे भवन घेर लिये जानेपर	अनु अतप्यत	बहुत दुःखित हो गया ॥१३॥
यवन उपरुद्ध	यवनों द्वारा		

न शेके सोऽवितुं तत्र पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः ।
गन्तुमैच्छत्ततो वृक्षकोटरादिव सानलात् ॥१४॥

न शेके सः अवितुं तत्र पुरुकृच्छः उरुवेपथुः गन्तुं ऐच्छत् ततः वृक्ष कोटरात् इव सअनलात् ॥१४॥

तत्र सः	जब वह (सर्प)	वृक्ष कोटरात्	वृक्षके कोटर
अवितुं	रक्षामें	इव	के समान है
न शेके	समर्थ नहीं हुआ	ततः गन्तुं	उस (नगरी) से निकलनेकी
पुरुकृच्छः	(तब) महान् कष्टसे	ऐच्छत्	इच्छा करने लगा ॥१४॥
उरुवेपथुः	अत्यन्त कांपता हुआ		
सअनलात्	जलते हुए		

शिथिलावयवो यर्हि गन्धर्वैर्हृतपौरुषः ।
यवनैररिभी राजन्नुपरुद्धो रुरोद ह ॥१५॥

शिथिल अवयवः यर्हि गन्धर्वैः हृतपौरुषः यवनैः अरिभिः राजन् उपरुद्धः रुरोद ह ॥१५॥

राजन्	हे राजन्
यर्हि	जब
शिथिल	
अवयवः	अंग ढीले पड़ गये और
गन्धर्वैः	गन्धर्वोंने
हृतपौरुषः	सारी शक्ति छीन ली
अरिभिः यवनैः	शत्रु यवनोंसे
उपरुद्धः	घेर लिया गया
रुरोद ह	तब वह रोने ही लगा ॥१५॥

दुहितॄः पुत्रपौत्रांश्च जामिजामातृपार्षदान् ।
स्वत्वावशिष्टं यत्किञ्चिद् गृहकोशपरिच्छदम् ॥१६॥

दुहितॄः पुत्र पौत्रान् च जामि जामातृ पार्षदान् स्वत्व अवशिष्टं यत् किञ्चित् गृह कोश परिच्छदं ॥१६॥

दुहितॄः	लड़की,
पुत्र	लड़के,
पौत्रान्	पोते,
जामि	पुत्र-वधू,
जामातृ	दामाद,
पार्षदान्	सेवक
च	तथा
यत् किञ्चित्	जो कुछ
गृह	घर,
कोश	धन
परिच्छदं	दूसरा सामान
स्वत्व अवशिष्टं	(अपने) अधिकार-का बचा था ॥१६॥

अहं ममेति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही ।
दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उपस्थिते ॥१७॥

अहं मम इति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिः गृही दध्यौ प्रमदया दीनः विप्रयोग उपस्थिते ॥१७॥

अहं मम इति	यह मैं हूँ यह सब मेरे हैं ऐसा
स्वीकृत्य	स्वीकार करके
गृहेषु	घरमें
कुमतिः गृही	कुबुद्धि गृहस्थ
प्रमदया	स्त्रीके प्रेममें
दीनः	दीन हुआ
विप्रयोग उपस्थिते	वियोगके उपस्थित होनेपर
दध्यौ	(उस स्त्रीका ही) चिन्तन करने लगा ॥१७॥

लोकान्तरं गतवति मय्यनाथा कुटुम्बिनी ।
वर्तिष्यते कथं त्वेषा बालकाननुशोचती ॥१८॥

लोकान्तरं गतवति मयि अनाथा कुटुम्बिनी वर्तिष्यते कथं तु एषा बालकान् अनुशोचती ॥१८॥

मयि	मेरे	बालकान्	
लोकान्तरं	दूसरे लोक	अनुशोचती	बालकोंकी चिन्ता करती हुई
गतवति	चले जानेपर		
एषा	यह	कथं वर्तिष्यते	कैसे निर्वाह करेगी ॥१८॥
अनाथा	असहाय		
कुटुम्बिनी	कुटुम्बवाली		

न मय्यनाशिते भुङ्क्ते नास्नाते स्नाति मत्परा ।
मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग्भयात् ॥१९॥

न मयि अनाशिते भुङ्क्ते न अस्नाते स्नाति मत् परा मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाक् भयात् ॥१९॥

मत् परा	मेरे परायणा यह	मयि रुष्टे	मेरे रुष्ट होनेपर
मयि अनाशिते न	मेरे भोजन न करनेपर	सुसन्त्रस्ता	बहुत डरती है
		भर्त्सिते	फटकारनेपर
भुङ्क्ते	भोजन नहीं करती	भयात् यतवाक्	भयसे मौन हो जाती है ॥१९॥
अस्नाते न स्नाति	स्नान न करनेपर स्नान नहीं करती		

प्रबोधयति माविज्ञं व्युषिते शोककर्शिता ।
वर्त्मैतद् गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ॥२०॥

प्रबोधयति मा अविज्ञं विडषिते शोक कर्शिता वर्त्म एतद् गृहमेधीयं वीरसूः अपि नेष्यति ॥२०॥

अविज्ञं	(मुझसे) भूल हो जानेपर	वीरसूः अपि	वीर माता होकर भी
मा प्रबोधयति	मुझे सचेत कर देती है	एतद्	इस
विडम्बिते	परदेश जानेपर	गृहमेधीयं	गृहस्थीका
शोक कर्शिता	शोकसे सूख जाती है	वर्त्म	मार्ग
		नेष्यति	नहीं चला सकेगी ॥२०॥

कथं नु दारका दीना दारकीर्वापरायणाः ।
वर्तिष्यन्ते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ ॥२१॥

कथं नु दारका दीना दारकी वा परायणाः वर्तिष्यन्ते मयि गते भिन्न नाव इव उदधौ ॥२१॥

उदधौ	समुद्रमें	वा	अथवा
भिन्न नाव इव	नौका फटजानेके समान	परायणाः	
मयि गते	मेरे (परलोक) चले जानेपर	दारकी	(मेरे) परायण पुत्रियाँ
दीना	दीन-हीन पुत्र	कथं नु वर्तिष्यन्ते	किस प्रकार तो रह सकेंगे ॥२१॥

एवं कृपणया बुद्ध्या शोचन्तमतदर्हणम् ।
ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाभ्यपद्यत ॥२२॥

एवं कृपणया बुद्ध्या शोचन्तं अतद् अर्हणं गृहीतुं कृतधीः एनं भयनामा अभि पद्यत ॥२२॥

एवं	इस प्रकार	कृतधीः	निश्चय करके
कृपयणाबुद्ध्य	दीन-चित्त	भयनामा	भय नामके (यवन राजने)
शोचन्तं	शोक करते हुये	अभि पद्यत	(इसको) घेर लिया ॥२२॥
अतद् अर्हणं	(शोकके) अयोग्य		
एनं	इसे		
गृहीतुं	पकड़नेके लिये		

पशुवद्यवनैरेष नीयमानः स्वकं क्षयम् ।
अन्वद्रवन्ननुपथाः शोचन्तो भृशमातुराः ॥२३॥

पशुवत् यवनैः एष नीयमानः स्वकं क्षयं अनुद्रवन् अनुपथाः शोचन्तः भृशं आतुराः ॥२३॥

यवनैः	यवनोंके द्वारा	अनुपथाः	(तब) इसके साथी
पशुवत्	पशुओंकी भाँति	भृशं आतुराः	अत्यन्त व्याकुल होकर
स्वकं क्षयं	अपने घरकी ओर	अनुद्रवन्	इसके पीछे दौड़ने लगे ॥२३॥
एष	यह		
नीयमानः	ले जा रहा था,		

पुरीं विहायोपगत उपरुद्धो भुजङ्गमः ।
यदा तमेवानु पुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥२४॥

पुरीं विहाय उपगतः उपरुद्धः भुजङ्गमः यदा तं एव अनु पुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥२४॥

उपरुद्धः	(यवनोंके द्वारा) रोका गया	तं अनु एव	उसके पीछे ही
		पुरी विशीर्णा	नगरी छिन्न-भिन्न हो गई
भुजङ्गमः	सर्प		
पुरीं विहाय	पुरीको दौड़कर	प्रकृतिं गता	अपने कारणमें लीन हो गई ॥२४॥
उपगतः	चल पड़ा		

विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा ।
नाविन्दत्तमसाऽऽविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥२५॥

विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा न अविन्दत् तमसा आविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥२५॥

बलीयसा	बलवान्	तमसा आविष्टः	अज्ञानसे आच्छन्न
यवनेन	यवनके द्वारा	सुहृदं	अपने सुहृद
प्रसभं	बलपूर्वक	पुरः सखायं	पुराने मित्रको
विकृष्यमाणः	खींचा जाता	न अविन्दत्	नहीं पा सका ॥२५॥

तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदयालुना ।
कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत् ॥२६॥

तं यज्ञ पशवः अनेन संज्ञप्ता ये अदयालुना कुठारैः चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तः अमीवं अस्य तत् ॥२६॥

अदयालुना	दयारहित	अमीवं	पीड़ाका
अनेन	इसके द्वारा	स्मरन्तः	स्मरण करते हुए
ये यज्ञ पशवः	जो यज्ञ-पशु	क्रुद्धाः	क्रोधमें आकर
संज्ञप्ता	बलि दिये गये थे	कुठारैः	कुल्हाड़ोंसे
अस्य तत्	इसके उस	तं चिच्छिदुः	उसे काटने लगे ॥२६

अनन्तपारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः ।
शाश्वतीरनुभूयार्तिं प्रमदासङ्गदूषितः ॥२७॥

अनन्तपारे तमसि मग्नः नष्टस्मृतिः समाः शाश्वतीः अनुभूय आर्तिं प्रमदासङ्ग दूषितः ॥२७॥

शाश्वतीः समाः	बहुत वर्षों तक	आर्तिं अनुभूय	(निरन्तर) दुःख भोग कर
नष्टस्मृतिः	विवेकहीन अवस्थामें		
अनन्तपारे तमसि	अनन्त, अपार अन्धकारमें	प्रमदासङ्ग दूषितः	स्त्रीकी आसक्तिसे मलिन हुआ ॥२७॥

तामेव मनसा गृह्णन् बभूव प्रमदोत्तमा ।
अनन्तरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ॥२८॥

तां एव मनसा गृह्णन् बभूव प्रमदोत्तमा अनन्तरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ॥२८॥

तां एव मनसा गृह्णन्	उसी स्त्रीका मनसे ग्रहण करता हुआ	अनन्तरं	(इस जन्मके) बादमें

विदर्भस्य	विदर्भ देशके	प्रमदोत्तमा	उत्तम कन्या
राजसिंहस्य	श्रेष्ठ राजाके	बभूव	हुआ ॥२८॥
वेश्मनि	गृहमें		

उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः ।
युधि निर्जित्य राजन्यान् पाण्ड्यः परपुरञ्जयः ॥२९॥

उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः युधि निर्जित्य राजन्यान् पाण्ड्यः परपुरञ्जयः ॥२९॥

वीर्यपणां	पराक्रमके मूल्यवाली	मलयध्वजः	मलयध्वजने
वैदर्भीं	विदर्भ कन्याको	युधि	युद्धमें
परपुरञ्जयः	दूसरे त्रिपुरारिके समान	राजन्यान्	राजाओंको,
पाण्ड्यः	पाण्ड्य नरेश	निर्जित्य	जीतकर
		उपयेमे	विवाह किया ॥२८॥

तस्यां स जनयाञ्चक्र आत्मजामसितेक्षणाम् ।
यवीयसः सप्त सुतान् सप्त द्रविडभूभृतः ॥३०॥

तस्यां स जनयाञ्चक्रे आत्मजां असित ईक्षणां यवीयसः सप्त सुतान् सप्त द्रविड भूभृतः ॥३०॥

तस्यां	उससे	यवीयसः	उससे छोटे
स	उस राजाने	सप्त सुतान्	सात पुत्रों
असित ईक्षणां	श्याम नेत्रवाली	सप्त	सातों
आत्मजां	एक कन्याको	द्रविड भूभृतः	द्रविड देशके राजा हुए ॥३०॥
जनयाञ्चक्रे	उत्पन्न किया तथा		

एकैकस्याभवत्तेषां राजन्नर्बुदमदम् ।
भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्मही मन्वन्तरं परम् ॥३१॥

एक एकस्य अभवत् तेषां राजन् अर्बुदं अर्बुदं भोक्ष्यते यद् वंशधरैः मही मन्वन्तरं परं ॥३१॥

राजन्	हे राजन्	मन्वन्तरं	मन्वन्तर पर्यन्त
तेषां	उनके	परं	(और) उसके
एक एकस्य	प्रत्येकके		बाद भी
अर्बुदं अर्बुदं	अनेकों अरब	महीं	पृथिवीका
अभवत्	(सन्तानें) हुईं,	भोक्ष्यते	भोग करेंगे ॥३१॥
यद् वंशधरैः	जिनके वंशधर		

अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमे धृतव्रताम् ।
यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्मजो मुनिः ॥३२॥

अगस्त्यः प्राग्दुहितरं उपयेमे धृतव्रतां यस्यां दृढच्युतः जातः इध्मवाहु आत्मजः मुनिः ॥३२॥

धृतव्रतां	व्रत धारण करने वाली	यस्यां	जिसमें
		दृढच्युतः	दृढच्युत नामके
प्राग्दुहितरं	पहली पुत्रीसे	मुनि जातः	मुनि उत्पन्न हुए
अगस्त्यः	अगस्त्य ऋषिने	आत्मजः	उनके पुत्र
उपयेमे	विवाह किया,	इध्मवाहु	इध्मवाह हुए ॥३२॥

विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिर्मलयध्वजः ।
आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ॥३३॥

विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिः मलयध्वजः आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ॥३३॥

राजर्षिः		तनयेभ्यः	पुत्रोंमें
मलयध्वजः	राजर्षि मलयध्वज	क्ष्मां विभज्य	पृथ्वी बाँटकर
कृष्णं	भगवान् कृष्णकी	कुलाचलं	मलय पर्वतपर
आरिराधयिषुः	आराधनाकी इच्छासे	स जगाम	वे चले गये ॥३३॥

हित्वा गृहान् सुतान् भोगान् वैदर्भी मदिरेक्षणा ।
अन्वधावत पाण्ड्येशं ज्योत्स्नेव रजनीकरम् ॥३४॥

हित्वा गृहान् सुतान् भोगान् वैदर्भी मदिरेक्षणा अनु अधावत पाण्ड्य ईशं ज्योत्स्ना इव रजनीकरं ॥३४॥

मदिरेक्षणा	मत्त-लोचनवाली	भोगान् हित्वा	भोगोंको छोड़कर
वैदर्भी	विदर्भकी कन्याने	पाण्ड्य ईशं	पाण्ड्येश्वर (अपने पतिके)
ज्योत्स्ना इव	जसे चन्द्रिका		
रजनीकरं	चन्द्रमाके पीछे जाती है	अनु अधावत	पीछे (दौड़) चली गयी ॥३४॥
गृहान् सुतान्	गृह-पुत्र (और)		

तत्र चन्द्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका ।
तत्पुण्यसलिलैर्नित्यमुभयत्रात्मनो मृजन ॥३५॥

तत्र चन्द्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका तत् पुण्य सलिलैः नित्यं उभयत्र आत्मनः मृजन् ॥३५॥

तत्र	वहाँ	तत्	उनके
चन्द्रवसा ताम्रपर्णी	चन्द्रवशा	पुण्य सलिलैः	पवित्र जलसे
		नित्यं आत्मनः	नित्य अपने
वटोदका नाम	ताम्रपर्णी और वटोदका नामकी (तीन नदियाँ थीं)	उभयत्र	दोनों (शरीर और मनको)
		मृजन्	निर्मल करते थे॥३५॥

कन्दाष्टिभिर्मूलफलैः पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः ।
वर्तमानः शनैर्गात्रकर्शनं तप आस्थितः ॥३६॥

कन्द अष्टिभिः मूल फलैः पुष्प पर्णैः तृणै उदकैः वर्तमानः शनैः गात्र कर्शनं तप आस्थितः ॥३६॥

कन्द	कन्द (एवं)	फलैः	फलोंसे,
अष्टिभिः	बीजोंसे,	पुष्प	(खाने योग्य)
मूल	जड़ोंसे,		फूलोंसे,

पर्णैः	पत्तोंसे,	गात्र कर्शनं	शरीरको कृश करनेवाले
तृणैः	घासोंसे (तथा)		
उदकैः	जलसे,	तप	तपमें
वर्तमानः	निर्वाह करते हुए	आस्थितः	स्थित हो गये ॥३६॥
शनैः	धीरे-धीरे		

शीतोष्णवातवर्षाणि क्षुत्पिपासे प्रियाप्रिये ।
सुखदुःखे इति द्वन्द्वान्यजयत्समदर्शनः ॥३७॥

शीत उष्ण वात वर्षाणि क्षुत् पिपासे प्रिय अप्रिये सुख दुःखे इति द्वन्दान् अजयत् समदर्शनः ॥३७॥

समदर्शनः	समदर्शी होकर	सुख दुःखे	सुख-दुःख
शीत-उष्ण	सर्दी-गर्मी (राजाने)	इति द्वन्दान्	इस प्रकारके सब द्वन्दोंको
वात-वर्षाणि	आँधी-वर्षा,		
क्षुत्-पिपासे	भूख-प्यास,	अजयत्	जीत लिया ॥३७॥
प्रिय-अप्रिये	प्रिय-अप्रिय,		

तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमैः ।
युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षानिलाशयः ॥३८॥

तपसा विद्यया पक्व कषायः नियमैः यमैः युयुजे ब्रह्मणि आत्मानं विजित अक्ष अनिल आशयः ॥३८॥

तपसा विद्यया	तप और उपासनासे	अनिल	प्राण और
		आशयः	चित्तको
पक्व कषायः	मल-दोषको पका (शुद्ध) कर,	विजित	जीतकर
		ब्रह्मणि आत्मानं	ब्रह्ममें आत्माको
यमैः नियमैः	यम नियम द्वारा	युयुजे	युक्त कर दिया ॥३८॥
अक्ष	इन्द्रिय,		

आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः ।
वासुदेवे भगवति नान्यद्वेदोद्वहन् रतिम् ॥३९॥

आस्ते स्थाणुः इव एकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः वासुदेवे भगवति न अन्यद् वेद उद्वहन् रतिं ॥३९॥

दिव्यं वर्षशतं	दिव्य सौ वर्षों तक	भगवति	
स्थाणुः इव	सूखे काष्ठ रूप वृक्षकी भाँति	वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें
		रतिं उद्वहन्	प्रीति करके
एकत्र आस्ते	एक ही स्थानपर स्थिर रहे	अन्यद् न वेद	दूसरा कुछ नहीं जानते थे ॥३९॥

स व्यापकतयाऽऽत्मानं व्यतिरिक्ततयाऽऽत्मनि ।
विद्वान् स्वप्न इवामर्शसाक्षिणं विरराम ह ॥४०॥

स व्यापकतया आत्मानं व्यतिरिक्ततया आत्मनि विद्वान् स्वप्न इव अमर्श साक्षिणं विरराम ह ॥४०॥

स	उन्होंने	साक्षिणं	साक्षी
आत्मानं	आत्माको	विद्वान्	जानकर
व्यापकतया	व्यापक होनेसे,	स्वप्न इव	स्वप्नके समान (दृश्य-जगत) से
आत्मनि	अपने आपमें		
व्यतिरिक्ततया	(सब प्रपंचसे) पृथक होनेसे,	ह	निश्चित रूपसे
		विरराम	उपरत हो गये ॥४०॥
अमर्श	विचारका भी		

साक्षाद्भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप ।
विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥४१॥

साक्षात् भगवता उक्तेन गुरुणा हरिणा नृप विशुद्ध ज्ञान दीपेन स्फुरता विश्वतः मुखं ॥४१॥

नृप	हे राजन् !	विश्वतः मुखं	सब ओरसे
गुरुणा भगवता	गुरुरूप भगवान्	स्फुरता	स्फुरित होनेवाले
साक्षात् हरिणा	साक्षात् श्रीहरिके द्वारा	विशुद्ध ज्ञान दीपेन	विशुद्ध ज्ञान रूपी दीपसे ॥४१॥
उक्तेन	कहे गये		

परे ब्रह्मणि चात्मानं परं ब्रह्म तथाऽऽत्मनि ।
वीक्षमाणो विहायेक्षामस्मादुपरराम ह ॥४२॥

परे ब्रह्मणि च आत्मानं परं ब्रह्म तथा आत्मनि वीक्षमाणः विहाय ईक्षां अस्माद् उपरराम ह ॥४२॥

परे ब्रह्मणि	परब्रह्ममें	ईक्षां विहाय	(अन्तमें) इस चिन्तनको छोड़कर
आत्मानं	अपने आत्माको		
तथा आत्मनि	तथा आत्मामें	अस्माद्	इस प्रपञ्चसे
परं ब्रह्म	परब्रह्माको	ह	निश्चित रूपसे
वीक्षमाणः	देखते हुए भी	उपरराम	उपरत हो गये ॥४२॥

पतिं परमधर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजम् ।
प्रेम्णा पर्यचरद्धित्वा भोगान् सा पतिदेवता ॥४३॥

पतिं परम धर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजं प्रेम्णा पर्यचरत् हित्वा भोगान् सा पतिदेवता ॥४३॥

सा पतिदेवता	वह पतिव्रता	पतिं	अपने पतिकी
वैदर्भी	विदर्भ-कन्या	प्रेम्णा	प्रेमसे
भोगान् हित्वा	सब भोगोंका त्याग कर	पर्यचरत्	सेवा करने लगी ॥४३॥
परम धर्मज्ञं	परमधर्मज्ञ		

चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूतशिरोरुहा ।
बभावुप पतिं शान्ता शिखा शान्तमिवानलम् ॥४४॥

चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूत शिरोरुहा बभौ उप पतिं शान्ता शिखा शान्तम् इव अनलं ॥४४॥

चीरवासा	चीर-वस्त्र पहिनकर	उप पतिं	पतिके समीप
व्रतक्षामा	उपवाससे दुबली हुई	शिखा शान्तं	लपट रहित
		अनलं इव	अग्निके समान
वेणीभूत	उलझे हुए	शान्ता	शान्त
शिरोरुहा	केशोंवाली	बभौ	शोभित हुई ॥४४॥

अजानती प्रियतमं यदोपरतमङ्गना ।
सुस्थिरासनमासाद्य यथापूर्वमुपाचरत् ॥४५॥

अजानती प्रियतमं यदा उपरतं अङ्गना सुस्थिर आसनं आसाद्य यथापूर्व उपाचरत् ॥४५॥

यदा	जब	अङ्गना	उनकी स्त्री
सुस्थिर आसनं	निश्चल आसनपर (बैठे होनेसे)	आसाद्य	(उनके) पास जाकर
प्रियतमं	प्रियतमको	यथापूर्वं	पहिलेके समान
उपरतं	शरीर त्याग किया	उपाचरत्	सेवा करने लगी ॥४५॥
अजानती	न जानती हुई		

यदा नोपलभेताङ्घ्रावूष्माणं पत्युरर्चती ।
आसीत्संविग्नहृदया यूथभ्रष्टा मृगी यथा ॥४६॥

यदा न उप लभेत अङ्घ्रौ ऊष्माणं पत्युः अर्चती आसीत् संविग्न हृदयः यूथ भ्रष्टा मृगी यथा ॥४६॥

पत्युः	पतिकी	यूथ भ्रष्टा	दलसे बिछुड़ी
अर्चती	सेवा करती हुई	मृगी इव	हिरणीके समान
यदा	जब	संविग्न	व्याकुल
अङ्घ्रौ	(उनके) पैरोंमें	हृदया	चित्त
ऊष्माणं	गर्मी	आसीत्	हो गयी ॥४६॥
न उपलभेत	नहीं प्राप्त की		

आत्मानं शोचती दीनमबन्धुं विक्लवाश्रुभिः ।
स्तनावासिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा ॥४७॥

आत्मानं शोचती दीनं अबन्धुं विक्लव अश्रुभिः स्तनौ आसिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा ॥४७॥

अबन्धं	बन्धु रहित (होनेके कारण)	दीनं आत्मनं	अपनेको दीन समझ कर

विक्लवा	व्याकुल होकर	सुस्वरं	स्वरके साथ
अश्रुभिः	आसुओंसे	सा	वह
स्तनौ	स्तनोंको	प्ररुरोद	रोने लगी ॥४७॥
आसिच्य	भिगाती		

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे इमामुदधिमेखलम् ।
दस्युभ्यः क्षत्रबन्धुभ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि ॥४८॥

उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ राजर्षे इमां उदधि-मेखलां दस्युभ्यः क्षत्र बन्धुभ्यः पातुं अर्हसि ॥४८॥

राजर्षे	राजर्षि	दस्युभ्यः	लुटेरोंसे
उत्तिष्ड उत्तिष्ठ	उठो ! उठो !	विभ्यती	डरती हुई को
उदधि मेखलां	समुद्र पर्यन्तवाली	पातुं अर्हसि	(तुम) रक्षा
इमां	इस (पृथ्वी) को		करो ॥४८॥
क्षत्र बन्धुभ्यः	क्षत्रि साधमों		

एवं विलपती बाला विपिनेऽनुगता पतिम् ।
पतिता पादयोर्भर्तुः रुदत्यश्रूण्यवर्तयत् ॥४९॥

एवं विलपती बाला विपिने अनुगता पतिं पतिता पावयोः भर्तुः रुदती अश्रूणि अवर्तयत् ॥४९॥

एव	इस प्रकार	भर्तुः	पतिके
विलपती	विलाप करती हुई	पादयोः	चरणोंमें
विपिने	वनमें	पतिता	गिरकर
पतिं	पतिके साथ	रुदती	रोती हुई
अनुगता	आयी हुई,	अश्रूणि	आंसू
बाला	वह स्त्री	अवर्तयत्	बहाने लगी ॥४९॥

चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरम् ।
आदीप्य चानुमरणे विलपन्ती मनो दधे ॥५०॥

चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरं आदीप्य च अनुमरणे विलपन्ती मनो दधे ॥५०॥

दारुमयीं	काष्ठकी	आदीप्य	जलाकर
चितिं	चिता	विलपन्ती	और विलाप करती हुई
चित्वा	चुनकर		
तस्यां	उसमें	अनुमरणे	पतिके पीछे मरने (सती होने) के लिए
पत्युः	पतिके		
कलेवरं	शरीरको	मनो दधे	संकल्प किया ॥५०॥

तत्र पूर्वतरः कश्चित्सखा ब्राह्मण आत्मवान् ।
सान्त्वयन् वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो ॥५१॥

तत्र पूर्वतरः कश्चित् सखा ब्राह्मण आत्मवान् सान्त्वयन् वल्गुना साम्ना तां आह रुदतीं प्रभो ॥५१॥

प्रभो	राजन् !	वल्गुना	अबलाको
तत्र	वहां (उसी समय)	साम्ना	मधुर सान्त्वना वचनसे
कश्चित्	कोई		
पूर्वतरः सखा	पुराना मित्र	सान्त्वयन्	समझाते हुए
आत्मवान्	आत्मज्ञानी	आह	बोला ॥५१॥
ब्राह्मण	ब्राह्मण		
रुदतीं तां	(उस) रुदन करती हुई		

ब्राह्मण उवाच-

का त्वं कस्यासि को वायं शयानो यस्य शोचसि ।
जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥५२॥

का त्वं कस्य असि कः वा अयं शयानः यस्य शोचसि जानासि किं सखायं मां येन अग्रे विचचर्थ ह ॥५२॥

त्वं का	तुम कौन हो ?
कस्य असि	किसकी हो ?
वा	अथवा
अयं शयानः	यह सोया हुआ
कः	कौन है,
यस्य शोचसि	जिसका शोक करती हो
किं मां	क्या मुझ
सखायं जानासि	सखाको जानती हो
अग्रे येन	पहिले जिसके साथ
ह विचचर्थ	निश्चित रूपसे घूमती थीं ॥५२॥

अपि स्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे ।
हित्वा मां पदमन्विच्छन् भौमभोगरतो गतः ॥५३॥

अपि स्मरसि च आत्मानं अविज्ञात सखं सखे हित्वा मां पदं अनु इच्छन् भौम भोगरतः गतः ॥५३॥

सखे	मित्र !
अपि च आत्मानं स्मरसि	क्या तुम अपनेको स्मरण करते हो ?
आविज्ञात सखं	कि अविज्ञात नामक मैं तुम्हारा मित्र था
मां हित्वा	मुझे छोड़कर
भौम भोगरतः	पृथ्वीके भोगोंको प्रीतिसे
पदं अनु इच्छन्	निवास स्थानकी खोजमें
गतः	चले गये थे ॥५३॥

हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ ।
अभूतामन्तरा वौकः सहस्रपरिवत्सरान् ॥५४॥

हंसौ अहं च त्वं च आर्य सखायौ मानसायनौ अभूतां अन्तरा वा ओकः सहस्र परिवत्सरान् ॥५४॥

आर्य	हे श्रेष्ठ !
अहं च त्वं च सखायौ	मैं भी और तुम भी परस्पर मित्र हैं,
मानसायनौ	मानस-निवासी
हंसौ	हंस हैं

सहस्र परिवत्सरान्	और हजारों वर्षों तक	ओकः अन्तरा वा अभूतां	किसी निवास स्थानके बिना ही रहे थे ॥५४॥

स त्वं विहाय मां बन्धो गतो ग्राम्यमतिर्महीम् ।
विचरन् पदमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया ॥५५॥

स त्वं विहाय मां बन्धो गतः ग्राम्य मतिः महीं विचरन् पदं अद्राक्षीः कयाचित् निर्मितम् स्त्रिया ॥५५॥

बन्धो	मित्र,	विचरन्	घूमते-घूमते
ग्राम्य मतिः	विषय भोगोंकी इच्छासे	कयाचित् स्त्रिया	किसी स्त्रीके द्वारा
स त्वं	वह तुम	निर्मितं	बनाये गये
मां विहाय	मुझे छोड़कर	पदं अद्राक्षीः	स्थानको देखा ॥५५॥
गतः	चले गये		

पञ्चारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् ।
षट्कुलं पञ्चविपणं पञ्चप्रकृति स्त्रीधवम् ॥५६॥

पञ्च आरामं नव द्वारम् एकपालं त्रिकोष्ठकं षट्कुलं पञ्चविपणं पंचप्रकृति स्त्रीधवम् ॥५६॥

पञ्च आरामं	उसमें पांच बगीचे थे,	पञ्चविपणं	पांच बाजार थे
नवद्वारं	नौ दरवाजे,	पञ्चप्रकृतिं	पांच उपादान कारणोंसे बना था
एकपालं	एक पालका	स्त्रीधवं	स्त्री उसकी स्वामिनी थी ॥५६॥
त्रिकोष्ठकं	तीन परकोठे,		
षट्कुलं	छः कुल थे,		

पञ्चेन्द्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो ।
तेजोऽबन्नानि कोष्ठानि कुलमिन्द्रियसंग्रहः ॥५७॥

पञ्च इन्द्रिय अर्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो तेजः अप् अन्नानि कोष्ठानि कुलं इन्द्रिय संग्रहः ॥५७॥

प्रभो	महाराज,	तेजः अप्	
पंच इन्द्रिय		अन्नानि	तेज, जल और अन्न ये
अर्था	पांच इन्द्रियोंके विषय	कोष्ठानि	तीन परकोटे थे,
आरामा	पांच उसके बगीचे थे,	इन्द्रिय संग्रहः	(मन और) पांच ज्ञानेन्द्रिय
नव प्राणा द्वारः	नौ इन्द्रियोंके छिद्र द्वार थे	कुलम्	(छः) कुल थे ॥५७॥

विपणस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया ।
शक्त्यधीशः पुमांस्त्वत्र प्रविष्टो नावबुध्यते ॥५८॥

विपणः तु क्रियाशक्तिः भूत प्रकृतिः अव्यया शक्ति अधीशः पुमान् तत्र प्रविष्टः न अवबुध्यते ॥५८॥

क्रियाशक्तिः	क्रिया शक्ति रूप पांच कर्मेन्द्रिय	शक्ति अधीशः	बुद्धि शक्ति ही इसकी स्वामिन थी
विपणः तु	तो पांच बाजार हैं,	तत्र प्रविष्टः	जिसमें प्रविष्ट हुआ
अव्यया	कभी नष्ट न होनेवाले	पुमान्	पुरुष
भूत प्रकृतिः	पञ्चभूत उपादान कारण थे ।	न अवबुध्यते	अपनेको नहीं जान पाता ॥५८॥

तस्मिंस्त्वं रामया स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः ।
तत्सङ्गादीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ॥५९॥

तस्मिन् त्वं रामया स्पृष्टः रममाणः अश्रुतः स्मृति तत् सङ्गात् ईदृशीं प्राप्तः दशां पापीयसीं प्रभो ॥५९॥

प्रभो	हे भाई !	रममाणः	उसके साथ विहार करते हुए
तस्मिन्	उस नगरमें	तत् सङ्गात्	उसके संगसे
त्वं	तुम	ईदृशीं पापीयसीं	ऐसी पापमयी
रामया स्पृष्टः	उस स्त्रीसे स्पर्श करके	दशां प्राप्तः	दशाको प्राप्त हुए हो ॥५९॥
अश्रुत स्मृतिः	स्वरूपको भूलकर		

न त्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत्तव ।
न पतिस्त्वं पुरञ्जन्या रुद्धो नवमुखे यया ॥६०॥

न त्वं विदर्भ दुहिता न अयं वीरः सुहृत् तव न पतिः त्वं पुरञ्जन्या रुद्धः नवमुखे यया ॥६०॥

त्वं विदर्भ दुहिता न	तुम विदर्भ-कन्या नहीं हो	यया	जिसके द्वारा
अयं वीरः	यह वीर	नवमुखे	नौ द्वार वाले (नगर) में
तव सुहृत न	तुम्हारा मित्र नहीं है,	रुद्धः	रोके गये थे,
		पुरञ्जन्या	उस पुरञ्जनीके
		त्वं पतिः न	तुम पति नहीं हो ॥६०॥

माया ह्येषा मया सृष्टा यत्पुमांसं स्त्रियं सतीम् ।
मन्यसे नोभयं यद्वै हंसौ पश्यावयोर्गतिम् ॥६१॥

माया हि एषा मया सृष्टा यत् पुमांसं स्त्रियं सतीं मन्यसे न उभयं यत् वै हंसौ पश्य आवयोः गतिं ॥६१॥

हि एषा	क्योंकि यह	सतीं स्त्रियं	(इस जन्ममें) सती स्त्री
मया सृष्टा	मेरी बनायी	मन्यसे	मानते हो,
माया	माया है	उभयं न	दोनों ही नहीं हो,
यत्	जिससे	वै यत्	निश्चय क्योंकि
पुमांसं	(पहिले जन्ममें अपनेको) पुरुष		

हंसौ	हम दोनों हंस हैं,	पश्य	देखो ॥६१॥
आवयोः गतिं	हम दोनोंके स्वरूपको		

अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भोः ।

न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ॥६२॥

अहं भवान् न च अन्यः त्वं त्वं एव अहं विचक्ष्व भोः न नौ पश्यन्ति कवयः छिद्रं जातु मनाक् अपि ॥६२॥

भोः	हे मित्र !	कवयः	ज्ञानीजन
अहं भवान्	जो मैं हूँ वही हो	नौ	हम दोनोंमें
न च त्वं अन्यः	तुम मुझसे कभी भिन्न नहीं हो,	जातु मनाक् अपि छिद्रं न पश्यन्ति	कभी तनिक भी अन्तर नहीं देखते ॥६२॥
त्वं एव अहं	तुम्ही मेरे स्वरूप हो		
विचक्ष्व	विचार कर देखो		

यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः ।

द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवान्तरमावयोः ॥६३॥

यथा पुरुष आत्मानं एकं आदर्श चक्षुषोः द्विधा भूतं अवेक्षेत तथा एव अन्तरं आवयोः ॥६३॥

यथा पुरुष	जैसे एक ही पुरुष	अवेक्षेत	देखता है
एकं आत्मानं	एक ही अपनेको	तथा एव	उसी प्रकार
आदर्श चक्षुषोः	दर्पणमें या किसीके नेत्रमें	आवयोः	हम दोनोंका
		अन्तरं	भेद है ॥६३॥
द्विधा भूतं	दो बना		

एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः ।

स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिम् ॥६४॥

एवं स मानसः हंसः हंसेन प्रतिबोधितः स्वस्थः तद् व्यभिचारेण नष्टां आप पुनः स्मृतिं ॥६४॥

एवं स	इस प्रकार वह	तद्	उस (स्वरूप) के
मानसः हंसः	मानसरोवरका हंस	व्यभिचारेण	व्यभिचार (उलटे भ्रम) से
हंसेन	दूसरे हंसके द्वारा	नष्टां स्मृतिं	नष्ट हुई स्मृतिको
प्रतिबोधितः	समझाये जानेपर	पुनः आप	फिर प्राप्त कर लिया ॥६४॥
स्वस्थः	अपने स्वरूपमें स्थित हो गया		

बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् ।
यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान् विश्वभावनः ॥६५॥

बर्हिष्मन् एतत् अध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितं यत् परोक्ष प्रियः देवः भगवान् विश्वभावनः ॥६५॥

बर्हिष्मन्	प्राचीनबर्हि !	यत्	क्योंकि
एतत्	यह	विश्वभावनः	विश्व पालक
अध्यात्मं	अध्यात्म ज्ञान	देवः भगवान्	देव भगवानको
पारोक्ष्येण	मैंने परोक्ष रूपसे	परोक्ष	परोक्ष ही
प्रदर्शितं	बतलाया है।	प्रियः	प्रिय है ॥६५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने अष्टविंशोऽध्यायः ॥२८॥

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

प्राचीन बर्हिरुवाच-

भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते ।
कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥१॥

भगवन् ते वचः अस्माभिः न सम्यक् अवगम्यते कवयः तद् विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	कवयः	विद्वान्
ते वचः	तुम्हारे वचन	तद् विजानन्ति	उनका तात्पर्य जान सकते हैं
अस्माभिः	मेरे द्वारा		
सम्यक्	भली प्रकार	वयं कर्ममोहिताः	हम कर्म-मोह
न अवगम्यते	नहीं समझे जाते हैं	न	नहीं जान पाते ॥१॥

नारद उवाच-

पुरुषं पुरञ्जनं विद्याद्यद् व्यनक्त्यात्मनः पुरम् ।
एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम् ॥२॥

पुरुषं पुरञ्जनं विद्यात् यत् व्यनक्ति आत्मनः पुरं एक द्वि त्रि चतुः पादं बहुपादं अपादकं ॥२॥

पुरुषं	जीवको	बहुपादं	बहुत पैरोंके (या)
पुरञ्जनं	पुरञ्जन	अपादकं	बिना पैरका
विद्यात्	समझना चाहिए	पुरं	नगर (शरीर)
यत्	जो	व्यनक्ति	प्रगट कर लेता है ॥२॥
आत्मनः	अपने लिए		
एक द्वि त्रि चतुः पादं	एक, दो, तीन या चार पैरके,		

योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः ।
यन्न विज्ञायते पुम्भिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः ॥३॥

यः अविज्ञात आहृतः तस्य पुरुषस्य सखा ईश्वरः यत् न विज्ञायते पुम्भिः नामभिः वा क्रियागुणैः ॥३॥

तस्य पुरुषस्य		नामभिः वा	
सखा	उस जीवका मित्र	क्रियागुणैः	नाम, कर्म अथवा गुणोंसे
यत् अविज्ञात	जो अविज्ञात	यत्	जिसे
आहृतः	नामसे कहा गया है	विज्ञायते	नहीं जान
ईश्वरः	वह ईश्वर है		सकते ॥३॥
यः पुम्भिः	जो किसी पुरुष द्वारा		

यदा जिघृक्षन् पुरुषः कात्स्न्र्येन प्रकृतेर्गुणान् ।
नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि तत्रामनुत साध्विति ॥४॥

यदा जिघृक्षन् पुरुषः कात्स्न्र्येन प्रकृतेः गुणान् नवद्वारं द्विहस्त अङ्घ्रि तत्र अमनुत साधु इति ॥४॥

यदा पुरुषः	जब जीवने	द्विहस्त अङ्घ्रि	दो हाथ तथा दो पैर वाले (इस मनुष्य शरीरको)
प्रकृतेः गुणान्	प्रकृतिके गुणोंको		
जिघृक्षन्	भोगनेकी इच्छा की		
तत्र	तब	साधु	यह श्रेष्ठ है
नवद्वारं	नौ द्वारवाले	इति अमनुत	ऐसा माना ॥४॥

बुद्धिं तु प्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् ।
यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन् पुमान् भुङ्क्तेऽक्षभिर्गुणान् ॥५॥

बुद्धिं तु प्रमदां विद्यात् मम अहं इति यत् कृतं यां अधिष्ठाय देहे अस्मिन् पुमान् भुङ्क्ते अक्षभिः गुणान् ॥५॥

बुद्धिं तु	बुद्धिको ही
प्रमदा विद्यात्	स्त्री (पुरञ्जनी) समझो
यत् कृतं	जिसका बनाया
मम अहं इति	मैं और मेरा यह भाव है
पुमान्	पुरुष
यां अधिष्ठाय	जिसका आश्रय लेकर
अस्मिन् देहे	इस शरीरमें
अक्षभिः गुणान्	इन्द्रियों द्वारा विषयोंको
भुङ्क्ते	भोगता है ॥५॥

सखाय इन्द्रियगणा ज्ञानं कर्म च यत्कृतम् ।
सख्यस्तद्वृत्तयः प्राणः पञ्चवृत्तिर्यथोरगः ॥६॥

सखायः इन्द्रियगणाः ज्ञानं कर्म च यत् कृतं सख्यः तद् वृत्तयः प्राणः पञ्चवृत्तिः यथा उरगः ॥६॥

इन्द्रियगणाः	दश इन्द्रियां ही
सखायः	इसके मित्र हैं
कृतं यत्	जिनके करनेसे
ज्ञानं कर्म च	ज्ञान और कर्म होते हैं
तद् वृत्तयः	उन (इन्द्रियोंकी) वृत्तियां
सख्यः	सखियाँ हैं
पञ्चवृत्तिः	पांच वृत्तिवाला
प्राणः	प्राण (प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान)
उरगः यथा	सर्पके समान है ॥६

बृहद्बलं मनो विद्यादुभयेन्द्रियनायकम् ।
पञ्चालाः पञ्च विषया यन्मध्ये नवखं पुरम् ॥७॥

बृहद् बलं मनः विद्यात् उभय इन्द्रिय नायकं पञ्चालाः पञ्च विषयाः यत् मध्ये नवखं पुरं ॥७॥

मनः बृहद् बलं विद्यात्	मनको बृहद्बल समझो दोनों प्रकारकी
उभय इन्द्रिय नायकं	जो कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियोंका नायक है

पञ्चालाः पञ्च विषयाः	पांचाल प्रदेश पांच विषय है	यत् मध्ये नवखं पुरं	जिनके बीचमें नौ द्वार वाला नगर है ॥७॥

अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति ।
द्वे द्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिन्द्रियसंयुतः ॥८॥

अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्न गुदौ इति द्वे द्वे द्वारौ बहिः याति यः तद् इन्द्रिय संयुतः ॥८॥

अक्षिणी नासिके	दो नेत्र गोलक दो नासिका छिद्र	यः तद् इन्द्रिय सयुतः	जो (जीव है) वह (इन्हीं द्वारोंसे) इन्द्रियोंके साथ
कर्णौ	दो कान	बहिः याति	बाहर (विषयोंमें) जाता है ॥८॥
द्वे द्वे द्वारौ	ये दो-दो द्वार हैं		
मुखं शिश्न गुदौ इति	(इसके साथ) मुख्य लिङ्ग और गुदा		

अक्षिणी नासिके आस्यमिति पञ्चपुरः कृताः ।
दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥९॥

अक्षिणी नासिके आस्यम् इति पञ्चपुरः कृताः दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा च उत्तरः स्मृतः ॥९॥

अक्षिणी नासिके	दो नेत्र गोलक, दो नासिका छिद्र	दक्षिणा दक्षिणः कर्ण	दक्षिण दिशा दाहिना कर्ण है
आस्यं	मुख	च उत्तरा	
इति पञ्चपुरः कृताः	यह पूर्व (द्वार बने हैं)	उत्तरः स्मृतः	और उत्तर दिशा वाया कर्ण है ॥९॥

पश्चिमे इत्यधोद्वारौ गुदं शिश्नमिहोच्यते ।
खद्योताऽऽविर्मुखी चात्र नेत्रे एकत्र निर्मिते ।
रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुषेश्वरः ॥१०॥

पश्चिमे इति अधः द्वारौ गुदं शिश्नं इह उच्यते खद्योत आविर्मुखी च अत्र नेत्रे एकत्र निर्मिते रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुष ईश्वरः ॥१०

पश्चिमे इति	पश्चिम इस रूपमें	एकत्र निर्मिते	(ये) एक साथ बने हैं
अधः द्वारौ	नीचेके द्वार	विभ्राजितं रूपं	विभ्राजित रूप (का नाम) है
गुदं शिश्नं	गुदा और लिंग	चक्षुष ईश्वरः	नेत्रोंका स्वामी (जीव)
इह उच्यते	यहाँ कहे गये हैं	ताभ्यां	उन (नेत्रों) के द्वारा
खद्योत च आविर्मुखी	खद्योत एवं आविर्मुखी	विचष्टे	देखता है ॥१०॥
अत्र नेत्रे	यहाँ नेत्र (कहे गये)		

नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते ।
घ्राणोऽवधूतो मुख्यास्यं विपणो वाग्रसविद्रसः ॥११॥

नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते घ्राणः अवधूतः मुख्य आस्यं विपणः वाक् रसवित् रसः ॥११॥

नासे नलिनी नालिनी	नासा छिद्र नलिनी-नालिनी है	घ्राणः अवधूतः	घ्राणेन्द्रिय अवधूत कहा गया
गन्धः सौरभ उच्यते	गन्धको सौरभ (देश) कहा जाता है	मुख्य आस्यं	मुख्य मुख है
		वाक् विपणः	वाक्-इन्द्रिय विपण है
		रसवित् रसः	रसजानने वाला रसनेन्द्रिय है ॥११॥

आपणो व्यवहारोऽत्र चित्रमन्धो बहूदनम् ।
पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥१२॥

आपणः व्यवहारः अत्र चित्रमन्धः बहूदनं पितृहूः दक्षिणः कर्णः उत्तरः देवहूः स्मृतः ॥१२॥

व्यवहारः		दक्षिणः कर्णः	
आपणः	वाणीका व्यापार आपण है	पितृहूः	दाहिना कान पितृहू है
चित्रमन्धः		उत्तरः	वायाँ कान
बहूदनं	तरह-तरहका अन्न-बहूदन है	देवहूः स्मृतः	देवहू कहा गया है ॥१२॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चालसंज्ञितम् ।
पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेत् ॥१३॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चाल संज्ञितं पितृयानं देवयानं श्रोत्रात् श्रुतधरात् व्रजेत् ॥१३॥

प्रवृत्तं	(कर्मकाण्ड रूप) प्रवृत्तिका मार्ग	श्रुतधरात्	श्रवणको स्मरण रखनेसे
च निवृत्तं	और (उपासना रूप) निवृत्ति को ही	पितृयानं	पितृयान (मार्ग) से
पञ्चाल संज्ञितं	पञ्चाल देश कहे गये	देवयानं	(या) देवयान (मार्ग) से
श्रोत्रात्	श्रवणेन्द्रिय द्वारा	व्रजेत्	जाता है ॥१३॥

आसुरी मेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः ।
उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो निर्ऋतिर्गुद उच्यते ॥१४॥

आसुरी मेढ्रं अर्वाक् द्वाः व्यवायः ग्रामिणां रतिः उपस्थः दुर्मदः प्रोक्तः निर्ऋतिः गुद उच्यते ॥१४॥

मेढ्रं आसुरी	लिङ्ग आसुरी नामक	उपस्थः	लिङ्गमें रहने वाली उपस्थेन्द्रिय
अर्वाक् द्वाः	नीचेका द्वार है		
व्यवायः		दुर्मदः प्रोक्तः	दुर्मद कही गयी है
ग्रामिणां रतिः	स्त्री प्रसङ्ग ग्राम्य रति है	निर्ऋतिः गुद	
		उच्यते	गुदा निर्ऋति कही जाती है ॥१४॥

वैशसं नरकं पायुर्लुब्धकोऽन्धौ तु मे शृणु ।
हस्तपादौ पुमांस्ताभ्यां युक्तो याति करोति च ॥१५॥

वैशसं नरकं पायुः लुब्धकः अन्धौ तु मे शृणु हस्तपादौ पुमान् ताभ्यां युक्तः याति करोति च ॥१५॥

नरकं वैशसं	नरक वैशस नामका देश है	हस्तपादौ	(ये) हाथ और पैर हैं
		ताभ्यां युक्तः	इन दोनोंसे युक्त होकर
पायुः लुब्धकः	(गुदामें स्थित) पायु इन्द्रिय लुब्धक कहा है	करोति च याति	(कर्म) करता है और (कहीं भी) जाता है ॥१५॥
अन्धौ तु मे शृणु	दो अन्धे हैं उन्हें मुझसे सुनो		

अन्तःपुरं च हृदयं विषूचिर्मन उच्यते ।
तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः ॥१६॥

अन्तःपुरं च हृदयं विषूचिः मन उच्यते तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद् गुणैः ॥१६॥

हृदयं अन्तःपुरं	हृदय अन्तःपुर है	प्रसादं हर्षं वा मोहं	शान्ति हर्ष अथवा मोहको
मन विषूचिः उच्यते	मन विषूची कहा गया है	प्राप्नोति	प्राप्त करता है ॥१६
तद् गुणैः	उस (मन) के [सत्त्वादि] गुणोंसे		

यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा ।
तथा तथोपद्रष्टाऽऽत्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥१७॥

यथा यथा विक्रियते गुणाक्तः विकरोति वा तथा तथा उपद्रष्टा आत्मा तत् वृत्तीः अनुकार्यते ॥१७॥

यथा यथा	(बुद्धि) जैसे-जैसे	उपद्रष्टा	साक्षी प्रकारसे
विक्रियते	विकृति होती है	गुणाक्तः आत्मा	गुणोंसे लिप्त जीवसे
वा यथा		तत् वृत्तीः	उस (बुद्धि) की
विकरोति	अथवा जैसे विकृत करती है	अनुकार्यते	अपनी वृत्तिका अनुकरण कराती है ॥१७॥
तथा तथा	वैसे-वैसे		

देहो रथस्त्विन्द्रियाश्वः संवत्सररयोऽगतिः ।
द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पञ्चासुबन्धुरः ॥१८॥

देहः रथः तु इन्द्रिय अश्वः संवत्सररयः अगतिः द्वि कर्म चक्रः त्रि गुण ध्वजः पञ्च असु बन्धुरः ॥१८॥

देहः तु रथः	देह तो रथ है	द्वि कर्म चक्रः	(पाप-पुण्य रूप) कर्म दो पहिये हैं
इन्द्रिय अश्वः	ज्ञानेन्द्रिय (पाँच) अश्व हैं	त्रि ध्वजः	(सत्त्व, रज, तज) तीन ध्वजा हैं
संवत्सररयः	संवत्सरका वेग	पञ्च असु	पाँच प्राण
अगतिः	गति हीनत्व है	बन्धुरः	डोरियां हैं ॥१८॥

मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वन्द्वकूबरः ।
पञ्चेन्द्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरूथकः ॥१९॥

मनः रश्मिः बुद्धि सूतः हृत् नीडः द्वन्द्व कूबरः पञ्च इन्द्रिय अर्थ प्रक्षेपः सप्तधातु वरूथकः ॥१९॥

मनः रश्मिः	मन बागडोर है	पञ्च इन्द्रिय अर्थ	इन्द्रियोंके पाँच विषय
बुद्धि सूतः	बुद्धि सारथि है	प्रक्षेपः	आयुध हैं
हृत् नीडः	हृदय बैठनेका स्थान है	सप्त धातु वरूथकः	(त्वचादि) सात धातु आवरण हैं ॥१९॥
द्वन्द्व कूबर	सुख-दुःखादि द्वन्द्व जुए हैं		

आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति ।
एकादशेन्द्रियचमूः पञ्चसूनाविनोदकृत् ॥२०॥

आकूतिः विक्रमः बाह्यः मृगतृष्णां प्रधावति एकादश इन्द्रिय चमूः पञ्चसूना विनोद कृत् ॥२०॥

आकूतिः विक्रमः	(पांच) कर्मेन्द्रियां (पांच प्रकारकी) गति है	प्रधावति	दौड़ती है
		एकादश इन्द्रिय चमूः	ग्यारह इन्द्रियां सेना हैं
बाह्यः	(इस रथपर चढ़कर) रथी रूप जीव	पञ्चसूना	पांच (विषयोंका ग्रहण) आखेटका
मृगतृष्णां	मृगतृष्णा (के समान मिथ्या जीव विषयों) की ओर	विनोदकृत्	विनोद करता है ॥२०॥

संवत्सरश्चण्डवेगः कालो येनोपलक्षितः ।
तस्याहानीह गन्धर्वा गन्धर्व्यो रात्रयः स्मृताः ।
हरन्त्यायुः परिक्रान्त्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥२१॥

संवत्सरः चण्डवेगः कालः येन उपलक्ष्यते तस्य अहानि इह गन्धर्वा गन्धर्व्यः रात्रयः स्मृताः हरन्ति आयुः परिक्रान्त्या षष्टि उत्तर शतत्रयं ॥२१॥

येन कालः	जिसके द्वारा कालका	रात्रयः स्मृताः	रात्रियां कही गयी हैं
उपलक्ष्यते	ज्ञान होता है	षष्टि उत्तर शतत्रयं	ये तीन सौ साठ
संवत्सरः	(वह) संवत्सर	परिक्रान्त्या	(बारी-बारीसे) घूमनेके द्वारा
चण्डवेगः	चण्डवेग कहा गया	आयुः	आयुका
इह	इसमें	हरन्ति	हरण करती हैं ॥२१॥
गन्धर्वा	गन्धर्व		
अहानि	दिन हैं		
गन्धर्व्यः	गन्धर्वियां		

कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनन्दति ।
स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥२२॥

कालकन्या जरा साक्षात् लोकः तां न अभिनन्दति स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥२२॥

जरा कालकन्या	वृद्धावस्था काल-कन्या है	क्षयाय	(लोकका) विनाश करनेके लिए
तां लोकः	उसको लोक	स्वसारं जगृहे	(उसे) बहिन रूपसे स्वीकार किया है ॥२२॥
अभिनन्दति न	पसन्द नहीं करता		
मृत्युः			
यवनेश्वरः	मृत्यु यवनराजने		

आधयो व्याधयस्तस्य सैनिका यवनाश्चराः ।
भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारो द्विविधो ज्वरः ॥२३॥

आधयः व्याधयः तस्य सैनिका यवनाः चराः भूत उपसर्गः आशु रयः प्रज्वारः द्विविधः ज्वरः ॥२३॥

आधयः	मानसिक चिन्ता	आशु रयः	तीव्र वेग
व्याधयः	(शारीरिक) रोग	द्विविधः	(शीत और कृष्ण) दो प्रकारका
तस्य चराः	उस (यवनराज) के पैदल	ज्वरः	ज्वर
यवनाः सैनिका	यवन सैनिक हैं	प्रज्वारः	प्रज्वार नामक उसका मित्र है ॥२३
भूत उपसर्गः	प्राणियोंको पीड़ा देनेवाला		

एवं बहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसम्भवैः ।
क्लिश्यमानः शतं वर्ष देहे देही तमोवृतः ॥२४॥

एवं बहुविधैः दुःखैः दैव भूत आत्म संभवैः क्लिश्यमानः शतं वर्ष देहे देही तमः वृतः ॥२४॥

एवं	इस प्रकार	दुःखैः	दुःखोंसे
देही	देहाभिमानी जीव	क्लिश्यमानः	क्लेश पाता हुआ
बहुविधैः	अनेक प्रकारके	शतं वर्ष	सौ वर्षों तक
दैव भूत	आधिदैविक, आधि	देहे	शरीरमें
	भौतिक	तमः वृतः	अज्ञानसे आच्छन्न
आत्म संभवैः	आध्यात्मिक		रहता है ॥२४॥

प्राणेन्द्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः ।
शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥२५॥

प्राण इन्द्रिय मनः धर्मान् आत्मनि अध्यस्य निर्गुणः शेते काम लवान् ध्यायन् मम अहं इति कर्मकृत् ॥२५॥

निर्गुणः	(वस्तुतः) निर्गुण	इति	इस भावसे
	होनेपर भी	कर्मकृत	कर्म करता हुआ
प्राण इन्द्रिय	प्राण, इन्द्रिय	काम लवान्	क्षुद्र भोगोंका
मनः धर्मान्	और मनके धर्मोंको	ध्यायन्	चिन्तन करता
आत्मनि	अपनेमें	शेते	सोता (निद्रा मग्न-
अध्यस्य	आरोपित करके		सा असावधान
मम अहं	मेरा और मैं		रहता) है ॥२५॥

यदाऽऽत्मानमविज्ञाय भगवन्तं परं गुरुम् ।
पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ॥२६॥

यदा आत्मानं अविज्ञाय भगवन्तं परं गुरुं पुरुषः तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ॥२६॥

स्वदृक्	स्वयं प्रकाश (होने-	अविज्ञाय	नहीं जानकर
	पर भी)	पुरुषः तु	जीव तो
यदा	जब	प्रकृतेः गुणेषु	प्रकृतिके गुणोंमें
परं गुरुं	परम-गुरु	विषज्जेत	बँधा रहता
आत्मानं	आत्मस्वरूप		है ॥२६॥
भगवन्तं	भगवान्को		

गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेऽवशः ।
शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथाकर्माभिजायते ॥२७॥

गुण अभिमानी स तदा कर्माणि कुरुते अवशः शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथाकर्म अभिजायते ॥२७॥

गुण अभिमानी	गुणोंमें अभिमान करनेके कारण	वा लोहितं	अथवा राजसिक
		कर्माणि कुरुते	कर्मोंको करता है
स अवशः	वह पुरुष विवश होकर	यथाकर्म	कर्मके अनुसार
		अभिजायते	जन्म लेता है ॥२७॥
शुक्लं कृष्णं	सात्विक तामसिक		

शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठाँल्लोकानाप्नोति कर्हिचित् ।
दुःखोदर्कान् क्रियायासांस्तमः शोकोत्कटान् क्वचित् ॥२८॥

शुक्लात् प्रकाश भूयिष्ठान् लोकान् आप्नोति कर्हिचित् दुःख उदर्कान् क्रिया आयासान् तमः शोक उत्कटान् क्वचित् ॥२८॥

कर्हिचित्	कभी	दुःखोदर्कान्	दुःखोंसे भरे हुए
शुक्लात्	सात्विक कर्मोंसे	क्रिय आयासात्	कर्मके परिश्रमसे पूर्ण
प्रकाश		तमः	(और कभी) तामसिक कर्मसे
भूयिष्ठान्	प्रकाश बहुल (स्वर्गादि लोकों) को	शोक उत्कटान्	शोक बहुल
क्वचित्	कभी (राजसिक कर्मोंसे)	आप्नोति	(लोकोंको) प्राप्त करता है ॥२८॥

क्वचित्पुमान् क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमन्धधीः ।
देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः ॥२९॥

क्वचित् पुमान् क्वचित् च स्त्री क्वचित् न उभयं अन्धधीः देवः मनुष्यः तिर्यक् वा यथाकर्म गुणं भवः ॥२९॥

क्वचित् पुमान्	कभी पुरुष
च क्वचित् स्त्री	और कभी स्त्री
क्वचित् न	
उभयम्	कभी दोनों नहीं (नपुंसक)
अन्धधीः	(इस प्रकार) अन्ध बुद्धि हुआ
यथाकर्म गुणं	कर्म और गुणोंके अनुसार
देवः मनुष्यः	देव-योनि, मनुष्य-योनि
वा तिर्यक्	अथवा तिर्यक (पशु-पक्षी) योनिमें
भवः	जन्म लेता है ॥२९॥

क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् ।
चरन् विन्दति यद्दिष्टं दण्डमोदनमेव वा ॥३०॥

क्षुत् परीतः यथा दीनः सारमेयः गृहं गृहं चरन् विन्दति यत् दिष्टं दण्डं ओदनं एव वा ॥३०॥

क्षुत् परीतः	भूखसे पीडित
दीनः सारमेयः	दीन कुत्ता
यथा गृहं गृहं	
चरन्	जैसे घर-घर घूमता
यत् दिष्टं	जो प्रारब्ध है
दण्डं एव	डंडा ही
वा ओदनं	अथवा भात
विन्दति	पाता है ॥३०॥

तथा कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन् ।
उपर्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियम् ॥३१॥

तथा कामाशयः जीवः उच्च अवचः पथा भ्रमन् उपरि अधः वा मध्ये वा याति दिष्टम् प्रिय अप्रियं ॥३१॥

तथा जीवः	उसी प्रकार जीव
कामाशयः	मनमें कामनाओंको लेकर
उच्च अवचः	
पथा	ऊँचे-नीचे मार्गसे
भ्रमन्	घूमता हुआ
उपरि अधः वा	ऊपर या नीचे
वा मध्ये	अथवा मध्यके लोकोंमें
दिष्टं	भाग्यानुसार
प्रिय अप्रियं	
याति	प्रिय या अप्रिय पाता है ॥३१॥

दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु ।
जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ॥३२॥

दुःखेषु एकतरेण अपि दैव भूत आत्म हेतुषु जीवस्य न व्यवच्छेदः स्यात् चेत् तत् प्रतिक्रिया ॥३२॥

दैव	आधिदैविक	व्यवच्छेदः न	छुटकारा नहीं है
भूत	आधिभौतिक	चेत् स्यात्	यदि (छुटकारा) होता लगता है
आत्म	आध्यात्मिक		
हेतुषु	कारणोंसे (होनेवाले)	तत्	वह (केवल) उस
दुःखेषु	दुःखोंमें		दुःखकी
एकतरेण अपि	किसी एकसे भी	प्रतिक्रिया	प्रतिक्रिया है ॥३२॥
जीवस्य	जीवका		

यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन् ।
तं स्कन्धेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः ॥३३॥

यथा हि पुरुषः भारं शिरसा गुरुं उद्वहन् तं स्कन्धेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः ॥३३॥

हि	क्योंकि	आधत्ते	रख लेता है
यथा पुरुषः	जैसे पुरुष	तथा	उसी प्रकार सभी
गुरुं भारं	भारी भारको	सर्वाः	सब
शिरसा उद्वहन्	सिरपर ढोता हुआ	प्रतिक्रियाः	(दुःख निवृत्ति) प्रतिक्रिया है ॥३३॥
स तं स्कन्धेन	वह उसे कन्धेपर		

नैकान्ततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलम् ।
द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ ॥३४॥

न एकान्ततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलं द्वयं हि अविद्या उपसृतं स्वप्ने स्वप्न इव अनघ ॥३४॥

अनघ	निष्पाप राजन्	हि	क्योंकि
स्वप्ने स्वप्न इव	जैसे स्वप्नमें स्वप्नान्तरके समान	द्वयं	दोनों (पहिले कर्म और उसका प्रतिकार)
केवलं कर्म	केवल कर्मसे		
कर्मणां	कर्मोंका	अविद्या	अज्ञानसे
एकान्ततः	आत्यन्तिक (सर्वथा)	उपसृतं	आये हैं ॥३४॥
प्रतीकारः न	प्रतिकार नहीं हो सकता		

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
मनसा लिङ्गरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा ॥३५॥

अर्थे हि अविद्यमाने अपि संसृतिः न निवर्तते मनसा लिङ्गरूपेण स्वप्ने विचरतः यथा ॥३५॥

स्वप्ने मनसा लिङ्गरूपेण	स्वप्नमें मनोमय लिङ्ग शरीरसे	अर्थे अविद्यमाने अपि	दृश्य पदार्थ नहीं
विचरतः यथा	विचरनेवालेके समान	संसृतिः	आवागमन होनेपर भी
		न निवर्तते	नहीं छूटता है ॥३५॥

अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरम्परा ।
संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या परमया गुरौ ॥३६॥

अथ आत्मनः अर्थ भूतस्य यतः अनर्थ परम्परा संसृतिः तत् व्यवच्छेदः भक्त्या परमया गुरौ ॥३६॥

अर्थ भूतस्य आत्मनः	परमार्थ स्वरूप आत्माको	तत् व्यवच्छेदः गुरौ परमया	उसका कटना
यतः	जिस (अविद्या) से	भक्त्या	गुरुरूप श्रीहरिमें
अनर्थ परम्परा संसृतिः	अनर्थ परम्परा रूप जन्म-मरण (प्राप्त हुआ है)	परमया	ही होता है ॥३६॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः ।
सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥३७॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥३७॥

भगवति वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें	**वैराग्यं**	वैराग्य
समाहितः	एकाग्रतापूर्वक	**च ज्ञानं**	और ज्ञानको
सध्रीचीनेन	अच्छी तरहसे	**जनयिष्यति**	उत्पन्न करता
भक्तियोगः	(किया गया) भक्ति-भाव		है ॥३७॥

सोऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः ।
शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः ॥३८॥

सः अचिरात् एव राजर्षे स्यात् अच्युत कथा आश्रयः शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यात् अधीयतः ॥३८॥

राजर्षे सः	राजर्षि ! वह (भक्ति-भाव)	**शृण्वतः**	सुनते हुए
		अधीयतः	(अथवा) पढ़ने वालेको
अच्युत कथा आश्रयः	भगवान्‌की कथाओं के आश्रित	**अचिरात् एव स्यात्**	शीघ्र ही प्राप्त होता है ॥३८॥
नित्यदा	नित्य-नित्य		
श्रद्दधानस्य	श्रद्धापूर्वक		

यत्र भागवता राजन् साधवो विशदाशयाः ।
भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः ॥३९॥

यत्र भागवता राजन् साधवः विशद आशयाः भगवद् गुण अनु कथन श्रवण व्यग्र चेतसः ॥३९॥

राजन्	हे राजन् !	**विशद आशयाः**	विशुद्ध अन्तःकरण वाले
यत्र	जहाँ		

भागवता	भगवान्‌के भक्त	श्रवण	सुननेके लिए
भगवद् गुण	भगवद्गुणोंका	व्यग्र चेतसः	तत्पर चित्तवाले
अनु कथन	बार-बार वर्णन (तथा)	साधवः	साधुजन (रहते हैं) ॥३९॥

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र-
पीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति ।
ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णै-
स्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥४०॥

तस्मिन् महन्मुखरिता मधुभित् चरित्र पीयूष शेष सरितः परितः स्रवन्ति ता ये पिबन्ति अवितृषः नृप गाढकर्णैः तान् न स्पृशन्ति अशन तृड् भय शोक मोहाः ॥४०॥

तस्मिन्	उस (साधु-समाज)में	गाढकर्णैः	एकाग्र कानोंसे
परितः	चारों ओर	ता पिबन्ति	उसे पीते हैं
महन्मुखारिता	महापुरुषोंके मुखसे निकले हुए	तान्	उनको
मधुभित् चरित्र	श्रीमधुसूदनके चरित्रकी	अशन तृड् भय शोक मोहाः	भूख, प्यास, भय, शोक और मोह
पीयूष शेष	शुद्ध अमृतकी		
सरितः	नदियाँ बहती हैं।	स्पृशन्ति न	स्पर्श नहीं करते ॥४०॥
नृप	राजन् !		
ये अवितृषः	जो अत्यन्त प्यासे (चित्त) से		

एतैरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः ।
न करोति हरेर्नूनं कथामृतनिधौ रतिम् ॥४१॥

एतैः उपद्रुतः नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः न करोति हरेः नूनं कथा अमृत निधौ रतिं ॥४१॥

एतैः	इन (भूख-प्यास, भय शोकादि) (दोषोंसे)	नूनं हरेः कथा अमृत निधौ	निश्चय ही श्रीहरिके कथा रूप अमृत-समुद्रमें
स्वभावजैः	स्वभावसे प्राप्त		
नित्यं उपद्रुतः	सदा घिरा हुआ	रतिं न करोति	प्रीति नहीं करता ॥४१॥
जीवलोकः	जीव समुदाय		

प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान् गिरिशो मनुः ।
दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः ॥४२॥

प्रजापतिपतिः साक्षात् भगवान् गिरिशः मनुः दक्ष आदयः प्रजाध्यक्षाः नैष्ठिकाः सनका आदयः ॥४२॥

साक्षात्	साक्षात्	मनुः	स्वायम्भुवमनु
प्रजापतिपतिः	प्रजा पतियोंके पति ब्रह्माजी	दक्ष आदयः प्रजाध्यक्षाः	दक्ष आदि प्रजापति
भगवान्		नैष्ठिकाः	नैष्ठिक ब्रह्मचारी
गिरिशः	भगवान् शङ्कर	सनका आदयः	सनकादि ॥४२॥

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदन्ता ब्रह्मवादिनः ॥४३॥

मरीचिः अत्रिः अङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः भृगुः वसिष्ठः इति एते मत् अन्ता ब्रह्म वादिनः ॥४३॥

मरीचिः	मरीचि	वसिष्ठ	वशिष्ठ और
अत्रिः	अत्रि	इति एते	इस प्रकारमें
अङ्गिरसौ	अङ्गिरा	मत् अन्ता	अन्तिम मैं
पुलस्त्यः पुलहः	पुलस्त्य पुलह	ब्रह्म वादिनः	ब्रह्मवादी मुनि है ॥४३॥
क्रतुः भृगुः	क्रतु भृगु और		

अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्यासमाधिभिः ।
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम् ॥४४॥

अद्य अपि वाचस्पतयः तपः विद्या समाधिभिः पश्यन्तः अपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरं ॥४४॥

वाचस्पतयः		पश्यन्तः अपि	ढूँढ़ते हुए भी
अपि	समस्त वाङ्मयके-	पश्यन्तं	सर्वसाक्षी
	स्वामी होकर भी	परमेश्वरं	परमेश्वरको
तपः विद्या		अद्य	आज तक
समाधिभिः	तप विद्या और	न पश्यन्ति	नहीं देख
	समाधिके द्वारा		सके ॥४४॥

शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्त उरुविस्तरे ।
मन्त्रलिङ्गैर्व्यवच्छिन्नं भजन्तो न विदुः परम् ॥४५॥

शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्तः उरुविस्तरे मन्त्रलिङ्गैः व्यवच्छिन्नं भजन्तः न विदुः परं ॥४५॥

उरुविस्तरे	बहुत विस्तारवाले	पश्यन्तः अपि	ढूंढते हुए भी
दुष्पारे	अपार	भजन्तः	(परमात्माका)
शब्दब्रह्मणि	वेदोंका		पूजन करते हुए भी
चरन्तः	विचार करते हुए	परं न विदुः	उस परमात्मा
मन्त्रलिङ्गैः	मन्त्रों सूचित चिह्नोंसे		(के स्वरूप)को नहीं
व्यवच्छिन्नं	ढके (छिपे)		जानते ॥४५॥

यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः ।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥४६॥

यदा यं अनुगृह्णाति भगवान् आत्म भावितः स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठितां ॥४६॥

भगवान्	भगवान् श्रीहरि		(शास्त्राचार) में
यदा यं	जब जिसपर	परिनिष्ठितां	अत्यन्त निष्ठावान्
अनुगृह्णाति	अनुग्रह करते हैं	मतिं	(बद्धमूल) बुद्धि
स	वह		(आस्था)को
लोके च वेदे	लोकाचार और वेद	जहाति	छोड़ पाता है ॥४६॥

तस्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु ।
मार्थदृष्टिं कृथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥४७॥

तस्मात् कर्मसु बर्हिष्मन् अज्ञानात् अर्थ काशिषु मा अर्थ दृष्टिं कृथाः श्रोत्र स्पर्शिषु अस्पृष्ट वस्तुषु ॥४७॥

बर्हिष्मन्	प्राचीनबर्हि !	अज्ञानात्	अज्ञानसे
तस्मात्	इसलिए	अर्थ काशिषु	पदार्थ (सत्य) को प्रकाशित करने लगते
श्रोत्र स्पर्शिषु	सुननमें ही प्रिय लगनेवाले	कर्मसु	कर्मोंमें
अस्पृष्ट वस्तुषु	स्पर्शमें कभी न आनेवाली वस्तुओंमें	अर्थ दृष्टिं मा कृथाः	परमार्थ बुद्धि मत करो ॥४७॥

स्वं लोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः ।
आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥४८॥

स्वं लोकं न विदुः ते वै यत्र देवः जनार्दनः आहुः धूम्रधियः वेदं सकर्मकं अतद् विदः ॥४८॥

धूम्रधियः	मलिन मति (कर्म-वादी)	स्वं लोकं	अपने (स्वरूप-भूत) लोक (आत्म तत्वको)
वेदं	वेदको		
सकर्मकं आहुः	कर्म परक बताते हैं	न विदुः	नहीं जानते
अतद् विदः	(वे) वेदके मर्मको नहीं जानते	यत्र वै	जहाँ साक्षात्
		जनार्दनः देवः	श्रीजनार्दन भगवान् विराजमान हैं ॥४८
ते	(क्योंकि) वे		

आस्तीर्य दर्भैः प्राग्रैः कात्स्न्र्येन क्षितिमण्डलम् ।
स्तब्धो बृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि यत्परम् ।
तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया ॥४९॥

आस्तीर्य दर्भैः प्राक् अग्रैः कात्स्न्र्येन क्षितिमण्डलं स्तब्धः बृहत् वधात् मानी कर्म न अवैषि यत् परं तत् कर्म हरितोषं यत् सा विद्या तत् मतिः यया ॥४९॥

प्राक् अग्रैः	पूर्वकी ओर अग्रभाग वाले*
दर्भैः	कुशोंसे
कात्स्न्र्येन	सम्पूर्ण
क्षितिमण्डलं	भूमण्डलको
आस्तीर्य	आच्छादित करके
बृहत् वधात्	बहुतसे पशुओंका वध करनेसे
मानी	कर्माभिमानी
स्तब्धः	विवेकहीन हो गये हो
यत् कर्म परं	किन्तु जो कर्म परम्-पद देनेवाला है
न अवैषि	उसे नहीं जानते
कर्म तत्	कर्म तो वही हैं
यत् हरितोषं	जिससे श्रीहरि प्रसन्न हों
सा विद्या	और विद्या वही है
यया तत् मतिः	जिससे भगवान्‌में बुद्धि लगे ॥४९॥

हरिर्देहभृतामात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः ।
तत्पादमूलं शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥५०॥

हरिः देहभृतां आत्मा स्वयं प्रकृतिः ईश्वरः तत् पादमूलं शरणं यतः क्षेमः नृणां इह ॥५०॥

हरिः	श्रीहरि
देहभृतां	देहधारियोंके
आत्मा	आत्मा हैं,
ईश्वरः	नियामक हैं,
स्वयं प्रकृतिः	स्वतन्त्र कारण हैं।
तत् पादमूलं	उनके चरण तल ही
शरणं	(एकमात्र) आश्रय हैं
यतः	जिनसे
इह	संसारमें
नृणां	मनुष्योंका
क्षेमः	कल्याण हो सकता है ॥५०॥

स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि ।
इति वेद स वै विद्वान् यो विद्वान् स गुरुर्हरिः ॥५१॥

स वै प्रियतमः च आत्मा यतः न भयं अणु अपि इति वेद स वै विद्वान् यः विद्वान् स गुरुः हरिः ॥५१॥

---

* यज्ञमें पूर्वकी ओर नोक करके कुश बिछाये जाते हैं।

यतः	जिससे	यः वेद	जो जानता है
अणु अपि	अणु मात्र भी	स विद्वान्	वह ज्ञानी है
भयं न	भय नहीं होता	यः विद्वान्	जो ज्ञानी है
स वै	वही निश्चय	स गुरुः	वही गुरु (एवं)
प्रियतमः	प्रियतम	हरिः	(साक्षात्) हरि
च आत्मा	और आत्मा है		है ॥५१॥
इति	ऐसा		

*प्रश्न एवं हि संछिन्नो भवतः पुरुषर्षभ ।
अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितम् ॥५२॥

प्रश्न एवं हि संछिन्नः भवतः पुरुषर्षभ अत्र मे वदतः गुह्य निशामय सुनिश्चितं ॥५२॥

पुरुषर्षभ	पुरुष-श्रेष्ठ !	मे	मेरे
एवं हि	इस प्रकार क्योंकि	सुनिश्चितं	पूर्ण निश्चित किये
भवतः	तुम्हारे		हुए
प्रश्न	प्रश्नको	गुह्यं	रहस्यको
संछिन्नः	काट दिया (उत्तर	वदतः	कहनेपर
	दे दिया) गया	निशामय	सुनो ॥५२॥
अत्र	इस विषयमें		

क्षुद्रञ्चरं सुमनसां शरणे मिथित्वा
रक्तं षडङ्घ्रिगणसामसु लुब्धकर्णम् ।
अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यान्तं
पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धकबाणभिन्नम् ॥५३॥

क्षुद्रं चरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं षडङ्घ्रिगण सामसु लुब्ध कर्ण अग्रे वृकान् असुतृपः अविगणय्य यान्तं पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धक बाण भिन्नं ॥५३॥

---

* यहाँ ग्रन्थोंमें 'नारद उवाच' है जो अनावश्यक है।

सुमनसां शरणे	पुष्प वाटिकामें
मिथित्वा	अपने जोड़े (हरिणी) से मिलकर
क्षुद्रं चरं	छोटे तृण चरते (मृग) के
षड्ङ्घ्रिगण	
सामसु	भौंरोंके मधुर गानमें
लुब्ध कर्णं	कान लोभपूर्वक
रक्तं	अनुरागसे लगे हैं
अग्रे असुतृपः	उसके सामने ही (दूसरोंके) प्राणोंसे तृप्त होनेवाले
वृकान्	भेड़िये खड़े हैं
पृष्ठे	और पीछेसे
लुब्धक	व्याधने
बाण भिन्नं	वेधनेके लिए बाण छोड़ दिया है (किन्तु)
अविगणय्य	(इनकी) अवगणना करते
मृगं	(उस) मृगको
मृगय	ढूंढ़ो ॥५३॥

[अस्यार्थः]

सुमनः सधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्प मधुगन्धवत्क्षुद्रतमं काम्यकर्मविपाकजं कामसुखलवं जैह्व्यौपस्थ्यादि विचिन्वन्तं मिथुनीभूय तदभिनिवेशितमनसं षडङ्घ्रिगणसामगीतवदति-मनोहरवनितादिजनालापेष्वतितरामतिप्रलोभितकर्णमग्रे वृकयूथ-वदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रान्तान् काल-लवविशेषानविगणय्य गृहेषु विहरन्तं पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतान्तोऽन्तः शरेण यमिह परा विध्यति तमिममात्मानमहो राजन् भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसीति ॥५४॥

[अस्यार्थ]

सुमनसः सधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्प मधु गन्धवत् क्षुद्रतमं काम्य कर्म विपाकजं काम सुखलवं जैह्व्य उपस्थ्यादि विचिन्वतं मिथुनी भूय मत् अभिनिवेशित मनसं षडङ्घ्रिगण सामगीतवत् अति मनोहर वनितादिजन आलापेषु अतितरां अति प्रलोभित कर्ण अग्रे वृकयूथवत् आत्मन आयुः

हरतः अहः रात्रान् तान् काललव विशेषान् अविगणय्य गृहेषु विहरन्तं पृष्ठत एव परोक्षं अनुप्रवृत्तः लुब्धकः कृतान्तः अन्तः शरेण यं इह पर अविध्यति तं इमं आत्मानं अहो राजन् भिन्न हृदयं द्रष्टुं अर्हसि इति ॥५४॥

सुमनसः	पुष्पोंके
सधर्माणां	समान धर्मवाली (सुकुमारी)
स्त्रीणां	स्त्रियोंके
शरण आश्रमे	आश्रयवाले (गृहस्थ) आश्रयमें
पुष्प मधु	
गन्धवत्	पुष्प, मधु, सुगन्धके समान
क्षुद्रतमं	अत्यन्त तुच्छ
काम्य कर्म	
विपाकजं	सकाम कर्मोंके फलस्वरूप (प्राप्त)
काम सुखलवं	कामोपभोगके सुखका लेश
जैह्व्य	
उपस्थ्यादि	जिह्वाके स्वाद उपस्थ आदिके भोगको
मिथुनी भूय	स्त्रीके साथ जोड़ बनाकर
विचिन्वतं	ढूंढ़ते हुए (पानेका प्रयत्न करते)
अभिनिवेशित	(इसीमें) तन्मय किये
मनसं	मन वाले होकर
षडंघ्रिगण	
सामगीतवत्	भ्रमरोंके सामान्य गायन (गुञ्जारके समान)
वनितादिजन	स्त्री आदिकी
आलापेषु	बात चीतमें
अतितरां	बहुत अधिक
अति प्रलोभित	प्रगाढ़तासे लुब्ध हुए
कर्ण	कान (लगाये)
अग्रे	सामने ही
वृकयूथवत्	भेड़ियोंके दलके समान
आयुः हरतः	आयुका हरण करते
तान् काललव	
विशेषान्	उन कालके लव विशेष (क्षणांशोंसे बने)
अहः रात्रान्	दिनों और रात्रियोंको
परोक्षं	
अनुप्रवृत्तः	जो छिपे रूपमें लगे हुए हैं (तथा)
लुब्धकः	शिकारी
कृतान्तः	काल
अन्तः शरेण	भीतरी बाणसे
इह	इस लोकमें
यं	जिसे

पर अविध्यति	दूरसे बींध (मार) डालता है	भिन्न हृदयं	हृदय भिन्न हुएसे हो
		इति	इस प्रकार
तं इमं	उस इस	द्रष्टुं अर्हसि	(तुमको) देखना चाहिए ॥५४॥
आत्मानं	अपने आपको		
अहो राजन्	हे राजन्		

स त्वं विचक्ष्य मृगचेष्टितमात्मनोऽन्त-
श्चित्तं नियच्छ हृदि कर्णधुनीं च चित्ते ।
जह्यङ्गनाश्रममसत्तमयूथगाथं
प्रीणीहि हंसशरणं विरम क्रमेण ॥५५॥

स त्वं विचक्ष्य मृग चेष्टितं आत्मनः अन्तः चित्तं नियच्छ हृदि कर्ण धुनीं च चित्ते जहि अङ्गनाश्रमं असत्तं यूथ गाथं प्रीणीहि हंस शरणं विरम क्रमेण ॥५५॥

स त्वं	इस प्रकार तुम	यूथ गाथं	लोगोंके समूहमें जिसकी चर्चा चलती है
आत्मनः	अपनी		
मृग चेष्टितं	मृगकी-सी चेष्टाको		
विचक्ष्य	देखकर	अङ्गनाश्रमं	गृहस्थाश्रम
चित्तं	चित्तको	जहि	त्याग दो
अन्तः हृदि	हृदयके भीतर निरुद्ध करो	हंस शरणं	परमहंसोंके आश्रय (श्रीहरि) को
च कर्णधुनीं	और कान रूपी नदीको	प्रीणीहि	प्रसन्न करो
		क्रमेण	और (आवागमनके) क्रमसे
चित्ते	चित्तमें	विरम	विराम करो (छूटो) ॥५५॥
नियच्छ	नियन्त्रित करो		
असत्तं	अत्यन्त असज्जन		

प्राचीनबर्हिरुवाच-*

श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन् भगवान् यदभाषत ।
नैतज्जानन्त्युपाध्यायाः किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि ॥५६॥

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'राजोवाच' है ।

श्रुतं अन्वीक्षितं ब्रह्मन् भगवान् यत् अभाषत न एतत् जानन्ति उपाध्यायाः किं न ब्रूयुः विदुः यदि ॥५६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	उपाध्यायाः	धर्मोपदेशक आचार्य
भगवान् यत्		एतत् न	
अभाषत	आपने जो उपदेश दिया	जानन्ति	इसको नहीं जानते
श्रुतं	(उसे) मैंने सुना	यदि विदुः	यदि वे इस विषयको जानते
अन्वीक्षितं	(उसपर) विशेष रूपसे विचार भी किया	किं न ब्रूयुः	तो इसका उपदेश क्यों नहीं करते॥५६॥

संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो महान् ।
ऋषयोऽपि हि मुह्यन्ति यत्र नेन्द्रियवृत्तयः ॥५७॥

संशयः अत्र तु मे विप्र संछिन्नः तत् कृतः महान् ऋषयः अपि हि मुह्यन्ति यत्र न इन्द्रिय वृत्तयः ॥५७॥

विप्र	विप्रवर !	यत्र	जिस विषयमें
तत् कृतः	उन उपाध्यायों द्वारा उत्पन्न किया	इन्द्रिय वृत्तयः	इन्द्रियोंकी वृत्ति नहीं पहुँचती
मे	मेरा	ऋषयः अपि	(उस विषयमें)ऋषि-लोग भी
महान् संशयः तु	महान् संशय तो	मुह्यन्ति	मोहमें पड़ जाते हैं ॥५७॥
अत्र	इस विषयका		
संछिन्नः	कट गया		
हि	क्योंकि		

कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय तम् ।
अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥५८॥

कर्माणि आरभते येन पुमान् इह विहाय तं अमुत्र अन्येन देहेन जुष्टानि स यत् अश्नुते ॥५८॥

पुमान्	पुरुष	अमुत्र	परलोकमें
इह	इस लोकमें	अन्येन देहेन	दूसरे शरीरसे
येन	जिस (शरीर)से	स जुष्टानि	वह युक्त हो जाता है
कर्माणि	कर्मोंको	यत्	फिर जो
आरभते	आरम्भ करता है	अश्नुते	(पूर्व कर्मके फल)
तं विहाय	उस (शरीर) को		भोगता है ॥५८॥
	छोड़कर		

इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह ।
कर्म यत्क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥५९॥

इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह कर्म यत् क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥५९॥

इति	इस प्रकार	परोक्षं	वह परोक्षको (जिस
वेदविदां वादः	वेदवादियोंका कथन		शरीरसे किया गया
तत्र तत्र ह	जगह-जगह निश्चित		उसे)
	रूपमें	प्रकाशते न	प्रकाशित (प्रभावित)
श्रूयते	सुना जाता है किन्तु		नहीं करता ? ॥५९॥
यत् कर्म क्रियते	जो कर्म किया		
	जाता है		

नारद उवाच-

येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान् ।
भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयम् ॥६०॥

येन एव आरभते कर्म तेन एव अमुत्र तत् पुमान् भुङ्क्ते हि अव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयं ॥६०॥

येन	जिस	मनसा एव	मनसे ही
लिङ्गेन	लिंग (सूक्ष्म)	पुमान्	पुरुष
	शरीरसे		

कर्म आरभते	कर्म आरम्भ करता है	हि	क्योंकि
तेन एव	उसी (मन एवं सूक्ष्म-देह) से	अव्यवधानेन	बिना किसी रुकावटके
तत् पुमान	वही पुरुष	स्वयं	स्वयं
अमुत्र	परलोकमें	भुङ्क्ते	भोगता है ॥६०॥

शयानमिममुत्सृज्य श्वसन्तं पुरुषो यथा ।
कर्मात्मन्याहितं भुङ्क्ते तादृशेनेतरेण वा ॥६१॥

शयानं इमं उत्सृज्य श्वसन्तं पुरुषः यथा कर्म आत्मनि आहितं भुङ्क्ते तादृशेन इतरेण वा ॥६१॥

यथा पुरुषः	जैसे पुरुष यहाँ	इतरेण वा	अथवा अन्य (पशु-पक्षी) देहसे
शयानं श्वसन्तं	स्वप्नावस्थामें श्वास लेता	आत्मनि आहितं	मनमें संस्कार रूपसे स्थित
इमं उत्सृज्य	इस (जीवित) शरीरको छोड़कर	कर्म	कर्मोंके फलका
तादृशेन	इसी देहके समान	भुङ्क्ते	भोग करता है ॥६१॥

ममैते मनसा यद्यदसावहमिति ब्रुवन् ।
गृह्णीयात्तत्पुमान् राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥६२॥

मम एते मनसा यद् यद् असौ अहम् इति ब्रुवन् गृह्णीयात् तत् पुमान् राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥६२॥

मनसा	मनके द्वारा	तत् राद्धं कर्म	वह (अपने) स्वीकृत कर्म है
एते मम	ये मेरे हैं	येन	जिससे
असौ अहम्	यह (देहादि) मैं हूँ	पुनर्भवः	पुनर्जन्म होता है ॥६२॥
इति ब्रुवन्	यह कहता हुआ		
यद् यद्	जो जो (संस्कार)		
गृह्णीयात्	ग्रहण करता है		

यथानुमीयते चित्तमुभयैरिन्द्रियेहितैः ।
एवं प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥६३॥

यथा अनुमीयते चित्तं उभयैः इन्द्रिय ईहितैः एवं प्राक् देहजं कर्म लक्ष्यते चित्त वृत्तिभिः ॥६३॥

यथा	जैसे	अनुमीयते	अनुमान होता है
उभयैः इन्द्रिय	दोनों प्रकारकी इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों) की	एवं	उसी तरह
		चित्त वृत्तिभिः	चित्तकी वृत्तियोंसे
		प्राक् देहजं	पूर्व जन्मोंके
इहितैः	चेष्टाओंसे	कर्म	कर्म
चित्तं	चित्तका	लक्ष्यते	लक्षित होते हैं ॥६३

नानुभूतं क्व चानेन देहेनादृष्टमश्रुतम् ।
कदाचिदुपलभ्येत यद्रूपं यादृगात्मनि ॥६४॥

न अनुभूतं क्व च अनेन देहेन अदृष्टं अश्रुतं कदाचित् उपलभ्येत यत् रूपं यादृक् आत्मनि ॥६४॥

कदाचित्	कभी-कभी	आत्मनि	चित्तमें (संस्कार रूपसे)
अनेन देहेन			
क्व च	इस देहसे कहीं भी	यत् रूपं यादृक्	जिस रूपकी जैसी होती है
न अनुभूतं	अनुभवमें न आया,		
अदृष्टं अश्रुतं	अनदेखा, अनसुना	उपलभ्येत	(स्वप्नमें) प्राप्त होती है ॥६४॥

तेनास्य तादृशं राजँल्लिङ्गिनो देहसम्भवम् ।
श्रद्धत्स्वाननुभूतोऽर्थो न मनः स्प्रष्टुमर्हति ॥६५॥

तेन अस्य तादृशं राजन् लिङ्गिने देह संभवं श्रद्धत्स्व अननुभूतः अर्थः न मनः स्प्रष्टुम् अर्हति ॥६५॥

राजन्	राजन् !
श्रद्धत्स्व	श्रद्धा करो कि
अस्य लिङ्गिने	इस लिङ्गाभिमानी- को
तेन	इसीसे
तादृशं देह संभवं	उस प्रकारके देहमें जन्म होता है
अननुभूतः अर्थः	अनुभवमें न आया पदार्थ
मनः स्प्रष्टुं	मनसे भी छूना
न अर्हति	नहीं हो सकता ॥६५॥

मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ।
भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यतः ॥६६॥

मन एव मनुष्याणां पूर्व रूपाणि शंसति भविष्यतः च भद्रं ते तथा एव न भविष्यतः ॥६६॥

ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो
मन एव	
मनुष्याणां	मन ही मनुष्योंके
पूर्व रूपाणि	पूर्व रूपों (जन्मों)को
च	तथा
भविष्यतः	आगेके (जन्मों)को
तथा एव	वैसे ही
न भविष्यतः	नहीं होने वाले (मुक्त हो जाने वाले) को
शंसति	बतलाता है ॥६६॥

अदृष्टमश्रुतं चात्र क्वचिन्मनसि दृश्यते ।
यथा तथानुमन्तव्यं देशकालक्रियाश्रयम् ॥६७॥

अदृष्टं अश्रुतं च अत्र क्वचित् मनसि दृश्यते यथा तथा अनुमन्तव्यं देशकाल क्रिया आश्रयं ॥६७॥

क्वचित्	कभी-कभी
देशकाल क्रिया आश्रयं	देश-काल क्रियासे सम्बन्धित
अदृष्टं अश्रुतं	अनदेखा, अनसुना
अत्र मनसि	यहाँ मन (स्वप्न)में
दृश्यते	दिखलाई पड़ता है
यथा तथा	ये जैसे हो उसके अनुसार
अनुमन्तव्यं	अनुमान करना चाहिए ॥६७॥

सर्वे क्रमानुरोधेन मनसीन्द्रियगोचराः ।
आयान्ति वर्गशो यान्ति सर्वे समनसो जनाः ॥६८॥

सर्वे क्रम अनुरोधेन मनसि इन्द्रिय गोचराः आयान्ति वर्गशः यान्ति सर्वे समनसः जनाः ॥६८॥

मनसि	मनमें	क्रमानुरोधेन	क्रमके अनुसार
इन्द्रिय गोचराः	इन्द्रियोंसे अनुभव योग्य	आयान्ति यान्ति	आते और जाते हैं
		सर्वेजनाः	सभी लोग
सर्वे वर्गसः	सब पदार्थ वर्गके अनुसार,	समनसः	मन वाले हैं ॥६८॥

सत्त्वैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि ।
तमश्चन्द्रमसीवेदमुपरज्यावभासते ॥६९॥

सत्त्व एकनिष्ठे मनसि भगवत् पार्श्व वर्तिनि तमः चन्द्रमसि इव इदं उपरज्य अवभासते ॥६९॥

भगवत्	भगवान्के	इदं	यह सम्पूर्ण विश्व
पार्श्व वर्तिनि	समीप रहनेवाले	चन्द्रमसि	चन्द्रमामें
सत्त्व एकनिष्ठे	एकनिष्ठ (विशुद्ध) सत्त्वमें स्थित	तमः इव	राहुकी भांति
		अवभासते	(भगवद्रूप) भासित होने लगता है ॥६९॥
मनसि	मनमें		
उपरज्य	उपरज्य (तदाकार) होकर		

नाहं ममेति भावोऽयं पुरुषे व्यवधीयते ।
यावद् बुद्धिमनोऽक्षार्थगुणव्यूहो ह्यनादिमान् ॥७०॥

न अहं मम इति भावः अयं पुरुषे व्यवधीयते यावत् बुद्धि मनः अक्ष अर्थ गुण व्यूहः हि अनादिमान् ॥७०॥

यावत्	जब तक	पुरुषे	(तब तक) जीवके अन्दर
बुद्धि मनः अक्ष	बुद्धि मन इन्द्रियां	अहं मम	मैं और मेरा
अर्थ गुण व्यूहः	पदार्थ उनके (शब्दादि) गुणोंका समूह	इति भावः	ऐसा भाव
		न व्यवधीयते	नहीं हराया जा सकता ॥७०॥
अनादिमान्	अनादि (लिङ्ग देह बना हुआ) है		

सुप्तिमूर्च्छोपतापेषु प्राणायनविघाततः ।
नेहतेऽहमिति ज्ञानं मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥७१॥

सुप्ति मूर्च्छा उपतापेषु प्राण अयन विघाततः न ईहते अहं इति ज्ञानं मृत्यु प्रज्वारयोः अपि ॥७१॥

सुप्ति मूर्च्छा उपतापेषु	सुषुप्ति मूर्च्छा अत्यन्त दुःखमें	प्राण अयन विघाततः	इन्द्रियोंकी व्याकुलतामें
मृत्युः प्रज्वारयोः अपि	तथा मृत्यु और तीव्र ज्वरके समय	अहं इति ज्ञानं ईहते न	मैं हूँ ऐसा ज्ञान स्फुरित नहीं होता ॥७१॥

गर्भे बाल्येऽप्यपौष्कल्यादेकादशविधं तदा ।
लिङ्गं न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसो यथा ॥७२॥

गर्भे बाल्ये अपि अपौष्कल्यात् एकादश विधं तदा लिङ्गं न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसः यथा ॥७२॥

यथा कुह्वां चन्द्रमसः	जैसे अमावस्याकी रात्रिमें चन्द्रमा (रहते हुए भी नहीं दीखता)	एकादश विधं लिङ्गम्	ग्यारह (दस इन्द्रिय एक मन) प्रकारसे (प्रतीत) लिंग शरीर

यूनः	(उसी तरह) युवा-अवस्थामें	अपौष्कल्यात्	(इन्द्रियोंके) पूर्ण विकास न होनेसे
गर्भे बाल्ये अपि	गर्भावस्था और बाल्यावस्थामें भी	तदा न दृश्यते	उस समय नहीं दिखायी देता ॥७२॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥७३॥

अर्थे हि अविद्यमाने अपि संसृतिः न निवर्तते ध्यायतः विषयान् अस्य स्वप्ने अनर्थ आगमः यथा ॥७३॥

विषयान् ध्यायतः	विषयोंका चिन्तन करनेसे	अस्य संसृतिः	इस जीवका जन-मरण रूप संसार
अर्थे हि अविद्यमाने अपि	पदार्थोंके तो असत् होनेपर भी	न निवर्तते	निवृत्त नहीं होता
		यथा स्वप्ने अनर्थ आगमः	जैसे स्वप्नमें अनर्थ आ जाते हैं ॥७३॥

एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम् ।
एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥७४॥

एवं पञ्चविधं लिंग त्रिवृत् षोडशविस्तृतं एष चेतनया युक्तः जीव इति अभिधीयते ॥७४॥

एवं	इस प्रकार	लिंग	लिङ्ग (शरीर)
पञ्चविधं	पांच तन्मात्राओंसे	चेतनया युक्तः	चेतनासे युक्त होकर
षोडशविस्तृतं	सोलह तत्त्वोंके रूपमें विकसित	जीवः	जीव
		इति	ऐसा
त्रिवृत्	त्रिगणमय	अभिधीयते	कहा जाता है ॥७४॥
एष	यह		

अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति ।
हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ॥७५॥

अनेन पुरुषः देहान् उप आदत्ते विमुञ्चति हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं च अनेन विन्दति ॥७५॥

अनेन पुरुषः	इस (लिङ्ग शरीर) के द्वारा पुरुष	विमुञ्चति	(और) त्यागता है
		च अनेन	और इसीके द्वारा
देहान् उप आदत्ते	शरीरोंको ग्रहण करता है	हर्षं शोकं भयं	हष, शोक, भय,
		दुःखं सुखं	दुःख-सुखको
		विन्दति	प्राप्त करता है ॥७५

यथा तृणजलूकेयं नापयात्यपयाति च ।
न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि प्राग्देहाभिमतिं जनः ॥७६॥

यथा तृणजलूका इयं न अपयाति अपयाति च न त्यजेत् म्रियमाणः अपि प्राक् देह अभिमतिं जनः ॥७६॥

यथा इयं तृणजलूकेयं	जैसे यह तिनकोंपर रेंगने वाला कोड़ा	म्रियमाणः अपि जनः	मरता हुआ भी यह जोव
न अपयाति	(दूसरे तृणको पकड़े बिना पहिले तृणको) छोड़ती नहीं	प्राक् देह अभिमतिं	पहिले देहके अभिमानको
च अपयाति	और (दूसरेको पकड़) पहिलेको छोड़ देती है	न त्यजेत्	नहीं छोड़ता ॥७६॥

यावदन्यं न विन्देत व्यवधानेन कर्मणाम् ।
मन एव मनुष्येन्द्र भूतानां भवभावनम् ॥७७॥

यावत् अन्यं न विन्देत व्यवधानेन कर्मणां मन एव मनुष्येन्द्र भूतानां भव भावनं ॥७७॥

मनुष्येन्द्र	राजन् !	व्यवधानेन	समाप्ति होनेपर
कर्मणां	कर्मोंके	यावत् अन्यं	जब तक दूसरे (देह) को

न विन्देत	प्राप्त न करे (तब तक पहिला देहाभिमान रहता है)	भूतानां	प्राणियोंके
		भव भावनं	संसार (जन्म-मरण) का कारण है ॥७७॥
मन एव	मन ही		

यदाक्षैश्चरितान् ध्यायन् कर्माण्याचिनुतेऽसकृत् ।
सति कर्मण्यविद्यायां बन्धः कर्मण्यनात्मनः ॥७८॥

यदा अक्षैः चरितान् ध्यायन् कर्माणि आचिनुते असकृत् सति कर्मणि अविद्यायां बन्धः कर्मणि अनात्मनः ॥७८॥

चरितान्	जब तक	सति कर्मणि	(तब) उन कर्मोंके रहते
यदा अक्षैः	इन्द्रियोंके चरित (भोगों) का	अविद्यायां	अविद्यामें
ध्यायन्	चिन्तन करता हुआ	कर्मणि	कर्मोंसे
असकृत्	बराबर	अनात्मनः	
कर्माणि		बन्धः	अनात्मासे बन्धन (तादात्म्य) हो जाता है ॥७८॥
आचिनुते	कर्मोंको सब ओर चुनता (करता) रहता है		

अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् ।
पश्यंस्तदात्मकं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्ययो यतः ॥७९॥

अतः तत् अपवाद अर्थं भज सर्वात्मना हरिं पश्यन् तदात्मकं विश्वं स्थिति उत्पत्ति अप्यया यतः ॥७९॥

अतः	अतः	यतः	जिनसे
तत्	उस कर्मके	स्थिति उत्पत्ति	(इस विश्वकी) स्थिति, उत्पत्ति,
अपवाद अर्थं	अपवाद (छुटकारे) के लिए	अप्यया	प्रलय होती है

विश्वं तदात्मकं	विश्वको उनका स्वरूप	सर्वात्मना हरिम् भज	सब प्रकारसे श्रीहरिका भजन करो ॥७९॥
पश्यन्	देखते हुए		

मैत्रेय उवाच–

भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम् ।
प्रदर्श्य ह्यमुमामन्त्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत् ॥८०॥

भागवत मुख्यः भगवान् नारदः हंसयोः गतिं प्रदर्श्य हि अमुं आमन्त्र्य सिद्धलोकं ततः अगमत् ॥८०॥

भागवत मुख्यः	भक्तोंमें श्रेष्ठ	हि अमुं आमन्त्र्य	फिर उनसे विदा लेकर
भगवान् नारदः	भगवान् नारदजी	ततः सिद्धलोकं	वहाँसे सिद्धलोकको
हंसयोः गतिं	हंस (जीव और ईश्वर) के स्वरूपका	अगमत्	चले गये ॥८०॥
प्रदर्श्य	दिग्दर्शन कराकर		

प्राचीनबर्ही राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे ।
आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम् ॥८१॥

प्राचीनबर्हिः राजर्षिः प्रजासर्ग अभिरक्षणे आदिश्य पुत्रान् अगमत् तपसे कपिल आश्रमं ॥८१॥

राजर्षिः प्राचीनबर्हिः	राजर्षि प्राचीनबर्हि भी	पुत्रान् आदिश्य	पुत्रोंको आदेश देकर
		तपसे	तपस्या करनेके लिए
प्रजासर्ग अभिरक्षणे	प्रजा-वर्गको सब प्रकारकी रक्षाका	कपिलाश्रमं	कपिलाश्रमको
		अगमत्	चले गये ॥८१॥

तत्रैकाग्रमना वीरो गोविन्दचरणाम्बुजम् ।
विमुक्तसङ्गोऽनुभजन् भक्त्या तत्साम्यतामगात् ॥८२॥

तत्र एकाग्रमना वीरः गोविन्द चरणाम्बुजं विमुक्तसङ्गः अनुभजन् भक्त्या तत् साम्यतां अगात् ॥८२॥

तत्र वीरः	वहाँ उस वीरने	भक्त्या	
एकाग्रमना	एकाग्र मनसे	अनुभजन्	भक्तिपूर्वक चिन्तन करते हुए
विमुक्तसङ्गः	आसक्ति त्यागकर		
गोविन्द		तत् साम्यतां	उन (भगवान) का समता (स्वरूप)
चरणाम्बुजं	श्रीगोविन्दके चरण-कमलोंका	अगात्	प्राप्त किया ॥८२॥

एतदध्यात्मपारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणानघ ।
यः श्रावयेद्यः शृणुयात्स लिङ्गेन विमुच्यते ॥८३॥

एतद् अध्यात्म पारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणा अनघ यः श्रावयेत् यः शृणुयात् स लिङ्गेन विमुच्यते ॥८३॥

अनघ	निष्पाप विदुर !	यः शृणुयात्	जो सुनेगा,
देवर्षिणा	देवर्षि नारद द्वारा	यः श्रावयेत्	जो सुनायेगा,
पारोक्ष्यं गीतं	परोक्ष रूपसे कहे गये	स लिङ्गेन	वह लिङ्ग-देहसे
		विमुच्यते	छूट जायगा ॥८३॥
एतद् अध्यात्म	इस अध्यात्म ज्ञानको		

एतन्मुकुन्दयशसा भुवनं पुनानं
देवर्षिवर्यमुखनिःसृतमात्मशौचम् ।
यः कीर्त्यमानमधिगच्छतिपारमेष्ठ्यं
नास्मिन् भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥८४॥

एतत् मुकुन्द यशसा भुवनं पुनानं देवर्षि वर्य मुख निःसृतं आत्म-शौचं यः कीर्त्यमानं अधिगच्छति पारमेष्ठ्यं न अस्मिन् भवे भ्रमति मुक्त समस्त बन्धः ॥८४॥

देवर्षि वर्य	देवर्षिश्रेष्ठ नारदके	कीर्त्यमानं	इसका वर्णन करेगा
मुख निःसृतं	मुखसे निकले	पारमेष्ठ्यं	ब्रह्मलोक
एतत्	इसको	अधिगच्छति	प्राप्त करेगा
मुकुन्द यशसा	श्रीमुकुन्दके यशसे	मुक्त समस्त	
भुवनं पुनानं	त्रिभुवनको पवित्र करने वाले	बन्धः	सब बन्धनोंसे छूटकर
आत्मशौचं	अन्तःकरण-शोधक है	अस्मिन् भवे	इस संसारमें
यः	जो	न भ्रमति	नहीं भटकेगा ॥८४॥

अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाधिगतमद्भुतम् ।
एवं स्त्रियाऽऽश्रमःपुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः ॥८५॥

अध्यात्म पारोक्ष्यं इदं मया अधिगतं अद्भुतं एवं स्त्रिया आश्रमः पुंसः छिन्नः अमुत्र च संशयः ॥८५॥

इदं अद्भुतं	इस अद्भुत	स्त्रिया आश्रमः	स्त्रीके आश्रम (गृहस्थ सम्बन्धी)
पारोक्ष्यं	परोक्षरूपसे वर्णित	च अमुत्र	तथा परलोकके विषयमें
अध्यात्मं	अध्यात्म ज्ञानको	संशयः	सन्देह
मया	मैंने	छिन्नः	कट (मिट) जाता है ॥८५॥
अधिगतं	(गुरुसे) प्राप्त किया है ।		
एवं	इस प्रकार		
पुंसः	पुरुषके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे विदुरमैत्रेयसंवादे प्राचीनबर्हिर्नारदसंवादो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

विदुर उवाच-

ये त्वयाभिहिता ब्रह्मन्सुताः प्राचीनबर्हिषः ।
ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्य काम् ॥१॥

ये त्वया अभिहिता ब्रह्मन् सुताः प्राचीनबर्हिषः ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धि आपुः प्रतोष्य कां ॥१॥

ब्रह्मन्	हे ब्रह्मन् !	ते रुद्रगीतेन	उन्होंने रुद्रगीतके द्वारा
त्वया ये	आपने जो	हरिं प्रतोष्य	श्रीहरिको सन्तुष्ट करके
प्राचीनबार्हिषः सुताः	प्राचीनबार्हिके पुत्रोंका	कां सिद्धि	किस सिद्धिको
अभिहिता	वर्णन किया	आपुः	प्राप्त किया ॥१॥

किं बार्हस्पत्येह परत्र वाथ
कैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिनः ।
आसाद्य देवं गिरिशं यदृच्छया
प्रापुः परं नूनमथ प्रचेतसः ॥२॥

किं बार्हस्पत्य इह परत्र वा अथ कैवल्यनाथप्रिय पार्श्ववर्तिनः आसाद्य देवं गिरिशं यदृच्छया प्रापुः परं नूनं अथ प्रचेतसः ॥२॥

बार्हस्पत्य	बृहस्पतिजीके शिष्य मैत्रेयजी	पार्श्ववर्तिनः	समीप रहनेवाले
कैवल्यनाथ-प्रिय	मोक्षके स्वामी श्रीभगवान्के प्रिय	देवं गिरिशं	भगवान् शङ्करको
		यदृच्छया	अकस्मात्
		आसाद्य	प्राप्त करके
		प्रचेतसा	प्रचेताओंमें

नूनं	निश्चय	इह वा परत्र	इस लोक अथवा परलोकमें
परं प्रापुः	परमपद प्राप्त किया	किं	क्या (सिद्धि) प्राप्त की ॥२॥
अथ	इससे पहले		

मैत्रेय उवाच-

प्रचेतसोऽन्तरुदधौ पितुरादेशकारिणः ।
जपयज्ञेन तपसा पुरञ्जनमतोषयन् ॥३॥

प्रचेतसः अन्तः उदधौ पितुः आदेश कारिणः जपयज्ञेन तपसा पुरञ्जनं अतोषयन् ॥३॥

पितुः	पिताकी	तपसा	तपस्या (तथा)
आदेश कारिणः	आज्ञाको माननेवाले	जपयज्ञेन	जप रूप यज्ञसे
प्रचेतसः	प्रचेताओंने	पुरञ्जनं	शरीरोंके अधिष्ठाता (भगवान्) को
अन्तः उदधौ	समुद्रके भीतर (रहकर)	अतोषयन्	सन्तुष्ट किया ॥३॥

दशवर्षसहस्रान्ते पुरुषस्तु सनातनः ।
तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शान्तेन शमयन् रुचा ॥४॥

दश वर्ष सहस्र अन्ते पुरुषः तु सनातनः तेषां आविर्भूत् कृच्छ्रं शान्तेन् शमयन् रुचा ॥४॥

दश वर्ष सहस्र अन्ते	दस हजार वर्षके बाद	शान्तेन रुचा	अपनी सौम्य कान्तिसे
सनातनः पुरुषः तु	पुराण-पुरुष श्रीहरि तो	तेषां कृच्छ्रं	उनके क्लेशको
		शमयन्	दूर करते हुए
		आविर्भूत्	प्रकट हुए ॥४॥

सुपर्णस्कन्धमारूढो मेरुशृङ्गमिवाम्बुदः ।
पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन् वितिमिरा दिशः ॥५॥

सुपर्णस्कन्धं आरूढः मेरुशृङ्गं इव अम्बुदः पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन् वितिमिरा दिशः ॥५॥

सुपर्णस्कन्धं	गरुड़के* कन्धोंपर	दिशः	
आरूढः	बैठे हुए	वितिमिरा	दिशाओंको अन्धकारहीन
मेरुशृङ्गं	सुमेरुके शिखर		
अम्बुदः इव	घटाके समान	कुर्वन्	करते हुए (प्रकट हुए) ॥५॥
पीतवासा	पीताम्बर पहिने		
मणीग्रीवः	कण्ठमें कौस्तुभ-मणि पहिने		

काशिष्णुना कनकवर्णविभूषणेन
भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः ।
अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रै-
रासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥६॥

काशिष्णुना कनकवर्ण विभूषणेन भ्राजत् कपोल वदनः विलसत् किरीटः अष्ट आयुधैः अनुचरैः मुनिभिः सुरेन्द्रैः आसेवितः गरुड किन्नर-गीत-कीर्त्तिः ॥६॥

काशिष्णुना	चमकते हुए	सुरेन्द्रैः	
कनकवर्ण विभूषणेन	सुवर्णमय आभूषणोंसे (भूषित)	मुनिभिः	इन्द्रादि देवताओं तथा मुनियोंसे
भ्राजत् कपोल वदनः	सुशोभित कपोलवाले श्रीमुख,	अनुचरैः	अपने पार्षदोंसे
विलसत् किरीटः	शोभा देता मुकुट,	आसेवितः	सेवित
अष्ट आयुधैः	(आठ भुजाओंमें) आठ शस्त्र लिए	गरुड किन्नर गीतकीर्त्तिः	गरुड-किन्नर (उनका) यशोगान करते थे ॥६॥

* गरुड़ स्वर्ग वर्णके हैं ।

पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्या
स्पर्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाऽऽद्यः ।
बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान् प्रपन्नान्
पर्जन्यनादरुतया सघृणावलोकः ॥७॥

पीन आयत अष्टभुज मण्डलमध्य लक्ष्म्या स्पर्धत् श्रिया परिवृतः वनमालया आद्यः बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान् प्रपन्नान् पर्जन्यनाद रुतया सघृण अवलोकः ॥७॥

पीन आयत	मोटी लम्बी	**बर्हिष्मतः**	
अष्टभुज	आठ भुजाओंके	**सुतान्**	राजा बर्हिष्मतके पुत्र (प्रचेताओं) की ओर
मण्डलमध्य	मण्डलके मध्यमें	**सघृण अवलोकः**	दयापूर्वक देखते हुए
लक्ष्म्या	श्रीवत्स मानो	**पर्जन्यनाद**	मेघ-ध्वनि जैसी
स्पर्धत् श्रिया	लक्ष्मीसे स्पर्धा करती	**रुतया**	(गम्भीर) वाणीसे
वनमालया	वनमालासे	**आह**	बोले ॥७॥
परिवृतः	(वक्षस्थल) घिरा है		
आद्यः पुरुषः	(ऐसे) आदिपुरुष		
प्रपन्नान्	शरणमें आये		

श्रीभगवानुवाच—

वरं वृणीध्वं भद्रं वो यूयं मे नृपनन्दनाः ।
सौहार्देनापृथग्धर्मास्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥८॥

वरं वृणीध्वं भद्रं वः यूयं मे नृपनन्दनाः सौहार्देन अपृथक् धर्माः तुष्टः अहं सौहार्देन वः ॥८॥

नृपनन्दनाः	राजकुमारो !	**वः**	तुम्हारे इस
वः भद्रं	तुम लोगोंका कल्याण हो	**सौहृदेन**	परस्पर प्रीतिसे
सौहार्देन	तुम सबमें परस्पर प्रेम है	**अहं तुष्टः**	मैं सन्तुष्ट हूँ
अपृथक् धर्माः	(तुम) अभिन्न धर्मका पालन कर रहे हो	**यूयं मे वरं वृणीध्वं**	तुम सब मुझसे वर माँगो ॥८

योऽनुस्मरति सन्ध्यायां युष्माननुदिनं नरः ।
तस्य भ्रातृष्वात्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदम् ॥९॥

यः अनुस्मरति सन्ध्यायां युष्मान् अनुदिनं नरः तस्य भ्रातृषु आत्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदं ॥९॥

यः नरः	जो मनुष्य	तस्य भ्रातृषु	उसका भाइयोंसे
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय	आत्मसाम्यं	अपने ही समान
अनुदिनं	प्रतिदिन		प्रेम होगा
यः	तुम लोगोंका	तथा भूतेषु	तथा सब प्राणियोंसे
अनुस्मरति	स्मरण करेगा	सौहृदं	मित्रता होगी ॥९॥

ये तु मां रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः ।
स्तुवन्त्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम् ॥१०॥

ये तु मां रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः स्तुवन्ति अहं कामवरान् दास्ये प्रज्ञां च शोभनां ॥१०॥

ये तु	जो लोग	अहं काम-	
सायं प्रातः	शामको और सबेरे	वरान्	मैं उन्हें अभीष्ट
समाहिताः	एकाग्रचित्तसे		वरदान
रुद्रगीतेन	रुद्रगीत द्वारा	च शोभनां प्रज्ञां	और शुद्ध बुद्धि
मां स्तुवन्ति	मेरी स्तुति करेंगे	दास्ये	दूंगा ॥१०॥

यद्यूयं पितुरादेशमग्रहीष्ट मुदान्विताः ।
अथो व उशती कीर्तिर्लोकाननु भविष्यति ॥११॥

यद् यूयं पितुः आदेशं अग्रहीष्ट मुदान्विताः अथो व उशती कीर्तिः लोकान् अनु भविष्यति ॥११॥

यद् यूयं	जो तुम लोगोंने	उशती कीर्तिः	निर्मल कीर्ति
मुदान्विताः	प्रसन्नतासे	लोकान्	सब लोकोंमें
पितुः आदेशं	पिताकी आज्ञाको	अनु भविष्यति	अनुभव की
अग्रहीष्ट	मान लिया		जायगी ॥११॥
अथो व	इससे तुम्हारी		

भविता विश्रुतः पुत्रोऽनवमो ब्रह्मणो गुणैः ।
य एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥१२॥

भविता विश्रुतः पुत्रः अनवमः ब्रह्मणः गुणैः य एतां आत्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥१२॥

विश्रुतः	(तुम्हारे) प्रसिद्ध	**य एतां**	जो इन
पुत्रः भविता	पुत्र होगा	**त्रिलोकीं**	तीनों लोकोंको
गुणैः	(वह) गुणोंमें	**आत्मवीर्येण**	अपनी सन्तानोंसे
ब्रह्मणः	ब्रह्माजीसे	**पूरयिष्यति**	भर देगा ॥१२॥
अनवमः	कम नहीं होगा		

कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कमललोचना ।
तां चापविद्धां जगृहुर्भूरुहा नृपनन्दनाः ॥१३॥

कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कमललोचना तां च अपविद्धां जगृहुः भूरुहा नृपनन्दनाः ॥१३॥

नृपनन्दनाः	राजकुमारो !	**तां अप-**	
कण्डोः	कण्डुमनिने	**विद्धां च**	उस (माता-पिता
प्रम्लोचया	प्रम्लोचा अप्सरासे		द्वारा) परित्यक्ताको
कमललोचना	कमल-नयनी	**भूरुहा जगृहुः**	वृक्षोंने ले
कन्या लब्धा	कन्या प्राप्त की थी		लिया ॥१३॥

क्षुत्क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीम् ।
देशिनीं रोदमानाया निदधे स दयान्वितः ॥१४॥

क्षुत् क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीं देशिनीं रोदमानाया निदधे स दयान्वितः ॥१४॥

क्षुत् क्षामाया	भूखसे व्याकुल होकर (दुर्बल होती)	**रोदमानाया**	रोती हुईके
		मुखे	मुखमें

स राजा	वे (औषधियोंके) राजा	पीयूषवर्षिणीम्	अमृत वर्षिणी
सोमः	चन्द्रमा	देशनीम् निदधे	तर्जनी अंगुली दे दी ॥१४॥
दयान्वितः	दयावश		

प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रा माननुवर्तता ।
तत्र कन्यां वरारोहां तामुद्वहत मा चिरम् ॥१५॥

प्रजाविसर्गे आदिष्टाः पित्रा मां अनुवर्तता तत्र कन्यां वरारोहां तां उद्वहत मा चिरं ॥१५॥

मां अनुवर्तता	मेरी सेवा करते हुए	मा चिरं	(अतः तुम) देर मत करो
पित्रा	पिता द्वारा	तत्र	वहां
प्रजाविसर्गे	सन्तान उत्पन्न करनेके लिए	तां वरारोहां कन्यां	उस सुन्दरी कन्याको
आदिष्टाः	(तुम लोगोंको) आदेश मिला है	उद्वहत	विवाह लो ॥१५॥

अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा ।
अपृथग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥१६॥

अपृथक् धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा अपृथक् धर्मशीला इयं भूयात् पत्नी अर्पित आशया ॥१६॥

अपृथक् धर्मशीलानां	समान धर्म और स्वभाव वाले	अपृथक् धर्मशीला	समान धर्म और स्वभाववाली
वः सर्वेषां	तुम सबकी	इयं सुमध्यमा	यह सुन्दरी
		अर्पित आशया	चित्तार्पण करनेवाली
		पत्नी भूयात्	पत्नी होवे ॥१६॥

दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रमहतौजसः ।
भौमान् भोक्ष्यथ भोगान् वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥१७॥

दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रं अहत ओजसः भौमान् भोक्ष्यथ भोगान् वै दिव्यान् च अनुग्रहात् मम् ॥१७॥

मम अनुग्रहात्	मेरी कृपासे	अहत ओजसः	बिना ओज नष्ट हुए
दिव्यवर्ष-सहस्राणां		भौमान्	पार्थिव
		च दिव्यान्	और दिव्य
सहस्रं	दिव्य दस लाख वर्षों तक	भोगान्	भोगोंका
		भोक्ष्यथ	भोग करोगे ॥१७॥

अथ मय्यनपायिन्या भक्त्या पक्वगुणाशयाः ।
उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयादतः ॥१८॥

अथ मयि अनपायिन्या भक्त्या पक्वगुण आशयाः उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयात् अतः ॥१८॥

अथ	अन्तमें	अतः निरयात्	अतः नरक तुल्य (लगते भोगोंसे)
मयि	मेरी		
अनपायिन्या	अनन्य भक्तिसे	निर्विद्य	विरक्त होकर
आशयाः पक्व-गुण	हृदयके गुणोंका परिपाक हो जानेपर*	मद्धाम	मेरे धाम
		उपयास्यथ	पहुँच जाओगे ॥१८॥

गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् ।
मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥१९॥

गृहेषु आविशतां च अपि पुंसां कुशल कर्मणां मत् वार्ता यात यामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥१९॥

---

* काम-क्रोध आदि विकार हैं—यह इनका प्रकृतरूप नहीं है। प्रेमका विकार काम, वैराग्यका विकार क्रोध है। हृदयके गुणोंका परिपाक होनेपर शुद्ध गुण रहते हैं।

कुशल कर्मणां	*कुशलतापूर्वक कर्म करनेवाले	गृहेषु आविशतां	गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होनेपर भी
मत् वार्ता	मेरी कथामें	मताः	मेरे मतसे
यात यामानां	समय व्यतीत करनेवाले	गृहा बन्धाय न	घर बन्धनके कारण नहीं होते ॥१९॥
पुंसां	लोगोंके		

नव्यवद्धृदये यज्ज्ञो ब्रह्मैतद्ब्रह्मवादिभिः ।
न मुह्यन्ति न शोचन्ति न हृष्यन्ति यतो गताः ॥२०॥

नव्यवत् हृदये यत् ज्ञः ब्रह्म एतद् ब्रह्मवादिभिः न मुह्यन्ति न शोचन्ति न हृष्यन्ति यतः गताः ॥२०॥

यत्	जो	हृदये	हृदयमें (रहता) है
ब्रह्मवादिभिः	ब्रह्म-ज्ञानियों द्वारा	यतः गताः	जहाँ (जिस स्थितिको) पहुँचकर
एतद् ज्ञः	यह ज्ञानमात्र	मुह्यन्ति न	मोहमें नहीं पड़ते
ब्रह्म	ब्रह्म है (कहा जाता है)	शोचन्ति न	शोक नहीं करते
नव्यवत्	नवीनके समान (विस्मृति रहित)	हृष्यन्ति	(और) हर्ष नहीं करते ॥२०॥

मैत्रेय उवाच–

एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थभाजनं
जनार्दनं प्राञ्जलयः प्रचेतसः ।
तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमला
गिरागृणन् गद्गदया सुहृत्तमम् ॥२१॥

एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थ भाजनं जनार्दनं प्राञ्जलयः प्रचेतसः तत् दर्शन ध्वस्त तमः रजः मला गिरा अगृणन् गद्गदया सुहृत् तमं ॥२१॥

पुरुषार्थभाजनं	सब पुरुषार्थोंके आश्रय
जनार्दनं	भगवान जनार्दनके
एवं ब्रुवाणं	इस प्रकार कहनेपर
प्राञ्जलयः	हाथ जोड़े हुए
प्रचेतसः	प्रचेतागण
तद् दर्शन	उन (भगवान) के दर्शनसे
तमः रजः मलः	तमोगुण और रजोगुणके मल (दोष)
ध्वस्त	नष्ट हो जानेसे
सुहृत् तमं	परम सुहृद (भगवान) की
गद्गदया गिरा	गद्गद् वाणीसे
अगृणन्	स्तुति करने लगे ॥२१॥

प्रचेतस ऊचुः

नमो नमः क्लेशविनाशनाय
निरूपितोदारगुणाह्वयाय ।
मनोवचोवेगपुरोजवाय
सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥२२॥

नमोनमः क्लेशविनाशनाय निरूपित उदार गुण आह्वयाय मनः वचः वेग पुरः जवाय सर्व अक्ष मार्गैः अगत अध्वने नमः ॥२२॥

क्लेश-विनाशनाय	(समस्त) क्लेशोंके नाशक
नमोनमः	(प्रभु) आपको बार-बार नमस्कार
उदार गुण आह्वयाय	उदार गुण (वेदों द्वारा) कहे जानेवाले
मनः वचः वेग	मन-वाणीकी गतिसे
पुरः जवाय	आगे रहनेवाले वेग युक्त
सर्व अक्ष मार्गैः	सभी इन्द्रियोंके मार्गसे
अगत अध्वने	अज्ञात मार्गवाले (इन्द्रियोंसे अगम्य)
नमः	(आपको) नमस्कार ॥२२॥

शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया
मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय ।

नमो जगत्स्थानलयोदयेषु
गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥२३॥

शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया मनसि अपार्थं विलसत् द्वयाय नमः जगत् स्थान लय उदयेषु गृहीत माया गुण विग्रहाय ॥२३॥

स्वनिष्ठया	अपने स्वरूपमें	लय	प्रलय
शुद्धाय शान्ताय	(आप) नित्य शुद्ध शान्त हैं	उदयेषु	उत्पत्तिके लिए
		माया गुण	मायाके गुणोंसे
नमः	आपको नमस्कार	गृहीत	ग्रहण किये
मनसि	मनमें	विग्रहाय	स्वरूप (विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा)
अपार्थं	मिथ्या		
द्वयाय	द्वैतके रूपमें	नमः	आपको नमस्कार ॥२३॥
विलसत्	भासित		
जगत् स्थान	संसारकी स्थिति		

नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे ।
वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम् ॥२४॥

नमः विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्व सात्वताम् ॥२४॥

विशुद्धसत्त्वाय	विशुद्ध सत्त्व स्वरूप	प्रभवे	प्रभु
हरिमेधसे	अविद्या नाशक ज्ञान स्वरूप	वासुदेवाय	वासुदेव (अन्तः-करणके प्रकाशक)
हरये	श्रीहरि	कृष्णाय नमः	श्रीकृष्णको नमस्कार ॥२४॥
सर्व सात्वतां	सभी सत्त्वगुणियों (भक्तों) के		

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ।
नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥२५॥

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥२५॥

कमलनाभाय	नाभिमें कमलवाले	कमलपादाय	कमलके समान (कोमल) चरणवाले
नमः	आपको नमस्कार !	नमः	आपको नमस्कार,
कमलमालिने	कमलकी माला धारण किये	कमलेक्षण	कमल-नयन
नमः	आपको नमस्कार,	ते नमः	आपको नमस्कार ॥२५॥

नमः कमलकिञ्जल्कपिशङ्गामलवाससे ।
सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुङ्क्ष्महि साक्षिणे ॥२६॥

नमः कमलकिञ्जल्क पिशङ्ग अमलवाससे सर्वभूत निवासाय नमः अयुङ्क्ष्महि साक्षिणे ॥२६॥

कमलकिञ्जल्क	कमल पुष्पके परागके समान	सर्वभूत निवासाय	सभी प्राणियोंके निवासरूप
पिशङ्ग अमल-वाससे	निर्मल पीताम्बर-धारी	साक्षिणे	सर्वसाक्षी
		नमः अयुङ्क्ष्महि	हम आपको नमस्कार करते हैं ॥२६॥

रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम् ।
आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम् ॥२७॥

रूपं भगवता तु एतत् अशेष क्लेशसंक्षयं आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किं अन्यत् अनुकम्पितं ॥२७॥

अशेष क्लेशसंक्षयं	सम्पूर्ण क्लेशोंको नष्ट करनेवाला	एतत् रूपं तु भगवता	यह रूप तो भगवान् आपने

क्लिष्टानां	(अविद्या अस्मितादि) क्लेशग्रस्त	आविष्कृतं अन्यत्	प्रकट किया है
नः	हमारे समक्ष	अनुकम्पितं किं	इससे अधिक कृपा और क्या होगी ॥२७

एतावत्त्वं हि विभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः ।
यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याभद्ररन्धन ॥२८॥

एतावत्त्वं हि विभुभिः भाव्यं दीनेषु वत्सलैः यत् अनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्या अभद्र रन्धन ॥२८॥

अभद्र रन्धन	अमंगलहारी प्रभु !	भाव्यं	कृपा करनी चाहिए
दीनेषु वत्सलैः	दीनोंपर दया करनेवाले	यत् काले	कि समय-समयपर
विभुभिः	समर्थोंको	स्वबुद्ध्या	अपनी बुद्धिसे
एतावत्त्वं हि	इतनी ही	अनुस्मर्यते	स्मरणकर लिया करें ॥२८॥

येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् ।
अन्तर्हितोऽन्तर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः ॥२९॥

येन उपशान्तिः भूतानां क्षुल्लकानां अपि ईहतां अन्तर्हितः अन्तर्हृदये कस्मात् नः वेद न आशिषः ॥२९॥

येन	जिनके द्वारा	उपशान्तिः	परिपूर्ति रूप शान्ति होती है
क्षुल्लकानां	अत्यन्त क्षुद्र		
भूतनां अपि	प्राणियोंके भी	नः आशिषः	हमारी आकांक्षा (वे)
अन्तर्हृदये	हृदयके भीतर	कस्मात्	क्यों
अन्तर्हितः	अदृश्य रूपसे रहते	न वेद	नहीं जानेंगे ॥२९॥
ईहतां	कामनाओंकी		

असावेव वरोऽस्माकमीप्सितो जगतः पते ।
प्रसन्नो भगवान् येषामपवर्गगुरुर्गतिः ॥३०॥

असौ एव वरः अस्माकं ईप्सितः जगतः पते प्रसन्नः भगवान् येषाम् अपवर्ग गुरुः गतिः ॥३०॥

जगतः पते	जगदीश्वर !	प्रसन्नः	प्रसन्न हैं
अपवर्ग	मोक्षके	असौ एव	यही
गुरुः गतिः	उपदेष्टा तथा परमगति	अस्माकं	हम सबका
		ईप्सितः	अभीष्ट
भगवान्	भगवान् आप	वरः	वरदान है ॥३०॥
येषां	जिनपर		

वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् ।
न ह्यन्तस्त्वद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयसे ॥३१॥

वरं वृणीमहे अथ अपि नाथ त्वत् परतः परात् न हि अन्तः त्वत् विभूतीनां सः अनन्त इति गीयसे ॥३१॥

अथ अपि नाथ	तथापि हे नाथ	त्वत् विभूतीनां	आपकी विभूतियोंका
त्वत् परतः		हि अन्तः न	निश्चय अन्त नहीं है
परात्	आप (प्रकृति आदि से) परे से भी परे	सः अनन्त	इसलिए आप अनन्त
		इति गीयसे	इस प्रकार गाये जाते हैं ॥३१॥
वरं वृणीमहे	(हम) वर आपसे मांगते हैं,		

पारिजातेऽञ्जसा लब्धे सारङ्गोऽन्यन्न सेवते ।
त्वदङ्घ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किं किं वृणीमहि ॥३२॥

पारिजाते अञ्जसा लब्धे सारङ्ग अन्यत् न सेवते त्वत् अङ्घ्रिमूलं आसाद्य साक्षात् किं किं वृणीमहि ॥३२॥

अञ्जसा	अनायास	सारङ्गः	भ्रमर
पारिजाते लब्धे	कल्प-वृक्ष मिल जानेपर	अन्यत्	दूसरे (पुष्प) का
		सेवते न	सेवन नहीं करता

साक्षात्	प्रत्यक्ष	आसाद्य	पहुँचकर
त्वत् अङ्घ्रिमूलं	आपके चरणोंके समीप	किं किं	क्या-क्या
		वृणीमहि	वरदान मांगें ॥३२॥

यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः ।
तावद्भवत्प्रसङ्गानां सङ्गः स्यान्नो भवे भवे ॥३३॥

यावत् ते मायया स्पृष्टा भ्रमामः इह कर्मभिः तावत् भवत् प्रसङ्गानां सङ्गः स्यात् नः भवे भवे ॥३३॥

यावत्	जब तक	तावत्	तब तक
ते मायया	आपकी मायासे	भवे भवे	जन्म-जन्ममें
स्पृष्टा	ग्रस्त हुए	नः	हमें
कर्मभिः	कर्मानुसार	भवत् प्रसङ्गानां	आपके प्रेमी भक्तोंकी
इह	संसारमें	सङ्गः स्यात्	सङ्गति मिलती रहे ॥३३॥
भ्रमामः	हम भ्रमण करते रहें		

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥३४॥

तुलयाम लवेन अपि न स्वर्गं न अपुनर्भवं भगवत् सङ्गि सङ्गस्य मर्त्यानां किं उत् आशिषः ॥३४॥

भगवत् संगि संगस्य	भगवानमें आसक्त (भक्त) की संगतिके	मर्त्यानां	मरणधर्मा (मनुष्य) की
लवेन अपि	क्षणांशको भी	आशिषः	कामनाएँ
स्वर्गं न	स्वर्गसे नहीं	किं उत्	फिर किस गणनामें हैं ॥३४॥
अपुनर्भवं न	मोक्षसे भी नहीं		
तुलयाम	तुलना (समता) करते हैं ।		

यत्रेड्यन्ते कथा मृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः ।
निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥३५॥

यत्र ईड्यन्ते कथा मृष्टाः तृष्णायाः प्रशमः यतःनिर्वैरं यत्र भूतेषु न उद्वेगः यत्र कश्चन ॥३५॥

यत्र	जहाँ	यत्र	जहाँ
मृष्टाः कथा	(भगवानकी) निर्मल कथा	भूतेषु निर्वैरं	प्राणियोंसे विरोध नहीं रहता
ईड्यन्ते	होती रहती है।	यत्र	जहाँ
यतः	जिससे	कश्चन	कोई
तृष्णायाः प्रशमः	तृष्णा शान्त हो जाती है	उद्वेगः न	उद्वेग नहीं होता ॥३५॥

यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः ।
संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः ॥३६॥

यत्र नारायणः साक्षात् भगवान् न्यासिनां गतिः संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः ॥३६॥

यत्र	जहाँ	साक्षात्	
सत्कथासु	अच्छे-अच्छे कथा प्रसङ्गों द्वारा	नारायणः	साक्षात् श्रीनारायण
मुक्तसङ्गैः	अनासक्तों द्वारा	भगवान्	भगवान्का
न्यासिनां गतिः	संन्यासियोंके आश्रय	पुनः पुनः संस्तूयते	बार-बार गुणगान होता है ॥३६॥

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ।
भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥३७॥

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावन इच्छया भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥३७॥

तीर्थानां	तीर्थोंको
पावन इच्छया	पवित्र करनेकी इच्छासे
पद्भ्यां	पैदल
विचरतां	विचरण करते
तेषां	उन
तावकानां	आपके भक्तोंका
समागम	समागम
भीतस्य	संसारसे भयभीतको
किं न रोचेत	कैसे अच्छा न लगेगा ॥३७॥

वयं तु साक्षाद्भगवन् भवस्य
प्रियस्य सख्युः क्षणसङ्गमेन ।
सुदुश्चिकित्स्यस्य भवस्य मृत्यो-
र्भिषक्तमं त्वाद्य गतिं गताः स्मः ॥३८॥

वयं तु साक्षात् भगवन् भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसङ्गमेन सुदुः चिकित्स्यस्य भवस्य मृत्योः भिषक्तमं त्वा अद्य गतिं गताः स्मः ॥३८॥

भगवन्	भगवन् !
प्रियस्य सख्युः	आपके प्रिय सखा
भवस्य	भगवान् शंकरके
क्षणसङ्गेमेन तु	क्षण भरके संगसे ही
वयं साक्षात्	हमें साक्षात् आपका दर्शन हुआ है
सुदुः चिकित्स्यस्य	अति दुःसाध्य
भवस्य	संसार रूपी
मृत्योः	मृत्यु रोगके
भिषक्तमं	श्रेष्ठतम वैद्य
त्वा	आपकी
अद्य	आज
गतिं गताः स्मः	शरणमें आये हैं ॥३८॥

यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता
विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या ।
आर्या नताः सुहृदो भ्रातरश्च
सर्वाणि भूतान्यनसूययैव ॥३९॥

यत् नः सु अधीतं गुरवः प्रसादिता विप्राः च वृद्धाः च सदा अनुवृत्या आर्या नताः सुहृदः भ्रातरः च सर्वाणि भूतानि अनुसूयया एव ॥३९॥

नः	हम लोगोंने
यत्	जो
सु अधीतं	उत्तम अध्ययन किया
सदा अनुवृत्त्या	सदा अनुगमन करनेसे
गुरवः	गुरुजनोंको
विप्राः च	ब्राह्मणोंको भी
च वृद्धाः	और वृद्धजनोंको
प्रसादिता	प्रसन्न किया
आर्या नताः	बड़ोंको प्रणाम किया
अनुसूयया एव	गुणोंमें दोष न देखकर
सुहृदः	सम्बन्धियों
भ्रातरः च	भाइयोंको (तथा)
सर्वाणि भूतानि	सब प्राणियोंको (प्रसन्न किया)॥३९॥

यन्नः सुतप्तं तप एतदीश
निरन्धसां कालमदभ्रमप्सु ।
सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो
वृणीमहे ते परितोषणाय ॥४०॥

यत् नः सुतप्तं तप एतत् ईश निरन्धसां कालम् अदभ्रम् अप्सु सर्वं तत् एतत् पुरुषस्य भूम्नः वृणीमहे ते परितोषणाय ॥४०॥

यत् नः	जो हमने
एतत्	यह
निरन्धसां	आहार त्यागकर
अदभ्रम् कालं	दीर्घ काल तक
अप्सु	जलमें (रहकर)
तप सुतप्तं	उत्तम तप किया
ईश	स्वामी !
तत् एतत् सर्वं	वह यह सब
भूम्नः	सर्व व्यापक
पुरुषस्य	परमपुरुष
ते परितोषणाय	आपको सन्तुष्ट करनेके लिए
वृणीमहे	यह वरदान हम मांगते हैं ॥४०॥

मनुः स्वयम्भूर्भगवान् भवश्च
येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ।
अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः
स्तुवन्त्यथो त्वाऽऽत्मसमं गृणीमः ॥४१॥

मनुः स्वयंभूः भगवान् भवः च ये अन्ये तपः ज्ञान विशुद्ध सत्वाः अदृष्टपारा अपि यत् महिम्नः स्तुवन्ति अथो त्वा आत्मसमं गृणीमः ॥४१॥

यत् महिम्नः	आपकी जिन महिमाका
अदृष्टपारा अपि	पार न पाकर भी
मनुः स्वयंभूः	(स्वायम्भुव) मनु, ब्रह्माजी
च भगवान् भवः	तथा भगवान् शंकर तथा
ये अन्ये	जो अन्य
तपः ज्ञान	तप और ज्ञानसे
विशुद्ध सत्वाः	शुद्ध चित्तवाले हैं
स्तुवन्ति	आपकी स्तुति करते हैं
अथो त्वा	अतः हम भी आपकी
आत्मसमं	अपनी बुद्धिके अनुसार
गृणीमः	स्तुति कर रहे हैं ॥४१॥

नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च ।
वासुदेवाय सत्त्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥४२॥

नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च वासुदेवाय सत्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥४२॥

समाय शुद्धाय	सर्वत्र समान शुद्ध स्वरूप
च पराय	
पुरुषाय	तथा परम पुरुष
सत्वाय	सत्व स्वरूप
वासुदेवाय तुभ्यं भगवते	भगवान वासुदेव
नमः	आप भगवान्‌को नमस्कार ॥४२॥

मैत्रेय उवाच-

इति प्रचेतोभिरभिष्टुतो हरिः
प्रीतस्तथेत्याह शरण्यवत्सलः ।
अनिच्छतां यानमतृप्तचक्षुषां
ययौ स्वधामानपवर्गवीर्यः ॥४३॥

इति प्रचेतोभिः अभिष्टुतः हरिः प्रीतः तथा इति आह शरण्यवत्सलः अनिच्छतां यानं अतृप्त चक्षुषां ययौ स्वधामानृ अपवर्ग वीर्यः ॥४३॥

प्रचेतोभिः	प्रचेताओंके द्वारा	अतृप्त चक्षुषां यानं	अतृप्त नेत्र
इति	इस प्रकार	अनिच्छतां	उन्हें जाने देना नहीं चाहने वाले (के पाससे)
अभिष्टुतः	स्तुति करनेपर	स्वधामानृ ययौ	अपने धाम चले गये ॥४३॥
शरण्यवत्सलः	शरणागत वत्सल		
हरिः प्रीतः	श्रीहरिने प्रसन्न होकर		
तथा इति आह	तथास्तु ऐसा कहा।		
अपवर्ग वीर्यः	मोक्ष-दान, पराक्रम वाले (प्रभु)		

अथ निर्याय सलिलात्प्रचेतस उदन्वतः।
वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नां गां गां रोद्धुमिवोच्छ्रितैः ॥४४॥

अथ निर्याय सलिलात् प्रचेतसः उदन्वतः वीक्ष्य अकुप्यन् द्रुमैः छन्नां गां गां रोद्धुम् इव उच्छ्रितैः ॥४४॥

अथ	इसके बाद	उच्छ्रितैः	उठे (फैले) हुए
प्रचेतसः	प्रचेताओंने	द्रुमैः	वृक्षोंसे
उदन्वतः		गां छन्नां	पृथ्वीको ढकी
सलिलात्	समुद्रके जलसे	वीक्ष्य	देखकर
निर्याय	निकलकर	अकुप्यन्	क्रुद्ध हो गये ॥४४॥
गां रोद्धुम् इव	पूरी पृथ्वीको रुंध देनेके समान		

ततोऽग्निमारुतौ राजन्नमुञ्चन्मुखतो रुषा।
महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक इवात्यये ॥४५॥

ततः अग्निमारुतौ राजन् अमुञ्चन् मुखतः रुषा महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक इव अत्यये ॥४५॥

राजन्	राजन् !	अत्यये	प्रलयकालमें
ततः	तब	संवर्तक इव	संवर्तक रुद्रके समान
महीं निर्वीरुधं	पृथ्वीको वृक्ष-लता आदिसे रहित	मुखतः	अपने मुखसे
		अग्निमारुतौ	वायु और अग्निको
कर्तुं	कर देनेके लिए	अमुञ्चन्	छोड़ने लगे ॥४५॥
रुषा	क्रोधमें आकर		

भस्मसात्क्रियमाणांस्तान्द्रुमान् वीक्ष्य पितामहः ।
आगतः शमयामास पुत्रान् बर्हिष्मतो नयैः ॥४६॥

भस्मसात् क्रियमाणान् तान् द्रुमान् वीक्ष्य पितामहः आगतः शमयामास पुत्रान् बर्हिष्मतः नयैः ॥४६॥

भस्मसात्		बर्हिष्मतः	
क्रियमाणान्	भस्म किये जाते हुए	पुत्रान्	प्राचीनबर्हिके पुत्रोंको
द्रुमान् वीक्ष्य	वृक्षोंको देखकर		
पितामहः	ब्रह्माजीने	नयैः	युक्ति पूर्वक (समझाकर)
आगतः	आकर		
		शमयामास	शान्त किया ॥४६॥

तत्रावशिष्टा ये वृक्षा भीता दुहितरं तदा ।
उज्जह्रुस्ते प्रचेतोभ्य उपदिष्टाः स्वयम्भुवा ॥४७॥

तत्र अवशिष्टा ये वृक्षाः भीता दुहितरं तदा उज्जह्रुः ते प्रचेतोभ्यः उपदिष्टाः स्वयंभुवा ॥४७॥

तत्र तदा	फिर वहाँ	ते भीता	उन्होंने डरकर
ये वृक्षाः	जो वृक्ष	दुहितरं	पुत्रीको
अवशिष्टा	बच गये थे	प्रचेतोभ्यः	प्रचेताओंको
स्वयम्भुवा उपदिष्टाः	ब्रह्माजीके कहनेसे	उज्जह्रुः	दे दिया ॥४७॥

ते च ब्रह्मण आदेशान्मारिषामुपयेमिरे ।
यस्यां महदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः ॥४८॥

ते च ब्रह्मण आदेशात् मारिषां उपयेमिरे यस्यां महत् अवज्ञानात अजनि अजन योनिजः ॥४८॥

ते च	उन (प्रचेताओं) ने भी	महत् अवज्ञानात्	श्रीमहादेवजीके अपमानके बाद (दक्ष)
ब्रह्मण आदेशात्	ब्रह्माजीके आदेशसे	अजन योनिजः	जो ब्रह्माजीका मानस-पुत्र था योनिज होकर
मारिषां	मारिषा (नामकी उस कन्या) से	अजनि	जन्मा ॥४८॥
उपयेमिरे	विवाह कर लिया		
यस्यां	जिसके गर्भसे		

चाक्षुषेत्वन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते ।
यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ॥४९॥

चाक्षुषे तु अन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षः दैवचोदितः ॥४९॥

चाक्षुषे अन्तरे प्राप्ते तु	चाक्षुष-मन्वन्तर आने पर तो (मन्वन्तर) की सृष्टिके	दैवचोदितः	दैवकी प्रेरणासे
		यः इष्टाः प्रजा	जिन्होंने अभीष्ट प्रजाकी
		ससर्ज	सृष्टि की
		स दक्षः	वे यही दक्ष थे ॥४९॥
प्राक्सर्गे काल-विद्रुते	पहले काल क्रमसे नष्ट हो जानेपर		

यो जायमानः सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा ।
स्वयोपादत्त दाक्ष्याच्च कर्मणां दक्षमब्रुवन् ॥५०॥

यः जायमानः सर्वेषां तेजः तेजस्विनां रुचा स्वया उपादत्त दाक्ष्यात् च कर्मणां दक्षं अब्रुवन् ॥५०॥

यः जायमानः	जिन्होंने जन्म लेते ही
स्वया रुचा	अपनी कान्तिसे
सर्वेषां तेजस्विनां	सभी तेजस्वियोंका
तेजः उपादत्त	तेज छीन लिया
च	और
कर्मणां दाक्ष्यात्	कर्म करनेमें दक्ष होनेसे
दक्षं अब्रुवन्	(उनको लोग) दक्ष कहते थे ॥५०॥

तं प्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्य च ।
युयोज युयुजेऽन्यांश्च स वै सर्वप्रजापतीन् ॥५१॥

तं प्रजासर्ग रक्षायां अनादिः अभिषिच्य च युयोज युयुजे अन्यान् च स वै सर्वप्रजापतीन् ॥५१॥

अनादिः	अनादि ब्रह्माजीने
प्रजा सर्ग रक्षायां	प्रजा-सृष्टिकी रक्षाके लिए
तं	उन (दक्ष) का
अभिषिच्य	अभिषेक करके
स वै	निश्चय उन (ब्रह्माजी) ने ही
अन्यान्	दूसरे
सर्वप्रजापतीन्	सब प्रजापतियोंको भी
युयोज	(प्रजा-रक्षामें) लगाया
च	तथा
युयुजे	स्वयं भी लगे ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

तत उत्पन्नविज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम् ।
स्मरन्त आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन् गृहात् ॥१॥

ततः उत्पन्नविज्ञाना आशु अधोक्षजभाषितम् स्मरन्तः आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन् गृहात् ॥१॥

ततः	तब	स्मरन्तः	स्मरण करते हुए
उत्पन्नविज्ञाना	विवेक उत्पन्न होने पर	भार्यां	पत्नीको
		आत्मजे विसृज्य	पुत्रोंके पास छोड़कर
आशु	शीघ्र	गृहात् प्राव्रजन्	घरसे निकल पड़े ॥१॥
अधोक्षज-भाषितं	भगवान्के उपदेशको		

दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूतात्ममेधसा ।
प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धोऽभूद्यत्र जाजलिः ॥२॥

दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूत आत्ममेधसा प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धः अभूत् यत्र जाजलिः ॥२॥

प्रतीच्यां दिशि	पश्चिम दिशामें	आत्ममेधसा	आत्मबुद्धि कराने वाले
वेलयां	समुद्रके तटपर		
यत्र जाजलिः	जहाँ जाजलि (मुनि)	ब्रह्मसत्रेण	ब्रह्मसत्रकी
सिद्धः अभूत्	सिद्ध हुए थे	दीक्षिता	दीक्षा ली ॥२॥
सर्वभूत	सब प्राणियोंमें		

तान्निर्जितप्राणमनोवचोदृशो
जितासनान् शान्तसमानविग्रहान् ।
परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः
सुरासुरेड्यो ददृशे स्म नारदः ॥३॥

तान् निर्जित प्राण मनः वचः दृशः जित आसनान् शान्त समान विग्रहान् परे अमले ब्रह्मणि योजित आत्मनः सुर असुर ईड्यः ददृशे स्म नारदः ॥३॥

निर्जित	जीते गये	अमले परे	निर्मल परम-पुरुषमें
प्राण मनः	प्राण, मन,	आत्मनः योजित	चित्त लगाये
वचः दृशः	वाणी, दृष्टिवाले,	तान्	उन (प्रचेताओं) को
जित आसनान्	आसन जय किये	सुर असुर ईड्यः	देव-दैत्य वन्दित
शान्त	शान्त	नारदः	देवर्षि नारदको
समान विग्रहान्	समान (सीधे) शरीर (बैठे)	ददृशे स्म	दिखलायी पड़े ॥३॥

तमागतं त उत्थाय प्रणिपत्याभिनन्द्य च ।
पूजयित्वा यथादेशं सुखासीनमथाब्रुवन् ॥४॥

तं आगतं ते उत्थाय प्रणिपत्य अभिनन्द्य च पूजयित्वा यथा आदेशं सुखासीनं अथ अब्रुवन् ॥४॥

तं आगतं	उन (नारदजीको) आया देख	यथा आदेशं	शास्त्र-विधि जैसी है वैसे
ते	वे (प्रचेतागण)	पूजयित्वा	पूजा करके
उत्थाय	उठकर खड़े हो गये	सुखासीनं	(उनके) सुखपूर्वक बैठ जानेपर
च प्रणिपत्य	और साष्टांग प्रणाम किया	अथ	तब
अभिनन्द्य	स्वागत करके	अब्रुवन्	बोले ॥४॥

प्रचेतस ऊचुः—

स्वागतं ते सुरर्षेऽद्य दिष्ट्या नो दर्शनं गतः ।
तव चङ्क्रमणं ब्रह्मन्नभयाय यथा रवेः ॥५॥

स्वागतं ते सुर ऋषे अद्य दिष्ट्या नः दर्शनं गतः तव चङ्क्रमणं ब्रह्मन् अभयाय यथा रवेः ॥५॥

सुरऋषे	देवर्षि !	**रवेः यथा**	सूर्यके समान
ते स्वागतं	आपका स्वागत है,	**तव चङ्क्रमणं**	आपका घूमना
अद्य दिष्ट्या	आज बड़े भाग्यसे	**अभयाय**	(सबको) अभय देनेके लिए होता है ॥५॥
नः दर्शनं गतः	हमें आपका दर्शन हुआ,		
ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !		

यदादिष्टं भगवता शिवेनाधोक्षजेन च ।
तद् गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितं प्रभो ॥६॥

यत् आदिष्टं भगवता शिवेन अधोक्षजेन च तत् गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितं प्रभो ॥६॥

प्रभो	स्वामिन् !	**गृहेषु प्रसक्तानां**	गृहस्थीमें आसक्त रहनेके कारण
भगवता शिवेन च अधोक्षजेन	भगवान् शंकरने और हृषीकेश भगवान्‌ने	**तत् प्रायशः क्षपितं**	वह प्रायः नष्ट (भूल) हो गया ॥६॥
यत् आदिष्टं	जो उपदेश किया था,		

तन्नः प्रद्योतयाध्यात्मज्ञानं तत्त्वार्थदर्शनम् ।
येनाञ्जसा तरिष्यामो दुस्तरं भवसागरम् ॥७॥

तत् नः प्रद्योतय अध्यात्मज्ञानं तत्व अर्थ दर्शनं येन अञ्जसा तरिष्यामः दुस्तरं भवसागरं ॥७॥

तत् नः	अतः हमारे हृदयोंमें	प्रद्योतय	प्रकाशित कीजिए
तत्व अर्थ दर्शनं	परमार्थ तत्वका साक्षात्कार करानेवाले	येन अञ्जसा	जिससे सुगमतासे
		दुस्तरं	दुस्तर
		भवसागरं	संसार-सागरको
अध्यात्मज्ञानं	अध्यात्म ज्ञानको	तरिष्यामः	पार हो जाएँ ॥७॥

मैत्रेय उवाच–

इति प्रचेतसां पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः ।
भगवत्युत्तमश्लोक आविष्टात्माब्रवीन्नृपान् ॥८॥

इति प्रचेतसां पृष्टः भगवान् नारदः मुनिः भगवति उत्तमश्लोके आविष्ट आत्मा अब्रवीत् नृपान् ॥८॥

उत्तमश्लोके	उत्तमश्लोक	इति	इस प्रकार
भगवति	भगवानमें	प्रचेतसां पृष्टः	प्रचेताओंके पूछनेपर
आविष्ट आत्मा	आसक्त चित्तवाले	नृपान्	उन राजाओंसे
भगवान् नारदः		अब्रवीत्	बोले ॥८॥
मुनिः	भगवान् नारद मुनिने		

नारद उवाच–

तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः ।
नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥९॥

तत् जन्म तानि कर्माणि तत् आयुः तत् मनः वचः नृणां येन इह विश्वात्मा सेव्यते हरिः ईश्वरः ॥९॥

इह	इस लोकमें	तानि कर्माणि	वही कर्म,
नृणां	मनुष्योंका	तत् आयुः	वही आयु,
तत् जन्म	वही जन्म,		

तत् मनः वचः	वही मन और वाणी (सफल हैं)	ईश्वरः	सर्वेश्वर
		हरिः	श्रीहरिकी
येन	जिनके द्वारा	सेव्यते	सेवा की जाय ॥९॥
विश्वात्मा	सर्वात्मा		

किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः ।
कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः पुंसोऽपि विबुधायुषा ॥१०॥

किं जन्मभिः त्रिभिः व इह शौक्ल सावित्र याज्ञिकैः कर्मभिः वा त्रयी प्रोक्तैः पुंसः अपि विबुध आयुषा ॥१०॥

इह	इस संसारमें	त्रयी प्रोक्तैः	
शौक्ल	शुद्ध (माता-पिताकी पवित्रतासे)	कर्मभिः	वेदोक्त कर्मोंसे
		वा	अथवा
सावित्र	यज्ञोपवीत-संस्कारसे	विबुध आयुषा	देव सदृश दीर्घ आयुसे
याज्ञिकैः	यज्ञ-दीक्षासे प्राप्त		
त्रिभिः जन्मभिः	तीन प्रकारके जन्मोंसे	अपि	भी
		पुंसः किम्	पुरुषको क्या लाभ ॥१०॥
व	अथवा		

श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः ।
बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा ॥११॥

श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिः चित्त वृत्तिभिः बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेन इन्द्रिय राधसा ॥११॥

श्रुतेन	वेदाध्ययनसे	निपुणया	निपुण
वा	अथवा	बुद्ध्या वा	बुद्धिसे अथवा
तपसा	तपस्यासे	इन्द्रिय राधसा	इन्द्रियोंकी पटुतायुक्त
किं	क्या लाभ,	बलेन	बलसे
वचोभिः	वाणीकी निपुणतासे	किं	क्या लाभ ॥११॥
चित्त वृत्तिभिः	चित्तकी (विशेष) वृत्ति बना लेनेसे		

किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि ।
किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः ॥१२॥

किं वा योगेन सांख्येन न्यास स्वाध्याययोः अपि किं वा श्रेयोभिः अन्यैः च न यत्र आत्मप्रदः हरिः ॥१२॥

योगेन सांख्येन वा	योगसे अथवा विवेकसे
न्यास स्वाध्याययोः	संन्याससे
अपि	स्वाध्याय (जप)से भी
किं वा अन्यैः च	क्या लाभ अथवा
श्रेयोभिः	दूसरे भी कल्याण-कारी साधनोंसे
किं	क्या लाभ
यत्र	जहाँ
आत्मप्रदः	अपने आपको दे देनेवाले
हरिः न	श्रीहरि न हों ॥१२॥

श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः ।
सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः ॥१३॥

श्रेयसां अपि सर्वेषां आत्मा हि अवधिः अर्थतः सर्वेषां अपि भूतानां हरिः आत्मा आत्मदः प्रियः ॥१३॥

अर्थतः	वास्तवमें
सर्वेषां	सभी
श्रेयसां अपि	कल्याणके साधनोंमें भी
हि	क्योंकि
आत्मा अवधिः	आत्मा ही उनकी सीमा है,
सर्वेषां अपि	सभी
भूतानां	प्राणियोंके
हरिः आत्मा	श्रीहरि ही आत्मा हैं,
आत्मदः	अपनेको दे देनेवाले हैं,
प्रियः	(सबके) प्रिय हैं ॥१३॥

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥१४॥

यथा तरोः मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत् स्कन्धभुजः उपशाखाः प्राण उपहारात् च यथा इन्द्रियाणां तथा एव सर्व अर्हणं अच्युत इज्या ॥१४॥

यथ तरोः	जैसे वृक्षकी	प्राण उपहारात्	प्राणोंको उपहार (भेंट) देनेसे
मूलनिषेचनेन	जड़ सींचनेसे	इन्द्रियाणां	(सब) इन्द्रियोंको (तृप्ति मिलती है)
तत्	उसके	तथा एव	वैसे ही
स्कन्ध भुजा उपशाखा	तने, मोटी डालें और पतली शाखायें	अच्युत इज्या	श्रीहरिकी पूजा
तृप्यन्ति	तृप्त (पुष्ट) होती हैं	सर्व	सबकी
यथा	जैसे	अर्हणं	पूजा है ॥१४॥

यथैव सूर्यात्प्रभवन्ति वारः
पुनश्च तस्मिन् प्रविशन्ति काले ।
भूतानि भूमौ स्थिरजङ्गमानि
तथा हरावेव गुणप्रवाहः ॥१५॥

यथा एव सूर्यात् प्रभवन्ति वारः पुनः च तस्मिन् प्रविशन्ति काले भूतानि भूमौ स्थिर जङ्गमानि तथा हरौ एव गुणप्रवाहः ॥१५॥

तथा एव	जैसे ही	च पुनः	और फिर
सूर्यात्	सूर्यसे	काले	समयपर
वारः	जल	तस्मिन्	उसीमें
प्रभवन्ति	उत्पन्न होता है		

प्रविशन्ति	(भाप बनकर) प्रवेश कर जाता है	तथा एव	वैसे ही
		गुणप्रवाहः	त्रिगुणोंका प्रवाह (जगत)
स्थिर जङ्गमानि	अचर और चर	हरौ	श्रीहरिसे (उत्पन्न होता और उन्हींमें लय होता है) ॥१५॥
भूतानि	प्राणी		
भूमौ	(जैसे) पृथ्वीमें (उत्पन्न होते मिलते हैं,)		

एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं
सकृद्विभातं सवितुर्यथा प्रभा ।
यथासवो जाग्रति सुप्तशक्तयो
द्रव्यक्रियाज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥१६॥

एतत् पदं तत् जगत् आत्मनः परं सकृत् विभातं सवितुः यथा प्रभा यथा असवः जाग्रति सुप्तशक्तयः द्रव्य क्रिया ज्ञान भिदा भ्रम अत्ययः ॥१६॥

एतत् जगत्	यह जगत्	जाग्रति	जागते (सक्रिय) रहते हैं,
आत्मनः	आत्माका	द्रव्य	(वैसे ही) पदार्थ
तत्	वह	क्रिया	(उनके) कर्म,
परं	परम सर्वोपाधि रहित	ज्ञान	(तत्सम्बन्धी) ज्ञानका
पदं	पद (स्वरूप) है	भिदा	भेद
यथा	जैसे	भ्रम	भ्रम (भगवत् स्वरूप)
प्रभा	प्रकाश	सकृत्	एकबार
सवितुः	सूर्यका	विभातं	प्रकाशित हो जानेपर
यथा	जैसे	अत्ययः	नष्ट हो जाता है ॥१६॥
सुप्तशक्तयः	शक्तियोंके सो जाने-पर भी		
असवः	प्राण		

यथा नभस्यभ्रतमःप्रकाशा
भवन्ति भूपा न भवन्त्यनुक्रमात् ।
एवं परे ब्रह्मणि शक्तयस्त्वमू
रजस्तमः सत्त्वमिति प्रवाहः ॥१७॥

यथा नभसि अभ्र तमः प्रकाशा भवन्ति भूपाः न भवन्ति अनुक्रमात् एवं परे ब्रह्मणि शक्तयः तु अमू रजः तमः सत्वं इति प्रवाहः ॥१७॥

भूपाः	राजाओं	एवं तु	इसी प्रकार
अभ्र तमः		सत्त्वम् रजः तमः	सत्त्व, रज तम
प्रकाशा	मेघ अन्धकार और प्रकाश	अमू शक्तयः	ये शक्तियाँ
		परे ब्रह्मणि	परब्रह्म परमात्मामें
अनुक्रमात्	क्रमसे	इति	इसी प्रकार
यथा नभसि	जैसे आकाशसे	प्रवाहः	प्रवाह रूपसे (कभी होती, कभी नहीं रहतीं) ॥१७॥
भवन्ति	प्रकट होते हैं		
न भवन्ति	(कभी) नहीं होते		

तेनैकमात्मानमशेषदेहिनां
कालं प्रधानं पुरुषं परेशम् ।
स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाह-
मात्मैकभावेन भजध्वमद्धा ॥१८॥

तेन एकं आत्मानं अशेष देहिनां कालं प्रधानं पुरुषं परेशं स्वतेजसा ध्वस्त गुणप्रवाहं आत्मैक भावेन भजध्वं अद्धा ॥१८॥

तेन	इसलिए	परेशं	(एवं) सबके परम नियन्ता
अशेष देहिनां	सभी देहधारियोंके		
एकं आत्मानं	एकमात्र आत्मा	पुरुषं	पुरुषोत्तम
कालं	काल	स्वतेजसा	अपने तेजसे
प्रधानं	प्रकृति		

गुणप्रवाहं	गुणोंके प्रवाह रूप प्रपञ्चको	आत्मैक भावेन	अपनेसे अभिन्न मानकर
ध्वस्त	नष्ट कर देनेवाले (भगवानका)	अद्धा	निश्चयपूर्वक
		भजध्वं	भजन करो ॥१८॥

दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्ट्या येन केन वा ।
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः ॥१९॥

दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्ट्या येन केन वा सर्व इन्द्रिय उपशान्त्या च तुष्यति आशु जनार्दनः ॥१९॥

सर्वभूतेषु दयया	सब जीवोंपर दया करनेसे	च सर्व इन्द्रिय	तथा सब इन्द्रियोंको
		उपशान्त्या	शान्त कर लेनेसे
वा	अथवा	जनार्दनः	भगवान् जनार्दन
येन केन	जो कुछ मिले	आश तुष्यति	शीघ्र प्रसन्न होते हैं ॥१९॥
सन्तुष्ट्या	उसीसे सन्तोष करनेसे		

अपहृतसकलैषणामलात्म-
न्यविरतमेधितभावनोपहूतः ।
निजजनवशगत्वमात्मनोऽय-
न्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥२०॥

अपहृत सकल एषणा अमल आत्मनि अविरतं एधित भावना उपहूतः निजजन वशगत्वं आत्मनः अयं न सरति छिद्रवत् अक्षरः सतां हि ॥२०॥

हि	क्योंकि	अयं	ये (भगवान्)
सकल एषणा	सम्पूर्ण कामनाओंके	निजजन	अपने भक्तोंके
अपहृत	नष्ट हो जानेपर	वशगत्वं	वशमें रहनेवाले स्वभावसे
अमल आत्मनि	निर्मल चित्त	अक्षरः छिद्रवत्	रिक्त स्थानमें आकाशकी भाँति
सतां	सत्पुरुषोंके	सरति न	हटते नहीं है ॥२०॥
अविरतं	निरन्तर		
एधित	बढ़ती हुई		
भावना उपहूतः	भावनासे बुलाये गये		

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां
हररधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ।
श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये
विदधति पापमकिञ्चनेषु सत्सु ॥२१॥

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिः अधन आत्मधनः प्रियः रसज्ञः श्रुतधन कुल कर्मणां मदैः ये विदधति पापं अकिञ्चनेषु सत् सु ॥२१॥

हरिः	श्रीहरि	अकिञ्चनेषु	निर्धन
अधन	निर्धनोंके	सत् सु	सत्पुरुषोंका
आत्मधनः	अपने धन	पापं	अपमान
प्रियः	प्रिय	विदधति	करते हैं (उन)
रसज्ञः	रसके ज्ञाता हैं,	कुमनीषिणां	दुर्बुद्धि लोगोंकी
ये	(अतः) जो	इज्यां	यज्ञादि (पूजा) को
श्रुतधन	(अपने) शास्त्र-ज्ञान	स	वे
कुल	उच्चकुल (में जन्म)	न भजति	नहीं स्वीकार
कर्मणां	(श्रेष्ठ) कर्मोंके		करते ॥२१॥
मदैः	अभिमानमें		

श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च
द्विपदपतीन् विबुधांश्च यत्स्वपूर्णः ।
न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः
कथममुमुद्विसृजेत्पुमान् कृतज्ञः ॥२२॥

श्रियं अनुचरतीं तदर्थिनः च द्विपद पतीन् विबुधान् च यत् स्वपूर्णः न भजति निजभृत्यवर्ग तन्त्रः कथं अमुं उत् विसृजेत् पुमान् कृतज्ञः ॥२२॥

यत्	क्योंकि	अनुचरतीं	निरन्तर सेवामें
स्वपूर्णः	अपने ही में पूर्ण हैं		लगी
	(अतः)	श्रियं	लक्ष्मीजीको

च तदर्थिनः	तथा उनको पाना चाहनेवाले	तन्त्रः	वशमें रहते हैं
द्विपद पतीन्	राजाओंकी	अमुं	उन (भगवान) को
च विबुधान्	एवं देवताओंकी भी	कृतज्ञः पुमान्	कृतज्ञ पुरुष
न भजति	अपेक्षा नहीं करते	कथं	कैसे
निजभृत्यवर्गं	पर अपने सेवक वर्गके	उत विसृजेत्	छोड़ सकता है ॥२२॥

मैत्रेय उवाच-

इति प्रचेतसो राजन्नन्याश्च भगवत्कथाः ।
श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायम्भुवो मुनिः ॥२३॥

इति प्रचेतसः राजन् अन्याः च भगवत् कथाः श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायंभुवः मुनिः ॥२३॥

इति	इस प्रकार	स्वायंभुवः	ब्रह्माजीके पुत्र
प्रचेतसः	प्रचेताओंको	मुनिः	मुनि नारदजी
अन्याः च	और दूसरी भी	ब्रह्मलोकं ययौ	ब्रह्मलोक चले गये ॥२३॥
भगवत् कथाः	भगवानकी कथा		
श्रावयित्वा	सुनाकर		

तेऽपि तन्मुखनिर्यातं यशो लोकमलापहम् ।
हरेर्निशम्य तत्पादं ध्यायन्तस्तद्गतिं ययुः ॥२४॥

ते अपि तत् मुखनिर्यातं यशः लोकमल अपहं हरेः निशम्य तत् पादं ध्यायन्तः तद्गतिं ययुः ॥२४॥

ते अपि	वे (प्रचेतागण) भी	निशम्य	सुनकर
तत् मुखनिर्यातं	उन (श्रीनारदजी) के मुखसे निकले	तत् पादं ध्यायन्तः	उनके चरणोंका ध्यान करते हुये
लोकमल अपहं	सब लोकोंके पापोंको नष्ट करनेवाले	तद्गतिं ययुः	उन (भगवान)की गतिको पहुंचे ॥२४॥
हरेः यशः	श्रीहरिके यशको		

एतत्तेऽभिहितं क्षत्तर्यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ।
प्रचेतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनम् ॥२५॥

एतत् ते अभिहितं क्षत्तः यत् मां त्वं परिपृष्टवान् प्रचेतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनं ॥२५॥

क्षत्तः त्वं	विदुर तुमने	संवादं	संवाद
यत् मां	जो मुझसे	परिपृष्टवान्	पूछा था,
प्रचेतसां	प्रचेताओंके	एतत् ते	यह तुमसे
नारदस्य	नारदजीका	अभिहितं	(मैंने) कह
हरिकीर्तनम्	भगवत्कथा संबंधी		दिया ॥२५॥

श्रीशुक उवाच–

य एष उत्तानपदो मानवस्यानुवर्णितः ।
वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम ॥२६॥

य एष उत्तानपदः मानवस्य अनुवर्णितः वंशः प्रियव्रतस्य अपि निबोध नृपसत्तम ॥२६॥

नृपसत्तम	राजश्रेष्ठ परिक्षित	वंश अनुवर्णितः	वंशका वर्णन हुआ
य एष	यह यहाँ तक	प्रियव्रतस्य अपि	पियव्रतके भी
मानवस्य	स्वायम्भुव मनुके पुत्र	निबोध	(वंशको)
उत्तानपदः	उत्तानपादके		सुनो ॥२६॥

यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम् ।
भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ॥२७॥

यः नारदात् आत्मविद्यां अधिगम्य पुनः महीम् भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्यः ऐश्वरं समगात् पदं ॥२७॥

यः	जो	अधिगम्य	प्राप्त करके
नारदात्	श्रीनारदजीसे	पुनः	फिर
आत्मविद्यां	आत्मविद्या		

महीं भुक्त्वा	पृथ्वीका (राज्य) भोग	ऐश्वरं पदं	भगवान्‌के धामको
पुत्रेभ्यः	पुत्रोंमें (उसे)	समगात्	पहुँचे ॥२७॥
विभज्य	बाँटकर		

इमां तु कौषारविणोपवर्णितां
क्षत्ता निशम्याजितवादसत्कथाम् ।
प्रवृद्धभावोऽश्रुकलाकुलो मुने-
र्दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥२८॥

इमां तु कौषारविणा उपवर्णितां क्षत्ता निशम्य अजितवाद सत् कथां प्रवृद्धभावः अश्रुकला आकुलः मुनेः दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥२८॥

कौषारविणा	मैत्रेयजी द्वारा	अश्रुकला	
उपवर्णितां	कही गयी	आकुलः	अश्रुधारासे व्याकुल होकर बहने लगी
इमां	इस		
अजितवाद	भगवद्गुणानुवाद-युक्त	हृदा	हृदयमें
		हरेः	श्रीहरिके
सत् कथां तु	पवित्र कथाको तो	मूर्ध्ना	सिरको
निशम्य	सुनकर	मुनेः चरणं	मुनि-मैत्रेयके चरणों-पर
क्षत्ता	विदुर		
प्रवृद्धभावः	भक्तिभावके उद्रेकसे	दधार	रख दिया ॥२८॥

विदुर उवाच-

सोऽयमद्य महायोगिन् भवता करुणात्मना ।
दर्शितस्तमसः पारो यत्राकिञ्चनगो हरिः ॥२९॥

सः अयं अद्य महायोगिन् भवता करुणात्मना दर्शितः तमसः पारः यत्र अकिञ्चनगः हरिः ॥२९॥

महायोगिन्	महायोगी (मैत्रेयजी)	तमसः पारः	अज्ञानान्धकारका पार
करुणात्मना	परमदयालु		
भवता	आपने	दर्शितः	दिखा दिया
अद्य	आज	यत्र	जहाँ
सः अयं	वह यह	अकिञ्चनगः	अकिञ्चनोंकी गति
		हरिः	श्रीहरि हैं ॥२९॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यानम्य तमामन्त्र्य विदुरो गजसाह्वयम् ।
स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृताशयः ॥३०॥

इति आनम्य तं आमन्त्र्य विदुरः गजसाह्वयं स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृत आशयः ॥३०॥

तं	उन (श्रीमैत्रेयजी) को	निर्वृत आशयः	प्रसन्न चित्त
		स्वानां ज्ञातीनां	अपने जातिवालोंको
इति	इस प्रकार	दिदृक्षुः	देखनेकी इच्छासे
आनम्य	प्रणाम कर	गजसाह्वयं	हस्तिनापुरको
आमन्त्र्य	(और उनसे) आज्ञा लेकर	विदुरः	विदुरजी
		प्रययौ	चले गये ॥३१॥

एतद्यः शृणुयाद्राजन् राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् ।
आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥३१॥

एतत् यः शृणुयात् राजन् राज्ञां हरि अर्पित आत्मनां आयुः धनं यशः स्वस्ति गतिं ऐश्वर्यं आप्नुयात् ॥३१॥

राजन्	राजन् !	आयुः धनं	आयु, धन
यः	जो	यशः	सुयश
हरि अर्पित	भगवान्‌के अर्पित	स्वस्ति	कल्याण
आत्मनां	चित्तवाले	गतिं	सद्‌गति
राज्ञां	राजाओंके	ऐश्वर्यं	ऐश्वर्यको
एतत्	इस (चरित्र) को	आप्नुयात्	पावेगा ॥३१॥
शृणुयात्	सुनेगा (वह)		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे प्रचेतउपाख्यानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

॥ इति चतुर्थस्कन्धः समाप्तः ॥

हरिः ॐ तत्सत्